

भारत की संस्कृति और कला

राधाकमल मुखर्जी

भूतपूर्व उपकुलपति सतगुरु विश्वविद्यालय
निदेशक ज० के० इन्स्टीट्यूट ऑफ सोसलोजी एंड ह्यूमन रिलेशन्स

राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६



THE CULTURE AND ART OF INDIA

by Radhakamal Mukerjee का अनुवाद

© George Allen & Unwin Ltd., 1959

अनुवादक
रमेश वर्मा

मूल्य

प्रकाशक

मूद्रक

बारह रुपये

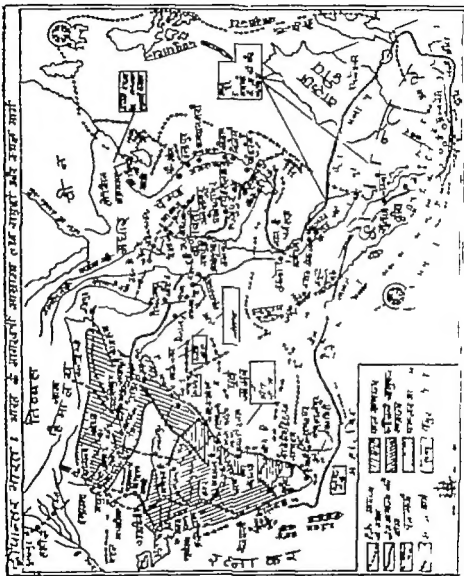
राजपाल एण्ड सन्स बस्तीपैगैट दिल्ली

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली

कति सयानो भवति संविहानस्तु हापर ।
 कतिर्धत्तेता भवति कुसं संपद्यते अरुचरैवेति अरुवेति
 अरुचं मयु विभवति अरुस्त्वाहुमुचं अरु
 सुयस्य पाय धेमार्षं यो न तन्मयते अरुचरैवेति अरुवेति ।
 [निद्रा में पड़े रहना कलियुग में बाध है, जाग जागना हापर
 में बाध है अड़े हो जाना जरा में बाध है धामे बढ़ना धत्य
 युग में बाध है । इसलिये धामे बढ़ो धामे बढ़ो । यति मभुर
 है, गति स्वादिष्ट फल है । सूर्य का धम देखो कि वह कभी
 धाराय नहीं करता । इसलिये धामे बढ़ो धामे बढ़ो ।]
 —ऐतरेय ब्राह्मण, ७ : १५ : ४-५ ।

अहं नारायणी ब्रह्म सर्वम् सर्वनाथम् ।
 अहमिन्द्रपते राज्ञो सर्वाङ्गं परिवारम् ॥
 अहं योगी युगाद्ययम् युगान्तायत एव च ।
 हुताग्नेः सवभूतानां विश्वेभ्यो कामतप्तित्वा ॥
 [मैं ब्रह्म हूँ नारायण हूँ । मैं सबका बनक धीर संहारकर्ता
 हूँ । इन्द्र के रूप में मैं देवराज राज हूँ । मैं कामधक हूँ । मैं
 बहु योगी हूँ जो युगों को समाता हूँ धीर फिर उनका धम
 कर देता हूँ । मैं विश्व के सभी पदार्थों को समाप्त कर देता
 हूँ । मैं नाम काम हूँ]

—मत्स्यपुराण



प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता का तीन कारकों से मानव इतिहास में बहुत ही महत्व है। पहला कारण जगमग पाँच हजार वर्ष तक इस सभ्यता की अक्षुण्ण अविच्छिन्नता इसकी ओद्योगिता को प्रमाणित करती है। इसकी जड़ें इसकी मानवीय भावना और मूर्त्या व सामाजिक विधान की विविष्ट व्यक्तता में समाई हुई हैं और वे मानव-जाति की शक्ति और स्वात्मिक के अस्त्र श्रोता पर प्रकाश डालती हैं। दूसरे, भारतीय सभ्यता न धनक घटावियों में एशियाई सभ्यता की एकता स्थापित की है। यह एकता जिस पद्धति से स्थापित की गई है वह न केवल भारत की विविष्ट प्रतिभा की प्रतीक है बल्कि समूचे इतिहास की दिशा भी निर्दिष्ट करती है—विविष्ट संस्कृति से सामंतीय संस्कृति 'आदि' राष्ट्रवाद से एक एकीकृत विश्व-समाज यही मानव जाति की नियति है। तीसरे, मानव-जीवन और समाज की समस्याओं पर सभ्यता के अस्त्रोद्य से ही भारत में जो सशक्त चिन्तन जन्मा समस्त एक ऐसा मानसिक प्रतिमान उत्पन्न व परिपुष्ट हो गया जो वादभास्य तथा पूर्व-एशियाई प्रतिमान से कुछ भिन्न है। इस प्रतिमान में शक्ति और सामंजस्य की लोच के लिए अभाव निष्ठा का प्रमुख स्थान है, जिसमें अज्ञान-अज्ञान जयन बीच लिए बिना नहीं रह सकता।

भारत में राज्य राजनीति और विजय का उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना कि अफ़्ग़ानिस्तान में अत्यन्त और जसा का सामाजिक समन्वय के पटकों के रूप में दिया जाता है। संसार में सामंती ही कोई ऐसी जाति है जो भारतीयों की तरह राजनीतिक पन्नामा—शासन चढ़ाई या मुठ—से इतनी कम आसित रही हो और आध्यात्मिक तथा धार्मिक आम्बोसनों से सामान्य रूपनाओं मानवकों और सामाजिक परम्पराओं की पारिस्परिक स्थापनाओं में इतनी अद्विज आसित रही हो। मध्य पूर्व और अश्विन पूर्व एशिया इन्हीं के द्वारा अनेक घातकों तक एक आत्मिक समाज के रूप में संगठित रहा है।

अनेक विदेशी लोगों ने भारत की वर्मागता का उत्तेज किया है। परन्तु भारतीय संस्कृति में प्रदाम रेंकर बहुत अने और अमरारकों का नहीं बल्कि पुराणों अफ़्ग़ानिस्तान और सीख-बोध का है। देवताओं के अस्तव्य नाम और रूप—पुराणों के तैलीय करोड़ देवी देवता जिनमें से बहुत-से अभाव आत्माओं के सम्प्रदायों और विदवाओं में से धारन सम्प्रेषण हैं एक भारतीय के लिए कोई अंभट नहीं है। तथापि वे सब समान धारी किन्तु आध्यात्मिक और सीख-बोधक गुणों का मूर्तरूप है। समस्त समस्त राज्य के अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित सार्वभौम प्रार्थना अर्पित है

यं यथा समुपासते तत्र इति ज्ञेयं विद्यामिता

बीजा बुद्ध इति प्रमाणपटय-वर्तन विद्यामिता।

यद्भिस्त्वय्य भैमशासनरताः कथंति मीमांसकाः,

तो'यं वो विद्वद्वातु वाग्भिश्चतस्त्रं त्रीमोक्षयनायो इति ॥

विभिन्न धर्मशास्त्रों में देवताओं उनकी पूजा की पद्धतियों और कर्मकाण्ड के सम्बन्ध में जाहे कितना ही विस्तर विवेचन हो परन्तु वेदवादी और उसके तीन प्रस्तावों— उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता—के धार्मिक अध्यात्म के माये है सब छाँट हो जाते हैं। “वन में खोर अचानेचाने श्रुमान जिस प्रकार सिंह को सामने बैसकर मोन बारण कर सेते हैं उसी प्रकार वेदवादी कपी सिंह के सामने सभी शास्त्र मुक हो जाते हैं।”

भारतीय संस्कृति में जो सबक और उदाहरण मिलती हैं और उसे देश के भीतर व बाहर विदेशी व पिछड़ी जस्तों और जातियों को ध्यात्मशास्त्र करने में जो इतनी धार्मिक महत्ता मिली उसका कारण यह है कि भारत में खोर धर्मशास्त्रीय मतों और कड़ियों पर नहीं रहा, बरिष्ठ विपुल बौद्धिक और धार्म्यात्मिक परम्पराओं पर रहा है और उन्हीं-से उनका विश्व-विज्ञान तथा सामाजिक मूल्यों और संस्थाओं की व्यवस्था विकसित हुई है। निम्न स्तर की, और विदेशी प्रसक्त जस्तों के लिए अपना द्वार खोलने को भारत ने जिस तरह विस्तृत रूप में वर्णसंस्कार की कल्पना रखी उस तरह और कोई जाति नहीं रख सकती थी। उपनिषदों ने क्या संयम और बान के मुक्तों पर और बुद्ध ने संयम के धर्म्यागिक मार्ग पर खोर दिया और उस से वर्म के भारतीय विज्ञान में किमप्रता कइया और पहिचा पर ही खोर रहा है और भारत ने इन गुणों द्वारा बहुजन्मी जातियों को बिना तनबार और बंदूक के किमप्र और सम्म बना दिया।

अतः भारतीय इतिहास के प्रति केवल राजनीतिक नहीं बरिष्ठ प्रबंधता का और सांस्कृतिक दृष्टिकोण धनवाना चाहिए। धाबारमृत सक्रिय विचारों कल्पनाओं और मूल्यों पर दृष्टि एकाग्र करके ही इन प्राचीन जाति के जीवन और विकास के अध्ययन में पूर्णपरकम और व्यवस्था साईं जा सकती है। धन्यवा नइाइयों और विजयों तथा भारत के विभिन्न भागों में विविध रायों और साम्राज्यों के उदयान और विघटन से जो चित्र सामने आया वह किमृज्जमता का या मंडरों और विप्लवों के सिलसिले का एक अशास्त्रिक चित्र होया।

इस संघ को पादरिपनिषों और मन्त्रों से मुक्त रखा गया है, जो भी उदरन है वे मूलपाठ के ही अंतर्गत हैं। इन प्रकार एक बुद्धिमान माध्याम पाठक उनम उनमे बिना इन संघ का अध्ययन कर सकेगा। परन्तु छात्रों की सुविधा के लिए पुस्तक के अंत में सगुणग्रन्थों की विस्तृत सूची है की गई है। विषय को स्पष्ट करने के लिए साहित्यिक कृतियों पुराणों मंत्रों और धर्मशास्त्रों के अदरन तथा भारतीय कला, विशेषकर मूर्ति बना के प्रभाव सगुणों और प्रतीकों के उदाहरण दिए गए हैं। जीवन के प्रति अपने धार्म्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण भारतीय सभ्यता की प्रायाधिक और सहज धर्मध्यात्म मूर्ति बना में होती है, जो मानव के सारवत और धर्म्यात्मिक मूल्यों को निरिबद्ध करने के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम है। प्रमुग चटनाओं कालों और धार्म्यात्मकों की जो समय-वारणी की गई है वह भाषा है उपयोगी सिद्ध होयी।

क्रम

प्रस्तावना	१९
विषय-श्रेष्ठ भारतीय सम्प्रदा की धारणा	१७
१ सिन्धु-संस्कृति	४१
२ खरस्वती की संस्कृति	४८
३ महाभारत महादीप, संस्कृति और साहित्य	३३
४ प्रथम सुधार-युग धार्मिकधर्म जैनधर्म और बौद्धधर्म	६६
५ तौर्ध-युनर्जागरण की सोकरकता और सर्वाधवाद	८०
६ प्रारंभिक बौद्धकला में मानवतावाद	६६
७ सुन-युनर्जागरण की सङ्घिष्णुता और मार्वाभीमिबता	१०६
८ त्रितीय सुधार-युग बौद्धधर्म का निरवधर्म में रूपान्तर	१२०
९ पुन-युनर्जागरण का चरम उत्कप और र्भवध	१४३
१० बौद्ध निरवधिधामधों में जीवन-वापन और निधाध्मधन	१६५
११ एधियाई एकता का निर्माता बौद्धधर्म	१७६
१२ धीवनिधेधिक संस्कृति और कला धीपाध्तर भारत	१८६
१३ भारतीय कला का स्वधर्मयुग युनकाधीन कलाधितिरध और मानव वाद से धध्मयुधीन स्वधध्मरुतावाद और निरवातीतता तक	२०६
१४ तृतीय सुधार-युग धार्मिक वैवाध का उत्थान	२२६
१५ ताधिक समन्वय और उतकी निरवध वध से सङ्ग और धोध से करता तक	२३७
१६ राजपूत-युनरुवाध का धोध और धाकरध	२५८
१७ चतुर्थ सुधार-युग धिन्दू और इस्लाम धर्म के धध्म सेतु समान धध्मि और सुधी धाधोधध	२७७
१८ सुनध संस्कृति व कला की उधरता और मानवीयता	२६३
१९ धिन्दूधर्म का पुनरुत्थान	३०६
२० भारतीय-धार्मिक पुनर्जागरण की उधरता और धीधारिकता समापन	३३६
महाधक धध्म	३४७
भारतीय सम्प्रदा की समध धारणी	३७८
अनुक्रमधिका	३७३



विषय प्रवेश

भारतीय सभ्यता की आत्मा

भारतीय सभ्यता की अविच्छिन्नता

भारत की सभ्यता संसार के अन्य देशों की सभ्यता से अधिक प्राचीन और प्राच्यवान है। यह तथ्य प्रायिक महत्वपूर्ण इसलिए है कि बहुत कम देशों में विदेशी जातियों की ऐसी पड़ाइयाँ और विजयों की सहाई है, इसके जो कम देशों में प्राकृतिक समाप्तों, रीति रिवाजों और भाषाओं का इतना विकास है। भारतीय सभ्यता की अविच्छिन्नता के दो कारण हैं। एक कारण है कस्तरता और दूसरे का समय समय पर प्राच्य तथा दूसरा कारण है पाँच हजार वर्षों के संघर्ष अभिक प्रतिपाद और समन्वय काल पर विकसित एक सामाजिक व्यवस्था। इस विशाल भूभाग पर आक्रमणों युद्धों समया विजयों में राज्यों और साम्राज्यों को संकटित प्रथमा विपत्ति लो किबा है किन्तु निवासियों का व्यापक सम्प्रतिहरण प्रथमा एक संस्कृति के स्थापन पर दूसरी संस्कृति को प्रतिष्ठापित नहीं किया। भारतीयों के स्वभाव और चरित्र पर भी इनका आन्तरिक प्रभाव नहीं पड़ा।

भारतीय जीवन और विकास का रहस्य है आचार-व्यवहारों की किसी छोटी-छोटी सुभवस्था विरहास तथा जीवन के चार उद्देश्यों—धर्म, धर्म, काम और मोक्ष—के संतुलित उद्देश्य की भारतीय विरासत। कुल मिलाकर, भारतीय सभ्यता की अनन्त देन है प्रत्येक व्यक्ति, जाति वर्ग और व्यवस्था के लिए धर्म की मानना प्रत्येक को जीवन की आध्यात्मिकताओं के अनुसार कुछ वर्तमानों का वास्तव और समापन करके उनसे परे पहुँच जाना चाहिए। यही धर्म है। महाभारत में कृष्ण ने धर्म को एक प्रथमा वास्तव कहा है

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजा ।

एतद्व्यवस्थो वाच्यो निरयोद्युक्तो बुद्धिदर ॥

(महामात उद्योग पर्व १३७ २)

धर्म ही सामाजिक जीवन के कार्यों और व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण एवं नियंत्रण करता है। पनाधियों के शोचन धर्म की व्याख्या की गई है। इसे सामाजिक सम्बन्धों का अतिरिक्त प्रसार तथा व्याख्यायण और ऐश्वर्य से व्युत्पन्न स्वातन्त्र्य माना गया है। व्यक्ति का लक्ष्य है प्रशिक्षण की प्राप्ति तथा समाज का लक्ष्य है संस्कृति की उपलब्धि। दोनों लक्ष्य एक ही—युग समुचित और व्यावहारिक—हैं। यह लक्ष्य है विरचनमीन आत्म और 'विरचनमीन समाज' की विधि। भारत में हमें 'धर्ममाय' और 'मायमाय' मानकर पूजा तथा शोचन को धर्मिय समझा जाता है।

संस्कृति का भारतीय दर्शन

✓ संस्कृति के भारतीय दर्शन की सर्वाधिक तर्कसंगत सहाय धीरपावन अभिव्यक्ति एसीफेष्टा की मुखा (घाठबी सताब्दी ईस्वी) में शिव-महोदय की विख्यात धार्मिक-भिमूर्ति में हुई है। इस प्रतिमा में शिव का मुख स्वयं-प्रभासित, निरपेक्ष और पारमौलिक 'तत्पुरुष सदाशिव' का है। बाहिरी मुख उग्र भुक्तुटी लाने हुए तथा वैराग्य व विनाश की भावना से उद्यत 'अधोरमैरव' का है। धीर शरीर मुख है शिव की संमिती परम सौख्य मयी धाभूषणयुक्त उमा का जो अपनी अपल सुखलसीसता ग्रंथ धीर कठना के बल पर लासमयी है। भारतीय संस्कृति में उमा अथवा शक्ति बिनके हाथ में सर्वत्र कमल रहता है। धर्म धीर काम धर्मात् सम्पत्ति सौख्य धीर जीवन-सीख की देवी हैं। अपनी धनुमियों में सांघ लपेटे अधोर और धर्म धीर मोक्ष के प्रतीक हैं। धीर धारमलीन तत्पुरुष के लिए सृजन और संहार किया धीर प्रशान्ति का सतत मतिपीन चक्र केवल क्षमिक माया है जो जन्मती बढ़ती धीर अम्य सभी मायावी आकारों की भांति तत्पुरुष में ही विनीत हो जाती है। इस धार्मिक-भिमूर्ति के कुछ दूधरे रूपों में प्रशान्त योनी की भांति सदा शिव तो अम्य में ही हैं किन्तु बाहिरी धीर अप्यर से रक्तपान करते हुए महाकाल तथा शायी धीर एक धर्म में प्रतिबिम्बित ब्रह्म के रूप में अपने सौख्य का धर्मोक्त करती हुई महामाया। संस्कृति के भारतीय दर्शन में व्यक्ति और समाज दोनों के लिए धर्म धर्म काम धीर मोक्ष (चतुर्वर्ग) का अभिमतन धीर ऐक्य है जो धारमा धीर माया की धर्मात् प्रकृति पर आधारित है। इसका प्रतीक है शिव की भिमूर्ति में एक विद्यान मुकुट का निर्भीक धीर मौलिक प्रयोग जिसके बल पर शिव के तीनों धिरो में धर्म्यतम सन्तुलन धीर ऐक्य उत्पन्न हो जाता है। पहरी गुफा की प्रकाश धीर छाया की निमनित्वाहट में शिव के भावमय धर्म-मुख अपेक्षाकृत अस्पष्ट धीर अवास्तविक-से दीपते हैं तथा शीघ्र में विराजित सदाशिव की अम्य आकृति धीर मुहु शायी के सामने धुंधले पड़ जाते हैं। शीघ्र में परमात्मन् संसार के सुख-दुःख के धारमत् सर्वत्र तटस्थ छाती है। ये सुख-दुःख उस 'एक' के धर्मिकानैक गुणों नामों धीर रूपों से धर्मिक धर्मात् नहीं हैं जो स्वयं निर्मूल धर्मात् धर्मात् है तथा जिसकी स्वाभाविक प्रकृति में ही धार्मिक धीर धर्मात् किया रमकता धीर धर्मिकता की एकता निहित है। परमात्मन् सम्पूर्ण धीर धर्मिक है। वह सभी धीर धर्म के रूपों तथा उनके द्वारा धर्मिकत जीवन अस्तित्व धीर धारमा की धर्मिक प्रक्रियाओं के पीछे धर्म जाता है। धार्मिकत धर्मिक को धर्मिकतासे धर्मिकती नाटक की सट्टि इन्हीं धर्मिकताओं से होती है। सदाशिव में कुछ होता नहीं सब कुछ धर्मिक विष्ट रहता है। शिव सर्वतुष्ट सर्वमनुमिति धीर सबमौन है। शिव के धर्म दो मुख—धनुमौत धर्मिक निम्नतर धारम—निम्नतर धर्मिक धीर निम्नतर धर्मिक है। मायावी संहार का धर्मिक स्वांतर्य धीर धनुमत् करते रहते हैं। धर्म भी ये धारम के उत्तरत धारमत् एकात् सर्व धर्मात् के ही धर्म हैं धीर धर्मिक उद्भूत धीर धर्मिक, सत्य धारमत् धीर धर्मिक का कारण ही धर्मिक मरुत धीर धर्मिक का धर्म होता है। यह है धर्मिक की धर्मिक कल्पना जिसका धनुमत् जीवन धीर धर्मिक ब्रह्म के सृजन धीर स्वांतर्य की धारमत् धर्मिक को परमात्मन् का ही धर्मिक है।

एलीफेंटा की विमूर्ति एक समय भारत तथा मध्य, तुर्किस्तान और कम्बोडिया में सुपरिचित थी। चीन की बुन काफ़ मूफा में इसे पाया गया है तथा जापान की 'दाई इतोकु' वही है। यह शिव-विमूर्ति भारतीय संस्कृति की विविष्ट विषयमस्तु का प्रतितीय और व्यापक प्रतीक है तथा यह विषयमस्तु है— 'अस्ति' अथवा शिव-आत्मन् की प्रभुता तथा चेतना का एक अथवा 'अस्ति' और 'भावि' अथवा और भावा का एक भारतीय दर्शन में जिसका प्रतीक और व्याख्या है पुरुष और स्त्री का द्वैत सिद्धान्त। एलीफेंटा की मूर्तियाँ भारत के गम्भीर सन्देश की भाषा और सुनिश्चित उद्घोषणाएँ हैं। "प्रत्येक कार्य अक्षयि के लिए किया जाए तो क्रियात्मकता ही सच्ची पूजा है। आत्मन् का परमात्मन् में लीन करने का सकल कर लिया जाए तो सच्ची पूजा लीन है।" यह मूर्ति पुरुष और प्रकृति के धार्मिकानीन लोभ कर्षों की व्यक्त तो करती है। फिर भी यह किसी स्वाराध्य देवता की मूर्ति नहीं है। वह तो ब्रह्म और सामाजिक परम्परा से परे एक प्रभावी प्रक्रिया मानवीय धारणा के क्पात्तरथ का प्रतीक और धाराह्वन है। इसकी भाषा सार्वभौम है और किसी भी देश के विचारवान व्यक्ति इसे देखकर ध्यानवीन हो सकते हैं, यह निस्सन्देह संसार की सम्मत कलाकृतियों में से एक है। ✓

भारतीय कला की प्रकृति एवं भूमिका

भारत के दर्शन और ब्रह्म की भाँति, भारतीय कला भी बिचपारमक नहीं बल्कि कल्पनाप्रधान और आध्यात्मिक तथा व्यक्तिपरक नहीं बल्कि जातिपरक और सामाजिक है। भारत में चित्रण ज्ञान है तथा कल्पना और काव्य (विद्या) चित्रण है। आध्यात्मिक यथार्थ ही अपने कल्पनापरक रूप अथवा मूर्ति में मानव को उपलब्ध होता है ताकि वह ध्यान पुत्रा तथा कल्पनामक निरूपण कर सके। इसीके अनुसार भारतीय कला मानवी संसार की अनेकरूपता में, जीवन के समस्त स्तरों सीमाओं और विस्तारों में एक पारमौलिक यथार्थ का ही उद्घाटन करती है। इसमें जीवन की मुम्किष्ठ बहुमता और विनाशिता अमूर्त और प्रगाढ़ स्तर के रूप में मौजूद है। यह काविक और साहित्यिक बहुम और समुचित साध-साध है। भारतीय मूर्तिकला और धर्मकति में पुरुष के मोरव और विभव, ईश्वर की वैचारिकता और सक्षमता तथा मारीकी प्रयत्नता और सुनम्पता सभी मर्बाहित और संयत हैं। यह मर्बाहि और संयम अनीतिक कल्पना-अव्यवस्था और आध्यात्मिकताअव्यवस्था निर्मलता और सयति की है। भारतीय दर्शन के अनुसार, सम्पूर्ण ब्रह्मांड और मानव-अस्तित्व की सभी प्रक्रियाओं के पुरुष और मारी दो पक्ष हैं, यही द्वैतता भारत में जीवन के प्रति वैचारिक और विचारमक दृष्टिकोण में निहित है तथा प्रकृति के स्वाभाव और अतिमयत्त व मानव-स्वभाव की कठोरता और कोमलता को सत्ता की सब के रूप में प्रस्तुत करनेवाले भारतीय चित्रण और साहित्य में भी यही द्वैतता प्रकटित है। अस्तुत भारतीय मूर्तिगण काव्य और नाटक सभी में विषयों का विर प्रतिष्ठित अनुभव और एक के साथ अन्वयता और स्वच्छन्दता का, विविध संयोग का भी कारण यही है। भारत, जावा स्थान और कम्बोडिया में भारतीय मूर्तिगण ने पारसीक, बायबी विष्णु रोनाचकारी मूर्तियों की सृष्टि की है, जिनमें पुरुष के मोरव

घोर भोज तथा नारी की सामंसा और कोमलता का घावपूर्णजनक समोचन है और जिनमें मानव के व्यक्तिपरक गुणों (जिनमें यौन भी सम्मिलित है) को एक घमूनों और घसीकिक प्रकार—चित्र बिष्णु कुछ बोबिसरव, और देवी—के बचीन कर दिया गया है। घनेक बिभिन्न एशियाई जातियों और संस्कृतियों ने इन मूर्तियों को पुनर्निर्मित किया है किन्तु उनपर भी इसी प्रकार के धार्मिक मयार्थ की छाप स्पष्ट है—यह धार्मिक मयार्थ इतना सरस और सार्वभौम है भवत घमिक बिबुद्ध है।

घपनी मूर्तिकला के मांभीर्य सीर्य और बीबिष्य के कारण भारतीय कला बिबेधों में भारतीय संस्कृति का प्रसार प्रभावपूर्ण और समीचीन इन से कर सकी है। जातकों भवधानों रामायण हरिचंश और महाभारत के बुद्ध यदि समीक्षानों को स्वीकार्य भाव गिक और धार्मिक बटमाचम न होते तो जावा बर्मा और बम्बोडिया में बिबेधियों ने उन्हें हजारों पाटों पर इतने बीयपूर्वक और उत्कृष्ट रूप से कदापि न सकरा होता। बोरबुद्ध भग्दोर और पगल मन्त्रियों के लघु बह्माई की साक्षनिक प्रतिक्रिया हैं जिनमें भारतभूमि के मंमृति-बिज्ञान की धारणाओं के अनुसार सगारों और बीजन के स्तरों का नैयमिक और निबिचत मयो-बिभाजन है। कम्बुद्ध और इरावती के मन्दिरों में बर्मबुद्ध भन्तराल मंडप और चिधर का प्रबन्ध भारतभूमि के मन्त्रियों के समान है इनमें मन्दिर बिज्ञान के एक जैसे साक्षनिक सिद्धान्त प्रमुक्त हैं जो मानव की बनि भवका बद्ध के राज पुगमिमम के प्रतीक हैं। बुनानी बीड और म्पुत्तकानीन कला तथा मध्ययुगीन एरिक्नी पस्सक और पास कला की सक्तिमती धाराएँ उत्तर और पूब में पर्वतीय भागों तथा दक्षिण में समुन्नी माओं द्वारा पुर्बानुपर तरणों के रूप में मध्य एशिया चीन नेगल सिन्नत बृहत्तर भारत और इंडोनेशिया में प्रवाहित हुई। भारत की कला ने ही भारतीय पुराण धर्म्यारम और बर्म का प्रसार किया तथा पवन इरावती बम्पा भग्दोर और पुर्बी जावा की क्षेत्रीय बीसियों को बिबिधित भवका समृद्ध किया।

सांस्क्रुतिक प्रसार में साक्षमीय कल्पनाओं और मानदण्डों की भूमिका

मूर्तिकला के बिम्बों सगलों और भमिप्रायों (मोटिक) के घठिरिक्त घनेक भारतीय भमघण्यों ने भी एशियाई मंमृतिकार्य-निर्धारण किया। इनमें सर्वाधिक महत्त्व पूष है महाकाव्य जातक पुराण धामम और तग्न तथा 'सद्धर्मपुञ्जरीक', प्रजा पारमिता 'नसितबिस्तर' यथोलाद 'भमिबमकाप और 'सुनामंकार जैसे घण्य। धम और घास्त्रीयता तथा साहित्य और कला द्वारा ही भारत की धारणा उसके इति-हास क निर्माभापीन युगों की घर्तहित प्ररणा तथा बाह्य बीजन के साथ उसके सम्बन्ध को जाना जा सकता है। मीर्य कुवाक मुत्त पास प्रतिहार, पस्सक भवका बीन राग्यों या माघाग्यों में राजनीतिक एकीकरण हुआ। जिनु इनका महत्त्व बेकन इतना ही नहीं है। इन्दी मुओं में घास्त्रीय धर्म्यपन द्वारा कुछ सार्वभौम कल्पनाओं मूर्त्यों और मान दण्डों की स्थापना हुई तथा बरिष्कार किया गया। ये राग्य भवका साध्माय्य घमोच बड़ गिज्ञातों देवी भमत्कारपूर्ण मर्तों और सदिग्य कलाओं के जास में नहीं बंछे। यही कारण

है कि अनेक विदेशी धर्मों का देश के भीतर या बाहर के पहले के समुद्र इनकी ओर आकर्षित हुए तथा इनके पक्षधर बन गए।

सत्तरी-परिचय सीमाप्राप्त कलिंग और दक्षिण को मुझ में पराजित करके तथा 'मामक' जयप्राप्त और 'धर्मशास्त्र' जैसे पालि धर्मग्रन्थों के व्यवस्थापन 'रामायण' और 'महाभारत' के सारस्वत की संरचना तथा शिक्षाविदों द्वारा 'सद्धर्म' के प्रचालन द्वारा मौर्य साम्राज्य में समान उपनिषदों प्राप्त की। उत्तर के कुषाण साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात् अनेक सन्धी सत्ताधियों तक पश्चिमी एशिया और दक्षिण पूर्वी एशिया में 'सद्धर्मपुण्डरीक' 'मसिहविस्तर' और 'विष्णुवदन' नामों लोगों को बमस्तुत किए रहे। 'सद्धर्मपुण्डरीक' धर्म धर्मग्रन्थ और काव्य का जिसका निधन है। इसकी रचना दूसरी सन्धी ईस्वी के आरम्भ में कुषाण साम्राज्य में कहीं पर हुई थी तथा २६३ ३१६ ईस्वी के बीच कभी इसका अनुवाद चीनी भाषा में हुआ। धर्म एशिया में इतने बड़े 'बाइबिल' का दर्जा पा गया। इसके अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रों पर 'मयवृषीता' का प्रभाव है तथा 'मयवृषीता' के समान यह महान् धर्मग्रन्थ भी एशिया को भारत की देन है और संसार भर में सबसे अधिक पढ़ जानेवाले ग्रन्थों में से एक तो यह है ही। एशिया की दो प्रमुख लोकप्रिय पुस्तकों—मयवृषीता और 'कुलचरित' तथा प्रायश्चित्त और 'जातकमाला'—की प्रेरणा से ही अजन्ता संसार बुद्ध-मैत्र और बालोबुद्ध का जन्म का प्रेरणा की मूर्तियों तथा प्रतिमाओं में संसारभर की मानवीय कला और रोमन्ता के कुछ सुन्दरतम दृश्य संकलित किए गए हैं।

चीनी से प्राचीन सत्ताधरी ईस्वी तक प्रसरित स्वयंयुग को लाने का धर्म युक्त साम्राज्य को था। इस युग में युक्त साम्राज्य ने यहाँ तक कुषाणों मुकुटो बमस्तुत और लोगों के विरुद्ध भारत की रक्षा की। किन्तु इस युग की महिमा इतनी ही नहीं। इसी युग में महाकाव्यों और पुराणों का रचयिता हुआ स्मृतिव्यवस्थापक संस्थाओं और ब्रह्म प्रचालकों का व्यवस्थापन हुआ मिश्र-प्राचिन और विद्वानों ने धर्म के जोड़ में ब्रह्म संस्था की गंगाई की तथा मयूर ब्रह्म और अजन्ता की कला ने नवप्रेरणाएं लीं। पूर्व के बड़े पाल साम्राज्य के उत्तमिक पुराण, धर्म और धर्मग्रन्थ धर्म भी वैपाल तिष्ठत संश्लेषा बहुतर भारत और इंडोनेशिया को भारत से बांधे हुए हैं। तिष्ठती भाषा में मयमय वाच हजार कृतियों के विभास 'मयूर और कंजूर' संवत् की परिमार्ष्टि संश्लेषा में १०४८ में हुई थी। यहाँ में बम्बादिया और जावा से बानियों तक फैले हुए हिन्दू राज्य अनेक सत्ताधियों तक प्रचाल के हिन्दू करण की दीर्घ प्रशिक्षा के साथी रह चुके हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया का अधिवास 'भारत' धर्म में सम्मिलित था और 'दीपावली' कहा जाता था। दीपावली का धार्मिक धर्म है भारत (भारत) और चीन के बीच दीपों (संस्कृत व्याकरण के अनुसार दीप और प्रायश्चित्त दोनों ही दीप हैं) का समूह। प्रचालियों के—भारतीय वैश्य व्यापारियों लक्ष्मि अधिवासों ब्राह्मण पुत्रारियों और बड़े मिश्रियों के—निरन्तर प्रवाह ने धर्म-बर्बर देशों में धार्मिक उपनिषदों की नींव डाली, इसीसे सत्ताधियों के बीचम बुद्धदीप जोड़ने पुनः धर्म, धर्म, साम्राज्य, विदेश द्वारावती, धीविजय और नवपहिन जैसे महान

हिन्दू साम्राज्यों का उद्भव हुआ। भारत से इंडोनेशिया जानेवासे प्रवासियों का प्रवाह जिसने भारत और चीन के मूलकों के बीच एक द्वितीय भारत का निर्माण किया। चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक जारी रहा। तब पन्द्रहवीं शताब्दी में मुसलमान धरकों ने मलयेसिया में प्रवेश किया तथा बीस राज्यों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। साथ ही पुर्तगालियों और फ्लोरिडोनेजों ने भारतीय वाणिज्य और शीपरिवहन का विनाश कर दिया। फलस्वरूप दक्षिण-पूर्वी एशिया के हिन्दूकरण की धीरे-धीरे प्रक्रिया रुक गई।

सामाजिक अनुहार की विधियाँ

गंवार से दक्षिण और गुजरात से गौड़ तक महान् राज्यों और साम्राज्यों की स्थापना के साथ कुछ सुधार और पुनर्स्थापन अनिवार्य सम्बद्ध रहे हैं। इन सुधारों और पुनर्स्थापनों ने सम्पूर्ण भारत को स्पष्ट और प्रभावित हो किया है। साथ ही धनकर एसियाई विकास को कुछ स्थायी और अनिवार्य तत्त्व भी प्रदान किए। इन सुधारों और पुनर्स्थापनों के कारण एक नवीन सार्वभौमिकता का जन्म हुआ जिसने एक प्रक्रिया द्वारा विभिन्न पिछड़ी और विदेशी जातियों को एक मूल में बांध दिया। इतिहासकार टॉमनबी ने इस प्रक्रिया को 'सामाजिक अनुहार' कहा है। यूरोप में बात इसकी उमटी है। भारत की भाँति यूरोप भी प्राकृतिक बाधाओं द्वारा पृथक् क्षेत्रों और राष्ट्रों में विभाजित है किन्तु वहाँ के इतिहास में प्रसन्न बिजय और जातिवाद जैसी बलात्कृत प्रक्रियाओं द्वारा ऐक्य स्थापित किया गया है। अतः भारतीय देश-प्रेम में जातीय अनिमान और प्रतिराष्ट्रीयता (जोशिनरम) का स्थान नहीं है किन्तु धर्म-बीबी व्यवस्थाओं और धर्म-धर्मों के समय से जुन आ रहे कुछ सार्वभौम विचारों कल्पनाओं और मूल्यों के प्रति निष्ठा समिहित है। एक साम्प्रदायिक और धार्मिक दृष्टि में निहित भारतीय देश-प्रेम के ये प्रत्यक्ष अतः मान जातियों परस्परताओं और विचारों के साक्षात्कार के सर्वोत्तम उपाय हैं। भारतीय इतिहास की सामाजिक समस्या और भारतीय आन की धार्मिक समस्या परस्पर सम्बद्ध हैं। टॉमनबी के अनुसार, अनुहार म एक सतर है सामाजिक कठोर अनुशासन यथवा पंथीकरण। 'धर्मसाम्प्रदायिक ससग और अन्तरंग धर्मिक विचार-विमर्श' (प्लेटो) के द्वारा भारत के भीतर पिछड़ी जातियों में तथा भारत के बाहर नये देशों में संस्कृति संक्रमण की योजना में दोनों में ही इस सतर को दूर कर दिया गया है।

बर्गमा का कथन है कि दो विधियों द्वारा किसी समुच्चय संस्कृति का अनुकरण कोई प्रत्यक्ष समाज करता है। "मिथा के दो उपाय उपलब्ध हैं। एक है कठोर अनुशासन और दूसरा धर्मात्म। पहली विधि में जगदी मतिवता में धर्मव्यक्ति का पाठ होता है दूसरी विधि किसी धर्म व्यक्तित्व के अनुकरण महा तक कि उसके साथ एक साम्प्रदायिक मयाग लगभग पूर्ण लेख को प्रारित करती है।" मारन ने दूसरी विधि को अदनाया है। मार्गों के पाद भारतीय बलिष्ठों अनिवार्यता और राज्यों में सामाजिक एका को बनाए रखने का केवल एक उपाय था—वीराणिक धर्मस्य (बसंग भृगु पुनस्त्य और कीरिग्य) से मरुत गुणधर्म (४२३ ईस्वी) यथशायि (७११ ईस्वी) कुमारचोप (७२२ ईस्वी) और बीरकर धोमान (१०११ ईस्वी) तक ब्राह्मणों पुरोहितों विद्वानों और बीड भिक्षुओं

तथा दक्षिण योद्धाओं आदिवासियों और व्यापारियों का प्रवास एवं मन्दिरों मठों और पस्थताओं का निर्माण, दोनों प्रक्रियाएँ शताब्दियों तक निरन्तर चलती रहीं। भारतीय सभ्यता के दक्षिण-पूर्वी एशियाई—आवा से कम्बोडिया और बर्मा से बासी तक—कैम्बो की आत्मा और प्रकृति यथार्थतः भारतीय, ब्राह्मण बौद्ध, धर्मशास्त्रिक-शैव की, इतना प्रबल है कि दक्षिण-पूर्व सामान्य जनता (जौम, स्टेटलीम तथा अन्य) ने भी इंगित किया है) अपने सर्वोत्तमकारी सम्प्रदायों तथा पूर्वज-पूजा को ही मानती थी।

आग्नेय सभ्यता के मूलभूत मानदण्ड और अवधारण

सभी भारतीय जातियों ने 'बाह्य' जनक पूर्वज पश्चिमी एशिया के पास के मैदानों के बुढ़सवार बानाबकोश रहे हों, बाह्य ईरान और सीरिया के समुद्र-तटों के व्यापारी और नविक जन्मी या बैर में भारत की अनेक बातें ग्रहण कर लीं। ये बातें थी जीवन की गहराई का बाह्य कम और पुनर्जन्म के नैतिक सिद्धान्त की सर्वव्यापिता समाज की सम्पूर्ण प्रकृति आत्मिक जातीयता में विरवास, पारिवारिक जीवन और उत्तरदायित्व की पवित्रता, मानव-मान के अनुकूल और सभी प्राणियों के प्रति करुणा का प्रारम्भ तथा जीवन के प्रति सौंदर्यपरक दृष्टिकोण जिसमें रसों का समुत्त और इसलिये समीप, निकट पम है। ये हैं एक अनिवार्यता आध्यात्मिक और मानवकारी सभ्यता के सार्वभौम सामाजिक मानदण्ड—इस सभ्यता के ऐक्य और विकास के व्यापक मूलभूत अवधारण। साम्राज्यों की स्थापना और पुनरुत्थान के युगों में बार-बार यही मानदण्ड और अवधारण आधार बने तथा वास्तव और कष्ट के समय में लोगों की सभ्यता को बनाए रखने में भी इनका योग था।

इनका अवस्थापन वर्मजनों में हुआ। वर्मजुन प्राचीन साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण धारा है जिसमें व्यक्ति और व्यावसायिक संघ के सदस्यों अधिकारों और कर्तव्यों तथा इनकी सत्ता और परम्परागत सम्बन्धों में आन्तरिक समुत्तन के विवेक त्रिप्यों और परम्पराओं का प्रतिपादन है। वर्मजुनों ने वर्मजानों (वर्मात् प्राभाषिक वर्गों के जातियों) को जग दिया। वर्मजान संकीर्ण प्रमाओं से मुक्त थे तथा इन्होंने समग्र एक हजार वर्ष तक सभ्यता को उसकी आध्यात्मिक रूपरेखा प्रदान की। पुराण (जिनका आधिकारिक वर्म है—प्राचीन जनसृष्टियाँ) विशेषरूप से जनतामान्य के लिए हैं और इन्हें अक्षर पाठ्यार्थ केर कहा जाता है। ये संसृति-विज्ञान और इतिहास दोनों हैं। इतिहासों में प्राचीन योद्धाओं और शौर्यवानों के धारण—मानवता की पारिकसिक पटनाओं की जनसृष्टियाँ और वर्णार्थ हैं। यद्यपि ब्राह्मण के अनुसार वे जनसृष्टियाँ और वर्णार्थ वर्णार्थ हैं तथा मानवता के इतिहास में इनकी पुनरुत्पत्ति होती है। इस अर्थ में इतिहास स्वयं को दोहराता है—'ब्रह्मरूपतः सद् और असद् का, देवों और अशुरों का तथा पितृओं और वीरों का वर्णार्थ। इसी प्रकार का एक वर्ण वर्ण है 'इतिवृत्त'। इनकी प्राप्ति भी वैसी विषय की प्रसन्नता और आनन्द तथा पद्यार्थ के दुःख और पात्रक के वर्णार्थ वर्ण के दौरान बार-बार होती है।

पुनर्जागरणों और धर्मसुधारों की विशिष्टताएं

भारत में यूरोप से अधिक संख्या में रक्तपातहीन पुनर्जागरण और धर्मसुधार हुए हैं। साथ ही जिस प्रकार यूरोप में नवंबर आक्रमणों के कारण पांचवीं सताब्दी के अन्तिम चरण से लेकर प्यारहवीं सताब्दी के मध्य तक सांस्कृतिक प्रह्वन लय गया था (इसे 'ग्रंथा युग' कहा जाता है), उस प्रकार भारत में अधिक समय के लिए सांस्कृतिक प्रह्वन कभी नहीं गया। भारत में प्रत्येक सांस्कृतिक पुनर्जागरण की पुरातन विद्या धार्मिक संस्कार, धर्म की धारणा और धर्म का मानववृत्त पृथक् था। प्रत्येक पुनर्जागरण में ज्ञान और सदाचार को एक माना गया तथा व्यक्ति और समाज दोनों को ईश्वर तक पहुंचने का उपाय बताया गया—सार्बभौम मूल्यों का पालन करके व्यक्ति तथा एक सर्व-वृद्ध-मील समाज की स्थापना करके मानव-समुदाय ईश्वर तक पहुंचने में सफल हो सकते हैं। फलस्वरूप प्रत्येक पुनर्जागरण जन और संस्कृति की नवीन सार्वभौमिकता में एक निश्चित मोड़ था तथा मानवता की नवीन उपलब्धियों का प्रस्तुत थी। यदि इतिहासों का उचित कथ्य बिदबजनीन माननीयता है—इतिहास के प्राथमिक वर्णन का यही दावा है—और यदि मानवता की सामान्य चटनाओं और परिवर्तनों के ही संघर्ष में तथा मानवता के समग्र प्रवाह के अन्तर्गत इतिहास की प्रवृत्तियों को समझना है तो भारत के विभिन्न युगों और जनकी गतिविधियों की एक कसौटी हमारे पास है—मानवीय स्वाधीनता भावत्व भावना और सार्वभौमिकता इनमें किस सीमा तक मौजूद है। भारतीय इतिहास किसी जन क्षेत्र प्रवृत्ति युग को केवल एक कसौटी पर कसता है—किसी जन क्षेत्र प्रवृत्ति युग ने राज्य प्रवृत्ति पाट नहीं बरत मानवता के सांस्कृतिक मूल्यों और परम्पराओं के सम्मिलित कोश में क्या अद्ययान दिया है। यह निकष ठीक भी है।

धर्मशास्त्रों में सतत परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुसारपरम्पराओं के अनुकूलन पर जोर दिया गया है, यद्यपि कि ये परिस्थितियां सर्वत्र प्रथम सिद्धान्तों के जो सामाजिक और बिदबीय दोनों व्यवस्थाओं की शास्त्रत अनिवार्यताएं हैं अनुकूल हैं। भारत में नैतिकता का धर्म है धर्मशास्त्र के सत्य सिद्धान्तों का सापेक्ष समस्याओं में उपयोग। वस्तुतः भारतीय संसार में ऐक्य की धारणा है—धर्मशास्त्र प्राप्त तथा सभी जनों मूलों और संस्कृतियों में प्रमोद एक संघालक जीवन सिद्धान्त। एकता का यह आधार निरुचय ही जोनी सम्मता में जातिगत संघटन मुक्तमान संसार में इसलिये धर्म और अन्याय की धारणा तथा परिचया सम्मता में ईताई जगत् व रोमी साम्राज्य और उसके निबर्मा व संस्थाओं के एकता के आधार से भिन्न है। सामाजिक तथ्यों तथा मानव और समाज के निर्माण विकास और परिवर्तनों के अध्ययन में भारतीय धर्मशास्त्र जिस महृष्टई और मृदमता को पा सके हैं वह ईमाई कहुरी और धरव की धर्मशास्त्रीय परम्परा के लिए अज्ञात है। भारतीय धर्मशास्त्रीय परम्परा के समग्र सबसे बड़ी संख्या की संस्कृति तथा धार्मिक विकास की सभी दशाओं में रहना धर्म और कर्मशास्त्र के सार्वभौम धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था के धार्मिक विरचन के बल पर, विभिन्न जातियों और जनों का सतत जातीयकरण। इसी सूत्र के बल पर हम भारत की उम ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझ सकते हैं जिसका प्रारंभ उस समय हुआ जब बिजैता भारतीय धर्म भारत के

अनुसार भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं में प्रकम्ब (घाघुनिक फरगना), कम्बोज (घाघुनिक बरक्या-पामीर) कापिष (घाघुनिक काफिरिस्तान) और यम्बार यमबा काबुल नदी की घाटी सम्मिलित थे। लगभग एक हजार वर्ष तक भारत के समस्त उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती प्रदेश—जिसमें बेकिट्या, फरगना बरक्या, यफ्फामिस्तान, सीस्तान और बमूचिस्तान सम्मिलित थे—को भारत का ही एक भाग (यूनानवासियों के अनुसार 'श्वेत भारत') माना जाता था। अरब मुसलमानों के आधिपत्य में भी 'श्वेत भारत', कम-से-कम बीसहवीं शताब्दी तक ईरानी से अधिक भारतीय बना रहा। लगभग १०१० ईस्वी में यम-जस्की ने भिजा था कि बुरासान, ईरान, ईराक, मोमुस और सीरिया की सीमा तक सम्पूर्ण प्रदेश बीज वर्मानुयायी था।

भारतीय संस्कृति हिन्दुकुश और पामीर को भी पार करके तारिम घबबा सीता नदी के किनारे तक फैल गई। पहले खोतन का नाम कुत्बान, यारकन्द का नाम योमुक कासगर का नाम योसदेग कुच का नाम कचार कड़ा शहर का नाम यमिदेग और मुरफान का नाम मुरपमि था। प्राचीन मध्य-एशियाई कारवां-मार्गों पर स्थित इन मजसिस्तानी नगरों में भारतीय घबबा भारतीयकृत वस्तुयाँ भी और यहाँ छिब यमेश तथा बुज की पूजा होती थी। भारत के समान यहाँ भी ग्याह्वी शताब्दी के प्रारम्भ तक बौद्ध विहार बूब फूले-फूल। तारिम काठे से घाघ सुदूर खान-खान और तातार देशों में भी भारतीय संस्कृत प्रयोगों का विस्तृत उपयोग होता था। मध्य एशिया यूनान एशिया में अनेक युद्धों का स्थल था तथा काबुल-काठे से लेकर बरक तक यम्बार क्षेत्र एशियाई व्यापार-मार्गों का मिनन-स्थल और पश्चिमी एशिया की अस्थिर व अशांत आतियों के स्वामान्तरण पथ पर भारत का बाहरी कण था। इन दोनों भूमार्गों में अनेक राजनीतिक घण्टोसन हुए। श्वेत पूर्णों ने पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्ध में काबुल-काठे पर अधिकार करके बुपास सम्मता का विनाश किया। छठे शताब्दी के मध्य से सातवीं शताब्दी के मध्यकाल तक शांति रही। तब मुसलमान अरबों ने यम्बार क्षेत्र में प्रवेश किया और ६५२ से ६६४ ईस्वी तक उम्हूनि कलाकृतियों का विनाश किया। अलस्वक्य बौद्धधर्म की द्वितीय पवित्र भूमि जहाँ से महायान बौद्धधर्म की शक्तिशाली आरम्भ शताब्दियों तक मध्य एशिया और चीन की ओर प्रवाहित होती रही थी की समृद्ध कला और संस्कृति का संचालन हुआ गया। बौद्धधर्म का आकर्षण इतना बुमिबार था कि सातवीं शताब्दी में जब हुवेन साङ (६३०-६४४ ईस्वी) कापिष पहुँचा तो उसने पाया कि यहाँ का तुर्क राजा मरयमन निष्ठावान महायान बौद्ध था। हूण और तुर्क सामन के बोराज भी शताब्दियों तक भारतीय-ईरानी सीमावर्ती प्रदेश बौद्ध धर्मानुयायी रहे।

चिन्पी महासागर में द्वीपान्तर में बहुतर भारत और इंडोनेशिया सम्मिलित थे। पुराणों में द्वीपान्तर को "यम युद्ध व्यापार तथा यम्य विभिन्न सांस्कृतिक गति विधियों द्वारा परिपुष्ट भारतवर्ष के 'नवभर' " कहा गया है। द्वीपान्तर भारत में मण्डिरों मपारामों बिद्यापीठों विविधसामयों और तीर्थस्थानों का बाहुल्य था। बस्तुतः सीता (तारिम) काठे की भांति द्वीपान्तर भारत की द्वितीय भारत था जहाँ भारत और चीन समुद्र-पथ से घाघ राष्ट्रीय बनकर मिलते थे।

अक्सर लोग यह भूल जाते हैं कि ब्राह्मण बौद्ध और साँ अफ्रिका के कारण ही मध्य और दक्षिण-पूर्वी एशिया का संसार एवं वर्तनीय भारतीयकरण सम्भव हो सका था। मध्य दक्षिण लोगों के बीच जब भी किसी नवीन धर्म का प्रचार किया गया, तो कमा ने ही उस धर्म की कल्पना और सिद्धांतों को विमलम सुन्दरता एवं संवेदनीयता प्रदान की। मध्य एशिया की विख्यात उरुगन प्रतिमा की कलात्मक सभ्यता पर कई 'मताग्रिमों' पूर्व की ('हिम्याकवान' में उल्लिखित) मध्य के शिन्धु-सीवीर की बुद्ध प्रतिमा की विमलम सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट है। मानवता के इतिहास में नये देशों में संस्कृति के प्रसार का संस्कारतमक समीप वाहन कमा ही है। ब्राह्मण बौद्धधर्मों के व्यापक प्रसार के दौरान बर्मन्यों और साहित्यिक कृतियों के साथ-साथ मनेक भारतीय प्रतिमाएं बिना-नक रेखाचित्र और मन्त्रियों के समूह भी पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया में पहुँचे थे।

भारतीय संस्कृति द्वारा विधायित एशियाई एकता का युग

भारतीयता ने एशियाई सभ्यता को एक ऐक्य प्रदान किया (ठीक वही काम ईसाई धर्म ने यूरोप में किया था)। एशियाई एकता कुछ स्पष्ट 'कमावस्थाओं' में से होकर गुज़री थी। एशियाई एकता का प्रथम युग बलम्बर कर्मीर और दम्बर से शारिम-काठे को पार करत हुए बौद्धधर्म के प्रसार का (१० ईसापूर्व से ०० ईस्वी) है। एशियाई एकता का दूसरा युग गुप्त-संस्कृति के स्वयंयुग के काल (मगधम चौथी से पाठवीं शताब्दी ईस्वी तक) में हुआ। गुप्त-संस्कृति के स्वयंयुग की सुलमा यूनान के वेरिकनीक युग और रोमन के एलिजाबेथ प्रथम के युग से की जा सकती है। यही वह विविष्ट युग था जिसमें मध्य एशिया में महावान बौद्धधर्म का प्रसार हुआ, 'भारतीय सांस्कृतिक दस चीन और इंडोनेशिया में तथा संस्कृत जन्मों के अनुवाद हुए, चीनी भाषियों ने पवित्र भारतभूमि की यात्राएँ की। नागन्ना सोवती-बिहार ममसमाराय 'वीरविय धमुराधपुर रमणमगर और हारावती में विरचविख्यात बौद्ध विरचविद्या-मयों का बँध रहा, हीपाव्तर भारत में हिन्दू उपनिषदों और राज्यों का उदय हुआ, संस्कृत साहित्य का विकास और सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्वी एशिया में उसका प्रसार हुआ तथा मधुरा प्रजन्ता मधुर मीरान, गुन-काह गुन-कुसाह हर्षुनी सिधिरिया बोरोकुदर और प्रजन्त में मध्य भूतिकमा विकसित हुई।

यह एकता बुद्धिबल सरल युगसमान संस्कृति के उद्भव और साहित्यिक प्रसार—युगसमान भाषी के समान विद्यास भूमायों को परास्त करत चले गए—एक कायम रही यह संस्कृति मिय और स्पेन में एकमात्र (७११ ईस्वी) पहुँची। इसकाय के विस्तृत विभाजनकारी मूर्तस धर्मिजमयों के समक्ष एशियाई और यूरोपीय दोनों एकाएं टूटकर रह गई। दुपस की निर्माण विजय (७१२ ईस्वी) के पचाह यूरोपीय सभ्यता दस्वाम के पायात से उबर लकी फिर भी स्पेन में मामानी सात शताविरियों (१४६२ ईस्वी) तक पलिकमी युगसमान मयथा मुर साधाम्य कायम रहा। इस प्रकार यूरोपीय एकता की एक धीवक पायात पहुँचा, ऐसा ही पायात तेरहवीं शताब्दी में जब मनेमों से पूर्वी यूरोप को बीतकर पोहन होठ की एक मयोन राज्य के रूप में सुस्थापित किया

अनुसार भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं में प्रकम्ब (प्राचुरिक फरगना) कम्बोज (प्राचुरिक बवक्षा-पामीर) कापिप (प्राचुरिक काफिरिस्तान) और पम्बार घग्वा काबुल नदी की घाटी सम्मिलित थे। लगभग एक हजार वर्ष तक भारत के समस्त उत्तर पश्चिमी सीमावर्ती प्रदेश—जिसमें बैक्ट्रिया फरगना बवक्षा घफ्गामिस्तान, छीस्तान और बख्तिस्तान सम्मिलित थे—को भारत का ही एक भाग (यूमानवादियों के अनुसार 'स्वेत भारत') माना जाता था। अरब मुसलमानों के आधिपत्य में भी 'स्वेत भारत' कम से कम बीसवीं शताब्दी तक ईरानी से अधिक भारतीय बना रहा। लगभग १०३० ईस्वी में घस-बखनी ने सिक्ता का कि लुरासान ईरान ईराक मोसुल और सीरिया की सीमा तक सम्पूर्ण प्रदेश बौद्ध धर्मानुयायी था।

भारतीय संस्कृति हिन्दुकुश और पामीर को भी पार करके तारिम घग्वा छीठा नदी के बाँटे तक फैल गई। पहले आतन का नाम कुस्थान यारकन्ध का नाम चोसुक, नासगर का नाम शैलदेश कुच का नाम कचार कड़ा शहर का नाम अग्निदेश और गुरफान का नाम गुरपन्नि था। प्राचीन मध्य-एशियाई कारवां-मार्गों पर स्थित इन नक्सलिस्तानी नगरों में भारतीय घग्वा भारतीयकृत बस्तियाँ थीं और यहाँ सिब घनेछ तथा बुद्ध की पूजा होती थी। भारत के समान यहाँ भी प्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक बौद्ध विहार बूब फूले-घस। तारिम काठे से घाबे मुहुर घान-घान और तातार बैसों में भी भारतीय संस्कृत धर्मों का विस्तृत उपयोग होता था। मध्य एशिया भूभाग एशिया में अनेक युद्धों का स्वस का तथा काबुल-काठे से लेकर बस्ख तक पम्बार क्षेत्र एशियाई व्यापार-मार्गों का मिन्न-स्वस और पश्चिमी एशिया की घस्विर ब घग्वा बावियों के स्थानान्तरण पर पर भारत का बाहरी कल था। इन दोनों भूभागों में अनेक राजनीतिक घाघीलन हुए। स्वेत हूनों ने पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्ध में काबुल-काठे पर घधि कार करके कुपाय सम्मता का बिनाघ किया। छठी शताब्दी के मध्य से सातवीं शताब्दी के मध्यकाल तक घाग्लि रही। तब मुसलमान घरबों ने पम्बार क्षेत्र में प्रवेश किया और ९३२ से ९६४ ईस्वी तक उन्होंने कलाकृतियों का बिनाघ किया। फसस्वरूप बौद्धधर्म की द्वितीय पवित्र भूमि जहाँ से महायान बौद्धधर्म की घवितघाघी घाघएँ शताब्दियों तक मध्य एशिया और चीन की ओर प्रवाहित होती रही थीं की समृद्ध कला और संस्कृति का सर्वभाग हा गया। बौद्धधर्म का घाकर्षण इतना दुनिवार था कि सातवीं शताब्दी में जब ह्वेन साङ (६३०-६४६ ईस्वी) कापिप पहुँचा तो उसने पाया कि यहाँ का तुर्क राजा घरवग्न निष्पापान महायान बौद्ध था। हूण और तुर्क घाघन के बीरान भी घतागियाँ तक भारतीय ईरानी सीमावर्ती प्रदेश बौद्ध धर्मानुयायी रहे।

पश्चिमी महासागर से द्वीपान्तर से बहतर भारत और इंडोनेशिया सम्मिलित थे। गुगलों में द्वीपान्तर का यज्ञ युद्ध व्यापार तथा घग्वा त्रिभिन्न सांस्कृतिक गति बिधियों द्वारा परिपुष्ट भारतघघ के लभभर बहाभया है। द्वीपान्तर भारत में मन्दिरों गपारामो बिघानीटों चित्रिस्तानघों और तोर्बेस्पानों का बाहुम्य था। बस्तुन सीठा (तारिम) काठे की भांति द्वीपान्तर भारत की द्वितीय भारत था जहाँ भारत और चीन समुद्र-गघ से घाघे घास्ते घलहर गिस्ते थे।

पूरे देश की राजकीय भाषा बनी तथा देश में बहु प्राचीन शासन-व्यवस्था और वे धर्म कर प्रशासन लागू हुए जिन्हें अंग्रेजी सरकार ने भी अपनाया। मुसलमानी धार्मिक (जिसकी और धर्मशालीन धार्मिक की अवधि एक समान थी) में धार्मिक मठ-बार की विद्या, उत्कृष्टता की महारत मिला। मठ की यह भावना समाज के निम्न स्तरों में सर्वाधिक थी। इस मठवाद के साथ अनेक समतावादी धार्मिक सम्प्रदाय और इसके कारण एक धार्मिक धर्म सामाजिक संस्करण हो रहा था। इसके फलस्वरूप सम्भव था कि स्वाभाविक भारतीय रीति के अनुसार इस्लाम का भी धर्म स्वीकृत हो जाता, किन्तु धर्मवाद की जिसकी नीति धर्म ही नहीं बल्कि तैमूरी परम्परा की नीति से भी निम्न धर्म की कटुता और धर्मविरोधी भावना के कारण ऐसा हो न सका। फिर भी अठारहवीं शताब्दी के देशव्यापी युद्ध भी सुन्दरता ममता और धार्मिक के उन स्वप्नों को मिटा न सके जो राजस्थान और हिमाचल की विनयता में परिलक्षित हैं और न अठारहवीं धार्मिक संस्करण को रोका जा सका। इस संस्करण के अवसर्ग उदाहरण हैं—हिन्दू-मुसलमान धर्मग्रन्थों के प्रति बहुसंस्कृत हिन्दुओं की मित्रता, तथा कुछ मुसलमानों (जिनमें आबत हरिदास और महाराष्ट्र में शेख मुहम्मद दास मुस्तान और साहू मुनि) का वैष्णव संग्रह बनाना। इस संस्करण के कुछ युग में साहित्यिक पुनर्जागरण भी हुआ। इसके अंतर्गत मुरादपुर, रामचरितमानस भक्तियोग अंतर्गत-चरितानुस, कवि कंकन बनी और रामचरित। इन महान् धर्मों ने विमूर्तता और धर्मों के बीच भारतीय धारणा को धार्मिक प्रदान की। किन्तु धर्म का धर्म धर्म की धर्मधार नीति तथा अंग्रेजी राज की स्थापना के प्रति मठों और धर्मों की विरोध आबत ने धर्मिक प्रवृत्ति प्रवृत्ति कर ली जिसके फलस्वरूप राजनीतिक और सामाजिक विमूर्तता की विधा पैदा हो गई। परिणामतः हिन्दूधर्म और इस्लाम का ऐक्य तथा धार्मिक न पुरोहितहीन समाज का विकास सम्भव न हो सका।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में हिन्दूधर्म और इस्लाम

भारत में अङ्ग ब्रह्मणे में इस्लाम को कठिनाई तो हुई ही। साथ ही यह दक्षिण पूर्वी एशिया में हिन्दूकरण के बड़े कर्मों को राजन में सफल न हो सका। गुप्त और नाग पुनर्जागरणों के प्रभाव में चरमोत्कर्ष की धार्मिक परचात् एशियाई एकता के सीधे युग का नृपात बाल साम्राज्य के अन्तर्गत पूर्वी भारत में संस्कृति और कला के धार्मिक पुनर्जागरण तथा गैराल विषय बहुतर भारत और इंडोनेशिया में इसकी धार्मिक धर्मविधियों से हुआ। इन पुनर्जागरण का विस्तार आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के अन्त तक था तथा बंगाल में आशुतोषपुरी जगदल विजयपुरी, पुनरा, देवीकोट और पश्चिम विजयविद्यालय के केन्द्र थे जिनसे इनका प्रसार विदेशों में हुआ। बंगाल और सहजगान बीहड़धर्म वैष्णवधर्म और धार्मिक विषय-धर्म सम्प्रदाय के धर्म में निगम की पूजा प्रचलित थी विविध रूपों में भारतीय धर्म को दक्षिण-पूर्वी एशिया में नये धर्मधर्म और धर्मधर्म के रूप अपनाए गए। साथ ही बोरोबुधुर धर्मधर्म, धर्मधर्म (नगर धर्म) और धर्म (धर्मधर्मधर्म) के धर्म और विद्या

फिर पहुंचा। सातवीं सताब्दी में कुछ तुर्क कबीले मध्य एशिया में जा पहुंचे और कुछ समय तक उन्होंने भारत-चीन के कारवां मार्गों के लिए खतरा पैदा कर दिया। किन्तु ठाक बंश (६१८-६०७ ईस्वी) ने जिसका बिषाम-शास्त्राग्य कोरिया से कैस्पियन सागर तक फैला था मुसलमान धर्मियों के पूर्वोन्मुख सफल प्रयाण को रोक दिया तथा तीन सताब्दियों के लिए शान्ति की स्थापना की। इन तीन सताब्दियों में चीन और भारत के बीच मिलुयात्रियों भ्रमणियों और विजय-वस्तुधों का जूसा वायाम प्रदान होता रहा। दसवीं सताब्दी के अन्तिम चरण में मुसलमानों और महमूद गजनवी (९७२-९७६ ईस्वी) इस क्षेत्र में आए। महमूद मध्य एशिया के इतिहास में एक बहुत बड़ा व्यक्ति है। उसने कुरुक्षेत्र को पराजित तथा भारत पर कई बार आक्रमण किया। फिर भी मध्य एशिया से बौद्धधर्म के विनिर्मुक्त होने में पांच सताब्दियों और लग गई तथा बिनास ही पूर्व सेट्ठी सताब्दी में प्रसिद्ध बुद्धाई का (१२१४-१२१४ ईस्वी) के शासनकाल में बौद्धधर्म का रूप केवल सामाई रह गया था। इसी बीच मध्य एशिया के नवनिर्वासी नमरो के स्थान पर चीन के पूर्वी तट के वन्दरगाह बौद्धधर्म के प्रसार के प्रवेश द्वार के रूप में काम करने लगे। बङ्गाल की घाटी से उत्तरी बर्मा और टोनकिन होते हुए स्वयं-मार्ग तथा चीनी भारतीय पूर्वी समुद्री-मार्ग इन वन्दरगाहों तक पहुंचते थे। साठवीं से बारहवीं सताब्दी तक पूर्वी भारत और कुबर्नल तट से महामान व्यापार वैष्णव और शिव धर्मित मठ और दर्शन प्रसरित होते तथा मेयाम व तिब्बत से मत्सदा व इन्डोनेशिया और स्वाम व कम्बोडिया से चीन तक एशियाई संस्कृति का निर्माण करते रहे।

इस्लाम की चुनौती को भारत का उत्तर

यूरोप के समान भारत में भी इस्लाम अपनी बड़े स्थायी रूप से नहीं जमा सका। एक ओर तो सीरिया और सिरियाई मित्र सम्पूर्ण उत्तरी अफ्रीका तथा स्पेन पर अपना प्रमुख स्थापित करने में धरम मुसलमानों को केवल बस्ती बर्प लगे किन्तु दूसरी ओर सिन्ध और काठियावाड़ की पराजय (७१२ ईस्वी) के बाद हिन्दुस्तान में जमाने और दक्षिण को पराजित करने में मुसलमान शास्त्राग्य को छः सौ बर्प से अधिक समय लग गया। मुहम्मदबिन-मुहम्मद (१३२३-१३५१ ईस्वी) के शासनकाल में सताब्दीय प्रसिद्धी (१२६९-१३१९ ईस्वी) की विजयों के बाद ही यह सम्भव हो सका। किन्तु उसकी मृत्यु के पीछे का शास्त्राग्य तेजी से कमजोर हुआ। तनाव और संघर्ष की इन सताब्दियों के दौरान हिन्दुधर्म और इस्लाम के बीच व्यापार-प्रदान हुआ जिसके फल स्वरूप नवीन धार्मिक धर्मियों का उदय तथा दोनों धर्मों में समताकारी धार्मिकता का मूलपात्र हुआ। इन्डोनेशियाई हिन्दू पुरोहितवाद और पूजक भावना तथा सामी बासीयता का और कट्टर एक्सेक्शन दोनों का विरोध किया।

पांच सताब्दियों तक उत्तर बंकारिकता का प्राथम्य रहा और इस दौरान बलि व मूर्ती धार्मिकता ने हिन्दूधर्म और इस्लाम के बीच एक धार्मिक धर्मरंमता की स्थापना की। इसका मुपरिणाम महान् मूल्यों के दास में मिला। धर्मर के धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय शास्त्राग्य में विभिन्न जानियों धर्मों और मठों की एकता स्थापित हुई पारसी

बौद्ध और ब्राह्मण मन्त्रियों में भारतीय कला और वस्तु में उन दीपों को स्पर्श किया जो वह भारतभूमि में भी नहीं कर पाई थी। वस्तुतः, ससार के सर्वोत्कृष्ट मन्त्रि-नगरों का मानव की इंजीनियरिंग की विमर्शककृतियों का निर्माण एसियाई एकता के तीसरे युग में ही हुआ, जबकि सोमनाथ से कन्नौज तक तुर्क-बाफगानों की विध्वंस सीसा चल रही थी तथा उत्तर भारत में मुगलमान अपनी शक्ति को सुदृढ़ बना रहे थे। फिर पन्द्रहवीं सताब्दी में मुसलमानों ने मसकका बन्दरगाह से मलय में प्रवेश किया और वहाँ की जनता ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। उसस्वरूप बलिष्-पूर्वी एसिया में धार्मिक ऐश्वर्य की विधा में जारी प्रवाह रुक गया। इस धार्मिक ऐश्वर्य के उदाहरण हैं बाबा सुमात्रा और बासी में प्रचलित शिव-बुद्ध की एक प्रकार की सम्मिश्रित पूजा में शैवधर्म और बौद्धधर्म का मिश्रण स्वाम में प्रचलित शकर-नारायण की पूजा में वैष्णवधर्म और शैवधर्म का मिश्रण तथा बम्बोदिया में प्रचलित देवराज तथा धर्म्य सम्प्रदायों में बौद्ध और पौराणिक धर्मों का मिश्रण इनके प्रतिरिक्त ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर की भारतीय त्रयी तो है ही—कम्बुज के एक धर्मिण्ड में बृहन्नर प्रस्वत्स की पूजा की बात लिखी है जिसकी जड़ को ब्रह्मा तने को शिव और शाखाओं को विष्णु माना गया है।

धर्म और भारत की अभिन्नता

भौतिक दृष्टि से इतने विस्तृत उपमहाद्वीप में कोई भी विजय स्थायी नहीं हो सकती। भारत कभी भी जनसंख्याविहीन नहीं रहा। इन्हीं और भारतीय धर्मों के प्रागमन से पहले भी देश में एक जनसंख्या और एक सम्मिता थी। संस्कृति की विभिन्न अवस्थाओं में भारतभूमि पर अनेक जातियों और जनों का अधिकार था इसलिए धर्म धार्मिककारियों के समस्त सर्वप्रथम जो समस्या आई वह धर्म भी वैसी ही है भारतीय इतिहास की यह मूल समस्या है—भूमानों जातियों और परम्पराओं की स्वानात्मिक अभिन्नता के बीच एकता की स्थापना कैसे हो। भारत की विशिष्ट प्रजा है धर्म और देश की अभिन्नता स्वीकार करना यह भावना सर्वप्रथम आध्यात्मिक संस्कृति में उद्भूत हुई थी। धर्म और भारत की अभिन्नता की विषये सर्वप्रथम की भावना भी सम्मिश्रित है उत्कृष्ट धर्मव्यक्ति गुरुकाल में विरचित विष्णु पुराण के राष्ट्रीय गान में हुई है “भारत जम्बुद्वीप का सर्वश्रेष्ठ विभाग है क्योंकि यह पुण्य देश है। अग्न्यदेवों को केवल सुखोपभोग की कामना रहती है। इस पुण्य देश के निवासी ही सुधी हैं जो अपने नादों के फलों का परमारमा पर छोड़कर अपना जीवन ध्यनीत करते हैं। परमारमा की अनुमति की उनकी यही विधि है। देवता स्वयं कहते हैं ‘देवताओं तक की तुलना में वे मोक्ष मुक्ति हैं जो आगतर्क में समुच्च-कर्म में अग्रसेते हैं क्योंकि स्वर्ग के सुखों तथा मोक्ष के उपरान्त प्राप्त धामन्य का यही एक मार्ग है।”

उत्तर भारत में ‘विष्णु पुराण’ की रचना से २०० वर्षों पश्चात् अभी या बगरी दानावरी के बीच कभी कावेरी की घाटी में ‘भागवत’ की रचना हुई। इसमें भी भारत धर्म की स्तुति करत हुए कहा गया है कि जबकि नदियों पर्वतों और पावन तीर्थस्थलों तथा धर्मतारों साधुव्रत राजाया भक्तों और धर्मप्राण पद्यों का यह देश महान है।

यहाँ ईश्वर स्वयं रूप करके मानवयोनि में अवतीर्ण हुआ है ताकि नरेश्वर प्राप्ति उसकी मर्ति के द्वारा प्राप्त कर सकें। अर्थात् देवगण बहुत त्याग तप और दान के पदचान् मिलनेवासे स्वर्ग-मुख से अधिक श्रेय इस पवित्र भूमि पर जन्म लेने को देते हैं (मानवत ५२ १६ २१)। भारतवर्ष भौगोलिक दृष्टि नहीं बरन् पूजा और यज्ञ की वस्तु है, ईश्वर के प्रति स्तुति और उसकी अनुमति का प्रतीक है।

भारत, अर्थात् सस्त्रुति

यूरोपीय इतिहास से प्राप्त तर्कों के आधार पर कुछ राजनीति और धार्मिक संघर्ष को भारतीय विकास का स्रोत मानकर हम भारत और सस्त्रुति (नैतिक और धार्मिक सस्त्रुति) के ऐश्वर्य के सिद्धान्त को मंजूर नहीं मान सकते। सम्पूर्ण ससार में यूरोप ही एक ऐसा महाद्वीप है जहाँ कुछ की संस्थाएँ सर्वाधिक रही हैं और जो सर्वत्र यैपोलियन की महत्वाकांक्षाएँ कोई भी यूरोप में एकता स्थापित करने में सफल न हुआ। इसके विपरीत विभिन्न जातियों आपाधों परस्परधर्मों और विवादात्मक भारत देश के इतिहास का प्रमुख स्वर ही सांस्कृतिक समन्वय का रहा है। परस्पर लोग यह भूल जाते हैं कि भारत अपने विकास के पाँच हजार वर्षों के काल में से सतीस सौ वर्षों तक स्वाधीन रहा है, यह समय भारत की वास्तव के समय से (मध्य और आधुनिक युगों में वास्तव का काल केवल साढ़े छ सौ वर्ष है) बहुत धर्मिक है—और फिर वास्तव के समय में भी सन्निवृत्त और स्वाधीन भारतीय राज्य जैसे बहुमती और विषयनगर राज्य मराठा साम्राज्य और सिख साम्राज्य, पुनरुत्थान के केन्द्र बने।

यदीका से प्रचलित महाकाय और ईरान से कोरिया तक के पड़ोसी देशों में भारत के सम्पीकरण और मानवतावादी कार्य को भी सही प्रकार उपेक्षित कर दिया जाता है। मानव की समानता जीवन की अनिवार्यता और मानव-मान की सुनिश्चित करने के धर्मिक-आध्यात्मिक मानदण्डों पर आधारित एकीकरण के सिद्धान्तों का उपयोग भारत ने अपनी भूमि पर विभिन्न जातियों अथवा कबीलों की एकता-स्थापना में किया था इन्हीं सिद्धान्तों को लगभग दो हजार वर्षों तक 'धर्मिक भारतीयतावादी' चान्तिपूर्ण धर्मप्रचार का आधार बनाया गया जिसकी तुलना हिन्दू-इतिहास में नहीं है। भारतीय इतिहास धर्मिकता का इतिहास है तथा राजनीतिक नहीं आदर्शवादी है और यही कारण है कि सभ्यता का इतिहास में इसका प्रभुत्व है। एक प्रकार से भारतवासियों के पास एक सच्चा इतिहास है जो धर्म की रीति के वादियों के पास नहीं है और भारत ही सभ्यता या सस्त्रुति है जिसने अपनी सीमाओं से परे अनेक एशियाई जातियों और विभिन्न देशों के वादियों का एकता का धार्मिक एवं नैतिक आधार प्रदान किया है।

सत्य इतिहास मानवता की प्रगति

इतिहास की संयोगमक समाजवादीय विधि की प्रवृत्ति बहुसांस्कृतिक है। यह पुरातनकालीन धर्मों नैतिकता और कला के आधारों की प्रतिमान मानकर ध्यान

ग्रामोत्थनों की व्याख्या प्रस्तुत करती है। राजनीति यद्यपि राज्य के कर्तव्य पर अधिकार देने से इस विधि के समानेधन और सामर्थ्य में बाधा उपस्थित होती है। किन्तु यही विधि भारतीय विकास में सुव्यवस्था और गिरस्तरता की स्थापना कर सकी है। इसी तर्क में वह एकीकारक इतिहास का नाया है जिसमें विभिन्न युग और ग्रामोत्थन पिरोए हुए हैं। अपने आख्याय कला और वर्म के आशयों की सार्वभौमिकता तथा सामाजिक व्यवस्था की प्राप्यात्मिक प्रवृत्ति के कारण भारत अनेक अताक्षियों के दौरान अपनी भूमि और संस्कृति की अनिवार्य एकता को बनाए रखने में सफल हुआ है। ईसाई-मुसलमान सम्मता के युगानी रोमी शाय से सर्वथा भिन्न भारत का विविष्ट सांस्कृतिक बाध, आज की विस्तीर्ण परिस्थितियों में भारतवर्ष की सम्भीर एकता और सुदृढ़ता को दुहराने तथा इतिहास-अवसत उच्च उद्देश्य को प्राप्त करने में किस सीमा तक सफल होना, हमका निश्चय ही सविष्य ही करेगा।

पश्चिम में ईसाई संसार तथा मुसलमान संसार की पूर्ववर्ती एताथों की अनेक युगों समय एकसमान सम्मताओं में उचित राष्ट्रीयताओं आर्थिक स्वायत्त और जनयन की अस्तित्वों द्वारा उत्पन्न सच्यों तथा धर्म और अध्यात्म द्वारा व्युत्पन्न पारम्परिक बन्धनों के विनाश में प्राचुरिक इतिहास मेहनत की अनेक हमचलों के जरिये हो सिद्धान्तों का अतिरंजन किया है। ये हैं (प्रथम) कल्पित 'विमुक्त जाति' का सिद्धान्त (द्वितीय) संस्कृति की कृत्रिम और आर्थिक इकाई—'राष्ट्र' का सिद्धान्त। फलस्वरूप इतिहास किसी सीमा तक बर्मेबादी हो गया है जिसमें पृथक् जनों और संस्कृतियों के उत्थान-पतन का ही चित्र रहता है। सही माने में इतिहास यह नहीं है। सत्य इतिहास में तो एक विश्व व्यापी गति का सर्वसामान्य मूल्यों और उपलब्धियों के समुच्चय पर प्राप्त मानवता के व्यापक प्रवाह का उद्घाटन होता है। प्रथम इतिहास का प्राचुरिकतावाद जो उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय प्रसार और साम्राज्य के लिए पारस्परिक संबंध का परिणाम है जातीयता और राष्ट्रीयता के प्रति पूर्णतः प्रवृत्त है। इस सर्व में मैं सॉई ऐक्टन का विवेकपूर्ण कथन कितना अनिवार्य है 'चीन हजार वर्षों को मजदूरदास करके केवल चार सौ वर्षों के अध्ययन के बस पर किसी दर्शन की स्थापना नहीं हो सकती। ऐसा करना दासपुत्र और भ्रमात्मक होना। दूसरे एक समय में एक ही राष्ट्र पर जोर देना हीवेस के ऐतिहासिक विचारवाद के सर्वथा अनुपपत्ति भी है तथा उसके द्वारा समर्थनप्राप्त भी। इतिहास की नीतिकारी धारणा तथा मार्क्सवादी आर्थिक निरूपणवाद दोनों हीवेस के विचारवाद से अनुप्रेरित हैं—दोनों ही मानवीय विकास के मध्य किन्तु दमोदरायक सरलेयन हैं। मानव-जीवन और उसकी पटनाएं बहुभुमी हैं। यह इतिहास भी निरूपण ही बहुभाषामात्मक—एकसाय वैचारिक आर्थिक राजनीतिक सैनिक और नैवमिक—होगा।

पुराणन्याय या कल्पनाएँ, इतिहास की इकाइयाँ

बहुभाषामात्मक दृष्टिकोण के लिए मानवीय इतिहास की मूल इकाइयाँ, जिनमें किसी जन के विकास के प्रयासों का सत्य निहित हो उसकी महान् पुराणकथाएँ या

कहनाएं भर्माएँ 'अवबहार रत बिचार' ही हैं जिन्हें रिकर्ट ने 'भूस्व-विभास' कहा है। प्रत्येक पीढ़ी के साथ ये कल्पनाएँ बढ़ती जाती हैं तथा एकत्र परम्पराओं और नियमों की निरन्तरता इनमें निहित होती है। निदबय ही सम्प्रदाय में परिग्रह्यत ध्यानक प्रथमा दूरगामी प्रतिमान ये ही हैं। एक प्रकार से इतिहास कहनाओं का सूत्रन है तथा कहनाओं के पल होते हैं। भारतीय कहनाओं की विधिष्टता इस तथ्य में है कि उनके सर्वक प्रनाम हैं भूत-भविष्य विधेय की विधिष्ट मनोवृत्तियाँ और विनियमताएँ इनमें नहीं हैं। विधिष्ट जनों द्वारा आविष्टत कोई नया धर्म धर्म्यात्मवाद प्रथमा सम्प्रदाय धनसाधारण को कोई सम्येय देता है साधारण जन धर्म धर्म्यात्मवाद प्रथमा सम्प्रदाय की विम्वारमकता और बटनाओं विवपात ऋषियों और सन्तों से प्रेरित और अनुयायित होते हैं। कल्पनाएँ ऐनिक अनुष्ठानों और धर्मसंस्कारों लोहारों और तीर्थयात्राओं में व्याप्त हो जाती हैं तथा भारत में साथ विष और ग्याय की नवीन प्रवृत्त व्यक्त्वा कायम करती हैं जो बुद्धिगत ऋतुचक्र से सम्बन्ध है। ये काम-सीमा के परे और अन्तयत दोनों होती हैं अवसर इनमें पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभव और प्रज्ञा का सार निहित रहता है तथा इतिहास से धर्मिक सरयता होती है। ऐतिहासिक महत्त्व की भारतीय पुराण-कथाएँ या कल्पनाएँ हैं भक्त और धर्म धर्म और धामन की वैदिक कल्पनाएँ निर्वान की महायान कल्पनाएँ भग-संकर, कमिपुण और धापवृषम की पौराणिक कल्पनाएँ भक्ति तथा जातिविहीन पीरोहित्यविहीन समाज की मध्ययुगीन कल्पनाएँ तथा उत्तर मध्यकालीन तांत्रिक कल्पनाएँ जिनमें मायावी संसार के विविध रूपों और इन्द्रियों भामसाधों व संवेगों के संस्कार को भारतीय धर्म के परमात्मन् के गत्यारमक वग 'धर्मित' का कायसेव एक रूप माना गया है। इस प्रकार के विचारों ने कई-कई पठाविवों में कौने युषों और धाम्मोक्तों को संभावित किया है और इनकी प्रमविष्णुना कनग बढ़ती हो गई है तथा पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तराधिकार में प्राप्त सामाजिक प्रथाओं और जीवन-पद्धति की गहरी व दृढ़ नींव डाली है।

वास विभाजन की समस्या

कुछ विधिष्ट विचार प्रथमा इतिहास के साथ भारतीयजन के जीवन और गति को निर्धारित प्रथमा प्रभावित करते हैं। कोई विधिष्ट परिवर्तन प्रथमा जाति साने के परवात् ये ममप्र सांस्कृतिक साथ में कुछ स्थायी तत्वों का समावेश कर देते हैं। इन्हींपर ध्यान केन्द्रित करे तो भारतीय इतिहास के बहान-विभाजन की समस्या सरस हो जाती है। व्यक्तिों की भाँति किसी क्षेत्र के निवासियों के इतिहास में कुछ महत्त्वपूर्ण युग होते हैं। वैदिक युग इतन-धम युग धमोरक युग एगियाई एकता का पहला युग भव बाह्यप बाद व द्वितीय एगियाई एकता का युग वैश्वत युग धाम्मिकवाद युग और भक्ति युग भारतीय इतिहास के स्वयं युग हैं तथा भारतीय सम्प्रदाय के प्रवाह का निर्देश देते हैं। प्रत्येक स्वयं युग के धर्म विधिष्ट विचार भूस्व और नियम हैं जिन्होंने भारत का निर्माण किया है। साम्राज्यों और जनों का भाषागमन सगा रहता है विष्णु विचार

और संस्कृति स्थायी हैं। विचारों, धर्म और संस्कृति की निरन्तरता ही भारत में सामाजिक स्थानिध का कारण है। अक्सर विरोधी धारकियों तथा वर्तमान रूपों और प्रादुर्भाव से असम्बद्ध परिवर्तनों के कारण एक प्रकार की विगृह्यता फैल जाती है विचार धर्म और संस्कृति की निरन्तरता ने भारत में ऐसा नहीं होने दिया।

इतिहास के प्रति आधिक मध्याधुनिक दृष्टिकोण रखने पर प्राचीन भारतीय और चीनी सम्प्रदायों के महान् सूत्रात्मक उपादान उपेक्षित रह जाते हैं। भारतीय सम्प्रदाय की एकता आधुनिक यूरोपीय सम्प्रदाय की एकता से निम्न प्रकार की तथा अधिक सम्मीर एवं सार्वभौम सिद्धान्तों पर आधारित है। आधुनिक मानवीय संस्कृति की एकता की नियामक शक्तियों के रूप में राजनीतिक और धार्मिक सिद्धान्तों तथा राजाओं और राजकुमारों युद्धों और विजयों के अध्ययन पर अधिक जोर दिया जाता है, जो गलत है भारतीय सम्प्रदाय की एकता के कारणों पर ध्यान दिया जाए तो यह गलती सुधार सकती है।

इतिहास में मस्तिष्क और आत्मा की सय

भारतीय इतिहास का आधुनिक युग 'पारचाय युग' है। पश्चिम से व्यापक और परस्पर-विरोधी प्रवर्तक प्रवृत्तियाँ आ रही हैं। ऐसे समय में भारत की सम्प्रदाय और जीवन-व्यक्ति को स्थायित्व प्रदान करनेवाले मानदण्डों पर ध्यान देना अनिवार्य है। अपने पाँच हजार वर्ष के इतिहास के पश्चात् भारत में पुनः एक नवीन और निर्णायक पुनर्जागरण हो रहा है। विश्व-इतिहास के संदर्भ में किसी राष्ट्र की प्रगति का आकार उसकी राजनीतिक मध्याधुनिक शक्ति नहीं बल्कि एक विश्व-समाज का निर्माण कर सकने में उसका सम्प्रदाय के कुछ सभ्यता मापदण्डों की श्रद्धा और प्रसार-क्षमता है। भारत के लिए 'ज्ञान' असम्बद्ध परिकल्पना नहीं बल्कि भगवद्गीता के अनुसार 'योग ब्रह्म कौण्ठम्' है बही भारतीय व्यक्ति और भारतीय समाज का मध्य है। विस्तृत का सत्य या जीवन विधि का आधार है व्यक्ति और समष्टि के लिए सफल रूप से मार्ग है। ब्राह्मण और बौद्ध धार्मिकवाद का सम्बन्ध संसार का अन्तिम धर्म और भारतीय भाष्य है और आधुनिक भारत के मन-मस्तिष्क तथा पुनः-संस्कार पर इसका प्रभाव वैदिक विस्तृत के प्रभाव से अधिक है इस सम्बन्ध में जीवन-विधि मध्याधुनिक में निरन्तर होनेवाले परस्पर विरोधी परिवर्तनों और क्राण्टियों की महामाया और महा शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विश्व-संबंधी तांत्रिक दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है। सूत्र और संहार के अध्यायी अधिष्ठित लोगों—प्राकृतिक विकास और इतिहास की बुरावामी—की चारवत्त परमात्मकता को तांत्रिक दृष्टिकोण द्वारा एक नवीन निर्मीक और सुवृद्ध समर्थन प्राप्त हुआ है। मनुष्य समाज युग और इतिहास सभी महामाया के विभिन्न निरन्तर परिवर्तनशील स्वरूप हैं। महामाया ही ब्रह्मा और सगार मनुष्य का मोह और रक्त तथा प्रजा और मूर्ति सब कुछ है। शक्ति मानव का नारी और माता है। रूप है जो मानवार्थ के दृष्टि-रूप में मध्याधुनिक जीवन और मोह तथा अन्तिम चेतना और गति है। धर्म का दीनैनामा युग है उसकी अन्तिम सीमा—ग्रहण जीवन

और सभ्यता की विद्यामय व्यावस्थी किन्तु इसके पीछे उसका विद्यामय भाव है— परात्पर, प्राप्त रहस्य । इस प्रकार, भारतीय मन और मस्तिष्क परात्परता व सर्वव्यापिता के दो धोरों के बीच गतिशील रहते हैं तथा इतिहास की उभय-मुखी और विद्वत्समता के बीच भी प्रसन्नता और निर्ममता की प्राप्ति करते हैं । भारतीय इतिहास मानव मस्तिष्क और प्रकृति की शक्तियों के विपरीत समतुल्य और समबलता का एक उदाहरण है तथा इन्होंने बार-बार सार्वभौम और परात्परक मूल्यों को सर्वोच्च और विरोधी तथा जीवन के दुर्गम पथ से अधिक स्पष्ट और सुनिश्चितायी शक्ति से सम्पन्न सिद्ध किया है ।

इतिहास का भारतीय दशन

पश्चिमी घाट में भाजा स्थित एक बौद्ध विहार में एक प्राचीन मूर्ति प्राप्त हुई है, जो उत्तर-मौर्य अवस्था धृग-मुनजानगर (दुसरी अवस्था पहली शताब्दी ईसापूर्व) की है । इसमें इतिहास की भारतीय धारणा अत्यन्त कोससपुत्र रूप से निहित है । वैदिक धर्म संस्कृति ने धर्मानुसार शासन करनेवाले 'अश्वत्थी' सम्राट का भारतीय राजनीतिक धारण प्रस्तुत किया था । इसीसे बौद्धधर्म ने संसार के साम्प्रतिक सम्राट (धार्मिक धर्मराज) का धारण स्थापित किया । पालि-साहित्य में इस प्रकार सर्वोच्च पाणिप सम्राट के मूला दस हैं कथाओं में वर्णित बल्लभेय और महाभुवस्सन तथा ऐतिहासिक अशोक । अन्तर्गत मही है कि अशोक (२७१-२३२ ईसापूर्व) ने अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण कराया । स्पष्ट है कि 'दिप्पावदान' में मौर्य-साम्राज्य को 'अशुभांगशकवर्ती पामिक्कमराज' कहा गया है । ब्राह्मण-साहित्य में अश्वत्थी और साम्प्रतिक सर्वोच्च पाणिप धारण के मूलधर्म हैं । भाजा की समरवाँकरी मूर्ति में कुछ अवस्था उनके पाणिप प्रतिरूप बल्लभेय महा भुवस्सन अवस्था धर्मशोक एक हाथी पर आसक्त हैं और एक मंत्री साथ है (हाथी और मंत्री दोनों परम्परागुसार राजकीय सम्पत्ति अवस्था 'अश्वत्थी' हैं), यह पृथ्वी पर धर्म के निर्वाह के लिए धर्मराज की राजकीय शक्ति का प्रतीक है । आगे बढ़ते हुए हाथी ने एक विद्यालय पथ को उजाड़ दिया है जिसके नीचे कुछ मासक दण्ड हैं । इसके कमलरूप मूर्ति के ऊपरी भाग कोने पर काफी अशक्ति है । कुछ और उनके बाह्य के विद्यालय प्रकार तथा शक्ति की उभयता उनकी साम्प्रतिक और पाणिप शक्ति के प्रतीक हैं । नीचे भारतीय धर्मों का प्रारम्भिक धारण तथा बाद में महान विजेता का अन्तिम आनन्दपान उत्तरकुल प्रदर्शित है जहाँ पूर्व मुन्य सोम्य और तुष्पा-मुनि हैं । यहाँ मुनी को पुरुष मोद-मन्त्र है राजा का दरबार व शोभीतकार और मनेक हैं तथा विमान धनमूह है और सर्वोच्च मध्य में कल्पद्रुम है—पाणिप जीवन के इस जीवन और सहज रूप में सारी धारणियों अत्यन्त सपु और तुष्ण हैं । नीचे बाई और नरमली मही धर्ममुली मुनी-सी सदी है, क्योंकि दयावान राजा ने उसे परास्त कर दिया है ।

भाजा की मूर्ति के धर्म पर धर्म की विजय रूप और भाषा के सार के निष्कारण तथा धर्म और अनासक्ति के धारणता आशय (धर्म) के मुन्य की मूल शक्ति का धारणता का उद्देश्य धर्म है । भारतीय धर्म के अनुसार धर्म के निष्कारण का प्रतिपादन करने

प्राचीन जीवन के सभी स्तर—ब्रह्मसृष्टि, बुद्धात्मा, वैराग्य, मानव राजा और देवता सभी यहाँ प्रदर्शित हैं। घमण्डित छोटी-छोटी जीवित आकृतियाँ इस प्रकार उकेरी गई हैं कि मायावी संसार की जननेन्द्रिय की प्रतीक आकारहीन सामान्य धिमा से क्षीण और क्षणिक बुद्धियों के रूप में ऊपर उठती और अपनी सत्त्वावृद्धि करती-सी मामूली पड़ती हैं तथा इस प्रकार सृजन की रहस्यमयकला और इतिहास के प्रवाह को संकेतित करती हैं। वैदिक, उपनिषदिक और बौद्ध कल्पनाएँ यहाँ समुचित होकर मानव-जीवन की एक नैतिक, और धर्मोक्तिक व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। जीवन में निहित विभिन्न स्तरों, वर्गों और रूपों के मूल और मूल के निरन्तर गतिशील चक्र का सतत पारिषद और प्रवाह ध्वनित मही हुआ है। यह दर्शन के मूल और प्राचीन दार्शनिक धिमा-भूतिधिया की प्रभावशाली पारिषदा व ध्वनित तथा जनर के भारतीय—धर्ममन्दिर—भूतिधिया की संयति व मर्मांश के प्रारम्भिक समन्वय का प्रथम उदाहरण है।

इतिहास के भारतीय दर्शन में यहाँ और अनुभव का मानव की कल्पना की गई है। वे स्वयं एक विरहीय व्यवस्था के अनुसंधान के उचित नियमों का निर्धारण करते तथा जनक देश और काल में निरन्तर एक-दूसरे के पीछे चलते हैं। पुराणों के अनुसार, ये चक्रीय तरंग धर्मधारियों के कुछ मानवधर्मों के अनुसार उठती हैं और मानवधर्मों के समान ही मरते हैं। विद्वत्-व्यवस्था की इस जनक चक्रीय प्रक्रिया में भारत ने इस जेता द्वार और कलिमानवप्रेतिहासिक युगों के प्रवाह की कल्पना करके एक नैतिक और सांस्कृतिक उद्देश्य का समावेश किया है। इन युगों में क्रमशः धर्म का ह्रास परिशुद्धता और पूज्यता से व्यवस्था और विन्यस्तता की ओर होता है और वह फिर नया चक्र प्रारम्भ हो जाता है। इस जेता द्वार और कलिमानव में भारतीय प्राण के खेल में बार दाँवों के नाम हैं। धर्म-अपमर्श धर्मोपासक धर्म इतना में प्रपन्न चारों पोरों पर दुःखपूर्वक पड़ा रहता है। विष्णु युगों के प्रवाह के साथ-साथ धर्म का ह्रास होता जाता है मही तक कि कलि युग में वह केवल एक पोर पर पड़ा गिरने गिरने को ही पाता है तथा मानव और जगती गुरुति पतन की गहराइयों में होठ है। कलि का धर्म मूल धर्म का कलह भी है। विष्णु पुराण में जो गर्भ कलियुग के समाप्त की कल्पना किन्हीं चक्रों में समाप्त देवी प्रवस्था में पड़ता जाता है जब मर्त्यालि से पर प्राप्त होता है। गुणों का एकमात्र स्रोत बन रह जाता है। पति पत्नी का एकमात्र बंधन बाधना बनती है। अस्वस्थ जीवन में अस्वस्थता का मार्ग योनाचार प्रमत्तता प्राप्ति का एकमात्र साधन रह जाता है तथा धार्मिक धर्म का स्थान बाह्य धार्मिक प्रवृत्त कर देने है। प्राचीन भारत के अनुसार विष्णु ने मानवता को धर्म का पाठ पढ़ाने के उद्देश्य से मत्स्यायुग में रामचन्द्र का और द्वारपुत्र में कृष्ण का प्रवृत्त किया था। कलियुग में विष्णु का चक्रिक प्रवृत्त सभी तक नहीं हुआ संसार की धर्म और सुख में रक्षा करने के लिए यह प्रवृत्त हागा। चारों युगों के पूनर्चक्र को महा युग कहा गया है—जो ब्रह्मा के लिए केवल एक दिन एक वर्ष है। प्रत्येक वर्ष में एक धार्मिक अनुष्ठान है। प्रत्येक वर्ष के प्रारम्भ में ब्रह्मा संसार का पुनर्निर्माण करते हैं, वर्ष के दौरान विष्णु संसार को रक्षा करते हैं और अन्त में शिव इसका विनाश करते हैं। ब्रह्मांड का सृजन मही होता है। केवल समय की असीमता और अन्तरिक्ष की प्रमत्तता

में परब्रह्म के प्रकटन और योगन उन्करों और अन्तर्गतन के स्वरूप होते हैं।

युगा की व्यापक विधियाँ

समय की इसी आरम्भजनक विधियाँ इतिहास के आरम्भक दृष्टि में नहीं हैं। मत्स्यपुराण में ब्रह्म ने अपने विषय में कहा है मैं ब्रह्म हूँ आरम्भक हूँ मैं सबका जनक और संहारकर्ता हूँ। इन्द्र के रूप में मैं देवराज था हूँ। मैं काम था हूँ। मैं बहूँ बोधी हूँ जो युगों को जन्माता है और फिर उनका अन्त कर देता है। मैं विद्वत् के सभी पदार्थों को सम प्त कर देता हूँ। मेरा नाम क म है।

—मत्स्यपुराण

ब्रह्म महाकाल है। अनन्त है। ब्रह्माक्ष और ऐतिहासिक ब्रह्मण आनुमयिक है स्मृतान्त है समय और स्वान की दृष्टि से सीमित है अर्थात् सामाजी है। किन्तु मत्स्य और वैमिशिक बापे अस्तित्वहीन अथवा मायावी नहीं होती। कारण यह 'परित का सृजनारम्भक पक्ष और इसीलिए समय व अर्थमय है। आगवत्पुराण में उक्त भूत अन्ति-ब्रह्मण में ब्रह्म की अद्वितीय माया का मूय मया उक्तों पारिष सीमाभूमि सभार की अर्थमय का आधार उसी सीमा को जाना गया है। माया का विज्ञान ज्ञान और अज्ञान मरी चिका और सत्य समय और अनन्तता का अन्तर स्पष्ट करता है। इसका आधार यह नहीं है कि मानव युगों अथवा इतिहास के प्रवाह को अन्त समयमें अथवा मानव-अन्तम म अन्त और अन्त के सामन्त के प्रति जन्मीन रह। किन्तु इसका आधार यह अर्थमय है कि युगों उनके अर्थों मनुष्यों और महापुरुषों को अर्थमय अर्थमय अर्थमय समझा जाए, जो समय के अनन्त अर्थमयी प्रवाह में टूट जाए। ब्रह्माक्ष और इतिहास की अर्थमय-अर्थमय के बीच अर्थमय और अर्थमय ईश्वर है—जीवन और इतिहास के अनन्त प्रवाह का अर्थमयी केन्द्र ईश्वर है। माया के प्रकट पक्ष के पीछे अर्थमय ईश्वर अर्थमय रहता है। "है अर्थमय, मैं अर्थमय अर्थमय और अर्थमय क अर्थमय को जानता हूँ किन्तु मुझे कोई नहीं जानता।" (मत्स्यपुराण ७ २४ २६)। भारतीय अर्थमय व अर्थमयकार का जो अर्थमय अर्थमयी अर्थमय के आधार पर इतिहास में किसी अर्थमय के अर्थमय नहीं करते अर्थमय अर्थमय अर्थमय अर्थमय हैं। इतिहास-अर्थमयी दृष्टिकोण मर्थमय है। अर्थमय और इतिहासों में इतिहास अर्थमय है किन्तु यह अर्थमय सत्य भी नहीं है।

यम व अर्थमय का मानवीय अर्थमय

इतिहास के भारतीय अर्थमय के अनुसार इतिहास मानवता का जीवन अर्थमय नहीं है और महापुरुषों का जीवन-अर्थमय तो कहीं नहीं है। अर्थमयों (अर्थमयों) अर्थमयों (अर्थमयों) और मनुष्यों (मनुष्यों) की अर्थमय अर्थमय है किन्तु इतिहास के भारतीय अर्थमय में महत्त्व अर्थमय नहीं अर्थमय अर्थमय के अर्थमय में अर्थमय के अर्थमय अर्थमयों का है। अनन्तता का अर्थमयिक पक्ष अर्थमय अर्थमय अर्थमय अर्थमय है। इस प्रकार, अर्थमय के अर्थमय अर्थमय-अर्थमय अर्थमय में मानव अर्थमय के अर्थमय और अर्थमय की अर्थमय अर्थमय है। कारण अर्थमय और अनन्तता के अर्थमय आरम्भिक अर्थमय द्वारा अर्थमय अर्थमय और मानवता अर्थमय

अपनी सांसारिक अवस्थाओं का एक विद्याभ्यास प्राप्त कर सकते हैं। मानव के संक्षिप्त इतिहास के सीमित क्षेत्र में जिसमें अनेक विलक्षण परिवर्तन हो चुके हैं यह भारतीय पारम्परिक मानव उत्पत्ति से पतन और पूर्णत्व से अप्रतिष्ठा तथा पतन और अप्रतिष्ठा से उत्पत्ति और पूर्णत्व की और निरन्तर चमत्कार रहता है। मानव की महत्वाकांक्षा और उग्रता कुंठा और मनना को क्रन्द कर देती है। समाज में बम और धर्म सत् और असत् के निरन्तर मन्द-गतिशील चढ़ाव-उतार एक ऐसे सीमित प्राचीन के पवित्र वातावरण और शास्त्रिणों के सत्पुत्र हो जाते हैं जो एक मध्य विदेशीय स्थान के समान गठ है। भारतीय सम्प्रदाय समय को मानवता और विश्व-संघर्ष के रूप में देखती है। यह प्राचीनता और निरपेक्षता दोनों को न मानकर वस्तुओं को सुन्दरतर बनाम की प्रावश्यकता तथा प्राचीनता को महत्त्वपूर्ण मानती है।

✓ संसार और उसकी प्रगति के प्रवाह तथा सत् और असत् के चक्रों के पीछे महान विषय है जो प्राचीन और समय के अन्तर्गत प्राचीनों मानवों देवताओं और राजाओं का एकत्र करके धर्म भीतर विनष्ट कर देते हैं। विषय के प्राचीन धर्म और मानव है। विषय का तादृशत्व जो शीघ्र एवं गुम्बर दोनों है वास्तव में युगचक्र है इतिहास का प्रवाह है। उनके मृत्यु के पदचिह्न में इतिहास की अन्त-प्राप्त्य निहित है, किन्तु इनके प्राचीन समाधिस्थ विषय अन्तर्गत और सत्पुत्रिकता है—भारतीय प्राचीन के निर्दोष प्रतीक। वास्तविक कारणों की भाँति विषय मरणा के कारणों के निरूपणों में भी विषय के तादृश के जो प्रतीक में प्रतीक और ऊर्जा की चक्रकार गति का प्रतीक है। शीघ्र तथा ममाधि की गति म गम्भीर विषय है। विषय-तादृश भारतीय धर्म और कला का एक महान प्राचीन धर्मप्रवाह है। हड़प्पा की नर्तकी की मूर्ति प्राचीन स्माराध्य देवता की जो बाद में विषय में लम्बित हो गए सक्रियता का प्रतीक थी। यदि इस मूर्ति को छोड़ दिया जाए तो संस्कृत साहित्य में विषय-तादृश के प्राचीनतम निदेशों में से एक कालिदास (लगभग ६००-६२२ ईस्वी) के मेघदूत (१-३६) में मिलता है। तन्त्राकासीन महाकाल मृत्यु के दौरान विषय के अनेक उठ हुए बाहु लैडी से एह घेरे में चक्रकार भा रहे थे माना चक्रों का कोई भ्रमण हो। विषय के अन्तर्गत म धर्म की संसारिकता और मक्ति के अनुसार धर्म धर्म युगीन धर्म धर्म प्रसार से विषय के विभिन्न मृत्यों—प्रयोग तादृश और तादृश की व्याख्या की है किन्तु इतिहास की अन्तर्गत मक्ति की समग्र मानवता और मरणा के धर्म न उत्पत्ति सत्पुत्रों और अन्तर्गत पर विचार तथा मानवता के हृदय के भीतर विषय के लक्ष्यमय मृत्यु की कल्पना-मात्र से शास्त्र और निर्देशता की अनुमति प्राप्ति है। विषय की विमूर्ति की भाँति उनकी मृत्यु-मक्ति की उत्पत्ति विमान और इतिहास का अन्तर्गत समग्र है और भारत में अन्तर्गत चार्तमिरी और कला प्राचीनता समान रूप से प्रभावित करती है।

विषय के अन्तर्गत के समान ही प्राचीन धर्म तथा प्राचीनता और मरणा का मृत्यु है जो भारतीय कला के अन्तर्गत ही अन्तर्गत और गुम्बर के साथ उस मरणा के प्रतीक परता है जिसके द्वारा मानवता की कलात्मकता और विरक्ति के प्राचीनता और मृत्यु का मरणा चक्राङ्क का मरणा प्राचीनता और अन्तर्गत प्राचीनता है। इसी प्रकार, महाकाल

बीजधर्म में हेतु और हेतु की उत्पत्ति मूल्य मूर्तियों का सुजन हुआ। वेस की अटल और स्थायक मूर्तिकला के कारण इस प्रकार की मूल्य-मूर्तियों के अनेक प्रकार सञ्चित हुए। प्रकृति और इतिहास में जीवन शक्तियों के आक्रिक विकास और अन्तर्गत की भारतीय धारणा की, जो मानवता के प्रकाश और योग्य की आक्रिक आक्रिक प्रवृत्तियों के समान है, येष्ठम अधिष्ठातृ इन मूर्तियों में है। मानव समाजतन्त्र की प्रतिष्ठा है। काम का प्रवाह और इतिहास के परिवर्तन धर्म के बुलबुले हैं, वैयक्तिक और सामूहिक सत्ताओं और प्रकाशों के सामाजी संसार के क्षणिक भ्रम हैं तथा एक निरन्तर नय या नदराह के मूल्य का उद्घाटन करते हैं। एक विधिष्ट पौराणिक आस्था भी है जो कालिका पुराण में काव्यात्मक लैसी में वर्णित है। धर्म की पत्नी सती ने स्वयं प्रकृतमात् मृत्यु का वरम कर लिया है। सिव उनके धर्म को कंधे पर रखे दुःख से पावस संसार-भर में डम भरते हुए खोर-खोर से बस रहे हैं। देवयण विनियत हुए कि सिव यदि इसी प्रकार डम भरते रहे तो विश्व का क्या होगा। उन्होंने राम के कण्ठ-कण्ठ कर दिए। फलतः कण्ठ एक-एक करके पृथ्वी पर बिरले लगे। लोकाध सिव के पर जहाँ-जहाँ पड़े वही पर सती के पवित्र धर्म का कण्ठ भी गिरा और वही स्थान तीर्थस्वयं बन गया। इस प्रकार निर्मित तीर्थ भारत के कोने-कोने में वसूविस्तार में हिन्दुस से घसम में कामाख्या तक और हिमालय में गन्गादेवी से दक्षिण में कुमारिका तक बिखरे हैं। जहाँ-जहाँ सिव के पांव पड़े वहाँ पृथ्वी बंध गई और वह पूर्व में प्राय भी काँपती है किन्तु धर्म की पंजरा से मानवता को छान हुआ, कारण सिव के माय पर स्थित बावन तीर्थ-स्थानों ने उत्तरकर सती वहाँ की धरती को पवित्र करती हैं तथा सभी पापों को अनन्त वरदान देती हैं।

एक अन्य हिन्दू पौराणिक कथा के अनुसार, आद्यपुरुष विष्णु हैं। आधुनिक युग में, जिसे ब्राह्मण कहा जाता है विष्णु बार-बार बाराह अवतार लेकर प्रलय और विनाश से देवी पृथ्वी की रक्षा करते हैं। स्थान और काम के मन्त्र विष्णु प्रवाह में पृथ्वी बार बार प्रलय और विनाश में फँसती है। विष्णु बार-बार उसकी रक्षा करते हुए प्रत्येक कर से उबारने का वचन देते हैं 'मैं तुम्हें लौट (अपने बाहुओं पर) इस प्रकार उठा लूँगा।

इतिहास का आक्रिक दृष्टिकोण अत्यन्त भ्रम की इसी प्रकार समाप्त करता है। मानव के इतिहास और प्रारम्भ क पौराणिक इतिवृत्तों के मूल्य की धारणाओं एवं उत्कृष्ट निर्जन्मता और सुदृढ़ उपासीयता में अतिरंजन प्रथम अनुपस्थित है। ब्रह्म ब्रह्मपुराण में कहा गया है 'वर्णित पुनर्जन्मों के चक्र में निहित जीवन स्वप्न के बुलबुले के समान है। मानव के देवता मूल्य और आपास भी इस स्वप्न में व्यापमान हैं। किन्तु वास्तविक-विधान को साधु करता है। समय द्वारा नियुक्त काम खबर स्वामी है। स्वप्न के प्रभावों के सन् और अस्तु बुलबुलों के समान नदर है। सन् और असन् अलग चक्र में बार-बार घाते हैं। यही कारण है कि विवेकशील प्राणी सन् और असन् दोनों से निर्जन्म रहते हैं। विवेकशील प्राणी प्रत्येक वस्तु से निर्जन्म रहते हैं।' दर्शन की भाँति, इतिहास में भी परम निर्जन्मता की धिया मिलती है।

भूतलगतिक
प्रदेशसामान्य

यूरोपियाई वास्तुकलासि क्षेत्र ओर असर - माना

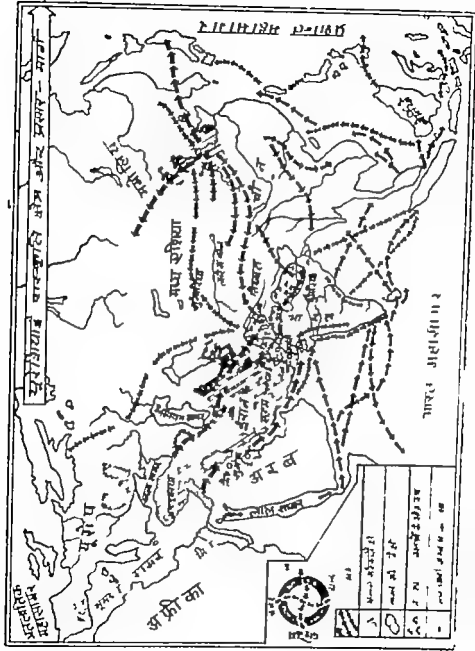
प्रधान भूभाग

भारत भूभाग

अफ्रीका



1	महासागर	1
2	सागर	2
3	सागर	3
4	सागर	4



अध्याय १ सिन्धु-संस्कृति

सिन्धुवासियों का व्यापार और ऐश्वर्य

पाँच हजार वर्ष पहले सिन्धु घाटी में एक अत्यन्त समृद्ध और विकसित सभ्यता का उदय हुआ था। इसका विस्तार सिन्धु की वहाडियों से लेकर काठियावाड़ तक था। यह नु माघ पुराणे पल्लवायु क्षेत्र में था और पानी की कमी प्रायः के समान न थी। तब प्रत्यक्ष सागर का मानसून ईरान से लेकर पंजाब और गुजरात तक सारे देश पर पानी बरसाता था। सिन्धु, मिह्रान, सरस्वती और गुणहरी इन चार नदियों में सप्ताक्रम बाढ़ घाटी थी और इसी कारण अनेक आबादियों की हवि सम्पत्ति और वाणिज्य की उत्पत्ति होती थी। इनमें दो बड़े नगरों मोहनजोदड़ो (जिसका शाब्दिक अर्थ है मुषों का टीला) और हड़प्पा तथा पैंटीस छोटे शहर जमीन से खोदकर निकाले जा चुके हैं।

सिन्धु मिह्रान सभ्यता ने अनेक राज्यों के जरिये दख्खन घाटी के साथ व्यापारिक सम्बन्ध और सम्पर्क स्थापित किया था। कुछ तो स्वयं रास्ते थे जो प्राचिनिक कराची के पास के मकरान और साधवेला मुसा दर्रा और कोहन दर्रे जूझी भीम और गाब घाटी से होकर जाते थे। इसके अलावा समुद्री रास्ता था जो फारस की खाड़ी के किनारे-किनारे जाता था। भारत उपमहाद्वीप की सीमाओं के भीतर तथा बाहर सुमेर, एलाम और फारस के साथ सब व्यापार होता था। कुछ विद्वान ईरान, साहिज के प्रसुरों को एसीरियावासी या समुर ही मानते हैं। सतपथ बाह्यन के समुद्रार एसीरियावासियों ने अपनी आबादियाँ पूर्व में मध्य तक बढ़ा ली जग पड़ती थीं। भारत से ठनी और सूती कपड़े मिट्टी के कलारमक बर्तन तथा सोने और चाँदी के धातुपत्र भेज जाते थे। सुमेरिया और एलाम के अनेक स्थानों पर मोहनजोदड़ो जैसी अनेक भारतीय मुहरें मिली हैं जिनसे पता चलता है कि पश्चिम के साथ भारत का व्यापार-सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से है। कुछ ही और बामू-दड़ो में एक बालों की विन विनी है जो एशियन सागर के द्वीपों में पाई गई विनों के समान है। लगता है कि सिन्धु घाटी की स्थियों ने सुमेरियाई के-सम्रा का रूप अपना लिया।

सोने चाँदी हाथीदाँत और पत्थर के धातुपत्र परेसू तरतरियाँ प्याले, बरतन और शृंगारदान तथा बच्चों के लिए अनेक प्रकार के मिट्टी के पकाए हुए पिनीने इस बात के सबूत हैं कि सिन्धु घाटी की सभ्यता अत्यन्त विकसित और विनासमय थी। पत्थर की मूर्तियाँ गड़ने और धातुओं की बीजों बालने की कलाओं का काफी विवाह हो चुका

था। मोहनजोदड़ो में मिली गर्तकी की कांस्य मूर्ति में सय और गति का भद्रमुद्र समावेश है। यह प्रमाण धर्मों के छद्मरेपन और तीखे मस्ति से और अधिक उजागर हो उठा है। यह घायक मेसोपोटामिया के किसी नगर की वाद्ययन्त्र की मूर्ति है। मोहनजोदड़ो में जस और स्वयं परिवहन की विशेष सुविधाएँ मौजूद थीं। जिसके कारण वह एक विश्वमय बन गया था। कम से कम प्रमुख जातियों के लोग वहाँ बसकर रहते थे। प्रोटोसोडोमियाई, भूमध्यसागरीय मंतोस और मल्पाइसी।

सिन्धु घाटी के शासकों का शेष भारत पर प्रमुख किस सीमा तक था यह बात नहीं है। सिन्धु सोना और कीमती पत्थर मैसूर से आते थे और बारहसिपे के सींग कश्मीर से। तांबा और सीसा दामपुताना से आता था। बाँबी अवस्था ही भारत के बाहर—ईरान आर्मेनिया अथवा अफगानिस्तान—से आती रही होगी। सम्भव है कि आर्यों के भागमन के समय सिन्धु घाटी के निवासियों का शासन सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिम की भारत की नदी घाटियों पर रहा हो। इन्होंने सिन्धु के समीप रहनेवासे राजस वृक्ष का नाश करके जमीन भागों को स्वच्छ किया था। उन्होंने जल की हत्या की और पर्वतों को पार करके सोने के खजाने को पा लिया।

सिन्धु की मुहरें

सुदूर से कुछ अत्यन्त कलापूर्ण मुहरें मिली हैं जिनपर पशुओं के चित्र अथवा चिह्नारमक लिखावट अंकित है। इनसे सिन्धु घाटी सभ्यता का एक अत्यन्त रोचक पहलु उद्घाटित हुआ है। मुहरों का अर्थ क्या था इसपर विज्ञान एकमत नहीं है। उनपर अंकित लिखावट की भी नहीं पढ़ा जा सका है। फिर भी सेलसरी बीनी मिट्टी हाथीदांत और मिट्टी की बनी हुई हड्डार से अधिक मुहरें पाई गई हैं जो कला की उत्कृष्टतम मनुष्यता है। मोहनजोदड़ो की तरह मुहरें एलाम और मेसोपोटामिया में भी प्राप्त हुई हैं। दमजा घाटी की एक बालीदार लिखावट मोहनजोदड़ो में मिली है। दमजा और फरात की घाटी के माय व्यापार के फलस्वरूप बिलास-सामग्रियों आनुषांगों और सुसंस्कृत नगरजीवन की प्रवृत्तियों का आदान प्रदान हो हुआ ही साथ ही देवताओं और पौराणिक कथाओं का आदान प्रदान भी हुआ। सिन्धु घाटी की मुहरों से कम से कम दो मेसोपोटामियाई कथाओं अथवा देवताओं के आवाज का पता लगता है। एक तो है सींग धिरोबामा आदि-सांड जिसे पूर्वज माना जाता था। दूसरा है मेसोपोटामियाई नायक गिल्गामेश जो अपनी प्रति मानवीय शक्ति से जंगलों के बड़े बड़े जानवरों को घागाती से मारकर संसार को प्रादुर्भी कर रहे दोष्य मूर्खता बना सकता था। ऐसा मान्य होता है कि सिन्धु घाटी की मुहरों का प्रयोग व्यापार में और मांस व सम्पत्ति की सुरक्षा में हुआ करता था। ईराक की एक प्रागैतिहासिक जगह पर एक सूती कपड़ा मिला है जिसपर सिन्धु घाटी की मुहर लगी हुई है। अब माल को बड़े-बड़े बख्तों में बाँट दिया जाता था तो उनपर मुहरों के बिचार से मिट्टी के लेखन लगा दिए जाते थे और उनपर मुहरों की छाप होती थी। इन मुहरों का उपयोग सतिमा अथवा बर्तनों के मुह बन्द करने और खमीर-नदीब लकी के महाना के बरबाद बन्द करने में भी किया जाता था। लज्जा है कि हर प्रादुर्भी के पास ऐसी

मुहूर्त की धीर हूर धावपी उमका प्रयोग करता था ।

मुहूर्त में मिली हुई कुछ मुहूर्त धाहीतुष्य में मिली हुई मुहूर्त के बिल्कुल समान हैं । मुहूर्त की बनावट धीर भिट्टी की किन्म से पुनःतत्त्वविद् इस प्राचीन सम्प्रदाय के विभिन्न स्तरों को समझा टीक-टीक प्रलय कर पाए हैं । एकमत होकर वे इस सम्प्रदाय का समय ३२५०—२७५० ईसापूर्व मानते हैं । बौद्ध, अमरी और बौद्ध सम्प्रदाय-केन्द्र मोहन जोदड़ो धीर हड़प्पा की सम्प्रदाय से पहले के हैं । नास धाहीतुष्य मुहूर्त और भांगर मोहनजोदड़ो-हड़प्पा सम्प्रदाय के उत्तरकालीन केन्द्र हैं । विष्णु धाटी सम्प्रदाय पश्चिम में उत्तरी बम्बिस्तान और सतसुज नदी के किनारे-किनारे, उत्तर में हिमालय की निचली पहाड़ियों तक और पूर्व में ब्रह्मपञ्चुर में सरस्वती नदी के किनारे तक फैली थी ।

अतिथिकसित नागर समाज की सुविधाएं

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा दोनों नगर काफी बड़े थे और दोनों में सुदृढ़ कित्तेबन्दी की गई थी । एक राजधानी विष्णु के तट पर थी और दूसरी रावी के तट पर और दोनों नदी-नरिबहन द्वारा परस्पर संयुक्त थी । दोनों अवस्थाओं में विद्यालय छात्रों या बड़े-बड़े कमरों की कठारोंवाले अन्त्यागार पाए गए हैं । इनसे परिचय मिलता है कि बड़ा केन्द्रीय प्रशासन था । ये अन्त्यागार धावक धाही रोम के अन्त्यागारों जैसे थे जहाँ हजारों मजदूर अन्न को कूटने-पीसने का काम करते थे । मोहनजोदड़ो और हड़प्पा दोनों अवस्थाओं में नरियों को बाढ़ से सुरक्षा के लिए बाँध बनवाए गए थे । मोहनजोदड़ो की धाराई से पता चलता है कि छात्राश्रमों तक बड़ा अन्न-वितरण प्रणाली नाबियों की अन्त्यागार और सड़कों का सुप्रबन्ध रहा है । सड़कों पर सामने की ओर मकानों के धावे के हिस्से सन्निविष्ट हो गए थे । इन सबसे पता चलता है कि वहाँ एक स्वामी नागर जीवन का धीर अत्यन्त सुचारु प्रशासन था जिनपर विनाशकारी बाढ़ों का कोई प्रभाव न पड़ता था । हर मकान में एक कुआँ और एक स्नानागार या बिसकी नाबियों सड़क की मुख्य नाबियों तक पहुँचती थी । राहुर के विभिन्न भागों की रक्षकाली का भी प्रबन्ध था । बड़ा सांख्यिक स्नानागार, साराय और सामयाधम व जिनसे धावक यही पता चलता है कि धावकी का एक बहुत बड़ा भाग व्यापार करता था और किसी जगह पर स्थिर नहीं रहता था । विष्णु रावी, सतसुज और सरस्वती की घाटियों में रूक पानी या जिसकी बचह से अने जंगल उग पाए थे । इन जंगलों का उपयोग प्राप्त होता था जो बड़े पैमाने पर ईँके बनाने के काम आता था । ईँकों के अने हूय मुहूर्त मकान भारत में मकरान बम्बिस्तान में—बड़ा हजारों व्यापारी और सीनपर धावक भापा करत थे—गणना आकर दजला धाटी में प्रचलित हुए थे ।

विष्णु धीर अत्यधिक संस्कृतियों के संस्पर्श

रावी सरस्वती और सुपुत्री नदियों की ऊपरी घाटियों में भारतीय धावकसंस्कृति का प्रसार का धीर विष्णु-नरिबहन द्वारा की संस्कृति में इस रंग विद्या तथा बड़ी-बड़ी उमकी सीनारों का नावकर भी अन्त्यागार प्रसार विद्या । संस्कृति और सुपुत्री (दावी)

नदियाँ घन मूँछ चुकी हैं) के बीच की भाटी में (जिसे बाद में भारतीय भाषों ने पवित्र ब्रह्मवट का नाम दिया) वो अत्यन्त प्राचीन सम्प्रदायों के भवसेय मौजूद हैं। गंगा-यमुना के हाथों में स्थित कोटसा निहाम और पश्चिम में सोराष्ट्र के रंगपुर व सिम्बली नामक स्थानों में हड़प्पा संस्कृति की अवस्थिति का पता चला है। बीकानेर में सरस्वती और बुयडटी की भाटी में अनेक नवीनतम पुरातात्विक खोजें हुई हैं और समग्र सो प्रागैतिहासिक स्थानों का पता चला है। पुरातत्त्वविद् और क्षेत्र कार्यकर्ता एम० एच० बरस ने इनको निम्नलिखित योजनाओं में रखा है (१) पारिकामीन बस्तिमों को हड़प्पा मोहनजोदड़ो नगर राज्यो की संस्कृति की प्रतीक हैं। (२) हड़प्पा की कई बस्तिमों जिनके बर्तनों की बनावट की संज्ञा में कोड़ा धातु है। यह हड़प्पा संस्कृति की पूर्वीय प्रती है। (३) अनेक बस्तिमों में चित्रित वर्तन तथा उन्ही प्रकार के दूसरी चीजें पाई गई हैं जो हड़प्पा संस्कृति तथा उसके बाद की संस्कृति के बताने में दिग्दर्शन निम्न है। ये बताते हैं कि पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश में हैं। पिछले दिनों में इनका महत्त्व काफी बढ़ गया है और हाँ पञ्जाब युग को जोड़नेवाली कड़ी के रूप में समझा जाने लगा है। अनुमान है कि यह संस्कृति ईसा से एक हजार वर्ष से पाँच सौ वर्ष पूर्व तक फैली पत्ती थी। (४) सबसे मूल में अपेक्षाकृत बड़ी जगहों में एक और प्रकार की संस्कृति का पता चला है। इसकी विशेषताएँ हैं तरङ्ग-तरङ्ग के मजबूत वर्तन जिनपर लाल खमीन पर नामे रंग से (और कभी-कभी जटिल लाल रंग से) चित्रित किया गया है। यह संस्कृति शायद ईस्वी सन् की पहली सताव्वियों में पत्ती-पत्ती थी। निस्तारैह इस क्षेत्र में और अधिक खुदाई करने पर सिन्धु घाटी और गंगा घाटी की संस्कृतियों को मिलानेवाली ग्रन्थ कड़ियाँ भी प्राप्त हुई।

दोनों संस्कृतियों के क्षेत्र गंगा-यमुना के हाथों में एक दूसरे को काटते हैं। भरत सम्प्रदाय द्वारा और बागों घबरा रसुघों के बीच मध्ये-मध्ये समय तक लड़ाई हुई थी। ज्योत्स में दाह छोटी नाक और 'नाले सुन जाने' विभिन्न भाषा भाषी और निम्न पूजक के रूप में वर्णित हैं। ये छायाव सिन्धु घाटी के निवासी थे जो मूलतः भूमध्य-सागरीय जाति के थे और ईरान से यहाँ चले आए थे। इस सम्प्रदायों का युद्ध (बायरात) पञ्जी घबरा राखी पर हुआ था जिसके तट पर विद्याल प्राचीन नगर हड़प्पा स्थित था। हड़प्पा को हरिमुपिया ही समझना चाहिए, जिसमें ज्योत्स के अनुसार अविश्वस्य निवास करते थे जो बाद में भारतीय भाषा-आधारों द्वारा परास्त हुए। ज्योत्स के बस्तिमों क्रमशः सिन्धु से घग्ग और कश्मीर से मायवा और राजपूताना तक फैल गई। कोशीतरी उपनिषद् में हिम्याचल पर्वत का जिक्र है और सरयू तथा पूर्व की सहायीरा (राप्ती या पण्डक) नदियों का जिक्र बार-बार आया है। मध्यप्रदेश वैदिक साम्राज्य का वैश्व या जहाँ कुछ और वांछना प्राप्त था। विभिन्न पुस्तकालय की प्रकृति के कारण कार्य प्राणामकों या पर्यटकों का सम्पर्क और कभी कभी तो रक्तपातमय संघर्ष लगातार यहाँ के मूल निवासियों—दाह-रसुघों और निवासों के साथ होता रहता था।

वैदिक देवों के मूल रूप

सिंहमुनिवासियों और प्रायों ने बीच रजपातमय मुठों के बावजूद धार्मिकपूर्ण समागम प्रथम स्थापित होता रहा होगा। इसी कारण भारतीय सभ्यता ने सिंह-
निवासियों से पशुओं द्वारा चिरे तीन चेहरोंवाले त्रिशकार देवता त्रिश पशुपति प्रथम
त्रिश-योगीश्वर की पूजा करना सीख लिया। सिंह सभ्यता के पशुपति को ज्योतिषिक
संस्कृति में सबसे पहले भयकर देवता रक्त के रूप में माना गया। प्राचीनतम ग्रन्थों में
इन्हें बिदेही माना गया है और भार्य यक्षकर्ताओं की चेतावनी दी गई है कि वे पशुपति
का आवाहन न करें और उसका नाम तक न लें। पशुपति को परोक्षतया 'यह देवता' या
देवता' जिसके नाम से पशु या भूरा शब्द आता है (अर्थात् पशुपति भूरापति पशुओं का
स्वामी)। मोहनजोदड़ो के एक चित्र में पशुपति योशासन सपाथ, हाथी पीठा, पैदा
सैदा और हिरण हाथ चिरे बैठे हैं। हड़प्पा की एक मूर्ति में, जिसका नाम नर्तक है त्रिश
को नृत्य की मुद्रा में दिखाता गया है। मोहनजोदड़ो मूर्ति और हड़प्पा में पाए गए
चूर्णों में से एक में त्रिश का निग ऊपर उठा दिखाया गया है। भारतीय मूर्ति कला में
यह सबसे पहले उत्तर-कुषाण-काल में मथुरा में आया और गुप्तकाल में बंगाल के पहाड़पुर
और जड़ीहा के बीच नामक जगहों में भी इस प्रकार की मूर्तियाँ प्राप्त हैं। पशुपति के
चिर पर दो सीप हैं और तीन चेहरे तथा प्राँ हैं जो स्पष्ट ईश्वरत्व के प्रतीक हैं। चिर
के ऊपर तीन मोर्चोंवाला एक अस्त्र है—जो हिन्दू और बौद्ध त्रिशूल का मूलरूप है।
सिंह पाटी की एक छवि की मुद्रा पर एक योगी बैठे हैं जिसके दोनों ओर एक-एक नक्त
हैं और सामने कुछ सी मारकर बैठे हुए छाप। भार्य परम्परा में त्रिश सीपों की माला
बहनते हैं और पञ्चक अर्थात् तीन मुखवाले हैं। दक्षिण की पञ्चक मूर्तियों में त्रिश की
मूर्ति में मोहनजोदड़ो की मूर्ति के समान दो सीप हैं। इस प्रकार सिंह पाटी की मूलारूप
और भारतीय प्राच त्रिश या रक्त के अनेक लक्षण और शैलीगत आकार समान हैं। त्रिश
निग भी सिंह पाटी में पाया गया है शंभु अथवा बर्तुल के आकार के परबरा के रूप में।
सिंह पाटी में एशिया माइनर और एशियन सागरीय क्षेत्रों के समान प्राचि मा देवी
की पूजा प्रचलित थी। मा देवी और स्त्री-योगि नर्तियों नृत्यों और छाप जैसे कामचोरों
की पूजा की परम्परा भी आधुनिक सिंह पाटी संस्कृति की देन है। ज्योतिषिक धर्म और
पुष्पी देवियों का मूलरूप सिंह पाटी संस्कृति में ही सम्भवतः मौजूद है। ज्योतिषिक मा
देवी श्रीमा अथवा श्रीमद्वी (गुप्तकालीन, उत्तरप्रदेश में प्राप्त) को नग दितताया
गया है और उनके शरीर से एक कमल का फूल निकला हुआ है। निरिक्त रूप से रक्त
मूलरूप हड़प्पा की यह देवी है जिसका पाँच चेहरे हैं और अर्धांग से एक पोषा निकल
रहा है। एशियन सागरीय क्षेत्रों में मा देवी कनक मनुष्यों और पशुओं की ही मा मदी है
बौद्ध समस्त वनस्पति वस्तु की भी जगनी है।

मोहनजोदड़ और सत्र-विद्या में सिंह पाटी का पाग

सिंह पाटी का देन जिसके सामने एक देवी या नाद है त्रिश के मदी का मूल

रूप है। किन्तु सिन्धु घाटी की कला में उसकी भाँसपधियों, अस्त्रियों और लवण की परतों को एक धमक साथे में डाल दिया है। इससे उसकी विद्यालता और शक्ति का उद्घाटन ऐसे रूप से होता है जो विश्व की अमृत-मूर्तिकला में अद्वितीय है। सिन्धु घाटी संस्कृति में पेड़ों पर बैठी हुई सीधोंवासी स्त्री-मातृवर्तियाँ हैं जो धर्मबोध की मूल मारमाओं और मीर्य तथा शुभ कालीन यशियों की मूलरूप हैं। कुछ देवी अथवा मूल धारणा का मंत्रि-मात्र नहीं है बल्कि कभी-कभी यह एक बहुराशीकारी से घिरा अकेला छद्म भी दिखलाया गया है। यह सावद बोधधर्म के योगि-मूल का पूरक है। सिन्धु सभ्यता ने ही सावद हिन्दूधर्म को अल की पवित्रता की भावना प्रदान की है। यह मोहनजोदड़ो के सार्वजनिक स्नानागार और सम्पूर्ण नगर में स्नान की सुविधाओं का ही प्रतीक माना जा सकता है। सिन्धु और सरस्वती घाटियों की संस्कृतियों में धर्मनिरपेक्ष और सामिक सामिक और उपानना सम्बन्धी तत्त्वों का सम्मिश्रण पूरा हुआ है। इसके अतिरिक्त एक और समानता भी उत्पन्न की है। अथर्ववेद में उल्लिखित देवियों के वन पर सम्भी-सम्भी ओड़नियाँ डाली गई हैं। कुन्ती की व हड़प्पा और सारी देवी तथा बाब के पुर्णों में अहिम्नक कोपान्नी और मधुरा में प्राप्त मिट्टी की पकाई हुई मूर्तियों में भी यही ओड़नियाँ मौजूद हैं।

अथर्ववेद में राम अथवा शारव नामक सम्प्रदाय का उल्लेख है जिसके अनुयायी बलि नहीं देते थे किन्तु संन-विद्या और इन्द्रजाल में भिरवास करते थे। पाणिनि के अनुसार शारव नाम हिता और मृदु-भार के वन पर अथवा जीवन-यापन करते थे। ये सम्प्रदाय सिन्धुनिवासी थे। सिन्धु सभ्यता की स्थायी ऐनों में से सम्प्रदाय कुछ और थे हैं। हाथ करके से कपड़ा बनने की कला बैसगाड़ी बनाना लकड़ाही करना पहरो और पाँचों को सुनिश्चितित डंग से बगाना। आय माग ३। ईसापूर्व के कुछ ही समय बाद पंजाब में आए। वे युद्ध में लतवार और घोड़े का प्रयोग करना जानते थे। इसलिये आसानी से सिन्धु क्षेत्र की शान्तिप्रिय नागर व्यावसायिक सभ्यता को पराजित करके प्रान्त में नेस्तनाबूद कर सके। इन्द्र (जिन्हें किन्नो और नन्नो को प्रस्त करनेवाला अथर्व पुरन्दर और पुरमिद् भी कहा जाता है) ने अपने मजबूत लड़ाकू साधियों के साथ सिन्धुवासियों के वनों और किन्नो वर हुमसा किया और स्पष्ट है कि उन्हें प्रस्त कर दिया और उनके ऐश्वर्य को मिट्टी में मिला दिया।

“अग्नि की लपटों में उसने उनके शरों शरों को जला दिया

और पायों और रथों और घोड़ों को लूट लिया।

अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन शान्तिप्रिय और समृद्धिवासी सभ्यता निरक्षर ही रहना समाप्त हो गई होती लेकिन उसने अपने विजेताओं को अपने देवता पायिक पूजा विधियाँ और जीने की कलाएँ अथर्व सौंप दीं।

यमुना घाटी में मागजाति

बहुत सम्भव है कि दोनों जातियों में समझौता सिन्धु अथवा पंजाब में नहीं बल्कि गंगा-यमुना के डाले में हुआ। दोनों जातियों में अपनी बसितवा रंगा की समृद्धिवासी जागी तक बढ़ा ली थी और उन संदे डाले में वे एक-दूसरे के शान्ति जा पर थे। भारतीय

महाबाल्य महाभारत में वर्णित वो घटनाएँ सामान्य भारतीय घायों और हड़प्पावासियों के युद्ध की कुछ अन्तिम घटनाओं को व्यक्त करती हैं जो गंगा के मैदान में घटित हुई थीं। पहली घटना है यमुना की बाटी के खान्दव वन का अग्निकाण्ड, और दूसरी घटना है नाग जाति को उनके शासक लक्ष्म के साथ बैल-मिकाभा जिससे उन्हें पहाड़ों पर बाकर चरण सेनी पड़ी। इनसे सामान्य यह परिणाम निकाला जा सकता है कि गंगा-यमुना द्वारे में ही वो महान जातियों का मीथन युद्ध हुआ था। इसके विपरीत नागराजा वासुकि की पुत्री जम्बूदी के साथ धर्मन का विवाह इस बात का प्रतीक है कि गंगा-यमुना द्वारे में भारतीय सन्निमन का महत्वपूर्ण काम शुक हो गया था। हड़प्पा में प्राप्त मिट्टी की एक लकड़ी पर साँप प्रदर्शित है। इसमें एक देवता के पास फल बैठाए गए हैं और बूटों के बस बैठे हुए जोम उसकी पूजा कर रहे हैं। मिट्टी की एक लकड़ी पर एक चित्र है जिसमें एक साँप को पूजा के तौर पर दूध पिछाया जा रहा है। हड़प्पा एताम और बैबिलोनिया में नाम-सम्प्रदाय महत्वपूर्ण था। नागों ने भारत के युद्ध में औरकों और पाण्डवों दोनों की ओर सहायता मिलाया। यह जाति काल्पनिक नहीं है बल्कि सामान्य सिन्धु घाटी के बड़े-पूरे निवासी ही थे जो अन्त में संसा के मैदान से खदेड़े गए और गर्महा के घासपास जा बसे। पुराणों में नाग जाति को इसी क्षेत्र का वासी बताया गया है।

सरस्वती की संस्कृति

मध्य एशिया से सरस्वती के मैदान की ओर प्रयाण

- ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पहले किसी समय मध्य एशिया से बने हुए प्रायः सिन्धु और सरस्वती नदियों के मैदानों में प्रकट हुए। वे धीरे-धीरे मीनी घाटों और सुनी हुई गाँवों के बीच मजबूत कुर्सी में धोके तथा पहियों वाली सवारियों पर यात्रा करते थे। उन्होंने इस क्षेत्र को सप्त सरस्वती कहा 'सात नदियों की भूमि' का नाम दिया।
- ✓ विष्टरनिर्वाह के अनुसार यह धारणा अत्यंत ही है कि वैदिक साहित्य का प्रारम्भ ईसा से तीन हजार से दो हजार वर्ष पहले के काल में और प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रारम्भ ईसा से पहले चार हजार वर्ष से तीन हजार वर्ष के काल में हुआ। अधिकांश भारतीय इस धारणा को सही मानते हैं। एशिया माइनर और अनातोलिया में अनेक सभ्यताएँ और अभिज्ञेस पाए गए हैं जिनमें इन्द्र मित्र वरुण और नासत्यस्य आदि आर्यवैदिक देवताओं का जिक्र है। इनसे वैदिक भारतीयों और ईरानियों की अनुकृपा का पता चलता है। इन्द्र निरुत्तरे सबसे बड़ा देवता था—सद्यस्त्र सेनाओं का नायक और दुर्ग विध्वंसक। एक आर्यवैदिक ऋषि ने कहा गया है—तुम अपनी शक्ति से एक के बाद दूसरे दुर्ग का ध्वंस करते हुए सपाताल एक के बाद दूसरे मुँह पीतले जाते हो।" इन्द्र ने शत्रु के मुँह 'घरकामीन क्रिओं' को भी ध्वस्त किया था। वे जिसे धातव्य हथिया सम्पत्ता के लपटों की सुरक्षा करनेवालों ने बाँधे थे। इन्द्र क्षुष्टिवाला और 'नदियों का प्रवाह रोकनेवाले असुर वृत्र के संहारक भी हैं। वे 'नदियों की धाराओं को मुक्त करते हैं और समस्त नदीतट उनके पीरप न घामने हार मान जाते हैं। प्राचीनतर हथिया सम्पत्ता के लपट और बन्धे तथा समस्त शेष की नदियों को निर्वाहित करनेवाले विद्यालय बांध पंजाब के मैदानों की समुचित सिंचाई करने में बाधक थे। इन्द्र ने इन सब सम्पत्तियों को समाप्त कर दिया।
- परती माता प्रायः भूरी और बंजर है किन्तु यही वह भिन्नता थी जो अफ्रीकी भूतरे की।" इस तरह धातु पंजाब की धरती पर स्थापित हो गए। अपने पूर्व इतिहास में वे न तो मगर निवासी थे और न कृषक। लेकिन धातु के खेती और सिंचाई दोनों करने लगे। वे देहू को जावन और मक्के की पैदावार करने लगे। उनके हस्तों में तीन चार या कभी-कभी छ पोंड़े बंध जोड़े जात थे और उन्होंने प्रत्येक परिवार के भूमिगत के नाम धनीय के धन्य प्रत्यक्ष हिस्से लिए थे। बुद्ध और धम्मजित इन्द्र इन बातों का ध्यान करते थे कि नदियों की वादिक बाढ़ों और उनका द्वारा लाई गई मई मई बिजली बिट्टी का पूर्ण उपयोग हो सके।

के बीच जमीन के बटवारे का यही ढंग थाज भी प्रचलित है। भारतीय गाँवों और सहरो को बसाने की योजना भी हजारों वर्षों से वैदिक धर्म-वस्तियों के नमूने पर ही चली आ रही है। वैदिक काल में ही ग्रामसभा का जन्म हुआ वास्तव में यही संस्था भारतीय सम्प्रदाय के स्थायित्व का एक मुख्य कारण है। ग्रामसभाएं और समितियाँ सामाजिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के कर्तव्यों का पालन करती थीं तथा राजाओं भक्त या मुखियाओं के अधिकारों की सीमाएं निर्धारित करती थीं। ऋग्वेद की एक अधिष्ठापक ऋषि में समाज के ऐक्य का आवाहन किया गया है "एक भगवु एकनिष्ठ होकर आपस में जोनों एक ही तरह से विचार करो जगह सबकी है, समिति सबकी है मस्तिष्क सबका है इसलिए अपने विचारों को एक जैसा बनाओ 'समीका सकस्य एक हो और एक ही प्रकार के विचार हों' बिना कि सभी प्रसन्नतापूर्वक एक हो सकें।" ।

देवता यज्ञ और धार्मिक संस्कार

वैदिक काल के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वाराध्य देवता हैं इन्द्र वरुण अग्नि और सोम। इन्द्र युद्ध के और वरुण नैतिकता के देवता थे तथा अग्नि और सोम धानुष्ठातिक देवता थे। अग्नि का दूसरा नाम है वाक। उसके तीन और प्रतिरूप हैं जो सभी देवियाँ हैं—पृथ्वी पर इसा भक्तवा इका आकाशमें भारती और स्वर्ग में सरस्वती। सरस्वती शायद प्रारंभ में गंगा के समान नदियों की देवी थी यद्यपि उसकी प्रसिद्धि अधिक न थी। लेकिन उसका सम्बन्ध सम्पत्ति अन्नप्रवाहिनी अग्नि को प्रवर्धित करने और नदियों के तटों पर मंत्रोच्चारण करने के साथ था इसलिये ही वह ही वह वाणी (वाक) और धार्म्यात्मिक ज्ञान का प्रतीक बन गई। ऋग्वेद के अनुसार सरस्वती सभी विद्याओं में जल का वितरण करती है तथा सम्पत्ति-जीविकाप्रदायक व प्रज्ञा-प्रकाशक यज्ञों को सहाय देती है। (१ ३ १२)। वैदिककालीन नदियों में सरस्वती प्रमुख है। वह अन्न सुप्त अम्बर-हाकड़-नीरा नदियों के रास्ते पर बहती हुई समुद्र से जा मिलती थी। भारती नाम का आमार है भारतीय आर्यों का मूल गोन जिसके नाम पर ही हमारे देश का नाम भी पड़ा है। वैदिक युग में भूमि स्वाराध्य देवता और संस्कृति एक थे और बाद में भारती तो भारतीय धर्म संस्कृति का प्रतीक ही बन गई। वासाप्तर में भारतीय धर्म संस्कृति का विस्तार हुआ जिसका अर्थ बहुत ही लक्ष्य था भारत साम्राज्य का उसकी मूल सीमाओं—सरस्वती बराहती और आपमा नदियों के मैदान के बाहर प्रचार जिसे बाद में ब्रह्मावर्त नाम दिया गया।

ऋग्वेदिक संस्कृति अमय सरयू बरधा और गङ्गातीरा (अबका गण्डक) के किनारे फैल गई। पुराने पुराने के बचावसी राज्य विजय अथवा सम्मिलन के कारण आकार में बढ़ हो गए। राजाओं ने 'एकराट' और 'सार्बभौम' जैसी परबियाँ ग्रहण कर भी तथा वे अश्वमेध और राजसूय यज्ञों का आयोजन करने लगे। इस प्रकार वैदिक राज नीतिक सम्मिलन और साम्राज्यवादी गतिधियों के विकास न बाद के हिन्दू साम्राज्यवाद के सिद्धांत और आचरण की उपरिष्ठत किया।

वैदिक नाम व अधिकार प्राशुतिन धर्मियों को स्वाराध्य देवता मानकर पूजा

जाता था। यह दृष्टिकोण व्यावहारिक और उपयोगितावादी था यद्यपि उपनिषद् काम में उनकी धार्मिक व्याख्या भी प्रस्तुत कर दी गई। स्वयं जीवन को एक महान् यज्ञ समझा जाता था। यज्ञ यज्ञकर्त्ता और यज्ञ-सामग्री सभी को पुण्य स्रष्टा के साथ एकाकार माना जाता था। भारत में काफी धार्मिक अनुष्ठान और सत्कार हजारों वर्षों से वैदिक दार्शनिक प्रतीकों और धारणों के आधार पर निमोजित हैं और उनमें पारमौक्तिक चार्मकता एवं मूल्यवत्ता है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध विवाह-मन्त्र में पुत्र्य और स्त्री की चार्मकता को पृथ्वी और भाकाश ऋग् और सामन् के विवाह का प्रतीक माना गया है। वयू के पूर्व पति एक के बाद एक उसे बर को सौपते हैं सर्वप्रथम सोम (ब्रह्मांडीय नियमों के स्थापक धारि देवता) तब गन्धर्व (बाणी और शिल्प की मञ्जुरता प्रदान करनेवाले देवता) और धन्त में धमि (सात्विकता प्रदान करनेवाले देवता)। अपने ब्रह्मचर्य-पालन और शिक्षण के बाद वयू विवाहोपरांत अपने पति के साथ यज्ञों में भाग लेते हैं। इस प्रकार वैदिक विधि के अनुसार सम्पन्न भारतीय विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। मनुष्य की वैदिक निरन्तरता को उस एक की पारमौक्तिक चार्मकता का उद्घाटन समझा जाता है जो प्रकृति की शक्तियों का सञ्जन है। इसी प्रकार मनुष्य की सामाजिक निरन्तरता की कल्पना ऋग्वेद में पुण्य मूक्त के रूप में की गई है। इसके अनुसार समाज के व्यावसायिक वर्ग 'पुण्य' के विभिन्न घंण—मुंह बाँह, जाँघ और पैर हैं। इसी पुण्य से भावाद्य सूर्य चन्द्रमा पृथ्वी और सम्पूर्ण विद्वत् का सञ्जन हुआ है। एक श्लोक में बतल जाता है। "स्वाराध्य देवता की महानता के कारण एक आत्मा को अनेक नाम दिए गए हैं। विभिन्न देवता एक ही आत्मा के अलग-अलग रूप हैं।" भारतीय धार्मिक चेतना का यही भाव मूल विचार है और शताब्दियों से भारत के मानव में व्याप्त है।

भारत की कल्पना और तत्त्वज्ञान की निरन्तरता

वैदिक और पृथ्वी के देवताओं के प्रति अति सर्वथा व्यावहारिक और उपयोक्तावादी ऋषियों से प्रारम्भ होकर ऋग्वेद का दर्शन धार्मिक चिन्तन की ऊँचाई तक जा पहुँचा। सबसे मजबूत की दार्शनिक ऋषियों में सत् और धत् रूप और माया की बारणाओं का अग्र हुआ। ऋग्वेदिक ऋषियों में बार-बार अनेक देवताओं के स्थान पर एक धर्मिण्य सर्वव्यापी ब्रह्म (परब्रह्म) के चिन्तन पर जोर दिया गया है। ऋग्वेद की बल्हरी १, २० में जीवात्मन् और परमात्मन् को एक वेद पर अन्वित एक ही प्रकार के दो पक्षी माना गया है एक वेद का भीठे फल खाता है और दूसरा केवल हैमता रहता है। बल्हरी ३ ६२ १० में विष्णु का धामनी मन है जिसके अन्तर्गत ऋषि विचारमिश्रित बड़े होते हैं। इस मन में बड़ा गया है "मैं उस सर्वसम्पन्न की धाराधना करता हूँ जिसे तीनों मोर्चों का निर्माण किया है। वहीं मेरे लारे विचारों इच्छाओं और क्रियाओं का निर्धारण करते।" मन में उल्लिखित 'बह' परमात्मन् है और परमात्मन् ही तो हजारों वर्षों से तत्त्वज्ञान तथा धर्म का लक्ष्य है।

उपनिषद् का दार्शनिक धर्म है गुरु-शिष्यों की अन्तरंग बैठक। उपनिषदों की रचना मिस्रबहु बिबल-संस्कृति की गहानतम् बीडिक उपलब्धियों में से एक है। याज्ञवल्क्य और जमकी पत्नी मनेवी तथा याज्ञवल्क्य और गार्गी बाबलगी के सुप्रसिद्ध संवादों से स्पष्ट है कि इस उपलब्धि में स्त्रियों का भी हाथ था। यहाँ और उपनिषदों से ही भारत की उत्पत्ताएँ, उत्पत्ति और नैतिकता उत्पन्न हुई। ब्रह्म धारण और ब्रह्मण्ड की एकात्मकता की धारणा का निरूपण उपनिषदों में किया गया है। यह धारणा कामाख्य में हिन्दू धर्म का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त बन गई। धारणा और ब्रह्मण्ड की एकात्मकता के सिद्धान्त का निरूपण याज्ञवल्क्य और उनकी विदुषी पत्नी के संवाद में हुआ है यह भी एक विशेष बात है।

कठोपनिषद् के यम और नविकैता के बिन्दुओं से जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध रहस्य का अन्वेषण है। याज्ञवल्क्य ने धारण और ब्रह्मण्ड की एकात्मकता का विचार प्रतिपादित किया और मोक्ष की ही संज्ञा दार बताया। प्रब्राह्म जैनाति ने छे अक्षर का रहस्य बताया। बिबेह के दार्शनिक राजा जनक ने अमरत्व प्रदानी मायवी की परास्वरक प्रकृति का निरूपण किया। अथर्ववेद के वैदिकार के रहस्य का उद्घाटन किया। देव-अग्नि अन्तर्दुर्गा ने नारद को बताया कि समस्त की धारणा ठोस सर्वव्यापी और परास्वर है। अथातपद्म ने वेदना की तीन अवस्थाओं—जानूना बताया सुप्तावस्था और स्वप्नावस्था में अन्तर बताया। ये सभी सिद्धान्त और विचार आज भी भारत में यमीर विस्तार के आरम्भ बिन्दु हैं।

✓ नैतिक व्यवस्था और सत्य के रूप में धर्म की धारणा

उपनिषद्कामीन दार्शनिक जिन परिणामों पर पहुँच चुके थे वे प्राचीन यूनान और मध्ययुगीन यूरोप के दार्शनिकों के निष्कर्षों से कहीं आगे थे। भारतीय दार्शनिकों के निष्कर्षों में ही सद्ब्रह्म का सार मौजूद है और वे अमरत्व की ओर से आते हैं। इन्हें पराविद्या अथवा ब्रह्मविद्या कहा गया है। न मानून किसी घटाविषय से इन्होंने ही मानव का दितानिर्देशन किया और सन्ताना की है। अथर्ववेदमय और सावभौम अन्तर्गत और धर्म (ब्रह्मण्ड और नैतिकता की व्यवस्था और नियमावली) की धारणा का भी निरूपण हुआ। जो ब्रह्मण्डीय नियम सूर्य और चन्द्रमा के पक्षों और दिन और रात के घटानाम से निहित है वही मानव और देवताओं को भी जोड़ता है। अन्त की अवस्था का धर्म है पाप करना और ऐसे व्यक्ति की वरुण की पूजा करके प्रायश्चित्त करना पड़ता

✓ है। अन्त अथवा धर्म की इस बहिर्य धारणा में कि वह एक पारलौकिक और नैतिक व्यवस्था है कर्म-सिद्धान्त के विकास के बीज निहित है। जो धारणी जैसा नाम करता है और जिन प्रकार का जीवन बिताता है उसीके अनुसार वह बन जाता है अथवा नाम करनेवाला धारणी पुनः अथवा धारणी के रूप में जन्म लेता है। धरे नाम करनेवाले धारणी का जन्म फिर धरे धारणी के रूप में होता है। अनुप्य अथवा कामों से अथवा और धरे नामों से बुरा हो जाता है। इनलिए कहा गया है अनुप्य स्वयं इष्टानुसार धारणा निर्माण करता है और उसी इष्टा के अनुसार ही उसका निरूपण होता है तथा अपने

निदब्य के अनुसार वह कार्य करता है एवं उसके कार्यों के अनुसार ही उसका प्रारम्भ होता है। वह उक्ति बहुदारभ्यक उपनिषद् की है। इसके विपरीत सर्वोच्च सत्य के धर्मपी व्यक्ति के लिए धर्म ही और गुरे कार्यों तथा उच्च और निम्न जन्म के सारे घन्तर मय्य हो जाते हैं क्योंकि वह मन्वर मानवों को बांधे रहनेवासी जीवन की पारिव्य वस्तुओं को त्याग चुका होता है।

बहुदारभ्यक उपनिषद् में ही धर्म को सत्य माना गया है और परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट तथा अन्तिम कृति माना गया है। धर्म से ऊंचा कुछ भी नहीं। 'धर्म के बस पर कमजोर धारपी भी अपने से बलशाली धारपी पर छासन करता है मानो उसे किसी राजा का सहारा हो।' इस प्रकार समाज के स्थायिरव और राज्य की सत्ता के मूल में धर्म ही है। ब्रह्माण्ड की व्यवस्था के सर्वोच्च सिद्धान्त के रूप में सत्य की यह तार्किक धारणा हमारे सामाजिक सम्बन्धों में भी प्रविष्ट है। धर्म की शक्ति (सत्ता) से बड़ा मान निधा गया है। उसे सामाजिक और राजनीतिक जीवन तथा निवमो का महान् रिदा-निर्देशक नैतिक बल माना जाता है। सब तो यह है कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन और निवम जमावरण के ही उपकरण हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड म व्याप्त यह सत्य बड़ा और धर्म के सिद्धान्तों का एकीकरण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसने भारतीय नीतिशास्त्र और राजनीति की सत्ताधियों के दौरान स्थायी रचा है।

चातुर्वर्ण्य और चातुरायम्य

धर्मवेद (१२,१) में ब्रह्माण्ड को सहारा देनेवासी सत्य बड़ा और धर्म की धारणाओं में यज्ञ और तप को भी जोड़ लिया गया है। वैदिक युग में ही भाया के सिद्धान्त का भी निकपप हुआ। भाया वह धर्म्य सृजनात्मक शक्ति है जो मनुष्य के मस्तिष्क और इन्द्रियों को मूलावे में बाँट देती है तथा संसार को महत्वाकांक्षा और सबव का मलाड़ा बना देती है। इसे केवल परम ज्ञान द्वारा ही पराजित किया जा सकता है। उपनिषदों में परम ज्ञान को मुक्ति का उपाय बताया गया है। दूसरी ओर धर्म-विधियों के निधा मक और 'मूढ़ मूर्खों में मानव के अनुमूल इन्द्रियों का निष्काय है। वे तर्हय हैं धर्म धर्मवा परापर व्यवस्था की अनुकपता धर्म धर्मवा व्यवसाय या जीविका काम धर्मान् इच्छापूर्ति और मोक्ष धर्मान् बन्धन-मुक्ति। भारतीय जीवन प्रथाओं के यही चार मुख्य वस्त्रिज उद्देश्य हैं जिन्होंने भारतीय सभ्यता को सम्पुनित और सुगठित बनाए रचा है।

वैदिक युग में ही मानव के त्रिमुख सामाजिक कर्ण्यों और पत्रा की परिभाषेता की धारणा का विकास हो चुका था। यजुर्वेद तथा उत्तरेय ब्राह्मण दोनों में लिखा है कि मानव तीन ऋण सत्कर पैदा होता है—पितृ ऋण अधि ऋण और देय ऋण। पितृत्व ब्रामर्जन तथा यज्ञ द्वारा हो इनसे उन्मुक्त होना मभव है। इन्हें दोनों में पितृ ब्रह्मचारी और यज्ञ ब्रह्म पया है। बाह में दो और ऋण धर्मवा कर्ण्य बाड़ दिए गए—धर्मे सह मोषियों के प्रति (नृपत्र) और पशुओं के प्रति (धूतपत्र)। इस प्रकार भारतीयों का पाल ब्रह्माण्ड धर्मनी संस्कृति और वैश्वताओं के साथ नामजब्य स्थापित करने का धार्य भी है और इन धारवा को प्राप्त करने की व्यावहारिक विधि भी।

सामाजिक अन्तर्मुख और सांस्कृतिक परिपाक के फलस्वरूप वैदिक युग के अन्तिम चरणों में जिस वैदिक जीवन-प्रणाली का विकास हुआ उसमें चातुर्वर्ण्य और चातुरायण्य की महत्ता थी। चातुर्वर्ण्य का धर्म है समाज की चतुर्मुख कार्यकारी व्यवस्था सांत्विक व्यवस्था धर्मात् चार सामाजिक स्तरों में विभाजन जिनमें से प्रत्येक स्तर के अपने विशेष लक्षण मुख्य और गुण हैं। चातुरायण्य का धर्म है व्यक्ति के जीवन की चार अवस्थाएँ। सामाजिक विभाजन की वर्ण प्रणाली सुगठित और साम्प्रदायिक है और ब्रह्मचर्यमय कृषि का उसमें कोई स्थान नहीं है। ईश्वरप्रदत्त वैदिक समाज में किसी व्यक्ति की क्षमता उचित और सम्मान का निर्धारण उसकी ब्रह्मचारी अवस्था पारिवारिक परम्परा के हिसाब पर नहीं बल्कि उसकी संस्कृति सामाजिकता और नैतिक क्षमता के हिसाब पर होता था। वर्णों की ऐतिहासिक उपनिषद् (१-२) में चारों वर्णों के विशेष सामाजिक कर्तव्यों के सम्पादन हैं सम्बन्धित माना गया है और ब्राह्मण्य उपनिषद् (२-२३) में व्यक्ति के धर्मों से सम्बन्धित। व्यक्ति के वर्ण और धर्म को एक मुख्यवर्णित धर्म-विभाजन में प्रस्तुत करके धर्म के इस रूप में उस से लेकर सब तक भारतीय सामाजिक नियमों का रूप सजाया-संवारा है। भारत के सभी वर्णों धर्मों और सामाजिक नियमों का उत्तम वैदिक उपनिषद् ही हैं। हर और से हम सरस्वती के धारकों और ऋषि धारकों तक पहुँचते हैं जहाँ प्रत्येक परिवार की अपनी पवित्र अग्नि जला करती थी और पीढ़ी दर पीढ़ी उसे प्रज्वलित रखा जाता था।

महाकालीन उत्तराधिकार

वैदिक दर्शन में अग्नि सर्वव्यापी ब्रह्मासीय ऊर्जा का प्रतीक है। वह आकाश में सूर्य बनकर चमकता है और समूह जीवन बुद्धि और मोक्ष का प्रदाता है। भारतीय सभ्यता धाम अपनी शिव और सूर्यवान् वस्तुओं का नाम अग्नि को करता है ताकि उसका घंटा घुड़ और पवित्र हो सके। भारत में बैरी का निर्माण विराट् पुरुष के प्रति साधारण व्यक्ति के उत्कर्ष का प्रतीक है। विराट् पुरुष का सृजन की इच्छा होने पर ब्रह्मा में व्याप्त हो जाता है। आत्मी के उत्सव से धर्म 'पुरुष' के साथ संघर्ष से पुरुष का अंत-अंत शरीर संयुक्त हो जाता है। इस प्रकार पहला भारतीय धर्म मजनात्मक कार्य धर्मात् बैरी का निर्माण एक सामाजिक कार्य था। बैरी ब्रह्मा के ऐश्वर्य का प्रतीक है। बैरी-बैरी को संघर्ष में रीत्य कहा गया है। ईश्वर का मन्दिर यद्यपि मन्दिर पवित्र भूत धर्म का अग्रतम गुरु भूत मन्त्रीका उत्तम यही वैदिकवासी बैरी है। भारतीय मन्दिरों का नीचेका भाग और निम्नरी दीर्घा को ही बैरी कहा जाता है क्योंकि दोनों ही मन्दिर के निम्न में अवस्थित मुख्य-भाग में रीत्य प्रभाव पुरुष को सहारा देते हैं। इस प्रकार वैदिक सामाजिकता में मन्दिर-निर्माण यद्यपि रीत्य भी ब्रह्मात्मिक के सत्त्व को एक धार्मिक संस्कार का रूप दे दिया है। वैदिकवादी वर्णों में स्थित ऋषि-मुनियों में प्राप्त सांत्विक पारंपार्य और प्रतीकों में ही धर्म नैतिकता चातुर्वर्ण्य प्रणाली विवाह धार्मिक संस्कार तथा सन्तुष्ट मात्स्य के रूपों कला के अभिप्राय में रीत्य बैरीयों मन्दिरों और धारकों की निर्माण योजना की मुद्रा आधार प्रदान किया है।

अध्याय ३

महामारत

महाद्वीप, संस्कृति और साहित्य

प्राचीन वीर-स्तुतिया में महाकाव्यों का प्रारम्भ

मानव-मात्र का स्वभाव है कि अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में वह कल्पनाएं करता और कहानियां कहता है और सीमाय की बात है कि ऐसा है। कारण वीरतापूर्व कथाओं और महान् कृतियों को धीवित रखकर आध्यात्मिकता और कथाएं हमारे इतिहास की बुद्धि करती हैं। धार्य लोग सप्त-सरस्वती के तटों पर सबसे पहले बसे थे फिर बड़ी दूर-दूर तक फैल गए। उन्होंने अक्सर और बलवत्ताओं को संघार और प्रतापों के साथ जिन्हें धमुर कहा गया है, तथा परस्पर युद्ध किए। परम्प्री के तट पर इस राजाओं के युद्ध से लेकर (समय ११०० ईसापूर्व के) भारतीय महायुद्ध तक अग्नि और कवि परचुराम और धनस्य सनीने धाय और धनार्थ जातियों के शीर्षकासीन संघर्ष में तथा भारत के धार्मीकरण में भाग लिया। यादों और कवियों द्वारा गाई जानेवाली वीर स्तुतियों में और भारतीय इतिहासों में वीरे-वीरे रामायण और महामारत जैसे महान् महाकाव्यों का रूप प्रारम्भ कर लिया। इन दोनों महाकाव्यों के रचयिता कथन वास्मीकि और व्यास थे। उनके नाम परवर्ती वैदिक कृतियों में मिलते हैं।

रामायण में धाय वस्तियों की स्थापना की कथा

रामायण की रचना महामारत से पहले हुई थी। महामारत में रामायण की कथा और उसके रचयिता वास्मीकि दोनों के नाम आते हैं। रामचन्द्र वीर सीता का विवाह इस बात का प्रतीक है कि अग्नि धायेत से स्पष्ट है। अग्नि के प्रतीक रूप में भूमिजा सीता है और धागद का प्रतीक है धिग का विद्यालय धनुष जिसे रामचन्द्र ने मुकाबर छोड़ दिया। य घटना की धिग-धीवीय वैदिक अग्नि विद्याभिन्न की प्रेरणा से हुई थी जिन्होंने विद्या और धनुषी नदियों को पराजित किया था ताकि भरत की सेवा उन्हें पार करके युद्ध कर सके। परचित्त के धनुषार हनुमान वज्रों का बनवासी बनार बैठा है, जिसके नाम का धनुषाय पहले बरामें बुधा-कवि किया गया जो सरहट में हनुमन्त हो गया। भारत में जब इस धर्मगुरु को भुला दिया गया है। अग्नेव (१०-८६) में संकेत है कि प्रारम्भ में इस धाघ देवता के समकक्ष में बड़ा विरोध हुआ था।

रावण द्वारा सीता के हरण और रामर आतियों की सहायता से राम द्वारा लंका की विजय के पश्चात् सीता की पुनर्प्राप्ति की कथा में दक्षिण में धार्मिक बस्तियाँ बसाए जाने की ध्वनि है। वास्तविक के अनुसार दण्डक वन उत्तर और दक्षिण के बीच में स्थित है धार्मिक और धर्मार्थ संस्कृतियों के बीच का ध्वनपान है और उत्तर के प्रचलित विदर्भ मत्स्य व कर्मिण राज्यों तथा दक्षिण के पांड्य और चोल और पाण्ड्य राज्यों के मध्य स्थित है (४४१)। रामचन्द्र प्रयाग से चलकर कुशेसखण्ड में बिचकूट हाते हुए दण्डकारण्य (मध्यप्रदेश का अतोसयड़ इलाका) पहुँचे थे। यहाँ वे दस साल तक रहे थे। यह बीच का इलाका या वहाँ बस्तियाँ बसायी थीं। तब राम और दक्षिण में जनस्वान पहुँचे जो गोदावरी क्षेत्र के मध्य में है और ध्वनित ने जिसे दण्डकारण्य के पूर्व में स्थित बताया है। यहाँ उन्हें राक्षसों का सामना करना पड़ा जो बस्तियों को उखाड़ा और ब्राह्मण ऋषियों के हवन-यज्ञ आदि में बाधा पहुँचावा करते थे। यहीं पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि भावस्वकथानुसार अपने उद्भवों की पूर्ति के लिए राक्षस स्वयं धार्मिक संस्कारों और बलिदानों का आयोजन करते थे (मृदकाण्ड सर्ग ८२)। पाणिनि ने राक्षसों की चर्चा विशेष रूप से की है और कहा है कि वे धसुरों की तरह सड़ाक लोग थे। इसके विपरीत बाद में जो निम्नजाति केही थे मंत्रीपूर्वक थे। भारत के कुछ में राक्षसों ने लोगों और पिछड़ों के साथ-साथ दोनों पक्षों की ओर से युद्ध किया था। श्री० धार० भण्डारकर ने बारबाड़ की जाति जाति के एक राजवंश का जिक्र किया है और उसे किष्किन्धा का साक्षक बताया है। किष्किन्धा बिसाली जिले में है। पम्पा शरीवर और ऋष्यशृङ्ग पर्वत भी वहाँ रामचन्द्र हनुमान और सुग्रीव से पहली बार मिले थे इसी जिले में है। इस प्रकार भारतीय भाषों का प्रसार-भार्य इस प्रकार था जोरत से कुशेसखण्ड होत हुए जनस्वान (अथवा कृष्णा-गोदावरी शोभाब) और वहाँ से किष्किन्धा वहाँ से लंका पहुँचना सम्भव हो सका था जिसे मूल रामायण में एक नगर-नाम बताया गया है (अंकीवी)। बराहमिहिर के अनुसार यह उसी देशांतर पर था जिसपर उज्जयिनी।

सुत-निपाठ में प्रतिष्ठान के दक्षिण में स्थित गोदावरी घाटी का विशेष जिक्र है और लिखा है कि कोशल राज्य के एक ब्राह्मण ऋषि ने अपना आश्रम वहाँ स्थापित किया था। 'अमृत-निपाठ' में भारत को सोसह क्षेत्रों अथवा महाजनपदों में विभक्त किया गया है। इस सूची में अधिकांश महाजनपद गंगा की घाटी के हैं। दक्षिण के केवल दो क्षेत्रों के नाम हैं—गोदावरी की घाटी में अस्तक और नर्मदा की घाटी में प्रवर्ति। विष्णु भागी के गंधार और काम्बोज को सम्मिलित किया गया है। रामायण तथा उपर्युक्त पाणिनि दोनों से साक्ष्य से परिणाम निजाला जा सकता है कि घायों ने दक्षिण में धर्मो बस्तियाँ सबसे पहले गोदावरी की घाटी में बसाई थीं। बस्तियाँ बनाने का नाम यश उत्तरनाक था और दक्षिण के राजाओं ने इसे पूरा किया था। रामचन्द्र और लक्ष्मण को तरह धर्मोष्मा के राजन्वार के पक्षधरों व फलस्वरूप उन्हें भी देशनिवासा द दिया गया था। रामस और रामर दोनों दक्षिण भारत की आतियाँ हैं। दक्षिण में निष्किन्धा तब पहुँचकर घायों की प्रगति रुक गई थी। वहाँ पर रामचन्द्र ने धर्मो-बादलों के साथ एक घपि की जिसके बाद उन्होंने लंका की ओर प्रस्थान और उस निजित किया।

राज्य दस सिरोंवाला कोई भयानक बाधन नहीं था यह तो दक्षिण भारतीय राजाओं को एक सामान्य परेशी है ।

मध्य ईस में विजय क्षेत्र विदर्भ, महाराष्ट्र और किष्किन्धा में धार्य बस्तियों बसाने का काम वास्तव में संन्यासियों और ऋषियों ने शुरू किया था । वही पशुबन्धन उन्होंने अपने आश्रम स्थापित किए धमाकों की अपने देवताओं और धार्मिक संस्कारों से परिचित कराया और अनेक प्रकार के कर्णों व व्यवधानों के बावजूद मजबूत धर्म संस्कार जारी रहे । ऋषियों के बाद क्षत्रिय वही पशुबन्धन और उन्होंने धार्य बस्तियों को स्थापित प्रदान किया ।

भारतीय धर्म-प्रचारकों के आकाशदर्श—ऋषि धर्मस्य

नर्मदा घाटी और धरबसापरीय तट पर धार्य बस्तियाँ बसानेवाले सबसे पहले व्यक्ति ऋषि परमुराम थे । मुमुक्षुसे लेकर कम्पाकुमारी तक पश्चिमी तट के सम्पूर्ण क्षेत्र में उन्होंने कुछ न कुछ प्रवर्ण किया । किन्तु, उनसे भी पहले धर्मस्य ने विजय को पार करके दक्षिण में प्रवेश किया था । बाबा और सुमात्रा भी दक्षिण में ही सम्मिलित हैं । धर्मस्य भारतीय ऋषियों के आकाशदर्श हैं । वे ऋषि योद्धा और धर्म-प्रचारक सभी हैं । उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों के बल पर नहीं बल्कि धर्म के बल पर धार्य बस्तियाँ बसाई थीं । उनके कारनामों की प्रशिक्षण समुद्र-वार के क्षेत्रों में भी है । परम्परा से कहा तो यह बनी जाती है कि उन्होंने एक झूट में समुद्र का सारा पानी पी लिया था । यह बात ध्यान देने योग्य है कि साहित्य में भारतीय द्वीपसमूह और दक्षिणापथ का सबसे पहला शिक 'रामायण' में आता है और धर्मस्य को 'सिद्ध-मुद्र' के रूप में दक्षिण भारत और दक्षिण पूर्व एशिया दोनों में संरक्षक सन्त के रूप में पूजा जाता है । टिनेवेसी में एक धर्मस्य पर्वत है । दक्षिण में धार्य बस्तियाँ बसाने का अपना काम सम्पन्न करने के बाद उन्होंने इसी पर्वत पर अपना आश्रम स्थापित किया और देव जीवन संन्यासी की तरह बिताया था । धर्मस्य साहित्य में लिखा है कि शिव ने अपने बस्तियाँ बसाने के काम के लिए धर्मस्य को ही सर्वोच्च उपकृत प्राप्त समझा था । शिव की ही प्रेरणा से साधवर्षों नदी के किनारे अपने आश्रम में धर्मस्य ने अपना बहुवृत्त व्याकरण 'धर्मशायम्' का सृजन किया था । वही व्याकरण समित्त भाषा और साहित्य का मूलाधार है । कहा जाता है कि उन्होंने प्रतिमा-धार्य पर एक पुस्तक 'सकसाधिकारम्' भी लिखी थी । एक अन्य शक्ति कहा है कि धर्मस्य ऋषि अपने कृष्ण आर्षों को कृष्ण की अम्बुधूमि से लाए थे । धर्मस्य के साथ उनकी विद्यावत बाली सती सोपामुखा भी थी ।

रामचन्द्र का अभिमान आशामक बाधन था । पहले से ही ब्राह्मण धर्म प्रचारक मगर दक्षिण में और साहित्यपूर्ण दक्षिण में प्रवेश कर रहे थे । इस अभिमान ने केवल इस प्रवेश की गति को तोड़ कर दिया । रामचन्द्र की विजय के पश्चात् बानरों और रातों के क्षेत्र धार्य-धामन व अन्तर्गत संरक्षित राज्य बन गए । इन प्रकार एक साक्षात् 'साम्राज्यवाद' की नींव पड़ी । इसी साम्राज्यवाद को पहली बार 'धर्मशास्त्र' में सुव्यवस्थित रूप से नियोजित किया गया ।

धार्मिक संस्कृति की विशेषताओं का आधार शक्ति नहीं बरन् बाह्य शक्ति और कवि ने। स्वयं रामायण के सृजन में यह स्पष्ट है। तमसा मयी के किनारे वास्तवीक में एक माया कीच पथी की कल्प पुकार सुनी, जिसके गर को किसी छिदारी ने निर्देमठा पूर्वक मार बासा था। महान् कवि और द्रष्टा वास्तवीक का हृदय रोप और कल्प से भर सठा और जनक मुख से अनायास संस्कृत साहित्य का पहला रसोक फूट पड़ा। भारतीय सम्प्रदाय का पवित्रतम मूसर्गम ही कहना है—मोक्ष ज्ञान धनवा पूजा नहीं। आदिकवि ने राम द्वारा सीता के परिचय तक रामायण लिखी थी। आनन्दबर्धन (=१० ईस्वी) ने लिखा है कि आदिकवि गहनतम कल्पना की सृष्टि कर सकने में सफल हो सके थे।

रामायण का बीनी रूपान्तर भी उपलब्ध है। यह रूपान्तर मूल संस्कृत पाठ से बीनी भाषा में ४७२ ईस्वी में किया गया था। रामायण में सबसे अधिक और भावपूर्ण और सौहार्द पर बिया गया है। रामा का नाम है दशमिदास (दश-रथ)। भरत की माता के प्रयत्नों से जब राम (बीनी अनुवाद में सोमो) को बनवास दे दिया गया तब भरत ने सम्पूर्ण यज्ञा और भावर के साथ सम्पूर्ण राजपाट बैठा बाह्य। किन्तु राम बनवास के पूरे बारह वर्ष विलास पर और बैठे हैं। राम के वापस लौटने पर भरत और राम एक-दूसरे को गद्दी सौंपना चाहते हैं, किन्तु कोई स्वीकार नहीं करता। अन्त में बड़े भाई को ही झुकना पड़ता है। बीनी रामायण में भावपूर्ण और पितृवर्तिक की महिमा बखानी गई है। ये ही गुण प्रत्येक जम्बूद्वीपवासी को स्वाधीन प्रसन्नता और समृद्धि प्रदान करते हैं।

महाभारत भरतवर्धियों की महान् प्रसरणशील संस्कृति

रामा पुजारी योद्धा और जनसामान्य एक सर्वमान्य धर्म के अनुसार प्राचरण करते थे। धर्म ने ही एकतात्मक अनुष्ठान और संस्कार तथा धीरे-धीरे व्यापकबलता और कल्पा प्रदान किए हैं। धर्म की ही श्रेया से उत्तर-दक्षिण का समन्वय हो पाया और धीरे-धीरे भारतीय सम्प्रदाय की आधारभूत आर्थिक एकता का निर्माण हुआ था। मोहादिक दृष्टिकोण से महाभारत का धर्म है भरतवर्धियों के युद्ध की महान कथा (इतिहास)

महाभारतं च नृपतेभ्योऽप्यस्य महारमणः ।

यस्येतिहासो धृतिभाग्यमहाभारतमुच्यते ॥

(पाणिनी ४६ १६)

अथवा 'भरतवर्धियों की पवित्र पापविनाशिनी कथा'

निरुक्तमस्य यो नर सर्वगर्वः प्रमुच्यत ।

भरतान्तं यत्तदपायमितिहासो महाभूतः ॥

(पाणिनी ४० १२)

गहने धर्म का सम्बन्ध भरतवर्धियों के धीरे-धीरे कायों से है और दूसरे का सम्बन्ध कल्प के मुक्तिदशाता उपदेश से। धर्म महाभारत एक मोक्षदात्र (‘मोक्षदात्रमिवम्’) अथवा कृष्ण का नेत्र (‘जल्प नेत्रमिवम्’) (पाणिनी १८ २१ ६९), समस्त धृतिवियों का मार (अश्वमेधार्थ ११) है। भरतवर्धियों की संस्कृति ज्ञाना और विद्या भरत

(उद्योगपर्व २-७१)

महाकाव्य में इस संस्कृति के प्रतिभांग प्रतीक हैं कृष्ण धीर धर्जुन के जीवन मय । वे शान्ति धर्मकाव्य हैं धीर काव्य के सरलक देवताओं पर धीर सारायण के प्रवतार हैं । इस महाकाव्य का जिस सबसे पहले अष्टाध्यायी में मिलता है जिसमें वामुदेव तथा धर्जुन ने प्रति भक्ति-सम्प्रदाय का जिस धी है (४ ३ ६८) । पञ्चमि ने स्पष्ट भिक्ता है कि वामुदेव कृष्ण का ही नाम है । प्रयत्न व कृष्ण वामुदेव हैं उन्हें सर्वोच्च देवता विष्णु का अवतार माना गया है और उनके धाराधनों को वामुदेवक कहा जाता है । महाभारत का प्रारम्भ मयनाथरथ से होता है ।

देवीं मरस्वतीं चैव ततो जयमूदीरयत् ॥

यन्त में, महाभारत का धर्म वह विज्ञान का भाग भी है जो महाभारत के उत्तर और हिमाचलान्ति पर्वतों के दक्षिण में स्थित है। इसके सभी निवासी भारत के उत्तरवासी हैं। इस महाकाव्य में धर्मशास्त्रियों के नेतृत्व में धर्म-वस्तुओं के प्रसार-कार्य की प्रशंसा की गई है—वे माग लक्ष्म-सरस्वती-क्षेत्र के अपने मूल निवास से बसकर दक्षिण में गोदावरी के पार तक और पूर्व में सौहृदय अथवा कन्नड के पार तक पहुंचे थे। इन महाकाव्य की सरिता-स्रुति ने प्राचीन ऋग्वेदिक स्रुति का स्थान न लिया। इसमें भौतिक सीमाओं का विस्तार स्पष्ट है। यह स्रुति धर्म भी दैनिक प्रवृत्तियों के समय की जाती है। "यथा यमुना गोदावरी सरस्वती नर्मदा सिन्धु नदोऽपि प्रायस्तत्र भी इन प्रायश्चित्त के साथ-साथ मुझे घुड़ करें।" महाभारत में शिवजीया यथा है कि याने निष्कासन-काल में बाण राजकुमार धर्मन और भीम भारत के दूरस्थ प्रांतों में गए थे वहाँ उन समय तक धर्म नहीं पहुंच पाए थे। इसीलिए कहा जाता है 'जो कुछ महाभारत में मिलता है वह भारत में नहीं न वही मिल सकता है। जो कुछ महाभारत

में प्राप्य नहीं, वह नहीं नहीं मिल सकता।' किन्तु धर्म सम्मता का केन्द्र अभी भी मध्य देश का पश्चिमी भाग ही था। मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र तक का जिक्र इस महा काव्य में नहीं है। फिर भी प्राचीनतर राजधानी गिरिजा का जिक्र महाभारत में प्रचुर पाया है जहाँ अनेक राजाओं को कैद करके इसलिये रखा जाता था कि उनकी हत्या की जा सके "जैसे पहाड़ों की गुफाओं में अन्धकाराधी हाथियों को सिंह कैद कर रखा है। इन राजाओं की प्राणरक्षा महाभारत के नायक धीर स्वराज्य देवता कृष्ण के नेतृत्व में पाण्डु राजकुमार करते हैं।

कूटनीतिज्ञ और संयुक्त भारत के निर्माता—कृष्ण

बासुदेव कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्तित्व के दार्शनिक नहीं। वे लगभग १०० ईसापूर्व में जीवित थे और भारत के महानतम योद्धाओं और ऋषियों में से एक थे। एक परवर्ती भ्रष्टाचार में हम कृष्ण का जिक्र योद्धा और कूटनीतिज्ञ के रूप में नहीं बल्कि ऋषि और उपदेशक के रूप में करते हैं। वे मथुरा और द्वारका के यादवों की सातवत धर्मवा बुद्धि जाति के मुखिया और बुद्धि यादव धर्मक बुद्धुर और भोज नामक गणतान्त्रिक जातियों के सब के नेता थे। इसी सब न मथुरा के राजा कंस के निरंकुश शासन बताने के प्रयत्न का विफल बन गया था। महाभारत में कृष्ण मथुरा और द्वारका के राजा पाण्डवों के मित्र और परामर्शदाता तथा एक संयुक्त भारत के निर्माता हैं—यह संयुक्त भारत या महाभारत के युद्ध में कौरवों की पराजय के बाद स्थापित पांडव साम्राज्य जिसपर बुद्धिद्विज ने युद्ध के समय लगभग ३६ वर्ष बाद तक शासन किया था। इस युद्ध का समय विद्वान लोग लगभग ११०० ईसापूर्व बताते हैं जब भारत में आर्यों की विजय का प्रारम्भ ही हुआ था। मानवा राजपूताना गुजरात और दक्षिण में आर्य बस्तियाँ बसाने के कार्य में यादवों ने महत्वपूर्ण भाग दिया था और ऐसा मानना पड़ता है कि उनकी जाति वनतथा मिश्रित हो चुकी थी। पुराणों के अनुसार, यादव जाति की तुलना असुर जाति से की जा सकती है। यादवों के साथ कृष्ण का सम्बन्ध इसी बात का सूचक है कि यादवराज—शिशु कुल कुलधारणों ने ब्राह्मण कहा है—ने पश्चिमी भारत और दक्षिण के समुद्रों के व्यापारिकरण में मनुष्य ग्रहण किया था।

किन्तु कृष्ण की महत्तम ऐतिहासिक उपस्थिति थी महाभारत युद्ध के परिणाम स्वरूप संयुक्त भारत की स्थापना। इस महाकाव्य में युद्धस्थल सतमज और समुद्रा नदियों के बीच के क्षेत्र में स्थित दिखाया गया है यह प्लान हैवे योग्य है क्योंकि भारत का प्रादिकालीन योद्धा शासकों के समय में वैश्व संस्कृति का मूल स्थान यही क्षेत्र था। महाकाव्य में इसे भरतवर्षियों के नव साम्राज्य का केन्द्र बताया गया किन्तु शेष को एक बार फिर मनीष्य राजनीतिज्ञ महत्त्व प्रदान किया गया है। महाभारत युद्ध के वन में सम्पूर्ण भारत का जिक्र है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि पूर्वी उत्तर पश्चिमी और पश्चिमी भारत ने पाण्डवों के विरोध में और मध्य देश तथा गुजरात पक्ष में था। फिर भी महाभारत में विजय प्राप्त-पक्षों कूटनीति धर्मवा धर्म-नष्ट के कारण नहीं बल्कि धर्म के कारण हुई जिसके उच्चतम मूर्तिमान प्रतीक महाकाव्य में ही स्थित

कृष्ण हैं। मानव प्रारब्ध के उतार चढ़ाव से निमित्त महामारत की रोमांचक कथा के समय-प्रत्येक क्षण में सबक कहा गया है कि धर्म से मनुष्य का अस्वाधी लाभ तो अवश्य होता है किन्तु धर्म में अव्यवस्था भी बिनाश ही होता है जिसका कोई समाधान नहीं है। धर्म धारक है। भुख और दुःख क्षणिक हैं। परत किसी मानसा धनका लाभ के लिए, धन के कारण धनका मौखिक अस्तित्व की सुरक्षा या धनकी विस्तृति के लिए धन का त्याग नहीं करना चाहिए। युगों युगों से यही मारत की बाणी है। धर्मपर पर-जन्म से मानव की सभी आकांक्षाएँ पूरी हो जाती हैं। मानवीय जीवन और उद्भव के प्राप्तावक धन के संचालनमान और अवस्थापी प्रारब्ध के प्रतीक हैं कृष्ण। महामारत में बार-बार कहा गया है जिस पक्ष के साथ कृष्ण है उसी पक्ष के साथ धन भी है और धर्मविरुद्ध पक्ष की विजय निश्चित है। मयवद्वेषा के अन्तिम और पायन सबसे अधिक अर्थपूर्ण श्लोक में कहा गया है

यत्न मोक्षदत्तः कृष्णो यत्न पाथो वनुधरः ।

तत्त श्रीविजयो मुनिद्वयः श्रीतिर्मतिमः ॥

(धर्मात् यहाँ मोक्षदत्त कृष्ण तथा पाथीय मनुष्यपथो धर्मुत्त हैं वहीं पर श्री विजय, विभूति और धनकी नीति है।)

महामारत के युद्ध का परिणाम

मुत्तपर्व में कृष्ण की मृत्यु का वर्णन महामारत के सर्वाधिक प्रभावशाली और नाटकीय प्रसंगों में से एक है। कृष्ण के सम्बन्धियों अर्थात् दुरका के वृत्तियों के विनाश और स्वार्थ न बनका धर्मा विनाश का विषय ही, अग्रिम और दुःखी कृष्ण और बलराम को भी इस संसार का त्याग करने पर विवश कर दिया। महामारत युद्ध के पश्चात् भूख और विजय-वर्षावर्षा वृत्ति मये और धामार प्रमोद में बूझ गए और उनमें धारणी कसह का सुत्रपात हुआ। अपने धर्मापी धारण में उन्होंने अपना ही सर्वनाश कर लिया। यहाँ तक कि समुद्र के किनारे उनी हुई लक्ष्मी पत्नी आस से श्री मृत्यु का व्यापार करनेवाले भागों का काम लिया और विचारहीन विनाश किया। एक बार बुद्ध और पद्माहीन वृत्तियों ने अपने मय में बुरकूष अधियों का धीर धनमान किया का धीर अधियों ने धार दिया था कि उनका विनाश हो जाए। यह धार सत्य हुआ। नगर में मृत्यु का साम्राज्य था। शेष सम्पूर्ण जनता का पूर्ण आर्थिक पतन हो गया। यह देखकर बलराम भरतो पर बैठ गए और उन्होंने सम्पादित हाकर अपना प्राप त्याग दिया। कृष्ण भी वनों से अरे-पूरे समय पर पर धन गए और धर्मी पर बैठकर ध्यानस्थ हो गए। एक निहाली को लगा कि यहाँ के बीच कोई जमीन धारधर धारधर रहा है और उतने धनका तीर जाता दिया। तीर उनके वीर के लक्ष्य में बिज गया। इस प्रकार कृष्ण-बानुरेव ने अपने मानव-धारी का त्याग किया और पृथ्वी पर अवतार का में उनके शरीरों का अन्त हुआ।

कृष्ण की मृत्यु का समाचार सुनकर धर्मुत्त दुरका आए। वहाँ की विनाश-नीमा देखकर उनका हृदय धारधर दुःख से भर गया। वे कृष्ण की सोनह हठार पलित

बुद्धों और बच्चों को अपने साथ लेकर हारफा से कुशलेन की ओर बस पड़े। रास्ते में हाकुर्षों ने दस पर हमला कर दिया और घनेक स्त्रियों का अपहरण कर लिया। अर्जुन को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका पहले का शीर्ष एकदम गायब हो चुका है और वे इतने कमजोर हो गए हैं कि अपना प्रसिद्ध गाण्धीय धनुष तक नहीं उठा सकते। अर्जुन की आत्मा कृष्ण हैं और कृष्ण की आत्मा अर्जुन (समापन ११ ५१)। इसके प्रतिरिक्त अर्जुन कृष्ण के प्रदोष हैं (श्रीपर्व ३२ ७७)। फिर क्या आश्चर्य कि अपनी परम आत्मा ईश्वरानुसार कृष्ण के प्रस्थान के पश्चात् अर्जुन सत्सहीन हो गए और अपने सम्बन्धियों तक की रक्षा करने में असमर्थ रहे।

लगभग १००० ईसापूर्व भरत राजवंश के सदस्यों के बीच हुए इस क्रूर युद्ध का भारतीय जनता के धृतिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। युद्ध के बाद भीर प्रशस्तियाँ आठियों के इतिहास, कहानियाँ और उपदेश आषष्ठ में सूँझकर 'महाभारत' का रूप धारण कर सके और इस प्रक्रिया में लगभग १००० वर्ष लगे गए। यह प्रक्रिया इस्वी धनु की प्रारम्भिक सत्ताधियों में ही पूरी हो सकी। पाणिनि और आश्वलायन दोनों ने 'भारत' और 'महाभारत' का शिक किया है। व्यास का मूलग्रन्थ 'भारत' का जिसमें २४००० श्लोक थे। पीढ़ी दर पीढ़ी इसका प्रचलन चारों ओर होता रहा और बाद में मनुस्मृतियों ने इसमें घनेक आख्यायिकाएँ और जनश्रुतियाँ तथा नैतिक एवं धार्मिक बातें जोड़कर इसे 'महाभारत' का निस्तुत रूप दिया। परम्परा के अनुसार आश्वलायन को धौनक का शिष्य कहा जाता है। महाभारत को अन्तिम रूप प्रदान करने में धौनक का भी योग था। इस महान् काव्य की प्रेरणा और कपरेखा निस्सन्देह व्यासदेव से जो अपने समय के अग्रगण्य प्रतिष्ठित कवि और ऋषि थे मिली थी।

कृष्ण-कृपायम एक नवीन धर्म और दधान के कवि एवं श्रष्टा

- कवि व्यास और महावीर कृष्ण भारतीय संस्कृति के दो विशिष्ट स्तम्भ हैं। व्यास एक आदर्श कृष्ण, तपस्वी और सिद्धपुरुष हैं। कृष्ण हैं अतिमानव और धर्मार्थ युद्ध में सर्वत्र विजयी योद्धा और नायक। महाभारत बिष्णुपुराण तथा मागवतपुराण में श्रष्टा और नायक दोनों की समाग प्रशंसा की गई है। श्रष्टा को सम्मानजनक पदवी वेदव्यास प्रदान की गई है और कहा गया है कि उन्होंने ॥ युग वेद को चार सहस्राधियों में विभाजित किया और प्रत्येक के शिक्षण का भार अपने चार असम चलन शिष्यों को सौंप दिया। निस्संदेह यह कल्पना-मात्र है। किन्तु महाभारत के मूल रूप और अथर्वशीता के रचयिता व्यास धर्मात् कृष्ण-कृपायम निश्चित रूप से हमारी अज्ञा के धर्मिकारी हैं। कारण उन्होंने ही कृष्ण मागवत् धर्म धारका एक नवीन 'पांचरात्र धर्म' का प्रतिपादन किया था और वह भी इस हंय से कि उनका धर्म जैन और बौद्ध धर्मों की भाँति बड़ नहीं बन गया बल्कि
- ✓ धीननिपरीय ब्रह्म में पूरी तरह घुल मिल गया। इसके प्रतिरिक्त व्यास ने चार दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मायाता के अनुसार धर्म का पालन करने की स्वतन्त्रता हो। उन्होंने दोष और पाप धर्मों के प्रति सहिष्णुता और उदारता पर भी जोर दिया। सभी से यह सहिष्णुता और उदारता सामान्य हिन्दू धर्म का निश्चित गुण है। पीठा में एक प्रकार

की सार्वभौमिकता और समन्वयी गुण है। यही कारण है कि उसे श्रुति के बाद पहला और आह्वान धर्म में सर्वोच्च स्मृति का स्थान दिया गया है। यह उचित भी है। वैदिक साहित्य में श्रुति के रूप में व्यास का जिक्र कहीं नहीं है। तीनों वेदों के पृथक्करण में भी उनका वास्तव में कोई हाथ न था। वेद तो महामारत-युग के बहुत पहले से ही मौजूद थे। उपर्युक्त कथा का सूत्रपात ब्राह्मण धर्म में उनके नाम को पूज्य बनाने के निवार से ही किया गया था। इसके नावर्तक भागवत धर्म के निवारक और सम्प्रदायिक के रूप में वे हमारी असीम श्रद्धा के अधिकारी हैं। वे कवि थे कथाकार थे राजनीतिज्ञ थे और महर्षि थे। उन्हें पूरी तरह प्रह्लाद या कि अपरानेव विदेशी वरों पर्याप्त दास्य स्नेहो के जो पंथा की पवित्र भूमि में प्रवेश करते जैसे या रहे वे धर्मग्रन्थों और विद्वानों से भारतीय भूमि और धर्म को कितना बड़ा सतारा था। इसी कारण वे महत्तर कीर्ति के अधिकारी हैं।

एशियाई संस्कृति में भारतीय महाकाव्यों का स्थान

महामारत एक संयुक्त भारत की महिमा का वर्णन है। इस संयुक्त भारत पर बुद्धि और शासन या जिन्हें ब्रह्मर्षी कहा गया है। उनकी राजधानी उस पवित्र भूमि पर थी जो कभी वैदिक ज्ञान और संस्कृति के लिए प्रसिद्ध थी। किन्तु महामारत इतना ही नहीं है। वह जीवनमय कल्पमाधों प्रेम और वीरतापूजक बटनाओं सत्यनिष्ठा और दुष्टता की कहानियों कथावतों और उपदेशों धार्मिकसंघर्ष और तपस्या का कोष भी है। इन्होंने भारतीय जनता का ही नहीं वरन् मध्य और पश्चिमी एशिया से लेकर जावा द्वीप भी महामारत की कहानियाँ सचिनी और पूर्वी एशिया के अनेक देशों में प्रापुनिक स्मरण किया जाता है जैसे असीम में शिवालयों में अर्पित और कलाकृतियों में अंकित किया जाता है। महामारत अनिवार्यतः भारतीय संस्कृति है। यह तथ्य भारत देश तथा मध्य और दक्षिणी एशिया के हिन्दू उपनिषदों और राज्यों के लिए समान रूप से सत्य है। बसिन्-पूर्व एशिया के प्रसिद्ध इतिहासकार कोडीज का कथन है "बहुतर भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक सर्वत्र राम और सीता के कथों पर ध्यान भी प्राप्त होता है।" इसी प्रकार इण्डोनेशिया में धात्र भी कुम्भों और पाण्डवों की बहानी के आधार पर अनेक नाटक कठपुतली के तथासे और सीमाएं प्रस्तुत की जाती हैं। जावा में भारतीय महामारत के धारि, किराठ और भीष्मधर्मों का कवि धारा में सतिष्ठीकरण कर लिया गया है जिसका पटन-पाठन बड़े पैमाने पर होता है। जावाई भेसक में गीता के प्रबिण्डन का सतिष्ठीकरण कर लिया है और उसके श्लोकों को उद्धृत करते हुए टिप्पणियाँ की हैं। इण्डोनेशिया बर्मा स्थान और कम्बोडिया के साहित्यों ने अपना कच्चा मांस धमापन धनुन में मानव-चरित्र का साके में डाला है। इन महाकाव्य में इतना सार्वभौम धात्रपन प्रस्तुत है कि यह वास्तव ब्राह्मण के व्यापक अर्थों में एक इतिहास है—सार्वभौमिक और धार्मिकीय भूतभूत बटनाओं का वृत्तान्त है। इसकी भूत कथावस्तु है वेदों और

धर्मों का प्राचीन कास्मिक संबंध जिन्हें पाण्डवों और कौरवों के माम्म से प्रस्तुत किया गया है। इसमें मानवता की प्रकृति और कुटिलता दोनों का वर्णन है और वे दोनों निशिष्टताएं मानव की हर पीढ़ी में और हर देश में मौजूद हैं।

धर्म की अस्तित्व और अस्तित्व विषय, नीति की सार्वभौमता और विवेक बुद्धि और स्वभाव और न्यायप्रियता तथा सार्वभौमता, शोषण तथा सममती के माध्यम और संतोष ने करोड़ों व्यक्तियों के चरित्र और स्वभाव का निर्माण किया है— और वह भी इस सीमा तक कि किसी भी दूसरे देश की कलाओं प्रथा जनशक्तियों में इसका समकक्ष इतना मुश्किल है। अतीत के बड़े-बड़े राजा महाभारत के मोठों के अनुकरण का प्रयास करते थे। श्री गुरुदेव के नाटिक सिद्धान्त में लिखा है कि 'उनका शीर्ष महाभारत के नायकों के समान था।' धर्म और बुद्धि और जो, उनके जीवन की नाटकीय प्रभावों को अनेक व्यक्ति इस महाकाव्य का मुख्य प्रसंग मानते हैं जब भी भारतीय पुरुष के आचार-व्यवहार के आधार हैं। आज भी देश के कोने-कोने में बिबाहित स्त्रियाँ सावित्री के सम्मान में व्रत रखती हैं और खोजार मनाती हैं ताकि उनका वैवाहिक जीवन सुखी और सुखी हो सके।

✓ फिर भी महाभारत का वैभव केवल उसके विद्यालय आकाश में नहीं है। इसने भारत के लिए एक नया जीवनदर्शन प्रदान किया है जो कल्प मागवत् धर्म के प्रति सम्प्रदाय पर आधारित है और भगवद्गीता तथा गार्ग्यगीता ज्ञान में जिसकी उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। भगवद्गीता में ईश्वर के विराट् रूप का वर्णन है और उसने भी अधिक महत्त्वपूर्ण है ईश्वर की मानवता की प्रेमा—सभी मानवों और सभी मानवीय सम्बन्धों में ईश्वर की छांव। भारतीय संस्कृति के इस नये तत्व का विवेचन बाद के एक अध्याय में किया जाएगा।

✓ समाज के संघटन के बारे में भी महाभारत प्रामाणिक है। इसकी उद्घोषणा है कि 'चारों वर्गों में विभाजन का आधार ज्ञान नहीं धर्म है। पहले सम्पूर्ण संसार का एक ही धर्म था। बाद में मनुष्य के आचार व्यवहार और व्यवसाय के कारण चार वर्गों में विभाजन हुआ। इसमें कहा गया है कि चरित्रवत् ही शास्त्रज्ञ की पहली शर्त है और वर्गों में एक मुख्यवस्तु प्रथा आध्यात्मिक धर्म-परम्परा विद्यमान है। विभिन्न धर्म प्रसंग प्रसंग धर्म विशिष्ट कार्य (स्वधर्म) का प्रतिपादन करते हैं और आज ही वे धातु में संयुक्त और सहयोगित भी होते हैं। इस प्रकार वे श्रुत प्रथा धर्म को बनाए रखते हैं और अपने-अपने स्तर पर 'पुरुष के आद्य उत्पत्ति के प्रतीक हैं तथा उन पुनः-पुनः प्रतिष्ठित करते हैं। समाज का यही धर्म है। इसका पालन न करना धर्म प्रथा पाप है क्योंकि ऐसा करने से सामाजिक व्यवस्था और श्रुत दोनों का ही पतन होता है। इसके प्रतिरिक्त "संसार की भलाई और धर्म की रक्षा के लिए ब्रह्म ने चार धर्म बनाए हैं (गातिपत्र १६१)। ये चारों धर्म हैं विद्यार्थी-जीवन (प्रज्ञापन) विवाह और व्यवसाय (गृह्य) अन्नप्राप्ति और जीवन की साधन सरलता (भानप्रश्न) तथा सम्पूर्ण त्याग (भिक्षु प्रथा मर्यादा)। सभी के लिए उपयुक्त मतिवत्ता निम्न उक्ति में निहित है "किसी भी व्यक्ति को पीड़ा न पहुंचाकर, सत्य बोलकर, और श्रेय का दान

करके जीवन के चारों आयामों में तपस्या का सुफल प्राप्त किया जा सकता है।”

महामारुत में मानव प्रकृति के अनेक रूप हमें देखने को मिलते हैं। उद्विगता, लाभ और वासना की मूल बुद्ध्यवृत्तियाँ भी हैं और आत्मसंयम, ज्ञान तथा करुणा का ऐश्वर्य और पूर्वेतव भी। तब से घटावियाँ भीत चुकी हैं। भारत में अनेक साम्राज्यों राजवंशों और जातियों का उत्थान और पतन हुआ है किन्तु घटावियों से यह महान् महाकाव्य भारतीय जनता के लिए व्यावहारिक बुद्धि और मोक्षप्रिय धारणों का एक अक्षय स्रोत है और प्रत्येक सामाजिक संकट अथवा वैयक्तिक दुर्भाग्य को भये धर्म मूल्य और पाकाँझाए प्रदान करता है। महामारुत आज भी उठना ही जीवन्त है बिठना अग्नेय के बिघाल नागपत्र के समय या, जब वेदव्यास के प्रथम शिष्य वैशम्पायन ने नैमिषारण्य के धामन में उपस्थित ऋषियों और योगियों के गम्भीर सम्मुख कथा का वर्णन किया था। वही कारण है कि भारत आज भी पञ्चाङ्गमहामारुत के मङ्गल रविविश्रा व्यास की पूजा करता है।

‘जो बड़ा है किन्तु अनुपम नहीं

जो बिजु है किन्तु जिसके केवल दो हाथ हैं,

जो टाँकर है किन्तु जिसके तीखरा नेत्र नहीं है

बिजु के रूप में व्यास और व्यास के रूप में बिजु

जब बसिष्ठ के उत्तपचिकापी आत्मज्ञानी को मैं नमन करता हूँ।”

का जन्म हुआ। समभय ६६०-११० ईसापूर्व में भारत में प्राचीनतम उपनिषदों की रचना हुई इनमें ऐतरेय बृहदारण्यक और छान्दोग्य थे। बुद्ध (५६१-४८७) महावीर (५६६-४८७) और धार्मिक धर्म के नेता मस्करि गोसास समकालीन थे। चीन में कमपन्नवास में अपने उपदेश ५५१-४७६ ईसापूर्व में दिए थे और साधोले का समय पांचवी सताब्दी है। युगानम ४६६-३६६ ईसापूर्व में दर्शन के क्षेत्र में मुद्रात का समय पांचवी भारत में छठी सताब्दी में तप और त्याग का युग था गया था। इसके उत्थान का कारण सम्भवतः धार्मिक मानव साम्राज्यवाद था। छठी सताब्दी के बाद प्रत्येक तपस्वी-मिलुसम्प्रदाय बल पड़े थे। पानिनि ने कुमारी धर्मों तक का जो स्पष्ट बौद्ध धर्म की अनुयायी थी तथा ब्राह्मण मिथुनों के विषयों का धार्मिक तपस्वियों प्रार्थना धर्मों और परिवारकों का जिक्र किया है। उस महान् ब्रह्मात्मन में अपने समय के दर्शन पर भी दृष्टिपात किया था और समकालीन मति को तीन क्षेत्रों में विभाजित किया था (१) धार्मिक, (२) नास्तिक (३) ईष्टिक। दृष्टमत्त में मानव के संस्कारों और प्रयत्नों का मूल्य है और नियति के प्रति धारमपन की धीमा तक विवक्षा है। इस मत के प्रवर्तक मस्करि धर्मवा मस्करि धर्मवा मति माने जाते हैं। बौद्धधर्मों में मस्करि को धर्मवा निम्नतीय मिथ्यावादी कहा गया है। बौद्धों के धार्मिक-धर्म 'अंगुत्तरनिकाय' में, जिसकी रचना चौथी-तीसरी सताब्दी ईसापूर्व में हुई थी कुछ मिलुसधर्मों का जिक्र है धार्मिक निर्गन्ध (जैन) मुद्रयावन कटितन परिवारक मयष्टिक नैदष्टिक धर्मिक गौतमक (बौद्ध) और देवधर्मिक।

धार्मिक-सम्प्रदाय की स्थापना मन्द बल ने की थी। बाद में किस-समुद्रिक और मस्करि गोसास इसके नेता हुए। गोसास बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। पानिनि ने उन्हें परिवारक कहा है और उनके अनुयायियों की ईष्टिक। गोसास की विधा धी कि मन्त्र या बुरे किस्ती की प्रकार के कम का कोई परिणाम नहीं होता। बुद्धता स मुक्ति मनुष्य को अपने कर्मों से नहीं बल्कि धीन और मनुष्य के अनवरत गतिगीत बल से मिलती है। जैनधर्म और हिन्दुधर्म दोनों ने धार्मिकधर्म की धर्मता की किन्तु उच्च बुद्ध विद्याओं को स्वीकार किया और कुछ का विरोध। एक समय में धार्मिकधर्म का प्रसार पश्चिम में गीराष्ट्र से लेकर पूर्व में धर्म तक था इसका प्रभाव इतना बड़ा था कि मगध और पश्चिम दोनों सम्राटों का संरक्षण प्राप्त कर सका यहाँ तक कि इस धर्म की गुणधर्म भी प्रथम हैं। मगध के साम्राज्य के पश्चिमी भाग के एक राज्यपाल ने तो मगध को धार्मिकधर्मानुयायी बनाने का प्रयास किया था परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली।

धार्मिकधर्म जैनधर्म और बौद्धधर्म जैसे मुपारवादी भिन्न-सम्प्रदायों का धर्म परिवर्तित गंगा-जाँट की ब्राह्मण-संस्कृति की पूर्वी धीमा पर हुआ। इस प्रदेश में ब्राह्मणधर्म द्रुपित हो चुका था और बहुदेवपूजा का जिक्र कुछ ने देवधर्म कहा है प्रथम धर्म। इन धर्मों की एक दूसरी विशेषता यह थी कि ये शत्रिय-जातियों से उद्भूत हुए थे और ब्राह्मणों की जो स्वयं को 'भू-भुर' तक मानते थे प्रथमता और उद्भूतता का विरोध विशेषकर थे। दृष्टव्य है कि उपनिषदों में प्रब्राह्मण धर्म का सर्वप्रथम

कैकेय बिज गांग्यायनि और अजातशत्रु जैसे अनेक क्षत्रिय दार्शनिक राजाओं की उपस्थिति है। उन सभीने सुधारवादी रहस्यात्मक सिद्धान्तों का विकास किया था। इन सिद्धान्तों में, सुप्रसिद्ध याज्ञवल्क्य के सिद्धान्तों के समान धार्य और बह्व को परास्पर माना गया है, यह कल्पना प्राचीन वैदिकयज्ञधर्म के विपरीत थी। प्रारम्भ में ये सिद्धान्त क्षत्रियों में अधिक प्रचलित थे किन्तु बाद में ब्राह्मणों ने भी इन्हें ग्रहण कर लिया। इसी बौद्धिक क्रान्ति का भाष्य बृहदारण्यक उपनिषद् में है। ब्राह्मणत्वज्ञों से बाहर तथाकथित राजविद्या अर्थात् श्रद्धा राजाओं (ममबद्गीता के राजविद्यों) की विद्या का विकास हुआ। जनधर्म और बौद्धधर्म ने इस क्षत्रिय धार्मिक उत्थारता और बिद्रोह की परम्परा को और आगे बढ़ाया।

अपरिपक्व और अर्धसम्य सम्प्रदायों की बहुसंता

अनेक ऐसे सम्प्रदाय भी उचित हुए जो स्वयं जिज्ञासा और नास्तिकवाद के युग में अपरिपक्व बिचित्र और अर्धसम्य तक मासूम पड़ते थे। उनकी बहुसंता और व्यर्थता के बारे में पृष्ठ में 'असितविस्तर' में कहा है "और मैं ऐसे लोगों के बीच जगमा हूँ जिनकी बौद्धिक मुक्ति की कोई सम्भावना नहीं है। मेरा चारों ओर सरय के उत्प टकों का समूह है और उनकी इच्छाएं अनेकानेक हैं। मेरा जगम ऐसे समय में हुआ है जब उनकी सामर्थ्य उनकी छात्रीय आवश्यकताओं के पंखों में कराह रही है। मूर्ख व्यक्ति पवित्रता और तप के विभिन्न उपायों से अपने शरीर के परिष्कार का प्रयत्न करते हैं और चाहते हैं कि उनके अनुयायी भी यही करें। उनमें से कुछ तो अपने मनों के धर्म तक नहीं समझते कुछ हाथ पाटते हैं कुछ धर्मग्रन्थ पढ़े रहते हैं कुछ लोगों के अपने मंत्र नहीं हैं कुछ विभिन्न भातों के पीछे भागते रहते हैं। गाय हिरन घोड़े सुगर बघर बा हाथी की पूजा करनेवाले लोग भी हैं। कुछ लोग पैर मोड़कर एक स्थान पर चुपचाप बैठ जाते हैं और महानता प्राप्त करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक धुमांवा धाम पीकर, सूर्य की ओर तावते रहकर पञ्चाग्नि जलाकर, एक पैर पर सड़े रहकर एक हाथ सदा ऊपर उठाए रखकर या जुटनों के बल बसकर अपने तप की सन्तुष्टि करना चाहते हैं।

जैनधर्म में मानव जिन एवं तीर्थंकर

जैनधर्म का प्रारम्भ जैन की पूर्वी घाटी में एक गुफार धारोसन के रूप में हुआ था। इसके मूलधार क्षत्रिय नेता थे और प्रारम्भ में क्षत्रियों ने ही इसे स्वीकार किया। जनारम के किसी राजा के पुत्र पार्वी ओ छम्भवन ऐतिहासिक स्थिति से चार घाटों वाले एक धर्म का पालन करते थे और दूसरों को भी इसकी जिज्ञासा देते थे। यह धर्म महावीर के धर्म जैता था। इन धर्म के चार घाटों थे जीव-मात्र को पीड़ित न करना साथ बोलना बोरी न करना और सम्पत्ति का स्वामी न बनना। उनकी मृत्यु महावीर ने सगमय दाईं दायाली बहुत बयाम में सम्मन पर्वत पर हुई। पारव जनधर्म को बीदीय तीर्थंकरों में से एक है।

बोमने और पोसा देने और सबसे बढ़कर झूठा विश्वास पासने के कारण होता है। कामो दाह इसका अर्थ यह है कि धारमाएं बुरे काम करती हैं, जिनसे दुष्परिणामों की सृष्टि होती है। किन्तु यदि आदमी स्वादिष्ट और तत्त्वयुक्त भोजन करे तो उसे खाकर स्वास्थ्य बहुत अच्छा न होम पर भी उसमें परिवर्तन होता है (ऐसी बधा की धोर जो हर तरह से अच्छी होती है) "इसी प्रकार कामोदाह धारमाएं जब प्राणिमात्र को कुछ पशुपाने झूठे विश्वास पासने से बिरल रहती हैं तब अच्छी स्थिति की धोर उनमें परिवर्तन होता है। इसका अर्थ यह हुआ कामोदाह, कि धारमाएं अच्छे काम करती हैं जिनके परिणाम भी अच्छे होते हैं।" (५ १ ७ १०)

जनसाधारण के लिए जैनधर्म की नैतिक आचारसंहिता निम्नलिखित है पवित्रता पाप स्वीकारोक्ति सार्वभौम कहना आहिंसा और भागबीज कृतिमत्ता के प्रति विरक्तित। इस नवीन सिद्धान्त को जल्दी ही सिद्धांत धोर मत्स जैसी अतंतीय जातियों तथा मयम के सम्राट् बिम्बिसार और अजातशत्रु एवं काशी कोषल लौबीट अंग बत्स और अमलि के शासकों का सहयोग प्राप्त हुआ।

मुबारबादी धर्मों का अनीश्वरवादी एवं नैतिक दृष्टिकोण

जैनधर्म बौद्धधर्म और मस्करो गोपाल (जो छः वर्ष तक महावीर के साथ रहे थे) के उपदेशों ने सांख्य और योग वदधों से बहुत कुछ ग्रहण किया था। इनमें से प्रमुख हैं कुछ प्राचीन मूल विचारधारण जो परम्परागत शास्त्रग्रन्थ में नहीं हैं। किन्तु जिनकी जड़ें भारत की मिट्टी में ही थी। तीनों ही धर्मों का निराशाजनक दर्शन है कि मानव जीवन एक संघर्ष है। उदाहरणतः बौद्धधर्म में कहा गया है कि संसार के प्रारम्भ से जब तक मानव-मात्र ने जितने दुःख के दानु बहाए हैं यदि उन सबको एकत्र कर लिया जाए तो उनका परिमाण समस्त सामरा क जल के परिमाण से बड़ी अधिक होगा। यह निराशावाद वैदिक-धाय आधावाद के धोर इस विश्वास के सर्वथा विरोध में है कि धार्मिक संस्कारों और धर्मों द्वारा मनुष्य को स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। धार्मिक धोर निरपेक्ष सम्प्रदायों में अनेक आम्बवादी सिद्धान्तों और धर्मों का प्रचार किया जिनकी मुख्य धारणाएँ थी धारमा का अस्तित्व अन्तिम लक्ष्यहीनता कम की निरर्थकता और विषमसाधन। अश्विन वशकिमिमन् ने एक अनात्मवाद का विकल्प किया जिसे बान् में मोक्षार्थों ने अपना लिया। पुराणकल्प ने एक बहुधुवाए प्रतिपादन किया। बहुधुवादियों ने अनात्म जन्म का सिद्धान्त धारनाया। मस्करो गोपाल ने आत्मवाद पर जोर दिया। इनमें से कुछ सम्प्रदायों ने बौद्ध धोर जैन धर्मों के लिए गहरा पैदा कर दिया और उनमें ऐसी दरारें धाम दीं जो समयमया धामाश्रितों तक कायम रही। यह भद्र भाग समान्य किया मध्याह्न प्रसोक में। वे बौद्धधर्म की एकता के कायम रगम व पण गापी धर्मगणित उद्गृहने धर्म अधिकाधिका को धारमा की कि वे धर्म भद्र की शक्ति पते।

जैनधर्म बौद्धधर्म और सांख्ययोग दर्शन की एक विपन्नता और थी। उद्गृहने अनात्म की एक वैज्ञानिक अनीश्वरवादी धारणा प्रस्तुत की। इनका आधार है एक

प्राचीन ब्रह्मवादी विचार कि पीछे पशुओं मानव धर्मवा ईश्वर में पाया जानेवाला जीवन एक है, किन्तु विभिन्न प्राणियों में विभिन्न रूप धारण कर लेता है। जीवन की यह इकाई विभिन्न स्तरों पर चलती हुई बग्य धोर मृत्यु के चक्र से मुक्ति धर्मवा मोक्ष को प्राप्त करने के अपने उद्देश्य की धोर मिरगतर बढ़ती है। इसीसे पुनर्जन्म का सिद्धान्त पैदा हुआ है। शारीरिक ब्राह्मणों में पुनर्जन्म का सिद्धान्त बिल्कुल नहीं है, किन्तु बृहदारण्यक उपनिषद् में एकाएक इसे अत्यन्त व्यवस्थित रूप प्राप्त हो गया है। इस सिद्धान्त में जब सम्पूर्ण कमयोग-सिद्धान्त धीरे धिस गया तो जीवन बौद्धधर्म तथा जीवन के प्रति भारत के सामान्य दृष्टिकोण को एक सुदृढ़ आधार प्राप्त हो गया।

जीवन बौद्धधर्म धीरे धीरे धर्मधर्म में कुछ बातें एक चली गीं। उनका दृष्टिकोण सामान्यतः लौकिक धीरे समय धनीश्वरवादी का। ब्रह्माण्ड की उनकी व्याख्या में पदार्थ धीरे शक्ति के ईश्वर को धनादि धीरे धन्य तथा कर्म धीरे पुनर्जन्म के चक्र को अस्तित्व की धन्यहीन शृंखला का रूप समझ गया है। इन बातों को छोड़कर बौद्ध साहित्य धीरे बौद्ध सामाजिक संगठन को धन धीरे बौद्ध दोनों धर्मों ने धमाग्य ठहराया है। उन्होंने धानुर्धर्म स्वीकार करके उसकी एक धारिण व्याख्या प्रस्तुत की। ब्राह्मणों के पुजारी धन धीरे इस विचार का विरोध किया कि मानव की श्रेष्ठता उसके जन्म धीरे परम्परा के आधार पर होती है धरि धीरे ज्ञान के आधार पर नहीं यह ब्राह्मणों के विरुद्ध धानियों का विरोध था। धान्योध्य उपनिषद् में इस विषय पर एक मनोरंजक कथा है। एक धजात धासक धत्यकाम धीतम ऋषि के धायम में धगिधम धत्य को समझने धाय किन्तु धिप्यत्व प्राप्त करने से पहले उसे धपने बंध धीरे धाति का ज्ञान धुक को कराना धाव रमक था। इसनिध धर लोटकर उसने धपनी मां से धपने पिता का नाम पूछा। मां ने पुनकुमाकर कहा 'धपने धीतमकाल में मैं लीकरामी धी तनी धुम मेरे धर्म में धाए। मैं धुम्हारी धीतक परम्परा को नहीं जानती। मेरा नाम धजाला है धीरे धुम्हारा धत्यकाम इसनिध धुम धपने को धत्यकाम जाना कहो।' धासक धुम धीतम ऋषि के धाव धहुचा धीरे मां की कही हुई बातें उन्हीं बता धीं। धीतम ऋषि ने धपने धासक से उठकर लड़के को गले से लवा लिया धीरे कहा 'धुम सच्चे ब्राह्मण हो मेरे बच्चे। सबसे बड़ी सम्पति धत्य, धुम्हारे धास है।

इसके धतिरिक्त जीवन धीरे बौद्ध दोनों धर्मों ने जीवन की धानुधाम्य व्यवस्था को धरीधार किया धीरे धेधर-धार मिश्र के जीवन को ही सर्वोच्च बताया। महा धान के धारहने धीरे ठेहने धाधों में धधिकाधत धीप्य के उपदेश निहित हैं। उनमें धीतमधुम जीवन को ब्राह्मणों की धानुर्धर्म धीरे धानुधाम्य प्रणामी न श्रेष्ठ माना गया है। यह जीवन धीत धीरे धाधीनिक धर्मों की साधारिक धापा-मोह के धाय की धाधना को प्रतिधरति है। धुर्धी गंगा धारी के बौद्धिक धागाधरण की धिपधता धी मागाधरिता का धरिधाय धाधमधुधामन धपना धाधरीधन धीरे धाधिता। धमके धाधरुध जीवन धीरे बौद्ध दोनों धर्मों ने एक उच्चतर धीति धीति के धाधार पर सामान्य धरित के जीवन का धमगाधित करने का बीड़ा उठाया। इस धधार गधार को निर्वाण को धारधिर दान माना जाने लगा। बौद्ध संघटि के गुरुमधुधेन की धीतम धुर्धी

देव में भावाः जाति और संस्कृति भिन्न थीं। पूर्व की धर्मविरोधिता की अपनी महत्त्वपूर्ण सामाजिक उपलब्धियाँ थीं। भारतीय सभ्यता को जैन और बौद्ध धर्मों की स्थायी बेन हूँ वर्ण-प्रभासी की पुनर्व्यवस्था समुदासजिक नियमों द्वारा सभी का परस्पर सम्बन्ध समाज का उच्च नैतिक स्तर तथा व्यक्ति की गरिमा और श्रेष्ठता की भावना।

समागत गौतम का जीवन

भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक युग के सर्वप्रथम ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं सिद्धार्थ धर्मात् गौतम धर्मात् (मधोकलासीन शिक्षासेवकों में) कुछ धान्यसिद्ध प्रजा (पाणि-साहित्य में) तथापि। सिद्धार्थ के बारे में हमें उनके उपदेशों और वार्ताओं द्वारा विस्तृत ज्ञान प्राप्त है। लगभग ५६३ ईसापूर्व में उनका जन्म नेपाल की सीमा पर सुम्बिनी नग में हुआ था। उनका विवाह यशोधरा से हुआ। इसके पसन्दकप जहाँ एक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसका नाम राजा रखा गया। उन्होंने अपने जीवन में ही सांसारिक माया मोह का त्याग कर दिया। उनके सर्वप्रथम गुरु थे वे महान् ब्राह्मण तपस्वी—बैद्यार्य के आचार कालाम और राजगृह के उग्रक रामपुत्र। पहले मुक्त से उन्होंने सांख्य दर्शन की शिक्षा पाई। किन्तु कालाम या श्रेष्ठ ऋषि रामपुत्र दोनों में से कोई भी गौतम की प्राध्यात्मिक जिज्ञासियों को सन्तुष्ट नहीं कर सके। गौतम ने तब इतना धीरे धीरे किया कि मरना सन्न हो गए। इसपर श्री प्रसमुद्ध रहे तो उन्होंने बहूँकर एक पीपल के पेड़ के नीचे तपस्वीन हो गए और अन्त में वहाँ उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ। उन्होंने अपना पहला उपदेश ऋषिपत्तन (अनारक के समीप सारनाथ) में दिया। पाणि-साहित्य में इसे 'अश्वत्थक प्रवर्तन' कहा गया है। कुछ ने पूर्व में कज्जल से लेकर पश्चिम में मगरा के समीप वेरंज तक खूब यात्राएँ की और उपदेश दिए। वे वर्षों के दिनों में किसी बड़े सहर के विषय (विश्रामगृह) में पहुँच जाते और राजा व जनसामान्य ब्राह्मण और व्यापारी सभी से मिलते। वे धरती वर्ष तक जीवित रहे और बीबानीस वय तक उपदेश देते रहे।

बौद्धधर्म के अनुयायियों में समय के राजा बिम्बिसार और अजातशत्रु कोशल के राजा प्रसेनजित् और उनकी रानी मन्दिता अनिक व्यापारी समाजविश्लेषक जिसने उन्हें वेतवन को मंत्र में दिया और प्रसिद्ध बौद्ध जीवनक। सारिपुत्र और मोद्गल्यायन (मोगस्तान) उनके प्रमुक्तशिष्य थे। सारिपुत्र सारनाथ में निपुण थे और सच के स्वरूप पुत्र बड़े जाते थे। मोद्गल्यायन की रहस्यारम्यता अत्यन्त उच्चस्तरीय थी। किन्तु कुछ के सबसे प्रिय शिष्य का नाम था आनन्द। कुछ आनन्द को बहुत चाहते थे और उनकी यात्राओं में आनन्द उनके साथ रहकर उनके शरीर की सेवा तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। ✓

बुद्ध और ईसा

बुद्ध और ईसा के उपदेशों में आश्चर्यजनक समानताएँ और विभिन्नताएँ हैं। ईसा के समान बुद्ध भी सत्तर द्वादशों से वय में अपने उपदेश दिया करते थे ताकि उनका संदेश सभी प्रकार कीताओं तक पहुँच जाए। दोनों महापुरुषों ने एक समाज नष्ट और

मुखा से दत्त-प्रधाकी को निम्ननीय ठहराया है। दोनों व्यक्ति धीर सम्पत्ति के गव को समान रूप से पहिठ मानते हैं। धीर दोनों पवित्रता, नीतिक भागस्कता, कहना धीर माननीय सबाधों के हामी हैं। किन्तु समानता यहीं तक है। भारत के बौद्धिक बाता बरण में बुकी स्त्री-पुरुषों को सात्वता ईसा की भांति धारोम्पकर स्पष्ट धरवा बम स्फाटी द्वारा नहीं दी जा सकती थी। इसके लिए प्रावश्यक था कि बिकेक को प्रभावित किया जाए धीर बताया जाए कि सम्पूर्ण संसार की ब्यवा धीरपीडा के सामने एक ब्यक्ति की ब्यवा धीर पीडा का अधिक महत्त्व नहीं होता। कुछ में गरी विद्या ब्यपनाई। अपने एकमात्र पुत्र के मृत्यु-शोक में बुकी किरा गोठमी से बुद्ध कहते हैं। बाधो धीर सरनों के कुछ बाने एकत्र करो। ये बाने ऐसे ही बरों सभावना बहो किसीकी मृत्यु न हुई हो। गोठमी बर बर जाती है धीर ब्यव में जसे बहो पला बयता है बि मृत्यु धीर पु स ता हर बजह ब्याप्त है। वह सोचती है अपने ही शोक में बुकी में कितनी स्वार्थी ह। मृत्यु तो हर एक के लिए प्रावश्यक है, किन्तु विनाश की इस भाटी में भी एक पथ ऐसा है जो समरत्व की धीर ले जाता है धीर उस पथ पर नि स्वार्थ ब्यक्ति ही बल शकता है। इस विचार से गोठमी को कुछ धामि मिलती है। फिर भी बुद्ध धीर ईसा में समान रूप से बसीम सद्भावना ब्याप्त है। ईसा ने अपने अनुयायियों से कहा था कि यदि कोई तुम्हारे एक गाम पर बन्द्य मारे तो दूसरा गाम भी उसके सामने कर दो। बुद्ध के धारैबाने दुष्टान्त में ईसा के उपबुध्त उपदेश के साथ पूर्ण समानता है। 'इसलिए भाइयो, बाहू बाहे एक बड़े धारे से तुम्हारे धीर के दुकड़े-दुकड़े कर बाने बरिज धवर तुममें से किसीका भी इस बात पर कीज धाया तो मैं समझूँगा कि वह मेरे सिद्धान्तों का पासक नहीं है।

ईसा की सिध्दाध भी बी जैसे मेरी, मार्वा धीर रीटनीन। बुद्ध के अनुयायियों में भी सिध्दाध धामि भी। विद्याका सुपिबा धीर ब्यवपायी। इन सिध्दाधों की ही बबामित बानसीलता धीर उचारता के कारण बबजात वर्म का बिकर्त सम्भव हो सका। बुद्ध पहले सिध्दाधों को संघ में सम्मिलित करने में हिचकिचाए थे किन्तु बाह में धपनी धम मादा महाप्रजापती के कोर बने पर मान गए थे। सिध्दाधों के धाबिज उरसाह धीर बान सीलता का ही प्रभाव था कि बौद्धधर्म अपने प्रारम्भिक बान में इसका प्रसार पा सका। बुद्ध धारबि की विद्याका की बित भेंट को स्वीकार करते हैं वह है "बीमन् मैं बाहरी हूँ कि जब तक बीबित रहुँ कर्पा बानु में सापी को पाई मानकर बज्ज देती रहुँ यहाँ बान बाने धाबिज बिधुओं को भोजन कराती रहुँ यहाँ से मुजरसेबाने बिधुओं को भोजन हूँ बीमार भाइयों को बाना देती रहुँ बीमारों की परिचर्या करनेवालों को भोजन तथा बीमारों को धोपदि देती रहुँ, प्रतिरिज मात बंटितो रहुँ धीर बिधुधियों का बदन देती रहुँ।"

इस बबीन धम को स्वीकार करनेबाने स्त्री-पुरुषों को धाशा थी कि वे अपने परि बार के साथ रहें धीर भेंट का बान धारा संघ की सहायता करें। फिर भी धनेक ब्यक्ति सांसारिक बयन स्वाधकर बिधु बिधुधियाँ बन जाते थे धीर सम्पूर्ण पीडा के विनाश के लिए बरिज बीजन ब्यतीत करने लयत थे। कीपल के राजा प्रसेनजित् धपन समय के बर्याधिक उचितवासी धासक थे। उनके राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय पदिबम में यमुना धीर पूर्व में बग्गक तक थी। बुद्ध धीर प्रसेनजित् के बीज धाबिधरपीय विचार में

हम पाते हैं कि बुद्ध ने राजा को समझा ही थी कि वे संसार का त्याग न करें बल्कि धर्मनिष्ठ जीवन व्यतीत करें और अपनी प्रजा का कल्याण करें।

ईसा के विपरीत राज्याधिकारियों के साथ बुद्ध के सम्बन्ध अच्छे और सुखरहे थे। राजाओं के साथ बुद्ध की बातचीत में कहीं भय भ्रम या आटूकारिता से सम्बन्ध नहीं है। फिर भी वे किसी सामान्य भ्रम की भाँति रहते थे परबलमात्रा करते थे और भीषण माँसे से भयभीत और घावों से डार-डार पाते थे और भोजन तभी करते थे जब कोई गृहस्थ उनके भिक्षा-पात्र में भोजन दान देता था। अपने शिष्यों की प्रशंसा से वे घबिरे और कभी कभी तो माया हो उठते थे तथा अपनी योगिक शक्तियों का प्रदर्शन तो भूलकर भी नहीं करते थे। उनका कहना है "मैं योगिक क्षमताओं में एक तरह का खतरा देखता हूँ इसी लिए मुझे इनसे बचना है मैं हल्के मिन्दनीय समझता हूँ और इनके लिए सज्जित हूँ।" सब तरह की क्षमताधिकारियों को वे निम्न कहाँ (अज्ञानानुसृत) मानकर गृहीत समझते हैं। बुद्ध अतिशय नम्र थे और अपने शिष्यों के साथ बैठकर अपनी गलतियों और दोषों पर बातचीत करते थे। ईसा के समान वे समझते थे कि मानवीय प्रयत्नों की अपनी सीमाएँ होती हैं इसलिये वे बुद्धों और पापियों को क्षमा करने के पक्ष में थे। अपने शिष्यों से एक बार उन्होंने कहा था "हम लोग अर्थात् मैं और तुम दोनों एक एक संसार के भीरु माना-मोह में पड़ रहे हैं। इसका कारण मेरे माँसों केवल यही है कि हम चार पक्षि सत्त्वों की पूरी तरह समझ नहीं पाए। संसार के किसी विश्वव्यापी ब्रह्म के प्रबलक ने इससे अधिक प्रादुर्भाव प्राप्त नहीं किया।

भारतगोपी भव'

बुद्ध का व्यक्तित्व परमेश्वर निर्मल और धोखेहीन था। वे मानव की क्षमता के भीतर व्यापारिक चिन्तन और मोन के सर्वोच्च चिन्तन तक पहुँच चुके थे और फिर भी उनमें सीधे धर्मार्थ श्रम था। वे अपने धर्म के नेता थे और अनक राजा धार्मिकार्य तथा सत्तावीस उनकी पूजा करते थे। फिर भी वे सभी मानवीय सर्वाधिक नम्र थे। बुद्ध पृथ्वी पर जन्मे शायद महानतम मानव थे। उनके जीवन की प्रमुख विषयता थी—अपने भीतर मोन और मानव मान के प्रति कल्याण। बुद्ध का कथन है "मैं बीमारों के लिए बेड और मानव-मान का भिक्षु और सर्वाधिक हीन हूँ।" संश्लेषों में व्यापृत होने पर उनके भीतर सम्मोह भय हुआ। सब कहीं जाकर वे यह निश्चय कर पाए कि अपने सिद्धान्त का स्वयं प्रसार करेंगे क्योंकि सिद्धान्त इतना पटलतरक और कठिन था कि सामान्य व्यक्ति की समझ में नहीं आ पाता था। जीवों के लिए मेरे मन में कल्याण है इसलिए मैंने अपनी बुद्ध बलि मेरे मानव का निरीक्षण किया और पाया कि बुद्धहृदय व्यक्ति कम नहीं है।" उनका विश्वास था कि तेरे ही व्यक्तियों को वे अपने सिद्धान्त का उपदेश दे सकते हैं। ऐसे व्यक्ति का उन्हीं पानी में उबनरावे समान था जहाँ ही जा पानी में रखने हुए सो उगने लगता होता है। (यह उन्होंने योग्या की धनराज का द्वार उनके लिए सुना है।

बुद्ध की मृत्यु के समय उनके प्रिय शिष्य आश्विन ने जानना चाहा कि मंत्र की व्यवस्था किस तरह सुरक्षित रहती जाए। बुद्ध ने उत्तर दिया "तपस्वियों का विचार है कि

उन्हें मार्ग-प्रपञ्चन नहीं करना चाहिए और संघ किसी भी तरह उसपर निर्भर नहीं है। इसलिए संघ के बारे में तबागत कोई सलाह क्यों है ?” इसके पश्चात् उन्होंने अपना सुप्रसिद्ध प्रवचन दिया। यद्यपि वे मानस्य आत्मशीघ्रोन्मत्तः। तुम स्वयं अपने को धरम दो। किसी बाह्य धरम की सौख्य में मत मटकौ। सत्य की दीपक समझकर रहन किए रहो। सत्य को आत्मय समझकर ग्रहण किए रहो। अपने अतिरिक्त किसी और आधाय की सौख्य मत करो।”

समागत के औपनिषदिक उपदेश

बौद्धधर्म का सार सुत्रकर्म में सुप्रसिद्ध मृगदास प्रवचन में निहित है। मानव को सर्वप्रथम चार धर्मसत्तों का ज्ञान करके मध्यमार्थ अपनाना चाहिए। वे धर्मसत्तय हैं (१) जन्म जरा रोग मृत्यु आदि कष्टों का कारण और संसार से स्पष्ट है कि जीवन दुःखों से परिपूर्ण है (२) सांसारिक जीवन का कारण दुष्कर्म है (३) दुष्कर्म का विनाश करके जीवन की बुद्धिमान व्यवस्था अपना निर्वाण का प्राप्त किया जा सकता है और (४) दुष्कर्म के विनाश का मार्ग सभी विषयों के त्रिभुज के प्रति हमारी दुष्कर्म होती है यथायमान पर आधारित है। यह है त्रिभुज का अष्टांगमार्ग प्रवचन अष्टांगमार्ग। इसके अष्टांग धर्म हैं सन्नद्ध वाक सम्मक कर्माणि सम्मक आजीव सम्मक व्यापार सम्मक स्मृति सम्मक समाधि सम्मक मकम्म और सम्मक दृष्टि। पहले तीन में आध्यात्मिक नियंत्रण होता है (नीति) दूसरे तीन में आध्यात्मिक नियंत्रण (चित्त) और अन्तिम दो में विवेक का नियंत्रण (प्रज्ञा)। इन मध्यमार्थ (मज्झिम पटिपत्ता) कहा गया है कि यह धारमनीयता और धारमसयम दोनों के बीच का मार्ग है।

अष्टांगमार्ग के कारण जो मनुष्य विकसित हुआ उसका आध्यात्मिक कारण अन्तिम स्थिति अर्थात् सम्मक दृष्टि अर्थात् तबागत का आध्यात्मिक दृष्टिकोण था। तबागत का अर्थ है 'हे बाह्यन मैं वही की अन्तिम के लिए लड़कियाँ इकट्ठी नहीं करना, अन्तिम में अपने भीतर आगमन करता हूँ। आधीन बौद्धधर्म से प्रत्येक मनुष्य सार सारकर्म में औपनिषदिक जो। बौद्धधर्म का प्रारम्भ जीवन की एकता कर्म-विज्ञान और मानव के अपने नैतिक उत्तरदायित्व के मूलमूल हिन्दु विचारों में होता है। इसी कारण यह धर्म के क्षेत्र में एक सुन्दर है। बौद्धधर्म प्रमुख उपनिषदों की अन्तिम विचारों के अनुकूल है और उनके ही समान मन की आधीन नैतिक प्रथा का अर्थ समझता है। तबागत न उपनिषत्समीन अन्तिमों के उद्देश्यों और अपने समय की आवश्यकताओं को ग्रहण किया। यद्यपि मानस्य जन्म का उद्देश्य देन हुए उन्होंने नैतिक अनुशासन और दानशीलता पर ही बल दिया है। बौद्धिक पटिपत्ता पर मारी।

मज्झिमनिबबान का शब्द है कि ब्रह्म के अन्तर्गत विद्वान् नहीं है। परन्तु इस दृष्टि में नहीं है कि बौद्धधर्म के समकालीन धर्म सम्प्रदायों में अन्तिम मृदुता और निष्ठा मन्त्रात्मक पर बहुत जोर दिया था। इनही गुणों से बौद्ध उद्देश्य जीवन का ज्ञान (निर्वाणता) अर्थात् ध्यान, देविष्ट और स्त्रीधर्म की दृष्टि का निष्ठा (निष्ठा) के लिए समझता है। इस कारण बौद्धधर्म न आध्यात्मिक नैतिकता में अन्तिम की अन्तिमता

पाणिनि का प्रभाव

पाणिनि ने सुधार में सीधा योग तो नहीं दिया किन्तु उनकी कृतियों ने सुधार के विचारों के प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया। विद्वत्-साहित्य में पाणिनि का नाम महानतम कृतिकारों में से एक है। उनके सुप्रसिद्ध संस्कृत-व्याकरण-ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' ने जिसकी रचना शायद पाँचवीं या चौथी शताब्दी ईसापूर्व में हुई थी प्राचीन संस्कृत भाषा का रूप और आकार निश्चित किया था। मैक्समोलर के अनुसार इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण संस्कृत भाषा के समस्त रूपों और आकारों का इतना विस्तृत वर्णन किया गया है कि इसका सम कल विद्वत् में कोई ग्रन्थ नहीं है। यह संसार का सभूतय और पूज्यतम व्याकरणग्रन्थ है।"

पाणिनि की प्रसिद्धि चापि पाणिनि के रूप में थी। परम्परागत कथा है कि उन्हें पाटलिपुत्र के सम्राट् नन्द के दरबार में आमंत्रित किया गया और सम्राट् ने स्वयं उनकी कृति को साम्यता और सह्यति प्रदान की। सम्राट् ने उनके व्याकरण को इतना महत्व दिया कि आज्ञा दी कि पूरे साम्राज्य में इस व्याकरण का पठन-पाठन होना चाहिए। यह कथा जैनसम और राजपेश्वर (१०० ईस्वी) द्वारा वर्णित है। राजपेश्वर ने ता स्पष्ट रूप से पाटलिपुत्र और वहाँ की शास्त्रकार-परीक्षा का वर्णन किया है।

पाणिनि ने वैदिक शब्दों और व्युत्पत्तियों को ग्रहण करके और साथ ही साथ समुचित मात्रा में उनसे विभिन्नता रखकर भी तथा उन शब्दों और व्युत्पत्तियों की विभिन्न कृतियों अर्थात् शब्दों का एक उचित सम्बन्धन स्थापित करके अपने युग की जीवित भाषा को रूप प्रदान किया। पाणिनि-साहित्य ने वैदिक साहित्य के लिए अन्धसी प्रशंसा में का उपयोग किया गया है और भाषा को प्रसंग माना गया है। पाणिनि का ज्ञान और विद्या विद्याल थी। उनके ज्ञान सामाजिक और आर्थिक ज्ञान के अपार भण्डार हैं। किन्तु उनका अभी तक पूरी तरह उपयोग नहीं किया जा सका है। वे काव्य और सिन्धु नदियों के संतम पर स्थित साम्राज्य के रहनेवाले थे और वन्दार व बाह्यीक साम्राज्य के लक्षण के लक्षणों और दुर्गों तथा भूगोलीय सिद्धि (व्यवस्थानी सिद्धि) से सभी प्रकार परिचित थे।

पाणिनि की अनेक प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। उनमें सबसे महत्वपूर्ण है कात्यायनरुत बाटिक। कात्यायन हीसरी शताब्दी ईसापूर्व के आसपास जीवित थे। दूसरी टीका है पतंजलि (लगभग १३० ईसापूर्व में जीवित) इतना महत्त्वपूर्ण। तीसरी पाणिनि ने सम्बन्धित एक सन्दर्भ है जो लगभग १३०० ईस्वी में जीवित एक सिन्धी भिक्षु-संगक वारनाय इतना भारत में बीडवर्ग का इतिहास से लिया गया है। वारनाय का वास्तविक नाम कुल सिंह था। ४६१ और ५४४ ईस्वी के दौरान सिन्धी 'आष्टाध्याकरण' पाणिनि पर आधारित था और एक समय में सिन्धी में भाषा बहमीर और सन्ध्या में उसका रूप प्रचार था।

पाणिनि ने व्याकरण-सम्बन्धी मूल सिद्धि जिन्हें पाणिनिव्याकरण कहा जाता है। कुल मिलाकर २००० मूल हैं जिनमें से १००० मूल शब्दों की व्युत्पत्ति पर हैं तथा १००० मूल व्युत्पत्ति पर। यह व्याकरण सम्पूर्ण व्याकरणों का आधार है। पाणिनि ने पहले शब्दों की व्युत्पत्ति पर निश्चित धारणा नहीं की और न ही कोई निश्चित प्रणाली थी कि विषय पर निश्चित बात स्थापित किया जा सकता है। इसके-दुखे व्याकरण या दो

घोर शोक सम्मग्न मिलाकर भाषा के विक्षेप तथ्यों को प्रकाश में लाते थे अद्वितीय बिडान् मान लिए जाते थे। यद्यपि तिब्बत में कहा जाता है कि इन्द्र-व्याकरण अधिक प्राचीन है फिर भी जैसा कि आगे सिद्ध हो जाएगा भारत में पाणिनि का व्याकरण प्राचीनतम है। हाँ इतना अवश्य है कि इन्द्र-व्याकरण का प्रवेश तिब्बत में पहले हुआ। पण्डितों का विश्वास है कि तिब्बती में अनुविष्ट या प्रव्याकरण पाणिनि के अनुरूप है तथा कसाप व्याकरण इन्द्र-व्याकरण के अनुरूप है। इसके बावजूद इतना तो सवमाग्य है कि पाणिनि के व्याकरण में व्याख्याओं का विषय अस्पष्ट है किन्तु फिर भी दृष्टिकोण में सुसम्बद्ध पूर्णता है। इसी कारण पाणिनि व्याकरण वास्तव में अद्वितीय है।

मौर्य-पुनर्जागरण की लोकपरकता और सर्वार्थवाद

मागध साम्राज्य की जन्मदात्री सामाजिक परिस्थितियाँ

बुद्ध के समय से पहले उत्तरभारत में सोसह बड़े राज्य (महाजनपद) थे। मगध कोशल और वत्स बड़े राज्य तथा कुष पांचाल मूरखन वाष्ठी विक्षिप्ता धन कलिय प्रसमक, मगध और कम्बोज छोटे राज्य। मगध काशी धन, कोशल और जनसामाजिक राज्यों के बीच प्रमाणक रक्तपातमय युद्धों के दोषान्नाहण और क्षत्रिय जातियों को प्रसन्न कष्ट सहने पड़े और एक जनह से उपभूकर दूसरे स्थान पर परभावियों की शक्ति जाना पड़ा। फलस्वरूप पूर्वी भारत में संघासन्नता का प्रथम रूप था तथा वैभव और बौद्धधर्म ने सर्व साधारण को अभिभूत कर लिया। विम्वितार ने (५४४ से ४६९ ईसापूर्व) धन को बुद्ध में पराजित तथा काशी को क्षान्तिपूर्ण उपायों से सम्मिलित करके मानव राज्य को काशी विस्तृत किया। उनके पुत्र प्रजापद (४६९ से ४६२ ईसापूर्व) ने सम्पूर्ण उत्तरी और पूर्वी भारत में मागध साम्राज्य की स्थापित किया तथा राजगृह और पाटलिपुत्र नामक प्राचीनों से बिदे हुए नगरों को राजधानियाँ बनाया। प्रजापद महावीर और बुद्ध के समकालीन थे। कहा जाता है कि उन्होंने धार्मिक रूप से महावीर को अपना गुरु माना था और कहा था कि उन्होंने ही त्याग और अहिंसा पर आधारित धर्म के प्रवर्धन का उद्घाटन किया था। मारहुत की एकमूर्ति (नवमय दूसरी शताब्दी ईसापूर्व) में विस्तारित गया है कि वे बुद्ध के वर्णन कर रहे हैं। इस मूर्ति पर अंकित है 'बुद्ध के बरतों में प्रजापद'। प्रजापद भिन्न भोला था। उसने अपने पिता की हत्या करके शासन हस्तगत किया था और धन एवं धन के प्रयोग से मागध साम्राज्य की जड़ें जमाई दीं। किन्तु इसी शासन ने अर्थ अहिंसा का पथ धनना लिया। उसने राजगृह के एक स्तूप में बुद्ध की प्रतिमों को स्थापित किया और प्रथम बौद्ध संनिति के लिए सम्पूर्ण मुक्तिपाठ पुनाई।

प्रजापद (समय ४६९ से ४६२ ईसापूर्व) और मगध (१६४-१२४ ईसा पूर्व) के बीच सवधय एक शताब्दी का अंतराल है। मगध बुद्ध या एक नार्द वा पुन प्रपदा बाग। मगध द्वारा प्रमत्ता प्राप्त करने से सिद्ध होता है कि प्राचीन वैदिक जीवन प्रमासी संनृति और शासन-अवस्था एकत्र उत्पन्न हुई। शासनों न बनों क बीच स्थित धर्म प्रपदा में धर्म प्रतिप्राचीन धर्म-नार्द बग्य कर दिया और धर्म प्रप्रकार के धर्म—उदान ध्याहार और धेडी—करने लगे। जातियों के अनुसार धर्म शासन कमी कमी

सत्यतः सम्पत्तिधारी और सम्मानित भी हुए (महापद्म ब्राह्मण)। वे 'राजाओं के समान विभाज्य और ऐश्वर्यपूर्ण ढंग से रहते थे' और निरक्षरतापूर्वक बाँटें प्रपञ्च भूतकों का घोषण करते थे। क्षत्रियधर्म ने भी योद्धा मंत्री तथा राज्य के अन्य पदों का अपना प्राचीन व्यवसाय छोड़ दिया और वे भुषारवाही धार्मिक आन्दोलनों के समक बने। इन आन्दोलनों ने वैदिकधर्म को दबा दिया। सबसे धन्य में पुरुष अपने निम्नतम वर्गों को छोड़कर ऊपर उठे और अपने समय के सम्पूर्ण क्षत्रियराज्यों को पराजित एवं विनाश करने के बाद पूर्वी भारत में एक विद्यालय राज्य स्थापित किया। वैदिक सामाजिक संघर्ष के टूटने और एक जातिविहीन समाज की स्थापना तथा सम्राटकुल महापद्मत्व के धर्तिधारी साम्राज्य की स्थापना का कारण वा र्जनधर्म और बौद्धधर्म की स्वतन्त्र वैचारिकता और मानवतावाद ब्रिजका प्रमाण बनें और धर्म के दर्शनों से बाहर भी पड़ा। महापद्म का अर्थ है सोने की महापद्म मुहुरें। अपनी विद्यालय सम्पत्ति के बल पर, जिसका जिक्र राता श्रियों बाद होनेवाले ने किया और कथासरित्सागर में लिखा उत्सेह है सम्राट नन्द ने एक विद्यालय सेना का आयोजन किया और 'सम्पूर्ण भरती पर एकछत्र राज्य स्थापित किया। यह बात पुराणों में लिखी है और उनमें नन्द के निम्नवर्गीय होने की निन्दा भी है।

यथा के पूर्वी साम्राज्य में विम्बिसार, सम्राटकुल जैसे मानव सम्राट तथा नन्द सम्राट राजा एक विद्यालय साम्राज्य का विकास कर सके। इस काम में भौगोलिक और सामाजिक कारण उनके सहायक हुए। यथा की विस्तृत घाटी की जनसंख्या बल की और जहाँ के निवासी बनावट और वैदिकधर्मी थे। र्जनधर्म और बौद्धधर्म के प्रसार के कारण सामाजिक वर्णन हीने पड़ गये और विभिन्न वर्गों व जातियों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित होने लगे थे। इससे जनसामान्य की राजनीतिक जागरूकता भी बढ़ी थी। धर्मनिरपेक्षता की ओर रुझान हो गई था। ईदों के बाव अपरिमित सम्पत्ति इकट्ठी थी। मन्दास राजगृह आदरठो साकेत और कोशाम्बी जैसे विद्यालय नगर स्थापित हुए जहाँ पर करोड़ों की धार्मिक जेदों और व्यापारी सेट्टि रहते थे। सैनिक और धार्मिक संस्थाएं आस-पास में एक हो चुकी थीं और वे सैनिक व्यवसाय तथा राज्य उत्पादन दोनों की रक्षामान करती थीं। इन सब कारणों से समय प्राचीनतम और विद्यालयतम भारतीय साम्राज्य का केन्द्र बन गया और सबकी धारें उसीपर केन्द्रित थीं। सात पहाड़ियों से घुी तरह सुरक्षित राजगृह और नया तथा सोन के उपम पर स्थित पाटलिपुत्र दोनों ही नगर प्रतिरक्षा और आक्रमण दोनों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल थे। सब तो यह है कि प्रागय साम्राज्यवाद एरुदेन थी—यथा की घाटी की, धार्मिक भुषारवाध धर्मनिरपेक्षता की ओर पूर्व की गर्माङ्ग की अपूर्व देन।

विष्णु साम्राज्य का प्रभाव

विष्णु साम्राज्य साम्राज्य की स्थापना में उत्तर पश्चिमी भारत में हुए वा र्जितो धार्मिकों ने धार्मिक योग दिया था—गन्धर्व और सिन्धु पर ईशान के सम्राट द्वारा का पानधर्म और ब्रह्मविद्या के मिश्रण द्वारा प्रभाव पर विजय। सम्राट ने धार्मिक और मन्दास का पराजित किया तथा शारा (३२२-४०६ ई० पू०) ने सिन्धु नदी के पार के

राज को जिसे हिन्दु, हिन्दु राजा सिन्धु कहा जाता था अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार ईरानी साम्राज्य का बीसवाँ और सबसे अधिक वैभवशाली युवा बना हिन्दु। भारत का नाम 'इण्डिया' इसी हिन्दु शब्द से बना है और हम कह सकते हैं कि एक विदेशी विजेता ने यह नाम प्रदान किया। ३३० ई०पू० में बारा तुर्कीय को हराने के बाद सिकन्दर ने भारत पर हमला किया। उसका उद्देश्य था ईरानी साम्राज्य के पूर्वी सूरे को भी हरा कर सम्पूर्ण साम्राज्य को अपने अधिकार में कर लेना। किन्तु उसे अत्यन्त बड़ और बीर योद्धाओं से मोहा सेना पड़ा जिसके पल्लवकूप क्रोध में धाकर उसने जनसाधारण का बिगाड़ किया। उससिला के समीप सिन्धु को पार करके एक कठिन युद्ध में पुरुषों का पराजित किया। इसके पश्चात् वह व्यास तक पहुँचा। यहाँ पर उसकी सेनाओं ने विद्रोह कर दिया और घाते बँकने से इनकार कर दिया। इसलिये सिकन्दर की विजय-यात्रा यहीं समाप्त हो गई और उसे पूर्व के सक्तिशाली मन्द-साम्राज्य के साथ टाकत प्राप्तमाने का मौका नहीं मिला। मकदूनिया का शासकअश्वरुथ उत्तर-पश्चिमी भारत में अपने पीछे सात सुबेदार छोड़ गया जिनके साथ मकदूनिया की मजबूत सैनिक टुकड़ियाँ भी थी। लेकिन जल्दी ही विद्रोह और हत्याएं होने लगीं तथा सिकन्दर स्वयं ३२३ ई०पू० में बैबिलोन में मर गया। उसकी आकस्मिक मृत्यु से उसके साम्राज्य का पतन और जल्दी हो गया।

भारत में एक नये नायक अश्वगुप्त का उदय हुआ। अपने बाह्य मन्त्री कौटिल्य की सहायता से उसने विदेशी सेनाओं को पराजित किया तथा पञ्जाब और सिन्धु की मोढ़ा जातियों को अपने कप में कर लिया। इन जातियों की अपराधों पर प्रतिरोध आचना का प्रयोग उसने स्वतन्त्रता के एक युद्ध में किया। अस्तित्व का कथन है कि 'सिकन्दर की मृत्यु के बाद भारत ने पुनामी का युवा उतार फेंका और उसके सूबेदारों को मोड़ के घाट उतार दिया। इस स्वाधीनता का ज्येष्ठ अश्वगुप्त का है।' इतना कर चुकने के बाद अश्वगुप्त ने जिसकी सेना में राजा मदन (पुनामी) फिरात बन्धन पारसीक और बाह्यक घाटि जातियों के सैनिक थे अपना दण्ड पूर्व की ओर किया और भारत के दूर घासक सम्राट् नन्द की पराजित किया।

सम्राट् का सबप्रथम धर्मनिरपेक्ष बन्ध्याणकारी राज्य

इस प्रकार भारतीय इतिहास के सर्वाधिक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना हुई। इसका विस्तार ईरान की गामा से मैसूर के अथवा बलगाम तक और बाटियाबाद से बामन्य की सीमा तक फैला हुआ था। इसके पार्श्व और अन्तरमा बाह्यीय थे। वातन मुचादकन से एक केन्द्र द्वारा चलाता था इनके बाह्यज मह उदार और महनीयता था। आन्तरिक तथा वैदिक सम्बन्धों में धर्म का सर्वोपरि माना जाता था। अश्वगुप्त और अश्वरुथ के समय का मोर्य-साम्राज्य भारत में स्थापित सबसे अधिकशाली और विस्तृत राज्य तो था ही (इनमें ईरान अश्वरुथ काबल और बमूचिस्तान जैसे राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण उत्तर-पश्चिमी प्रदेश सम्मिलित थे) साथ ही महार व सबप्रथम धर्मनिरपेक्ष लाजबन्ध्याणकारी राज्य भी था। इसके आधार स्तम्भ थे सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता सम्पूर्ण जीवन के प्रति पवित्रता और सम्पूर्ण मानव के लिए मोर्दान

कि परिवार के निर्वाह के लिए उपयुक्त व्यवस्था किये बिना और अधिकारियों की प्राप्ति किए बिना संघास ग्रहण करने का किसीको अधिकार नहीं है। "यदि कोई पुरुष अपनी परनी और बच्चों की उपयुक्त व्यवस्था किए बगैर संघास ग्रहण करेगा तो उसे दण्डित किया जाएगा। इसी प्रकार उस व्यक्ति को भी दण्डित किया जाएगा जो किसी स्त्री के संघासमेने में सहायक होगा।" यह मौर्य-साम्राज्य-विस्तार का स्वाभाविक परिणाम था। क्योंकि किसी भी सुपुत्र साम्राज्य का शीर्षकमर्ग यदि संघासी हो गया तो उस साम्राज्य को न तो बढ़ाया जा सकता है और न स्थायी रखा जा सकता है।

साम्राज्य की शक्ति का दूसरा स्रोत वा सभी प्रकार के साधारण-विचारों व्यवहारों और कानूनों के प्रति कुंसे दिल से सहिष्णु होना। यह सहिष्णुता भूमनिवासियों या जनवासियों (पाटलीको) के प्रति ही नहीं थी बल्कि पराजित देशवासियों और विदेशी लोगों के प्रति भी थी। सर्वसाधारण में विशेषरूप से लिखा गया है कि राजा को पराजित देश के साधारण विचारों भाषा और पहनावे को मान लेना चाहिए और उनके देवताओं सामाजिक संस्थाओं और त्योहारों का धारण करना चाहिए। प्रत्येक समाज जाति संघटन और धर्म को पूरी स्वतन्त्रता थी कि वह धर्म की सार्वभौम सहिता के धनदार अपनी संस्कृति का पासन और शांतिपूर्ण जीवन-पापन करे। ये प्रवृत्तियाँ एक विनाश साम्राज्य की विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप थी। इस साम्राज्य में पारसीक यवन और दूसरे विदेशी उत्तर-पश्चिम में रहते थे। ये प्रवृत्तियाँ एक सार्वभौम युग में रहनेवाले देशवासियों के अनुरूप थी जो बढ़ते हुए व्यवसायों एवं व्यापार और कानिग्य म जम और जाति के वर्गों से ऊपर उठकर अपना उचित भाग पाना चाहती थी।

प्रत्येक में भी सभी सामिक सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता को महत्त्व दिया ताकि सभी समाज से समृद्ध हों और ठोस सिद्धान्तों का विकास करें। अंगोर का बारहवा पर नियन्त्रण जबकि कोई अपने धर्म की अधिक प्रमत्ता न करे और दूसरे के धर्मों को बिना किसी कारण निम्ननीय न ठहराए। किसी दूसरे धर्म को धरपट्टा भित्तिष्ट साधारण पर ही कहने चाहिए। दूसरी ओर दूसरों के धर्म का किसी न किसी साधारण पर सम्मान होता चाहिए। ऐसा करने से उस व्यक्ति का धर्म तो बचना ही है दूसरों के धर्म को भी साम होता है। इसके विपरीत साधारण से अपने धर्म को जो शक्ति पहुंचती है और दूसरों के धर्म को भी। यह एकमत होना ही प्रयत्ननीय है इस दृष्टि से कि सभी साधों का दूसरों के सिद्धान्त मुक्तता चाहिए और युग के लिए तैयार रहना चाहिए। भारत में महाराज की यही इच्छा है।

मौर्य-युग में सामाजिक व्यवस्था

मौर्य युग में समाज व्यवस्था के उच्च स्तरों पर जातियों के कोई विश्र नहीं है। लोगों उच्चतर जातियों—ब्राह्मण क्षत्रिय और वश्य—के सामान्य कर्तव्य से धन्यवन घन और धन और उनके व्यवसाय प्राप्त में मिथित होते रहते थे। एक जातक में लिखा है कि नियमों के विपरीत ब्राह्मण जब भी कम इस अनुपयुक्त व्यवसाय करते थे। एक...

व्यवसायों में सम्मिलित हैं। छोटी-बड़ी छोटा व्यापार मिट्टी खोदना छेदा-कार्य और चिकार। इसी प्रकार शक्ति भी कृषक और कारीगर बनने वाले तथा बैद्य भी कारीगरों का काम करने लगे। मीय-युग में धर्मनिरपेक्षता की इतनी प्रगति हुई कि एक व्यवसाय को छोड़कर दूसरा स्वीकार कर लेने से किसीकी सामाजिक स्थिति घबरा सम्मान में कोई घटार नहीं आता था। केवल निम्नतम स्तरों पर पाँच हीन जातियों के बीच पाँचवीं घटाणी ईसापूर्व में छोटी-छोटी जातियों अथवा व्यापार के अनुसार समुदायों का विभाजन शुरू हुआ। यही विभाजन बाद में सामाजिक विधान के सभी अर्थों में फैल गया। विनय-मुत्तविभंग में हीन जातियों को पाँच बताया गया है। चाण्डाल, बैत, निषाद, रमकार और पुकहुस। धीमनिकाय में धाय-ममाय से बाहर के समुदायों को भिस्तक (स्नेह) कहा गया है। धनिर्वासित धूर्तों की तुलना में बिम्बु धाय-समाज में स्वीकार कर लिया गया था इन्हें निर्वासित कहा जाता था। पानिनि ने यही लिखा है (२. ४. १)। पानिनि ने ही लिखा है (२. ४. १०-१४७४) कि अनेक धूर्तों को घर के बर्तन छूने के निषेधों का भी प्रथम हो चुका था। धायवृत्त में निषाद, चाण्डाल, पौसक और बैत जातियों का निम्नतम जातियाँ कहा है (२. १. २६)। धर्म में मीय-युग में जातियों का सम्मिलन सामान्य बात थी जिससे अनेक मिथित जातियाँ (धर्मरान) विकसित हुईं। प्रतिशोध विवाहों की संस्थानों को विधायक से हीन समझा जाता था। बैत (धूर्त पिता से उत्पन्न) धायोय व मज और चाण्डाल (बैत पिताधर्म से उत्पन्न) मागव और बैत हिक तथा (शक्ति निगाधो से उत्पन्न) सुत। पानिनि ने अम्बळ अथवा अम्बळ बैत मिथित जातियों का उल्लेख किया है। मीय-युग जातियों के सम्मिलन और परिपाक का युग था। इस युग में सामाजिक स्तर और व्यवसाय न तो घटत बढ़त हुए थे और न मिथित थे। सबसे ऊँचा दर्जा एक और तो शक्तिधन को प्राप्त था और दूसरी ओर राजा के पुत्रियों, महिलाओं, राजपूतों अथवा संन्यासियों की शक्ति अंतर्गत में रहनेवाले ब्राह्मणों को (मेघास्वनी के विवरण से)।

कौटिल्य के सामाजिक नियम

धर्म की सुरक्षा की आवश्यकता अथवा समाज के पार प्रमुख वर्गों की व्यवस्था को 'धर्म' की नीति के अनुसार' सुचारु रूप से चलाने के लिए कौटिल्य अथवास्य में व्यक्त है कि सभी व्यवसायों और शोकरियों तथा मजदूरों और कारीगरों के स्तर को राज्य के नियमन में रहना चाहिए। कौटिल्य के कुछ नियमों में वे बीज मौजूद हैं जो पात्र के समाज में सुविशेषित धर्म व्यवस्था की सामाजिक सुरक्षा का रूप ले चुके हैं। गनी तथा अन्य प्रकार के मजदूरों (जमदारा) को निश्चिन्ता भी कि उन्हें उचित मजदूरी मिल जायगी क्योंकि उनके और मानिकों के बीच एक समझौता हो जाता था जिसका अर्थ उनके पटोहियों को भी रहना था। मजदूरी न देना एक अपराध था जिसके लिए जुर्माना होना था। अंतर्गत का भी अपना बैतन प्राप्त था अथवा घर या और किसी प्रकार का धारीरिक उपयोग अथवा अर्थात् शोकर अथवा किसी विपत्ति के समय उन्हें अन्य प्रकार की सहायता भी मिलती थी। धर्म के अर्थ में धर्मियों में बार-बार

दासों और धर्मिकों (वास मुक्त) की सुरक्षा के लिए प्रार्थित किए हैं। इनका प्राधार कौटिल्य की ही उपर्युक्त व्यवस्था थी (१ १३, १४)।

पर्यवसान में व्यवस्था है कि सभी भगवों (बाम) बूढ़ों, अपाहिजों बीमारों तथा निस्सहाय व्यक्तियों के जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध राजा को करना चाहिए। राजा को ही निस्सहाय गर्भवती स्त्रियों और उनके बच्चों के भरण-पोषण का प्रबन्ध करना चाहिए। बूढ़ों बीमारों पर्यवती स्त्रियों और बच्चों की नको पार करने का कर नहीं लगा होगा। जिस सोमों में कर लगा करने की क्षमता नहीं रह गई है उनके प्रति राजा का व्यवहार पिता-बंधा होगा।

मनु ने विधवाओं के पुनर्विवाह का विवेक किया था किन्तु कौटिल्य की व्यवस्था इनके विपरीत है। पुनर्विवाह के समय विधवा को वह सब सम्पत्ति मिल जाएगी जिसको उसके समुर या पति या दोनों ने पूर्व-वैवाहिक जीवन के दौरान दिया होगा। किन्तु यदि उसने अपने समुर की इच्छा के अतिरिक्त विवाह किया तो उस सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार न होगा।

जिन पत्नियों के पतियों का कोई पता परित्यक्तियों के अनुसार एक या दो मय तक नहीं सक्ता था उन्हें पुनर्विवाह की छूट थी।

यदि किसी स्त्री का पति पुरस्चरित हो गया या मरने के समय से विधेय में हो गया या राजाही हो, प्रववा उसके अपने जीवन के लिए अंतरदाक ही प्रववा जाति-वहिष्कृत या नपुंसक हो जाए तो पत्नी को अधिकार था कि वह अपने पति को छोड़ दे।

ग्रन्थ स्मृतिकारों के विचरित कौटिल्य ने विवाह-विच्छेद का विधान स्वीकृत किया है। उनका कथन है कि विधिवत् विवाह ही जाने के बाद विवाह-विच्छेद मानविक पृथा की स्थिति में ही सम्भव है।

यदि किसी पुरुष की अपनी पत्नी से अतरे की सम्भावना हो और वह विवाह विच्छेद करना चाहे तो उसे वह सबकुछ पत्नी को देकर पड़ेगा जो विवाह के समय पत्नी को अन्तर्दाक्य मिला था। यदि किसी स्त्री को अपने पति से अतरे का अन्वेष्टा हो और वह उससे सम्बन्ध विच्छेद करना चाहे तो अपनी सम्पत्ति पर उसे कोई अधिकार नहीं होगा। प्रबन्ध चार प्रकार की वैवाहिक रीतियों से किए गए विवाह टूट नहीं सकते।

“याम की दृष्टि न सभी प्राय समान

हिमी अग्निधामी साम्राज्य के स्वायत्त के लिए अभिवाय था कि पम में अधिक महार राजपुत्र को प्राप्त हो। योय-साम्राज्य में राजाता को धार्मिक प्रणों में धेन्तर माना जाता था। इन दृष्टि से प्रचलित पर्यवसानों की अनेका कौटिल्य अर्प गात्र का मन विम्व है। यह सिमता प्रपण बहुवचन भी है और किसी सीमा तक आतिवारी भी। कौटिल्य का कथन है “यम व्यवहार अरिध और राजाग्रम जानून के चार लग्न है और इनमें से प्रत्येक अपने से बहुमेवाने से धेन् है।” “प्राप्त और पर्यवसान में सर्व अलग होने पर विवेक की ही सर्वोच्च माना जाएगा।” जोयी अग्रमरी

ईसापूर्व में भारत पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए तथा कूटनीति और युद्ध के दौर चले रहे किन्तु साथ ही साथ फारस और यूनानी सत्तार के साथ व्यापार का भी सुव्यवस्था हुआ। उस युग में बर्तमानवेसता की जो प्रक्रिया चल रही थी वह कोटिस्म धर्म धारण की राजनीति का ही प्रतिफल थी। फारसियों और यूनानियों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने के फलस्वरूप इस प्रक्रिया पर फारस-साम्राज्य और यूनानी राज्यों का धर्मनिरपेक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा होगा क्योंकि इन स्वार्थों पर शासक की सत्ता ही कानूनों की नियामक होती थी।

धर्मधारण से पहले ब्राह्मणों को किसी भी उपराज के लिए राजनीय प्रयत्न प्राप्त करने का भागी नहीं माना जाता था। धर्मधारण में ब्राह्मणों को प्राप्त इस सुविधा को छोड़ दिया गया। इससे मौर्य-साम्राज्य की धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया को और और मिला। कोटिस्म के अनुसार राजाओं के उपराज ब्राह्मण को पानी में डुबाकर प्राणदण्ड देना चाहिए। मौर्य साम्राज्य का उद्देश्य था कि कानून के समक्ष सभी स्वतन्त्र नागरिक प्रयत्न धर्म एकसमान हों फिर चाहे उनकी जाति या कुल कोई भी हो। प्रत्येक ने अपने धर्मधर्मों में इसी सिद्धान्त पर और दिया। उनमें मिला है कि सभी राज्याधिकारियों को एक समता और व्यवहार-समता के सिद्धान्तों का बिना हिक पालन करना चाहिए। साम्राज्य का शासन महामात्रों और राजकुलों द्वारा होता था। और उनके काम की देखभाल प्रमनशील न्यायाधीश किया करते थे। राजकुलों (प्रयत्न राजकुलों) का मुख्य काम था देखभालियों के कल्याण और सुख की व्यवस्था करना (जनपदस्थ हितसुधाय)। उन्हें विवेकपूर्व से ध्याते हुए जाते थे कि वे पूर्वतः निर्यात होकर निज प्रयत्न प्रयत्न हैं। केन्द्रीयकरण के बावजूद न्याय-व्यवस्था का आधार अनेक स्वशासनसुक्त न्यायप्रणालियों में था। ये न्यायप्रणालियाँ नगरों सामाजिक संस्थाओं और व्यावसायिक धर्मों के होते थे। कोटिस्म ने सिद्धा कि प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नगर और मुहल्ले में एक न्यायप्रणाली होना चाहिए जिसमें धर्म से परिचित तीन सदस्य (धर्मस्थ) हों और तीन राजा के मंत्री। इस प्रकार मौर्य व्यवस्थाकारी राज्य के धर्म की नींव धार्मिक प्राचीन और लोकतन्त्रीय थी।

ग्रामीण स्वराज्य और सामूहिक कार्य

मौर्य-साम्राज्यवाद के अन्तर्गत राज्य में पूर्ण शान्ति और सुरक्षा थी। इसके फल-स्वरूप सामाज्यजन का अधिकारिक कल्याण हुआ। साथ ही गाँवों में सामाजिक धार्मिक और धार्मिक अनेक प्रकार के सामूहिक कार्यों का विकास हुआ। ग्रामीण स्वशासन स्थापित किया गया। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्राम का शासन एक अधिकारी द्वारा होता था जिसे ग्रामणी धार्मिक प्रयत्न ग्राममोजक कहा जाता था। कमरा १ २ १ और १००० गाँवों के ऊपर जो अधिकारी होते थे उन्हें वही बिंदी धर्मेष्ट और धर्मेष्ट कहा जाता था। इनके ऊपर जनपदों और प्रदेशों के अधिकारी स्थानिक राजकुल और प्रादेशिक होते थे। गाँव के स्तर पर अनेक प्रकार के लोककल्याणकारी कार्य चला करते थे जिनमें सामाज्यजन उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। मुलावक बातक में मिला है कि ग्रामवासी "गाँव के बीचोंबीच बैठे होकर कार्य-व्यापार करते थे" वे एक-दूसरे और नसियों

की सम्मति करते हैं पुनः बनाते हैं, सामान्य खोजते हैं कमरे बनाते हैं उनमें दया की भावना की धीरे धीरे का आवरण। सामाजिक शासन (सामान्य व्यवस्थापन) शासन की हर कार्यक्षमता का केन्द्र होता था। महोदय शासन के अनुसार प्रत्येक शासन में अपनी शासन थी, वेमने का मैदान (कीसामण्डलम्) व्यापारिक (विनिष्कयम्) धार्मिक सम्मान पण के लिए समा (व्यवस्थाम्) मुख्यतः १००० योद्धा और १०० महामे के बाटों महि शासन पितामह (शानमष्टम्) थे। इसके अतिरिक्त धार्मिकों मिश्रणों शासनों बिदेसी व्यापारियों और निराधर व्यक्तियों के लिए विशेष आवास थे। प्रत्येक शासन और शासन के कुछ प्रवर्तकों से मान्य होता है कि सामूहिक धर्म की होती थी विचारों बरानाह पिता मनोरंजन शासन और यज्ञ के लिए तो सामूहिक प्रवर्ग होता ही था। धर्मशास्त्र का नियम है कि यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार के सामूहिक कार्य से (सम्पूर्ण सेवकवाद) असह्य रहना चाहे तो उसे अपना काम जारी रखने की नीति बर्तन प्रवर्ग होने और खर्च में उसे हिस्सा लेना पड़ेगा पर वह काम का अधिकारी नहीं होगा।

समुद्री व्यापार और बन्दरगाह

मीर-साम्राज्य का विस्तार हिन्दुस्तान के पार ईरानिया तक हो गया तो भारत छोड़ बिदेसी व्यापार का भी प्रभुत्वपूर्ण विकास हुआ। कारण यह था कि ऐकेमेनिडों द्वारा बनाई हुई सारी सड़कें जो सिन्धुपाटी और पंजाब को पर्सियोनिड और मुसा से मिलाती थी मीर-साम्राज्य के अन्तर्गत आ गई। पर्सिमी देशों के साथ व्यापार के पत्र स्वयं भारत में शुरू होना आया। उस युग के उत्तराखण्ड के मुख्य नगरों के सेट्टियों का वैभव और विस्तार से यह स्पष्ट है। अनुमान लगाया जाता है कि इन सेट्टियों की सम्पत्ति पन्ती करोड़ रुपयों के बराबर थी। करोड़पती महासेट्टि मन्तपविनिष्ठ ने २०० प्रत्येक सेट्टियों के साथ मिलकर नैतवन की सम्पत्ति बरती पर निम्नलिखित बिदाकर उसे परीक्षित किया और कुछ को प्रदान कर दिया। भारत की विस्तार सम्पत्ति का एक बिदेसी सानी है हेरोडोटस। उसने लिखा है कि बारा के साम्राज्य के भारतीय भाग से प्रभुत्व होनेवाला पर प्रत्येक प्रदेष्टों के कर में नहीं अधिक है सोने के तीन सौ सठ टेन्ट। इन पुनानी इतिहासकार ने यह भी लिखा है कि भारत के सोने का कुछ हिस्सा जानों से भी निरन्तरता है। हेरोडोटस और मेगस्थनीज दोनों ने लिखा है कि भारतीय मरिचों में भी सोना मिलता है। मोन नदी का 'एरोसोव्हास' पत्रका हिरण्यवहा प्रपत्ति स्वयंवाहिक बहा जाता था। मेगस्थनीज के ही बर्णनों के अनुसार मीर-मुग़ल में भारत में अधिक सोना और विस्तार मीनी टेरोडेन प्रपत्ति लंका में पाए जाते हैं। बीटिस ने साम्राज्यिक लाभक मोटी का विवरण दिया है जो 'ताम्रपत्र' में बर्णन हुआ था।

मीर-मुग़ल में भारतीय व्यापारियों और नाविकों की व्यापार-यात्राएं पश्चिम में बरक प्रपत्ति ईरानिया बर्तन में टेरोडेन प्रपत्ति संका और पूर्व में मुकधूमि प्रपत्ति मुवात्रा और प्रत्येक द्वीपों तक हुआ करती थी। लम्बा-लम्बी मनु-यात्राएं निता-वाकों की प्रवर्ग से हुआ करती थी। जातकों में ऐसी मनु-यात्राओं का प्रवर्ग है जिनकी प्रपत्ति या मान्यता थी के पार्श्व भागों पर हाथी थी और पाद की प्रवर्ग में नावें तट पर राखी करती

जाती थी। जब कोई नाव बम्बरगाह पर पहुँचती थी तो सैकड़ों प्रतिस्पर्धी व्यापारी मास करीबने को तट पर ही बड़े भिंसे थे। ये नावें इतनी बड़ी होती थी कि १०० से ७०० यात्रियों को लेकर सात समुद्र पार की यात्राएँ कर सकती थीं। भारत ने प्रथम बार एक मुमुक्षु नौसेना का विकास किया। यह सेना भारत के विस्तीर्ण तटीय क्षेत्रों की रक्षा करती थी और समुद्र-यात्री व्यापारियों को समुद्री डाकूओं के धाकधमकों से सुरक्षित रखती थी। बिन्द्रेयत तमिलराज्यों और लंका से उत्तरभारत आनेवाली मोतियों और अन्य रत्नों से भरी हुई नावों को समुद्री डाकूओं का बड़ा सत्रा खाता था। नौसेना उनकी रक्षा करती थी। नौसेना की उचित देखभाल और निगरानी के लिए पाटलिपुत्र में एक नौ सेना-विभाग था। इसका कृत्रिम मेगास्वमीय ने किया है। 'सैकड़ों यात्रियों और व्यापारियों की लाए हुए' तथा 'सम्मी-सम्मी समुद्र-यात्रियों के लिए तैयार' नौकाएँ भारत के सम्पूर्ण समुद्र-तट पर लगी रहती थीं और सुन्नर मादकञ्च (मर्डीच) और सुवर्णमूमि (सुमाना घण्टा सामान्यतः पूर्वी द्वीपसमूह) तक जाती-जाती थी और रास्ते में ट्रोबेन (लंका) का स्पर्श करती थीं। एक सुप्रसिद्ध प्रसंग में मिलिन्दपट्ट (समयग पहुँची सठाम्बी ईसापूर्व) ने लिखा है कि किसी नाव का मालिक किस तरह व्यापार करता था और किस तरह किसी समुद्रतटीय नगर में सगाठार मास होते रहकर सम्पत्तिधारी हो जाता था और किस तरह समुद्र-यात्रा के लिए जस पड़ता था तथा वय (बगाल) तन्कोस (मलय) भीम तक पहुँचता था। या फिर सीबीर (युजरात) मुरट्ट (काठियावाड़) अमलप (सिन्धुनरिया) कोसपट्टन (कोरोमण्डल तट) और सुवर्णमूमि (सुमाना) घण्टा किसी घन्ट स्नान पर जहाँ नावें पहुँचती थी भारतीय नाव भी पहुँच जाया करती थीं। मौर्य-साम्राज्य के सबसे बड़े बम्बरगाह से पश्चिम में सिन्धु नदी के मुहाने पर बारबैरिकन नरेश के मुहाने पर (माहण्य की सीमा के भीतर) मादकञ्च घूरपारक रीच घण्टा रीच (लोबीर की राजधानी) और कपिलवस्तु तथा बंग में ताम्रलिप्ति। इन्हीं बम्बरगाहों से व्यापारी पूर्वी द्वीपसमूह और लंका के लिए रवाना होते थे तथा तटीय व्यापार करते थे।

प्राचीन व्यापार-मार्ग और मण्डियाँ

इन छारे बम्बरगाहों तक ब्रिटिश सड़कों के द्वारा भीतरी नगरों से पहुँचा जा सकता था। जैसे पाटलिपुत्र से बनारस सफ़ेद कौसाम्बी भारहुत विरिषा और उज्जयिनी होते हुए मध्यभारत के विशाल बग (काण्णमन ने जिसे कान्तारपथ कहा है) को पार करके प्रतिष्ठान और मादकञ्च पहुँचा जा सकता था या फिर पाटलिपुत्र से बंगाल की के किनारे स्थित जम्पा होकर नदी के किनारे-किनारे ताम्रलिप्ति (प्राचिनिक ताम्रलुक) तक पहुँचा जा सकता था या फिर मानसरी कपिलवस्तु पावा वैशाली और नामन्दा से राजगृह और बोधगया होकर ताम्रलिप्ति पहुँचा जा सकता था। ताम्रलिप्ति से बोध गया बनारस प्रयाग कौसाम्बी मथुरा हस्तिनापुर, थाकन सधमिना पुष्पसावती और मसकन्ति होते हुए कापिली और बाह्लीक (बस्न) पहुँचा जा सकता था। वहाँ से घाँसस नदी पर नावों के जरिये भारतीय मास यूरोप पहुँचाया जाता था—ईसियन सागर को पार करके कूर और पर्सिया होते हुए कासा सागर के बम्बरगाहों तक।

समया हेरत घोर कैस्पियन द्वार से टेसीकॉन घोर हैब्रैटोम्पाइमस होते हुए अग्निमोक्ष पहुंचते थे। इनके प्रतिरिक्त एक घोर अपेक्षाकृत कठिन रास्ता था जिससे भारतीय सामान प्राचीन छद्मों के जरिये ईरान और एसिया माइनर के यूनानी नगरों तक पहुंचाया जाता था। यह रास्ता आवस्ती से कार्मिस्य घोर समुद्र होकर राजपूताना की मरुभूमि को पार करके सीवीर और बार्बर होते हुए पोटन (पटन) जिसे सिन्धु नदी के किनारे सिन्धु नदी ने स्थापित किया था तक पहुंचता था। पानिनि ने मात्र-बाणिज्य, काश्मीर बाणिज्य और गन्धार-बाणिज्य का उल्लेख किया है जिनसे इन सुदूर क्षेत्रों के साथ व्यापार का महत्व सामुं होता है। पानिनि ने प्रकम्ब (यूनानी परिकम्पोइ समया करमाना) और कुचवर समया कुच का भी उल्लेख किया है। पाटलिपुत्र से बाह्यीक तक को छद्म को पानिनि ने उत्तरापथ कहा है। यह पथ खतरो से काली या घोर प्रायामग्न राह होता था। उपकुच नगरों में से प्रमुख है खकिश हस्तिनापुर संगम सुबास्तु बर्षु घोर बन्या। एक जातक में लिखा है कि विद्यार्थी हफट्टे होकर तक्षशिला की यात्रा करते थे किन्तु न उनकी रक्षा के लिए सिराही होते थे घोर न वे स्वयं घटन रखते थे। अशोक के अभिलेखों में लिखा है कि राजमागों पर प्रायसधामर (विद्यामानव) घोर कुट होते थे।

पाटलिपुत्र बैसाजी बन्या बनारस नौछाप्पी साकेत (अयोध्या) आवस्ती मनुष्य घोर तक्षशिला बड़ी यण्डिबी बी जहाँ सम्पुन सम्प खसार से घामा हुप्पा मान बहट्टा होता था। राजसद्विहस में लिखा है "व्यापारी निम्नलिखित प्रमुख वस्तुओं का आयात करते थे—रेशम, मलमल, अम्बी किस्य के कपड़े बर्तन, कनक, कीमत्ताय बड़े लुप कपड़े, कालीन, इव ओपयिमा हाथीदांत हाथीदांत की वस्तुएं घामुपन घोर मोना (कनो-कनो चांदी की)। दक्षिण में प्राप्त होनेवाले मोती हीरे कीमती पत्थर और चम्पन की लकड़ी उत्तरभारत तथा पश्चिमी घोर मध्य एसिया की यण्डिबी से विक्री थी। ईरान घोरगन्धार के मार्गों पर बाबू के टीनों घोर रेगिस्तानों को पार करके अतरेवाने काफिनों का मार्गदर्शन रात की सीतमता में तारे करते थे। काफिनों का दिशा-निर्देश अतनिबामक द्वारा होता था घोर मुखिया को सार्वबाहू कहा जाता था। यूनानी लेखकों के अनुसार मिय को भारत से आयात होनेवाली चीजों में हाथीदांत चउर की पीठ मोटी रंग (विशेषतः नील) जटामासी कपड़े तथा कम मिलनेवाली लकड़ियां शामिल थी। अर्धशास्त्र घोर जातकों के अनुसार कपड़ा उद्योग के निम्नलिखित प्रमुख क्षेत्र थे। रेशमी कपड़ा उद्योग बनारस रंग पुष्ट घोर मुचर्बटूर मृती बगड़ा उद्योग बनारस घोर बंगाल में सबसे अच्छा कपड़ा। इनके प्रतिरिक्त दूसरे क्षेत्र थे दक्षिण में मधुरा अथरास (पश्चिमी भारत); कनिंग बाम (नौछाप्पी) घोर मल्लि (पाटलिपुत्र), नम्बल गन्धार उदियन नेपाल घोर रंग, रेश पुष्ट (उत्तरी बंगाल) मुचबटूर (कानक में) मयघ घोर बाह्यीक।

पश्चिमी एशिया छोड़ चीन के साथ मौर्य भारत का सम्पर्क

मौर्यकाल में भारत में एक घोर पश्चिमी एसिया घोर भूमध्यसागरीय क्षेत्रों के साथ तथा दूसरी घोर चीन के साथ अन्तरंग सम्पर्क स्थापित किए थे। कैस्पियन की पुरी

के साथ चम्पूगुप्त का विवाह शायद ऐतिहासिक तथ्य नहीं है किंतु मौर्य-बरबार में सेल्युकस के दूत मेगास्थनीज और बेमाकस तथा मिस्र के टालेमी फिलाडेलफस के दूत बायोनीसियस आए थे। मौर्य-सम्राटों में निश्चय ही भारतीय दूत भी विदेशों में भेजे होंगे। पाटलिपुत्र में इतने अधिक विदेशी रहते थे कि उनके हितों की रक्षा के लिए एक भ्रमण विभाग स्थापित किया गया था। लामसागर के तट पर बर्निस और मायोस हर्मस नामक दो प्रमुख बन्दरगाह थे। यहाँ तक भारतीय व्यापारिक भास समूही नावों द्वारा पहुँचता था और वहाँ से नील नदी के तट पर स्थित कैंटस मण्डी के जरिये मिस्र तथा भूमध्यसागरीय देशों तक पहुँचता था या फिर भारतीय सामान प्राचीन काफ़िर्मों के रास्ते पर बिसे पानिनि ने उत्तरापथ कहा था और जो तलसिला व म्यूकेनाइटिस से कम्बार होकर पसिपोसिस और सूसा तक पहुँचता था यथवा शीकस नदी पर नावों के जरिये कैंसिमन और काले सागरों तक पहुँचता था। इस प्रकार भारत का सम्बन्ध मुग़ानी संसार के साथ जुड़ गया था। पानिनि अंधार के निवासी थे जो बल्ख (बाख़्तीर) ईरान (पर्स) प्रकल् (फरगाना) कम्बोज (बदक़्सा-पामीर) और कुचबर (कुच) से भली प्रकार परिचित थे। बामुदेवसरण भद्रबाग में पानिनि पर अपने बिहतापूर्ण ग्रन्थ में उन शब्दों का बिच किया है जिन्हें पानिनि ने प्रयुक्त किया था और जिन्हें भारत में अपने पड़ोसी देशों से से लिया था। उप्ताहरण यवन (भावोनियन) परशु (बहिस्तान अमिलेख ना पर्स) बुक (नख्सेस्तन अमिलेख का बर्क) और कम्ब (नगर जैसेकि समरकन्द में) बाबाल (बकरियों का झुण्ड) और हुबाहुल (बिप)। चौथी और तीसरी शताब्दी ईसापूर्व की या सामय इससे भी पहले की दो चीनी कृतियों 'मू येनलू चुवान और भर्ह बा' में गूडिच ने संस्कृत शब्द सिंह (चीनी भाषा में सेङ्ग-ये) का उपयोग हुआ है।

भारतीय संस्कृति का प्रभाव मुग़ानी संसार पर पड़ा था। इसका एक बहुत बड़ा साक्षी अशोक का ठेरहवा शिलालिखन भी है। इस अमिलेख में लिखा है कि भारतीय धर्मप्रसारकों की सचियता के फलस्वरूप निम्नलिखित मुग़ानी शासकों के राज्यो में बम्म के अनुयायी थे सीरिया के एन्तिओकस अक्रदुनिया के अन्तिओतस गोनोतस एपिरस अथवा कार्निम के सिकन्दर, मिस्र के टालेमी और साहरीन के मागाब। बौद्धधर्म से बहुत पहले ही उपनिषद् और सांख्यदर्शन व्यापारिक सामानों और व्यापारियों के साथ साथ मुग़ानी संसार में पहुँच गया था। कुछ विद्वानों का बिचार है कि उन रहस्यो का प्रभाव पाइथागोरस और प्लेटो पर, और बिसेपक्ष से बाद के ईसाई बुद्धिवादिओ व नवप्लेटो वादियों पर बहुत पड़ा था।

हिमालय के पार अम्बार और नेक्रोसिया में मौर्य काल में ब्राह्मणधर्म और बौद्ध धर्म का बूम प्रचार था। जेम्स डारमस्टेटर का कथन है हिन्दू सम्प्रदाय उन मार्गों (काबुल और सीस्तान) में फैली थी। सब का यह है कि ईसा से दो शताब्दी पहले और बाद तक वे भाग 'इथे भारत के नाम से जाने जाते थे। ये प्रदेश मुसलमानों की बिजय से पहले तक ईरानी थे अधिक भारतीय थे।' मौर्य-संस्कृति का प्रचार पामीर के पार प्रदेशों में भी हो गया था। यह इस तथ्य से भी जाना जाता है कि तीसरी शताब्दी ईस्वी क ससानियाई बैक्ट्रिया को परोक्षरूप से भारत का धर्म मानते थे और शीकस को ब्राह्मणों और बौद्धों

की नहीं। यह सम्पूर्ण लक्ष्य जिसमें हेतुमत्त्व का बुझ, घोषित तारिख मरियों की बाटियों की सम्मिलित की ईसा के पुरुष पहले घोर बाव के समय में वैदिक सभ्यता को मानता था। महदुष्टिकोण एक-दूसरे टॉमस का है। टॉमस ने मिला है सम्भव है कि उनकी सभ्यता-निष्ठता के निवासियों का हाथ प्रारम्भ में ही वैदिक सभ्यता के विकास में रहा हो, क्योंकि यूनानियों को वे भारतीयों जैसे ही मानते थे व घोर उनकी सेनाओं में हाथी थे।

भारत का राष्ट्रीय चिह्न—सारनाथ में अशोक-स्तम्भ का सिंहसीप

मौर्य-साम्राज्य ३२२ से १८२ ईसापूर्व तक रहा। मौर्य-साम्राटों के उद्देश्य कई उपायों से प्रसारित किए जाते थे। एक उपाय का प्रसार-नमूनों पर लगे हुए अभिलेख जिनके बारे में पहले ही कहा जा चुका है कि इन स्मारक-स्तम्भों की विद्यमानता थी इनका भारतीय विस्मयपूर्ण द्वारा निर्माण और यहन प्राचीन प्रतीकवाद। प्रारम्भिक साम्राटों ने चक्रे-चक्रों की मूर्त करके इनका निर्माण करवाना सीखा था और अशोक ने अपने वैदिक और प्राकृत उद्देश्यों के लिए इनका प्रयोग प्रारम्भ किया। सारनाथ का अशोक स्तम्भ का विनाश विह्वलित जो अशोक उद्योग पर धारण-उद्योग में बुद्ध के प्रथम प्रवचन का प्रतीक है भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय मुहर बनवा चिह्न के रूप में स्वीकार किया गया है। किसी समय यह एक ऊँचे और प्रभावशाली स्तम्भ का शीर्ष था जिसपर साम्राट अशोक ने विभिन्न धर्मों के भारतीय मतभेद की मित्रता करवाना अभिलेख लुटवाया था। एक दुगरे से पीठ सटाए हुए बैठे चार ध्यानधार सिंह दायाँ-बायाँ बुद्ध की चतुर्दिशाओं और प्राकृतिक सन्तुष्टि के प्रतीक हैं। पश्चिमी एशिया और वैदिक भारत में सिंह प्रतीक राजसत्ता के साथ सम्बन्धित है। इस प्रकार प्राचीन ब्राह्मण और बौद्ध प्रतीकवाद एक-दूसरे से मिल गए हैं और मने धर्म के लिए उनकी व्याख्या पुनः प्रस्तुत की गई है।

पालि साहित्य में प्रसार बुद्ध की सिंह और उनके प्रवचन की सिंह-गर्जन स तुलना की जाती है। वहाँ के बीच एक सीझर पट्टी है जिसपर चार पशु—हाथी घोड़ा बैल और सिंह—गुरे हुए हैं। प्रारम्भिक बौद्ध-कृतियों और कला में हाथी बुद्ध के स्वप्न और विचार का प्रतीक है बैल उनके जन्म का प्रतीक है (तथापत्त का जन्म वृषभराति में हुआ था) घोड़ा (अशोक जिसपर बैठकर तथागत ने गृह-परिवर्तन किया था) बुद्ध के महान ग्यान का प्रतीक है और सिंह उनकी सार्वभौम सत्ता का। इस प्रकार चोबोर पट्टी का वाचक और प्राणवायु चित्र तथागत के जीवन की प्रमुख घटनाओं का व्यक्त करता है—वोपिमन के जीवन और ध्यान के उत्तम फेर का प्रवृत्त करता है या सार्वभौम है प्रतरर है और प्राणवायु है। बैठे हुए सिंह जो कभी एक परम्परा के जल को सहारा देते हैं मित्रता के प्रतीक हैं—सिंहान जो धर्म अशोक परवान मुन को समार की चारों दिशाओं में फैला देता। चोबोर पट्टी एक चक्र के आधार पर लगे हुए चक्रों के पुनः पर चक्रों की वृत्ति का प्रतीक है—यह है विजयी और गर्व विनाश हते जानेवाले चक्रों की वृत्ति का प्रतीक। बुद्ध विचारक यह धर्मचक्र के लिए बहुत पुनः धारण था। धर्म

चक्र प्राश्नस्तोत्रों द्वारा अपने स्थान से हटाकर नष्ट कर दिया गया। रथ का पहिया प्रपन्ना चक्र जो सम्पूर्ण संसार को सागर की सीमा तक गाय सकता है बिम्ब-साम्राज्य का प्राचीन वैदिक प्रतीक है। धंगुत्तरनिकाय तिकनिपाठ (सूत्र १४) में चक्ररत्न और बुद्ध की समानता को बिलसाया गया है। चक्रवर्ती एक श्यामप्रिय और धार्मिक सम्राट् है वा चम्म के अनुसार धाचरण करता है "उसके चक्र को कोई भी मानवीय दण्ड रोक नहीं सकता। इसी प्रकार तथागत 'श्यामप्रिय और धार्मिक शासक हैं जो चम्म के अनुसार धाचरण करते हैं और चम्म के बल पर अपने चम्मचक्र को (प्रत्येक दिशा में) अवशिष्टरूप से बसाते हैं यह चम्मचक्र संसार के किसी भी शत्रुासी प्राणुण देश मार प्रपन्ना दण्ड द्वारा रोक नहीं जा सकता।" बूसरी घटाव्ही ईसापूर्व में निर्मित बागपेत के एक रिस्सीफ में चक्रवर्ती के रूप में बुद्ध की सभी निधियां प्रदर्शित हैं। वे निधियां हैं चक्र हाथी घोड़ा रत्न रानी कोपाय्यस और मनी।

बुद्ध चक्रवर्ती प्रपन्ना धार्मिक शासक के एकमुख शासक हैं जबकि प्रसोक ने भट्टापूर्वक चर्मविजय करण हुए अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न पक्षों और नैतिक गुणों का उपयोग किया और स्वयं को चम्मकोचम्मराज के रूप में प्रतिष्ठापित किया। विम्बावदान ने तो उसे वास्तव में अनुमान चक्रवर्ती चम्मकोचम्मराजों कहा है। बौद्धपरम्परा में पौराणिक चरित्रों दम्भनेमि और महासुवस्सन की विभिन्नयी चम परायण शासकों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं और माना गया है कि प्रसोक ने उन्हींका अनुसरण किया था। इस प्रकार इस सिंहासीर्ष में प्रत्यक्ष कीर्तिसूचक कई बातों का सम्मिश्रण किया गया है। एक बात तो है बुद्ध के उत्पन्न-विषय की सार्वभौमिकता का विचार, जिसका प्रथम प्रवचन इषिपतमनियदास में हुआ था। बूसरी बात है प्रसोक का राजाधिराजत्व जिसने बुद्ध के निर्वाण के लगभग दो शताब्दी बाद पृथ्वी पर प्रपन्ना साम्राज्य उत्पन्न-सत्तों की सहायता से नहीं बल्कि चर्म की सहायता से स्थापित किया था। इसी सम्बन्ध में हमें प्रसोक का यह उक्ति "और धार्मिक शासक शासक हैं कि उसकी वास्तविक विजय चम्मविजय की और महाराजाधिराज ने प्रत्येक बार चम्मविजय प्राप्त की है केवल यहाँ (भर्षात् अपने राज्य के भीतर) ही नहीं बल्कि छः ही योजन दूर तक के सीमान्त प्रदेशों में रहनेवाले लोगों पर भी। प्रवर्त्ति प्रसोक का प्रभाव उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों तक था जो उसके समकालीन युगानी शासकों के प्रवर्त्तित थे। सिंहासीर्ष वास्तव में मौर्य-साम्राज्य की सहिष्णुता धर्मनिरपेक्षता और सार्वभौमिकता का उपयुक्त चिह्न है। साथ ही यह मौर्य-कला की सुव्यवस्था और सुन्दरता का भी सुस्पष्ट प्रमाण है।

इसलोक ने जो सातवीं शताब्दी ईस्वी में बमारस प्राण्य से सारनाथ स्तम्भ का चक्र इस प्रकार किया है "यह प्रस्तर-स्तम्भ लगभग सत्तर फुट ऊँचा है। पत्थर खेड की तरह चमकदार है। यह प्रकाश के समान चमकता और भिन्नमिताता है और सभी स्थिति में पूर्ण भट्टा के साथ इसका सामने प्रार्थना करते हैं समय-समय पर अपनी प्रार्थनाओं के अनुसार प्रच्छेद या बुरे चिह्नोंवासी आकृतियाँ बेलते हैं। इसी स्थान पर बुद्धत्व प्राप्त हो जाने के बाद तथागत ने चम्म चक्र-पञ्चतन प्रारम्भ किया था।" प्राकृतिक इन्धनियर और कारीगर सभी तक नहीं समझ पाए हैं कि प्रसोक-स्तम्भ की यह चमकदार

पालिष कंस की गई ।

सारनाथ में कुमारवती का अभिलेख है कि उसने धम्मचक्र जिन को इसी प्रकार पुनर्प्रतिष्ठित किया था जिस प्रकार वह मानवों के शासक धर्माधिक के समम था । इस अभिलेख का निर्देश बुद्ध की मूर्ति की ओर हो सकता है या धर्माधिक के समय खपसी धारही की । वह प्रसिद्ध मूर्ति जिसमें बुद्ध बैठ हुए अपना पहना उपदेश दे रहे हैं वृत्त-काल में सारनाथ में अंकित की गई थी । धर्म-चक्र-प्रवर्तन एक स्मरणीय अवसर था और इसे प्रतीक रूप में सभी भांति व्यक्त किया गया है—चक्र, बुद्ध के सर्वप्रथम सिष्य दो हिरण, दान देनेवाले व्यक्ति और प्रवचन की मुद्रा—जिसे धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा कहा जाता है—मे बुद्ध की अव्यक्त कीर्ति के साथ अंकित किया गया है ।

अध्याय ६

प्रारम्भिक बौद्धकला में मानवतावाद

अध्यात्म से मानवतावाद की ओर

छठी शताब्दी से तीसरी शताब्दी ईसापूर्व तक भारत के बौद्धिक वातावरण की विशेषताएं थी—तर्कशास्त्र, मिथ्यावाद और गहन अध्यात्मविद्या का विकास तथा अनेक सम्पादी-सम्प्रदायों और मतों का उदय जिन्हें 'धम्म' अथवा 'परित्राजक' कहा जाता था। इसी युग में अमानक रक्ष्यात के वन पर आदिवासियों और बर्ष प्राप्त में संयुक्त होकर राज्य और बर्ग बने तथा राज्यों और बर्गों ने प्रथम भारतीय साम्राज्य को जन्म दिया जिसकी राजधानी पाण्डिपुत्र थी। इस प्रक्रिया के दौरान देश में प्रसूतपूर्व संस्थाओं और विनाश-भीमा का उदय रहा। सम्पादी-सम्प्रदायों का उदय इसीका प्रतिफल था। बौद्धिक और राजनीतिक दोनों व्यक्तियों मध्य गंगा-वादी में हिमालय और गंगा के बीच की घाटी पर घटित हुई। यही वाक में बौद्धधर्म की पवित्र भूमि कहलाई।

जैनधर्म की विशेषताएं थी—वैयक्तिक विजय अथवा मोक्ष की कसौटी भ्रम और पतन पर विवेकशील मानव की विजय तथा दण्ड पर व्यापारित जमीनशास्त्र। इन्होंने जीवन और विचारों में भावना का स्थान नहीं छोड़ा था। इसी प्रकार बौद्धधर्म की विशेषताएं थी—आत्म का निषेध एवं तर्कनीतिबंधन दृष्टिकोण। इन्होंने भी मानव की कल्पनाशीलता को बढ़ावा नहीं दिया। किन्तु भारतीय जनजीवन के साथ निकट सम्पर्क न तो आत्मा-सम्बन्धी आध्यात्मिक सिद्धान्तों का वा और न जैनधर्म बौद्धधर्म के विस्मृत संस्थापकों—तीर्थंकरों और आजीविनों—के जन्म-सम्बन्धी सूक्तातिमूक्त तर्कों का। जन जीवन को प्रभावित करनेवासी भीड़ की मानव-पीड़ा के प्रति तत्पात की असीम व निर्मल कल्याणप्रिय विस्था तथा सर्वमौल्य कल्याण एवं सर्वमानवता का सनका सदैव। बुद्ध और महावीर तथा अनेक क्यकारी बोधिसत्त्वों और तीर्थंकरों ने करोड़ों मायुक्त भारतीयों के हृदयों को बस में भर लिया। सामाज्यजनविशिष्ट कल्याण और और कृपा से युक्त इन महान व्यक्तियों को 'मगध के उज्जयिन पर बिठाकर अनेक स्मारकों और प्रतीकों के रूप में पूजा गया। इस समय तक जनसाधारण अधिकशत ऊँची जातियों द्वारा आयोजित अश्वमेध पुरुषमेध राजपेय अथवा अन्य यज्ञों के बंधक-मात्र से अथवा जमी जमी जगह मजदूरों के समान खर्चवस्ती इन यज्ञों में काम लिया जाता था। अब पहली बार कोई ऐसी चीज उभरे जिसी जो उनके दिल-दिमाग को सीधे छू सकती थी। उपदेशकों और भिक्षुओं के लिए बौद्धधर्म एक ऐसा धर्म था जिसका आधार था विवेक अथवा उज्ज

जान धरवा धार्मिक धनुमन् । जनसाधारण के लिए यह एक भविष्य बन गया ।
निस्सैन सेमी ने इस कथानुसार को धारण्य उपमुक्त शब्दों में व्यक्त किया है । उन्होंने
शब्दों में प्रस्तुत है कि कथानुसार कैसे हुआ

स्वयं के निवासी देवताओं पर मानव छा गया । मिट्टी पर मानव के चरणचिह्न
बने और धारवा पर उसने धर्मिष्ठप्रभाव छाड़ा । जिन जिन स्थानों पर रह गया वे सब पवित्र
और पूज्य हो गए । उसका जन्म-स्नान एवं ज्ञान प्राप्ति प्रथम उपदेश तथा भक्तिकारों
के स्वयं तथा निर्वाण-स्वयं पुने जाने लगे । उसके प्रतीका की पूजा होने लगी । पहले पूर्व
में प्रतिप्रपन्नित प्रथा के अनुसार धार्मिकों ने मिट्टी और परपर के टीने ठाए । उनपर
प्रतीक स्थापित किए—ग्याय के लिए चक्र, एकलव्यत्व के लिए छाया । टीने को एक बाड़े
से घेर दिया जाता था । कमल बाड़ की लकड़ी के स्थान पर परपरों का प्रयोग होने लगा ।
इस प्रकार जन्म हुआ स्तूप के प्राचीन रूप का । छापी का स्तूप एक धारवं उदाहरण है ।
मिथु सबसे पद्यन करने के लिए बचमबद्ध होते थे किन्तु बर्षाधनु के तीन महीनों में उन्हें
कहीं न कहीं स्थायी रूप से रहना पड़ता था । अपने प्रभु के उदाहरण के अनुसार मिथु
भी यथासम्भव गुफाओं और कन्दराओं जैसे प्राकृतिक स्थानों में शरण लेते थे । फिर
भी धम-सप बढ़ता गया और धनवान हो गया । पर्यटक मिथुओं के लिए विधायक
बनाए गए जिन्होंने मठों का रूप धारण कर लिया । इस काम के लिए कन्दराओं को
सुव्यवस्थित किया गया उन्हें और गहरा करके कोठरियों में बाँटा और सजाया गया । यह
स्पष्ट परम्परा के प्रति उनके धारवा का प्रतिफल था । प्रारम्भिक पूजा-विधि का भी
विकास हुआ । बौद्धधर्म की धपनी पूजन विधि तथा धपने सामुहिक सरकार हो गए । धनुक्त
जीवन के लिए मठ धारवक था और मठ के लिए धर्मिष्ठ था पूजागृह मन्दिर ।

यही वह बिना धी जिसके द्वारा बौद्धधर्म ने प्रारम्भिक भारतीय ब्रह्मा को वह
प्रबल प्रथा दी जिसके स्वर में धारवा का संस्कार करने की क्षमता मानवीयता और
वीरतामकता थी ।

ब्रह्मा और नैतिकता में प्रभाव का संघदान

मेमास्थनीय और कटिपथ ने लिखा है कि जनसाधारण को बानुदेव धरवा धरम
की धृतिवों के दर्शन का धर्मात्त था और ब धुब ठाट-ठाट से मन्वय को पूजा करते थे
तथा रक्षयात्रा निवासते थे । धर्मात्त के मठों निवासित में लिखा है कि सोम बीमारी
बिबाह उत्पत्तीनोत्ति तथा यात्रारम्भ के समय धनक प्रकार के मंगल करने थे तथा
इनसे सम्बद्ध लुब्धा धपवा धनुषों के प्रति पूरता का निःश्रीय टहराया गया है । धर्मात्त
ने इन धनु एवं निरपक संस्कारों का निरस्तार किया और धारवा दो निःप्रज्ञान इन्हें
नम से नम मनाए और धार्मिक मंगल धपवा धर्मवासन की धार धर्मात्त ने धर्मात्त
ध्यान से जो धर्म की सीति है । जो वे विधायित्व में धार्मिक उपधर्मों का नगम है । इन
उपधर्मों में धर्मात्त की धर्मात्तनुसार देवताओं की प्रतिमाएं प्रवर्तित की जाती थी और
बनाया जाना था कि निरुपधर्म धर्मवासन से कोई भी धर्मात्त उन देवताओं के निवास
सुख नहीं मकता है ।

‘विश्वामित्र’ में स्तूपों की ग्राहकियों के शिखरों के समान ऊँचा बताया गया है। अनेक स्तूपों में बुद्ध के धर्मशेपों को प्रतिष्ठापित किया जा चुका था और बहुसंख्यक लोग दर्शनार्थ वहाँ जाते थे। महाग् भौम-सम्पाद बर्मासोक ने स्तूपों के बर्म और बुद्ध के चिह्नों की पूजा को लोकप्रिय बनाने में स्वयं बहुत कुछ किया था। स्तूप मूलतः समघामभूमि था किन्तु वह बौद्धधर्म का ही विश्वास स्मारक बन गया। बलबुझे जैसा उसका ऊँचा और ध्यानहार कर्मका इस बौद्ध-विश्वास का प्रमाण है कि सभी पार्थिव वस्तुएं लम्बर हैं। स्तूपों के अनेकानेक बपटे शिखर पर एक स्रजहाता है जो बर्म की एकलक्षणता का प्रतीक है। भार हुत का स्तूप विनष्ट हो चुका है किन्तु अशोक द्वारा निर्मित बोराही कुट ऊँचा सोपी का स्तूप आज भी उपस्थित है। उसे देखकर आज भी हम समझ सकते हैं कि बुद्धप्रवृत्त प्रेरणा की सम्पूर्ण सामाजिक पृष्ठभूमि क्या थी और उनकी मृत्यु के पश्चात् सताभिषेदों तक उनके संवेस को किस प्रकार प्रसारित किया गया था।

अशोक मानवतावादी था। उनका उद्देश्य था भविष्यतः और कर्तव्यों की प्राचीन संहिष्णु धार्मिक संहिता (पुराणा-यक्री) को नष्ट होने से बचाना। य दोनों ही बातें अनिवार्यतः प्राचीन बौद्धधर्म को कठना और उबारना से सिक्त हुए की वेन थीं। अशोक स्वयं बौद्ध थे। फिर भी अपने धर्मशेखों द्वारा जिन्हें वे ‘बर्मसिपि’ कहते थे उन्होंने किसी विशेष बर्म का नहीं करना जीवन को प्रच्छा बनाने और ऊँचा उठानेवाले उधार एवं संहिष्णु नैतिक और सामाजिक नियमों का प्रचार किया। अशोक के बर्म का सार है बर्म का यशोमान (बर्मस्स ज दीपमा)। सातवाँ धिमाभिसेख इस प्रकार है ‘सम्पाद बेवानों प्रिय प्रियदर्शी की इच्छा है कि सभी बर्मावसन्धी सब जगह रहें। इसके लिए धार्य संयम तथा मस्तिष्क की निर्विकारिता की आवश्यकता है। किन्तु मनुष्यों की मानताएं और वास्तवात् क्षमता-मज्ज होती हैं। इसलिए वे (अपने कर्तव्य का) पूरक प्रवृत्त प्रसन्न ही प्राप्त करते। अशोक प्रचारक के लिए भी अपने धार्य के अन्तिम दिनों में अपनी जाति के परम्परागत विवेक के अनुसार उन्होंने मानव के लिए धार्मिक प्रकाश विचार क्षमता और इच्छाधर्म (पराक्रम) की आवश्यकता पर भी जोर दिया। अशोक ने प्रथम सिद्ध बर्म में कई नई प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ कीं उन्हें लागू करने के लिए कानून का सहाय लिया तथा महामार्गों को खोला वह हम काम में लग जाने को कहा। ये नवीन प्रवृत्तियाँ थी पशु-पक्षियों की हत्या का पूर्ण निषेध तथा ‘सामाज्यजन में और विधेयक से विज्यों में प्रचलित अनेक प्रकार के शूद्र और निरर्थक सस्कारों एवं समारोहों’ का ठीरस्कार।

सम्पाद के इस प्रकार के धार्य स्पष्ट और नैतिक होते थे। उन्हें जनसाधारण का सहयोग भी आवश्यक मिला होगा। कारण जिस समय अशोक ने बौद्धधर्म स्वीकार किया बुद्ध की मृत्यु हुए दो सताभिषेदों बीत चुकी थी फिर भी जनसाधारण ने एक मानववादी बर्म को स्वीकार कर लिया। इस बर्म ने मनुष्यों बाह्य कृषि से सम्बन्धित मजदूरों साधन हीनों धार्य बर्मा-जातिओं और पाख-पक्षों के छोटे-बड़े राज्यो के प्रति सहिष्णु और संहिष्णुता का प्रचार किया। इसके फलस्वरूप सर्वत्र धान्ति एवं मुरझा प्याप्त हो गई। अशोक से पूर्व बौद्धधर्म मयब का एक स्थानीय बर्म था। सामाज्यजन के लिए इस बर्म का बर्म था स्तूपों की तीर्थयात्रा करना तथा ‘मगवतो की पूजा करना। अशोक ने इसे एक

सबभ्यापी जादू-टोने के कारण हो सकी थी—बुद्ध मानवीय-बैबीय है। पशु के घने किर
हैं और मानव के भी एकाधिक किर भवना धर्म हैं।

तीरिया नन्दनमङ्गल म घभी कुछ दिनों पूर्व एक सुवर्ण-पट्टिका मिली है जिसपर
पृथ्वी की मूर्ति लकी है। यह मूर्ति सिन्धुघाटी और भारतीय धर्म-कला के बीच की सबसे
नवीन और महत्वपूर्ण कड़ी है। इसकी निरावरणता गुह्यार्थों का अतिरञ्जन और सरस
यथावकाशी रचना का आधार सिन्धुघाटी-परम्परा है। अर्थात् का मत है कि यह पट्टिका
राज्य घाटी और सातवीं शताब्दी ईसापूर्व की रचना है। बाद के शाहजनों और मुहम्मदों
म मूर्तियों और देव प्रतिमाओं तथा लकड़ी के मूर्तियों के अनेक विवरण हैं। मीर-मुग
में काष्ठारों का स्थान प्रस्तर चित्रियों में ले लिया था। पिछली सहस्राब्दी के अन्तिम
और वर्तमान सहस्राब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में कृष्ण शिव धर्म का ईश्वर अष्टम एव भी
की प्रतिमाओं की पूजा अवसरमय रूप प्रचलित रही होती। पश्चिम में प्रतिकृतियों
भवना मूर्तियों का विक्रि किया है और निम्ना है कि वे भीमिका का साधन थीं। धर्मशास्त्र
तथा आपस्तम्बवृत्त मुहम्मद में संरक्षित रहताओं की उपासना की बात लिखी है। इन
देवताओं में यक्ष भी शामिल हैं। पश्चिम में इन देवताओं में से कुछ का नाम लिया है
जैसे महागर्भ भवना वैष्णव-कुम्हार संवत् सुपरि विद्यास भवना और धर्मना। ज्ञात
धर्मनामून म इष्ट स्तम्भ यह शिव वैष्णव और नाग देवताओं का भवन है। इसी
मून में सम्राट् क मुगर्भस्थित प्रासादों के लकड़ी के बीछटों पर लकी देवियों की मूर्तियों
और देवियों का भी विक्रि है। वर्माओर पश्चिम में विभक्त म बीचटों पर बने 'पोट्टे'
(नेपालीयतम) और लकड़ी के स्त्री-मूर्तियों (वृद्धीतमिका) का विक्रि है। यक्ष और
यक्षोक्तपूर्व युगों में लोकमान्य देवताओं की काष्ठ-मूर्तियाँ और लकड़ी की सजावटी और
पर लकी करना रूप प्रचलित रहा होता। प्रारम्भिक भारतीय मूर्तिकला का क्षेत्र स्तूपों
के तोरणों और देविकाओं तक सीमित था। इन बातों की ही रचना परम्परागत काष्ठ-
भाकाओं में होती थी और लकड़ी पर लकी करमनासे कारीगरों की इनपर अमिट छाप
थी। बड़ा छारनाम भीटा और मन्त्रा में पकाई हुई मिट्टी के किर पाए गए हैं। इन्हें
सामान्यतः मीर-मुगीन बताया जाता है और सिन्धुघाटी की मूर्तियों के साथ इनकी समानता
स्पष्ट होती है।

बौद्धकला में लोकमठों का परिपाक

परम्परागत शाहजनों और बौद्धधर्म के बीच-बीचे अनेक प्रकार के लोकमठ
प्रचलित थे। इनकी जड़ें काफी गहरी थीं। धार्मिकता से लसी या रही बुद्ध-पूजा का
स्थान बौद्धधर्म के कारण बोधिवृक्ष-पूजा में ले लिया। इसकी अनेक कलाएं प्रचलित हैं।
मुजाता और पुन्ना जब स्वर्णोष (वरगर्भ) बुद्ध के पास पहुँची तो उन्होंने बुद्ध को बुझाया
समझ लिया। एक और कथा है। बनारस के समीप एक सप्तम वर्ष में जगती हाथियों
का एक मूँड स्वर्णोष की पूजा करता था। वे कलाएं उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती हैं।
इसी प्रकार नवीन धर्म में यक्ष नाग संघर्ष देवता बुद्ध का पृथ्वी भवनाती सर्वरता की
देवी अष्टम और भूतों की पूजा-परम्परा को ग्रहण कर लिया भवना उनके साथ समझीता

कर सिमा। इनमें से अनेक की मूर्तियाँ भारद्वाज साँची धीर कायममा में स्तूपों की संरक्षिकाओं समवा मात्र तोरणद्वार की सजावट के रूप में उपस्थित हैं। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि लोचमत्त धीर भोजविद्वान के साथ उत्कृष्टतम धर्म समझीता कर रहा था। साँची स्तूप के तोरणद्वार पर उन्नतकली तरणी यली सापरवाही-निमित्त ब्रह्मलता से घास मँजरी सी भूम रही है। उसके बीच से बौद्ध भिक्षु भिक्षुणियों के कितन ही दम दत्तालियों के बोराम मजरे होये किन्तु यली के हृष धीर जीवन की धारिम साममा तमा भिक्षु-भिक्षाणियों के कठोर तप धीर अत्यामात्रमा में कितना विराप है। इसी प्रकार भारद्वाज म एक रिमीष्ट है जिसम अम्पराओं का एक दल नाच-गा रहा है। इनके नाम तक दिए गए हैं। मूमडा मुदगमा निमकेली धीर धसम्भुपा।

बौद्धधर्म ने जनता के विद्यते समार्यवर्ग के लिए अपने द्वार खोल दिए। इनके फलस्वरूप लोगों में धर्म के प्रति विश्वास रचित जागरित हुई। इसका ही प्रमाण था कि जन साधारण के विश्वासों धीर यतो का मजीन सम में परिवर्तन हुआ—स्तूपों धीर बली यधों धीर बलिणियों मायों धीर अम्पराओं पृथ्वी घासमायों धीर अम देवों की पुजा का बौद्ध धर्म में समावेश हुआ। इस प्रक्रिया ने भारद्वाज साँची धीर कायममा की रक्षा पर भी पर्याप्त प्रभाव डोड़ा। दयावाचन के प्रति जगत्मात्र विद्युत् सौचित्य वाचकका के प्रति हर्ष तथा प्रारम्भिक बौद्धधर्मा की प्रचुर कानुष्ठा के उद्गम से वे—जनसाधारण का जगत्मात्र धीर कल्पमाधीनता तथा बौद्धभिक्षुधर्म की कदमा धीर मानवीयता।

परम्परावादी ब्राह्मणधर्म ने सन्तुलित लोकप्रिय देवी धीमा की प्रचुरता का देवी धीर कायम सुदर्मा का जीवन की देवी के रूप में ग्रहण कर लिया था। भारद्वाज के रिमीष्ट में धीमा सावधान धीर बहिर्मुखी है धीर मुदगमा अस्तमुखी किन्तु समुसन दोनों म है। धीरेवता-सम्प्रदाय का किंक काट के समय म मिलिम्पम्ह म धावा है।

कता म प्राचीन यथाभववाद धीर मजीन आध्यात्मिकता का मिथ्याण

दीदारपय, बैसनगर धीर यथा में बल धीर जीवन की देवियों तथा पृथ्वी के यधों की धादिवालीन विमानकाय मूर्तियाँ मिली हैं। इनपर विपुपाटी की मूर्तियों के प्रति मानवीय तज धीर सामम्य का स्पष्ट प्रमाण है। इनकी रचना का कारण है जनजीवन में प्रचलित जादू-टाने की एक प्रचलित विद्यामा या। जिसका धारम विपुपाटी-नरहति में हो चुका था। किन्तु एक उत्कृष्टतम धर्म ने इसे स्वयं में मिला लिया धीर विद्यामाधीन धर्म की धावरपयताओं के अनुसार एक मजीन विद्यामा का विद्याम हुआ। धर्मस्वरूप मजीन दीमा का अन्त भी मंजीनर हो गया। साथ ही परम्परागत पशु धीर बीनों के कावों—एक धारिम वृष्टिकोण धीर परम्परा के धर्मगैव—की भी समाप्त रमा गया।

पशुधों की रचना म मोर्य धीर धृंग कर्मात्त प्रामाणीय हैं। इनका साधार विपु पाटी-नरम्परा है। इनकी वृष्टि माहेन जादूकी की मुहर पर धारिम हाथी तथा घासोत्र मा। पीनी चट्टान पर मरवाए गए हाथी की तुलना करके की जा सकता है। राजा म एक-मा धावाकाय धर्मगैव है। ब्रह्मवादी पृथक्ता तथा मोन धीर है किन्तु धीमी के हाथ। धर्मपुरवा के धीर धीर सावधान के विह्व की कर्माकाय संरचना के भीतर

साध्यात्मिक और सौंदर्यात्मिक वृष्टि है। इस वृष्टि का जटिल ताना-बाना बिचार और भावना की दो प्रमुख प्रकृतियों—हृदय्या और मोहेनबोवड़ो काम तथा सारमात्र और सांघी काम के बीच की घाटाभियों की अत्यन्त प्रभावशाली प्रकृतियों—द्वारा बना गया है। पहली प्रकृति है परम्परावादी साङ्गणधर्म में घेष्टतम सत्ता या बौद्धधर्म में अनेकानेक बार अग्रे महापुरुष या बोधिसत्त्व के जीवन का प्रभु स्तरो और विभाओं पर अभिचिन्तता की एक पारमौकिक भावना जिसके कारण ही पशु भी मनुष्यों की भाँति विवेक गौरव और दानस्वोपभोग के अधिकारी हो जाते हैं। और दूसरी प्रकृति है सभी मौलिक चीजों के प्रति मानव की असीम सहृदयता और करुणा। बौद्धधर्म और जनधर्म ने इन्हीं दोनों प्रकृतियों को भारतीय संसार का आधार बनाया। वृष्टि की इकाई और परम्पराधीनता की भावना तथा बुद्ध के जन्म संस्थापक और मनुष्य की महान् चमत्कारों की घास्वत प्रकृति ने भारतीय कला को एक साध्यात्मिक सर्वकासीन गुण प्रधान किया तथा कला के प्रारम्भिक अष्ट रूप का मुद्रपात किया।

भारत और सांघी की कला के आकारी और साध्यात्मिक मूल्य

भारत और सांघी और बोधधर्म की कला अष्टकमुगीन धववा अष्टक-मुग के कुछ भाग की है। उस काम की प्रमुख प्रकृतियाँ इन स्थानों की कला में स्पष्ट परिमणित हैं। ये प्रकृतियाँ निम्न हैं प्रथम स्वापत्य-आकारों तथा सजावट के मनुष्यों के बीच कोई विभाजन देखा नहीं है। यहाँ से इस मौलिक भारतीय परम्परा का आरम्भ हुआ जिसमें स्वापत्य और मूर्तिकला दोनों मिलकर एक सम्पूर्ण इकाई का निर्माण करते हैं। दूसरी प्रकृति है संरचना की प्रबलमान लय। अनेक कोनों और अनेक मुनियोजित तलों पर प्राकृतियों पौधों जानवरों पुरुषों परियों और प्रतीकों का एक तनाव की अवस्था में यह लय बहान करती है और साथ ही एक दूरदर्शी और सचेतन गंभीरता के बल पर उनमें एक प्रकार का सामंजस्य स्थापित करती है। तीसरी प्रकृति है 'अधिक वर्धन'-सीली। इस सीली में विभिन्न प्राकृतियों और वस्तुओं को रिमीफ में बार बार प्रकट करके कई चट्टानों के रूप में एक पूरी कहानी कह दी जाती है। इस विधि का आविष्कार बौद्धधर्म के कर्म-सम्बन्धी सिद्धांत के आधार पर हुआ है—यह सिद्धांत है कि कर्मनुसार अन्धे या बुरे परिणाम समय के प्रवाह में होत हैं। इस सीली में कलात्मक अभिव्यक्ति में अत्यधिक गहराई और तीव्रता का जन्म होता है।

अधिकार प्रारम्भिक भारतीय मूर्तियाँ 'गिनीफ' हैं। इसका एक नाम यह है कि मूर्ति की चेष्टाओं को उभारने के लिए प्रकाशप्रकार तथा अपेक्षाकृत गहरे रंग की पृष्ठ-भूमि का उपयोग अत्यन्त औपचार्यपूर्ण किया जा सकता है। किन्तु निस्संदेह भारत और सांघी में स्पष्ट अन्तर है। सांघी के कुछ पशुओं जैसे हाथियों और भोजों तथा यक्षिणियों की चेष्टाओं में ऐसी विशिष्ट लय और रोमा है जो भारत में कहीं नहीं मिलती। यहाँ की संरचना अधिक कठिनी हुई और विभिन्नतायुक्त है तथा घाटियों की पारोमिक अष्टाएं अधिक उन्मुक्त हैं, यहाँ तक कि उनमें एक लिखावट अथवा हलचल भी है। इनके प्रतिरिक्त प्रकाश और छाया का अपेक्षाकृत अधिक उपयोग है। अष्टक

भुमीय धार्मिक बैभव एवं प्रदर्शन छाँची में पुण्यत उपस्थित है, कई स्तनों पर तो महा काव्यों जैसी महत्ता है। इसके विपरीत भारहुत की कला की प्रेरणा तथा प्रकन की विशेषताएं हैं धार्मिक नाटकीय धक्ति तथा भारत के बिहार और संवेदना को बौद्धधर्म प्रकन एक प्रकार की काव्यात्मक तीव्रता और कठना। किन्तु भारहुत, बोधगया और छाँची सभी जगह एक स्वच्छन्द उत्सवजनकारी जमात्मक समय परिभ्याप्त है जो किसी निश्चित आकार में नहीं बांधी जा सकती। प्रत्येक आकृति का छोटा स छोटा भाग भी वही सावधानी से तलाशा गया है और प्रत्येक के विविष्ट 'पौष' का आधार है एक समग्र परिभ्याप्त समय धारि से घटत तक अनुकृपता, एक घटत संयुक्तन जितमं बौद्धधर्मकार मर्त्य घटित होता दीकता है तथा पारसीकता को सर्वत्र भ्याप्त है। यह कलात्मक मान्यता घनेक प्रकार की आकृतियों में उकन रही है और निश्चित आकार का बन्धन सामाजी से स्वीकार नहीं करती। और इस सहायता का आध्यात्मिक आधार यह पारना है कि मनुष्य के प्राण तथा पीषों प्रकवा पशुओं के प्राण में किसी प्रकार का घटत नहीं।

प्रारम्भिक बौद्ध-पशुमूर्तियों की अप्रवृत्ता

भारहुत, बोधगया और छाँची तीनों स्थानों के 'रिमीछों' की एक घटितीय तकनीकी उपलब्धि है मानव उसके छाँची पशुओं और वनस्पति-संसार के प्रकन में एक पूर्व अनुकृपता की सिद्धि—सभी जीवन और कर्म घनकरत तक में परस्पर सम्बन्धित हैं तथा सभीमें दौरव कठना और आनुस्व की भारतीय भाषना प्रवाहित है। इस प्रकार की कर्तव्याधी अनुकृता भूनाम प्रकवा चीन की सर्वोत्तम प्राचीन कलाकृतियों में भी नहीं पाई जाती। छाँची के पूर्वी द्वार की बीचवाली पट्टी के 'रिमीछ' में कुछ एक घने जलस में बैठे हैं जंमसी जानवरों दोरों घेतों, हिरनों पशियों छाँचों और ईष्यों के बीच प्रकने। यह है समस्त केवन प्राणियों का पवित्र आनुस्व। यह दुस्म समय कुछ के जीवन की एक घटना का प्रकन है। बौद्धाग्नी में आत्यधिक कलह से ऊबरकर सहायत एक बार सघ का परिचाय करके पशुओं के बीच रहने गते गए थे—ठीक वही तरह जैसे उन्होंने बोधि मत्स के रूप में पिछपी घनेक स्थितियों में किया था। इन सबसे पशुओं के बिबध में एक महीनसीधय दिगसाई प्रकन मगता है। और हम इस परिचाय पर पटु होते हैं कि प्रारम्भिक भारतीय भूनिष्ठा में पशुओं को घतिशकृतिक भुयों और क्षमताओं से मुक्त घकित किया जाता था।

हमने घतिरिक्त मनुष्य पशु वेह और पीषों की मूर्तियां जिस स्वाभाविकता स्वच्छरता और भावना की घटनिष्ठा के साथ घन्धित की गई हैं उनकी तुलना में भूनामी कला भी नही ठहर सकती। पशुधन का कथन है 'भारहुत में कुछ पशु जैत हाथी हिरन और बग्नर संमार के बिनी भी भाव की भूतियों ने घन्धित घवती तरह घटित है। यही भाव कुछ पशुओं के लिए भी गत्य है। स्वारस्य-मन्धरी घाटी-घाटी गरानों की मुडरना और घारीकी प्रवंचनीय है। किसी ईमानदार, सादेर राकन-भूक कला का हमने घटिक मुन्दर उगाहरण घायह और नहीं नहीं मिल सकता। प्रारम्भिक बौद्ध-पशुमूर्तिका में पारजातक स्वाभाविकता, प्रगाढ़ भाव प्रकाशन तथा कीमन्ता व

भारत की अंतरंग भावनाओं का जो मिश्रण मौजूद है उसका समकक्ष यूरोप में 'गॉथिक' व 'बाट्टो' की पद्धतों के बकरों, घोड़ों और नेमनों में ही मिल सकता है। यूरोपीय गॉथिक कला की बौद्धकला की भाँति मानवता के प्रति उसी निष्ठा और सहृदय दृष्टिकोण से प्रेरित है।

सुनुमारता, सूक्ष्मबोध तथा आन्तरिक प्रभा की दृष्टि से भारत और साँची के निम्न जगत्प्रसिद्ध स्थावरक निर्माण से ध्यान देने योग्य हैं। 'नागपद्म' और 'सदृश जातक' कलाओं को प्रकट करनेवाले भारत के हाथी, भारत के ही एक भवानी कहानी को चित्रित करनेवाले बुद्ध के बगमानुष और हाथी तथा 'रत्न जातक' कला को प्रकट करनेवाला धानदार सुनहरा हिरण तथा साँची के पूर्वी और उत्तरी द्वारों पर पत्थर द्वारा भेजे घोड़े और बगमानुष।

प्रारम्भिक बौद्धकला में बुद्ध के प्रतीक

सास्ताना की कि बुद्ध को सशरीर चित्रित नहीं करना चाहिए। इससे परोक्ष रूप से बड़ा भाग मिला कि बोधिसत्व को पशुओं के रूप में प्रकट किया जाए। भित्तिचित्र में नागसेन से राजा प्रश्न करते हैं "एक स्तूप निर्मित करके तबानत के शरीर बाहुनी रत्नों को अर्पण प्रथमा उपहारस्वरूप रखने से क्या लाभ है क्योंकि तबानत का प्राणान्त हो चुका है और वे इन्हें स्वीकार तो करते नहीं? जब बुद्ध से प्रश्न किया गया कि निर्वाणप्राप्त मानव की मृत्यु-परचाय प्रवस्था क्या होती है तो उन्होंने गम्भीर मोन धारण कर लिया। प्राणियों के विनाश पारावार में बुद्ध की मूर्ति की अनुपस्थिति वास्तव में इसी मोन का प्रतीक कलात्मक प्रकट है। चित्रणधीन व्यक्ति इस दीपक के समान बुझ जाते हैं जो एक बार बुझने के पश्चात् 'बुझने दीपक को प्रज्वलित नहीं कर सकते। यह अस्तित्व की ऐसी प्रवस्था है जो भगवान् और प्रकृत है तथा जिसके बारे में अभी धर्म में तथा जानेवाले व्यक्तियों को और अधिक प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं है।

बुद्ध को मानव-रूप में कहीं प्रकट नहीं किया गया है कि कहीं उन्हें मानव न समझ लिया जाए। कारण बुद्ध ने कहा था कि मानवों के बीच वे न मानव हैं न देवता और न दामन" वास्तव में वे 'बुद्ध' बने ही नहीं। 'कलिंगबोध जातक' में बुद्ध से प्रश्न किया गया कि उनकी अनुपस्थिति में किस प्रकार के प्रमाणों से समाधि प्रवस्था प्रतीक द्वारा उचित ढंग से उनका प्रतिरूप स्थापित किया जा सकता है। इसका उत्तर मिला कि उनके जीवन-काल में प्रथम प्रमाण के पश्चात् उनका सर्वोचित प्रतिरूप बोधि-बुद्ध है प्रथम मृत्यु के पश्चात् शरीर-बाहु। मानव-रूप-प्रतिमा के 'अधिकांश' विनात्मक प्रकट को निराधार मानव-प्रमाण प्रमाण कहकर निम्ननीय ठहराया गया है। "जहाँ मूर्तिकला का विषय बुद्ध के पार्थिव जीवन है सम्मिलित है वहीं कहानी की प्रवस्था प्रवस्था में उनकी उपस्थिति को उचित प्रतीक द्वारा प्रदर्शित किया गया है। भारत और साँची में बौद्धकला इस एक और पाँच बुद्ध के पार्थिव अस्तित्व के प्रतीक हैं जिसकी वस्तुता प्रजापति और एसापन ने की थी। जिस का शीर्षक ही है 'बुद्ध की पूजा' फिर भी बुद्ध जातक-वृत्तों में बोधिसत्व की भाँति मौजूद है।

बौद्धधर्म की प्रारम्भिक मूर्ति-विरोधी प्रवृत्ति के कारण भारतीय-घोर इसलिये, प्राच्य-कला में घमूर्त प्रतीकों और चिह्नों (motifs) का बाहुल्य हो गया। इनमें से कुछ तो निस्संदेह वैदिक घोर भारतीय के किन्तु कुछ को निकटपूर्व से ग्रहण कर लिया गया था। फिर भी, जब बौद्धधर्म ब्रम्हा-जनसाधारण का धर्म बन गया तो भारतीय कला में मानव शरीर-सम्बन्धी घोर घमूर्त तत्वों का ऐसा सम्मिश्रण हुआ जो बौद्धिक ज्ञान और भावनात्मक उदात्तता दोनों को आवश्यकताओं के अनुकूल था। धर्मागमों की मूर्ति कला में ब्रह्म की प्रतीक पाशुकाओं के पाँच घसस्र गुम्फर स्थित साष्टांग प्रणाम की मुर्तियों में ही घोर ब्रह्म के प्रति जनसाधारण की अपार भक्ति को पूनः व्यक्त करती हैं। बौद्ध धर्म घोर ब्राह्मणवाद ने आपस में मूर्ति-सम्बन्धी विवाद का निषेध अपनी ही कर लिया और मान लिया कि बुद्ध ने महत्त्वपूर्ण मूर्ति स्वयं नहीं किन्तु उनके द्वारा प्रेषित धर्मीयक प्रतिस्था है। उद्योगपुनरीक में स्पष्ट लिखा है कि मूर्ति का धारण कोई मुख्य नहीं है। तब कुछ उस मूर्ति के स्थापन करनेवाले के कम पर निर्भर है। वह व्यक्ति इतना चिन्तमणीन जाना चाहिए कि उस विशेष धारुणि का देखते ही उसे ऐसा मामूम होना चाहिए मानो बुद्ध सगरीर या उपस्थित हुए हों। वह भावनात्मक रूप से गिद्ध धिस्तर के धर्मीयक सम्मेलन में पहुँच जाता है।"

स्वयं बुद्ध की मूर्तियों निर्मित करने का तो निषेध था किन्तु अपने पूर्वज मा में बुद्ध ने धर्मेक पशुधर्मों में जिन साधुस ब्रह्मा घोर धार्यस्याय का परिचय दिया था उन पशुधर्मों को मूर्तिकर्य में प्रस्तुत करने की कोई मनाही न थी। यद्यपि पशुधर्म बुद्ध के प्रचलित स्थापनापन बन गए। उन्हें देखकर जनसाधारण के मन में बुद्धा घोर भक्ति की भावना का जगम होता था घोर उन्हींको गुम्फर मुक्तोमल रिक्तोका के रूप में प्रस्तुत करके स्थापन की निर्मलता घोर प्रतिष्ठा को व्यक्त घोर पुनर्युजीवित करने का प्रयास किया गया।

कला में कथा

पशु-कथाएँ मुख्यतः जातकों से उद्भूत हैं। प्रारम्भिक बौद्धकला की समय विषय वस्तु भी जातक ही हैं। केवल पहली शताब्दी ईसापूर्व से बुद्ध के जीवन प्रसंगों प्रचलित महान् कथनधारों को प्रकट किया जाने लगा। जातकों की मूर्ति हुई प्राच्य समय की एक प्रतिमा से। ब्राह्मण मुखेय ने धर्मनिरपेक्ष रूप पहलू वैयक्तिक मान घोर प्रभुत्व करने की संभावना की परीक्षा कर दिया था। उन्होंने लिखा है "यै मय्य वा सर्वधेयं ज्ञानं प्राप्तं कर बुद्धा हं घोर जाह्ना हं वि सभी मोक्ष सत्य की मोक्षा पर या ज्ञान विनये के प्रतिस्था के सागर की लुप्तता पा कर गकें। तभी मैं स्वयं निवृत्तता प्राप्त करूँगा। बुद्ध निर्मम में १०० कथाओं के संग्रह का विषय है। भारहुन के रिक्तोका में जातकों के जीवन नाम तक लिखे हैं घोर एक स्थान पर तो धार्या इतना भी लिखा है। कुछ प्राचीन कथाएँ तो बौद्ध धर्म से भी पहले की हैं। प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में विविध प्रिय वस्तुओं के रूप में इन कथाओं की बुना गया इन तथ्य से एक लाभ यह हुआ कि धर्म-सम्बन्धी कला की विचारणीय स्वरुप धारणी की बहाली कहने की धारिय प्रवृत्ति पर हावी नहीं हो लगी।

एक घोर पीढ़ी भर पीढ़ी मूर्तिकार सत्ताधियों तक पत्थरों को ठरासते रहे और दूसरी घोर भावक भिक्षु भारतीय सामाजिक जीवन के प्रसंग में चौकड़ों कथाओं का वाचन करते रहे। भारतीय जीवन अपनी समग्रता में अपनी समस्त उत्तमता और कला दुष्टता और कृपानुता पुरस्कार और दण्ड जीवन और मृत्यु की भावना के सहित, पूरे मन-प्राण से बीजमपूर्वक धर्मित है, और संसार की समस्त धनस्वरता के ऊपर भुगो-भुगोटक मानवों के नेता भगवतो साधुमुनियो बोधो का—बोधेयताओं और दानवों बलारमाओं और बीनों राजसों तथा मूक पशुओं के भी प्रससापात्र है—साधनव्यवस्थित है। केवल कला कहने का ध्यान देने के लिए भी कथाओं—जनमानुस की रीतानी कीए का मोम मोर की प्रसन्नता प्रकृति की भीषण क्रूरता अपने से कम सौभाग्यसाक्षी व्यक्तियों के प्रति मायम की कठोरता पशुओं के प्रति उसकी घट्टतलता उसकी सनक तुच्छताएं और प्रलोभन दुष्ट पत्नी का विश्वासघात यकभी स्त्री की अपवित्रता प्रेम-रीणी मुहार द्वारा प्रबुद्ध भूइयो का धाबिष्कार व्यापारियों के काफिले को पचहीन मरसूमि में सहसा पानी की प्राप्ति प्रपवा विश्वासकाय मत्तमी द्वारा तूफान में उड़े नीका-धाबियों की रक्षा—को बरोक-टोक धर्मित किया गया है। धार्मिक बोझकला में प्राचीन कथाओं और बोध कथाओं की इस मूल्यवान विरासत (सब तो यह है कि ये कथाएं और बोधकथाएं भारत की सीमाओं से बहुत दूर तक जा पहुँचीं और बाह के भुवों में इन्होंने पेस्टा रोमानोरम तथा ईसाई बोधकथाओं का भण्डार बढ़ाया और नया रंग दिया) को तो अपनाया ही साध ही साहित्यिक वस्तुओं को भी ग्रहण किया। यही कारण है कि शासक शासक शासक बलवत् प्रसोक चन्द्रक धाबि पेड़ अपनी कलियों फूलों और फलों-समेत धर्मित हैं और इनको परम्परागत ढंग से नहीं दशाभाविक ढंग से ठराया गया है। सारी कथाओं को इतनी सुन्दरतापूर्वक धर्मित किया गया है और कोषमपूर्वक बोहराया गया है कि मानवीय जीवन और भाग्य की दृष्टि से वे कालातीत हैं।

हाथी और कमल के प्रतीक

मानव, पशु पक्षी सरीसृप उपवेशक और देवता का संकलन हर संभव परिस्थिति और सकटकाल में किया गया है और मानव की समग्र तथा पूर्णता के लिए उपवेशनिकासा गया है। जीवन के घटित नाटक में हम पाते हैं कि प्राथमी हिरन या घोड़ा तथा हृत्पसार, कठफाड़वा और कछुए के जीवन आपस में गुंथे हुए हैं सभी जीवित प्राणियों के बीच एक धर्मनिर्भरता है एक महान धर्मनिर्भरता जो बोजिसत्य के जीवन में मूर्तिमान उपस्थित है। पर्वत जागरित, घनेरु जम्मघारी बोजिसत्य की जीवनकला में पशु-जीवन का ध्येयत्व भली प्रकार प्रदर्शित है और उसके सभी स्तरों पर अवस्थित संघर्षों और त्यागों का चित्र किया गया है। धार्मिक बोझकला में भारहुत बोधगवा सांघी और उपपगिरि में कमल प्रतीक है हाथी (विरनार और कास्ती में घघोक के पिशाभिमेल का मजोतम) भारहुत और सांघी के रितीकों में बहु भाया के गर्भ में है और उसके मुख से टैरी मड़ी कमल की बेल निकसी है। यह मुहर्तों और बोलों के किनारे-किनारे पसी है और घनेरु जम्म-कपाए, तमने तथा फूलों की सजावट उसपर है। धर्मागत पतियों कलियों और

सिसे हुए फूलों तथा बीज-बीज में बसकोंवासे कमल के पौधे का घसीम विस्तार मार हुत सोबी चरन्विरि घोर घमरावती हर बगल पाया जाता है। आबिन्द के साथ क्रोम सता तथा चापक के साथ महीर अनुगत का सम्मिधन युरोपीय बारोक की दाव दिमाता है। सोबी में कमल के पौधों के पक्षे तक की अवस्थाएँ जिन्हें स्पष्ट मुद्रोमल रेखाओं से व्यक्त किया गया है (उदाहरणतः देखिए पूर्वी तोरण का बायाँ खम्भा) घातामी से यह चामी जामकती है। यह टेडी-मेडी फूलों से लबी घोर भुव घमी बनस्पति घापी रीतिक मयों घोर भीतामक समजन में घनन्त है तथा इसकी आत्मा मूर्तिकता के प्रत्येक तत्त्व में व्याप्त है। घोर इसके पीछे है यह स्फुहनीय प्रतीक कि कमल का पोषा बोधिसत्त्व की कृपा घोर दुःख निरन्धन की सपारता है। कमल एकसाथ घाकादा के ज्योतिमय मूय बोधिसत्त्व के कम्पामय हृदय घोर प्रह्लाण्ड की समृद्धिशील सर्वत्र परिवर्तनशील प्रक्रिया का प्रतीक है। प्रबहमान रमणीक घोर फिर भी मुष्कवस्थित कमलका पोषा एक कामजयी प्रतीक है तथा इनका प्रभाव घनाम्बियों तक घावमियों तथा पमुओं की घावतियों के घमों तथा पोड तक पर भी रहा है। भारतीय कला के लिए यह प्रारम्भिक बौद्धकथा की स्मायी देन है।

बाना म अस्ति घोर आधि

कमल के फूलते हुए पौधे का सवात्मक रंग है मूमता भारत में जीवन की सघन तय का प्रतीक है। भारहुत सोबी मयूरा घोर बोधमया के रिलीफों में पनु, मानव घोर प्रतीक—फिर बाहे यह कमल का पोषा हो बा पतियाँ फून या पकड़िया घबरा बीड कबाओं के घाम घबरा ग्यहोच बूझ—ये बनस्पति की सान्ध सर्वत्र आधुतिघापी गति में बिसे हुए हैं। भारहुत की मूर्तिकता में घापाहा के घवन के समान, मियारों के घवन घैर बड़े या छोटे हैं ताकि बून की घाकाओं की पति की घाधुति हो सके। बूनकोरा दबरा के मकेन घोर बति की तय सस घमवान बूल की तय के समान है जिसके सहर बह सकी है। बनस्पति मानव घोर पनु में कन घोर पति का घरी साम्य देतवन उघान गुनहरे हिरन के घिकाट, पहरन्त जातक की कबा तथा जंमल के घानवरो के बाधिवृध के घान घागमन के सकन में है। सोबी के पधिवनी डार पर बयल की बल के घने बतों के बोध बन्ध पनुओं की प्रहृति मुन्दरतम है। प्रारम्भिक भारतीय कला में कन घोर तय का उरूपन घदितर घमात् बड का घपरिमित साँचा है। परिणाम है एक प्रचुर कला रघर जसमता जिसमें एक सवात्मक व्यवस्था घोर अनुशासन है। यह अनुशासन घभी निपिन हा बाना है तो प्रनीकों घोरनमूनों का प्राधुय हो जाना है एक प्रचार म बेवृत्त परते हैं। इसके बिबरीड अनुशासन कहा बह जाता है ता घमीर कमात्मक रिबरता घोर घागि की मुष्टि हाती है।

पोषा-प्रतीकों म सर्वाधिघ प्रभावगाली घोर प्रबन्धित प्रतीक है कमल-जडा। यह कला मयघर घवाय घोर प्रचुर भारतीय बनस्पति जीवन का प्रतीक है। किन्तु भार तीव्र महृति में कमल की स्वाभाविक प्रचुरता का एव गंभीर घब है यथोक्त बयन का जग्य बानो मिट्टी घोर सड़ हा पडावे से होना है। दमक घनिरिघन एक घोर कतर है।

संयुक्तनिराश में भिन्न है। 'हे बन्धु' जैसे कमल पानी में उगता है। पानी में ही फलता है। पानी की सतह से ऊपर उठता है और फिर भी पानी से नहीं भीगता। जैसे हे बन्धु, तबालत इस संसार में बन्धे। इसी संसार में बड़े इसी संसार से ऊपर उठे और फिर भी इस संसार से अप्रभावित रहे। बोधकल्पना में कहाँ है बुद्ध के अनेकानेक अनामों और अमर्त्य रूप। ये रूप कमल के पीले के उठते और फूलों के समान सुन्दर और छावत हैं तथा सांसारिक राग दोष और मोह के कीचड़ और गर्वनी से उगते हैं। संसार और निर्वाण अन्धकार और दुरारि पुच्छ और सुख के चक्र यथार्थ की शक्ति बूँद भयना उफान है। यह बुद्ध-जीवन की समग्रता है। जीवन जो यथाय और मात संसार की सीमाओं से परे एक पूर्णता की ओर सदैव प्रतिधीन है। स्वर्गिक सफेद हाथी—जिसके मुख से कमल की बल निकलती है और धीरे-धीरे बिना रुके सवात्मक डब से प्रचुरता की सृष्टि करती है—निर्वाण की शान्ति का नहीं बरन् जीवन की प्रभावित हर्षोत्प्लव्ण असीम आकांक्षा का प्रतीक है। प्रकृति की व्यवस्था में आरमाभिव्यक्ति और आरमपरात्परता के बोधितत्त्व का प्रतीक है। आरम्भित बौद्धकला का सार बुद्ध भयना अस्ति नहीं बरन् ज्ञानप्राप्ति भयना बोधितत्त्व भयना शान्ति है।

दिव कृष्ण और बुद्ध भागवतवाच का उपाय
ईश्वरि सम् के धारम्भ

ईसाई सभ के धारणा सत्सकाम पहुँचे की छात्राणियां के दौरान भारत क पनों में गभीर क्यांतर हुआ। सभी पनों में प्रवृत्ति की प्रबल जागने लगी। बार विचारणा-यशों-के प्रतिरिक्त दिव बाहुदेव और बुद्ध को मान्यता कहा जान लगा। पाणिनि ने बार महार् दिकपालो महाराजों के प्रति शक्ति का उचित किया है। भक्ति की यही प्रवृत्ति मज्झिमनिकाय' में भी मौजूद है। मज्झिमनिकाय' में कहा गया है 'मेरे प्रति जिसमें थड़ा और प्रेम है वह स्वर्ग प्राप्त करने में समर्थ होगा। भारद्वाज (दूसरी तादासी ईनापूर्व) में प्रमिलित है 'अगवतो एक मुनिनी बोधो' तथा पिपराबा के बतन पर प्रदिन है, बुध्न अमकते । भागवतवास का उद्यम बादतब में प्राजीविक जीवन और जोड़ पनों की प्रमुल बिचपताओं—भागरस्याम और मण्यास के विरोध में हुआ। इसमें परिवार और समाज के प्रति नायित्वों पर जोर दिया गया तथा धार्मिक बीडिकता व गुल्फ नैतिक बिचारों से अधिक महरबूष किसी विशेष रचना की पूजा व धार्मिक मानन्द को माना गया। मोर्म-धानन-अवरक्षा में पुनः धर्म को सर्वप्रथम माना गया। कीटित्य ने वैदिक ढंग से उसकी व्याख्या की और जीवन की वर्णविम-अवरक्षा को पुनः प्रतिष्ठा का प्रयास किया किन्तु मठवाद पर असोक ने अधिक जोर दिया। असोक का यह काम उदार एवं पक्षपात रहित था किन्तु कुल विमाकर इससे धार्मिक इच्छों और उत्कर्ष तथा शासन-संगठन का महत्व कम तो अपश्य हुआ।

धिब और दुष्म भागवतपनों को भारत की यात्रा तथा नीची बातियों ने धार्मिक प्रभाव डाला।

धर्म की महत्त्व कम तो समझ लें।
 तब भी जातियों ने अधिक स्वीकार किया और विदेशियों से अपना अधिकार बचाया। परन्तु जातियों की अपनी विदेशियों के प्रतिवृत्ति को पूरा भाग्यमान समझा गया। परन्तु जातियों ने तत्काल भागवतधर्म का विरोध किया। प्रारम्भिक विरोध धर्म के दल जातियों में हुआ है। वेदिक साहित्य को न जाननेवाले ब्राह्मणजातियों (व्याकरण, तन्त्रशास्त्र आदि) का अध्ययन करते हैं। जातियों को न जानने वाले स्थिति पुराणों को पढ़ते हैं और उनका पाठ करते जीविकोपार्जन करते हैं। पुराणों के न जाननेवाले हुए बल जाते हैं और जो हुए भी नहीं बल पाते भागवत धर्म जानते हैं। यह उक्ति कुछ दिविज मामूला पढ़ती है क्योंकि बागुण्य और धर्म की पूजा तो पालिनि के समय से प्रचलित थी। हाँ इतना समझ है कि महाभारत-काल में धर्म और धर्म

१०६

वासुदेव-कृष्ण को 'धार्य' कहकर निम्नगीय समझते थे। धामीरों ने एकसाथ भगवत धर्म स्वीकार कर लिया। महाभारत (भीष्मपर्व ११-२८) में लिखा है कि एक अपना धर्म-परिवर्तन करके खीब हो गए थे। धाम्यक पहली सताब्दी ईसापूर्व और पहली सताब्दी ईस्वी के बीच रचित 'गृह्यसूक्तिक' में शिव और कातिकेय गृह देवताओं तथा बीराहों पर भगवती माँ की पूजा का उल्लेख है। गृह देवताओं और भगवती माँ को प्रतिदिन भेंट चढ़ाई जाती थी। उत्तर-पश्चिमासीन हिन्दूधर्म के सामान्य देवी-देवताओं—ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, सूर्य और अन्नमा तथा शुम्भ-निशुम्भ का वन करनेवासी देवी—का उल्लेख है।

उत्तर-पश्चिमी और पश्चिमी भारत पर यवनों का अधिकार

एशिया के दो सत्त्वियासी साम्राज्यों—मीर्य और सीरियाई साम्राज्यों—क समकालीन बिनास के पश्चात् पंजाब और सीराष्ट्र के मैदानों में यवनों (यूनानियों) अथवा ईरिट्रियाइयों और शर्कों (साइथियाइयों) के लगातार आक्रमण आरम्भ हो गए। वे खीबर और बोमन दरों से होकर भारत घाते ल। यवनों अथवा यूनानियों ने पञ्जाब पर तो विजय प्राप्त की ही साथ ही पंजाब और सिंध के अनेक राज्यों पर भी अधिकार कर लिया। एक बार तो मगध की शक्ति को भी उत्तरा पेश हो गया कि उत्तरभारत पर यवनों का अधिकार हो जाएगा। उस समय मगध में शुंगवंश के शाह्यपमनी पुष्यमित्र (१८०-१५१ ईसापूर्व) युग का शासन था और तब तक समस्त उत्तर-पश्चिमी व पश्चिमी भारत में यवन-संस्कृति का प्रसार हो चुका था। पुष्यमित्र ने इस यवन संस्कृति तथा बौद्धधर्म के विरुद्ध ब्राह्मण-मुनिरत्नान का सङ्घा उठा किया। सर्वाधिक प्रसिद्ध यवन सम्राट् के मेगास्थेन (१८-१६० ईसापूर्व) जिन्हें बौद्धसाहित्य में मिलिन्द तथा भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में प्राप्त एक प्राकृत खरोष्टि अभिलेख में महाराज मिलिन्द्र कहा गया है। उनका राज्य पंजाब से सीराष्ट्र और भारत के पश्चिमी तट तक था। अपने एक आक्रमण में उन्होंने मथुरा पर अधिकार किया। राजपूताना के (चित्तौड़ के समीप) मध्यमिका और अजमेर के साकेत को घेर लिया तथा पाटलिपुत्र को भी उत्तरा पेश कर दिया। प्रसिद्ध मिश्र नागसेन के प्रभाव में आकर मिलिन्द ने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया। मिलिन्द के प्रश्न (मिलिन्दपञ्च) सम्राट् मिलिन्द तथा मिश्र नागसेन के बीच एक वार्षिकिक वार्तालाप है जिसमें नागसेन ने मानवीय धर्म को मान्यता प्रकृति की व्याख्या की है। बौद्धदर्शन पर जितने प्रश्न हमें मिले हैं, यह उन सबमें सबसे प्राचीन है तथा आध्यात्मिक वाद-विवाद और तर्क-यत्ति के उपयोग का स्पष्ट उदाहरण है। इसमें भारतीय वार्षिकिक आदर्शवाद और मुकरात की विज्ञाणा की प्रवृत्ति तथा विधि का सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। इसमें वे सारे तर्क भी मौजूद हैं जिनके द्वारा बौद्ध मिलुओं ने यवनों को अपने धर्म में झेलित किया था।

मेगास्थेन के अतिरिक्त उत्तर-पश्चिमी भारत के अन्य यवन यासक भी थे। बेंते हेमेट्रिमस। महाभारत के कलमिन् वेसनगर मुहर के विभिन्न और दिव्यावदान के अभिलेखों के पश्चात् यवन हेमेट्रिमस ही माना जाता है। अनुमान है वे ईरिट्रिया

अध्यात्मिकता तथा पञ्चाश और सिध के अधिकांश के शासक थे। अथ भारतीय यूनानी शासक भी थे। जैसे यूक्रेटिडीज जिनका अधिकार थासद अध्यात्मिकता और सिधु पाटी पर था तथा अन्तिमाससिद्धाज जिनके राजदूत का स्वागत लगभग ११३ ईसापूर्व में बिदिआ के राजदरबार में हुआ था। अनेक स्रोतों से लगभग बत्तीस भारतीय-बैक्ट्रियाई शासकों का पता चलता है। इन स्रोतों के अनुसार ये शासक वैभेदित्व और यूक्रेटिडीज के बाद की दो पताखिर्कों में हुए थे। यम राजाओं की उपस्थिति से देश में एक व्यापक सामाजिक अस्थिति फैली थी। पुराण इसके साक्षी हैं। उनमें लिखा है 'धार्मिक भाव भावों महत्वाकांक्षा अथवा सुदृढता के द्वारा से यमन मही पाएँ बिधिपूर्वक धार्मिक राजा मही हों बिधि के युग के रूप के कारण दूषित रीतियों का पालन करने। (यमन) धार्मिक त्वों और बन्धों का बंध तथा परस्पर हर्षा करने तथा कमिगुन क अन्त में इन धर्मों का सुबोधमोल करने।' पुष्पमित्र के पाठ (लगभग १८७-१५१ ईसा पूर्व) के साथ यमनों का एक अर्थकर संज्ञा 'अम्बल की उद्घाटक मिथु नदी के तट पर हुआ। इस युद्ध में यमन अन्ततः पराजित हुए और मध्यदेश पर उनके आक्रमण होने बंद हो गए। इससे मौर्य-साम्राज्य का विनाश भी बच गया। सुबद्ध के अधीन यमन साम्राज्य का विस्तार लगभग एक सताब्दी तक बिदिआ (यदि और अधिन पश्चिम नहीं) तक रहा। यमन-शासन का अन्त करने में शुंगवंश के राजा के अतिरिक्त (जिन्होंने साहित्यिक कामों को संभवतः कामिनास में 'मालिकाभिनिमि' में अमर कर दिया है) वा और भारतीय शासकों ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। इनमें से एक सामक से पञ्चाश के मध्यम और दूसरे में दार्मिक-जाति-विनाशक गौतमीयुध शासकों जिन्हें दार्मिकता माना जाता है।

युद्ध में पराजय के फलस्वरूप बिदेसियों का भारतीय समाज में विलयन

युद्ध में यमनों की पराजय से सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सुबिधा हो गई। इसका स्पष्ट प्रमाण है पुष्पमित्र के अथकासोन पत्रजलि के 'महाभाष्य' में मिलता है। दूसरा लिखा है कि यमनों और युद्धों की भारतीय सामाजिक व्यवस्था में बिबिधितो अथवा युद्ध युद्धों का स्वागत प्राप्त हो गया। इसी प्रकार अनुसंहिता में लिखा है कि यमन एक पञ्चाश और पारद समाज का भारतीय सामाजिक गुणधर्म में अम्मिलित करके 'हीन धर्मियों' का दर्जा दिया गया। दोष मानवत और बोद्ध इन्हीं तीनों धर्मों के कारण रामका यूनानियों और शकों को धाय बनाया जा तथा 'सुबकाल' में एक राष्ट्रीय पुनर्रचना हुआ जिसका केन्द्र बिधु पा ५० और युद्ध-बामुदर की पूजा। इस पुनर्रचना की तुलना गुप्तकाल के उत्तरभासीम ब्राह्मण-पुनर्रचना से की जा सकती है। गुप्त-साम्राज्य के पाँच नगरों में गुजरातान सर्वाधिक प्रभावपूर्ण था। वा नगर प राजधानियाँ पाटीनपुत्र और अयाध्या। तीसरा नगर वा बसाध की राजधानी बिदिआ। चौथा नगर है पुष्पमित्र के पाँच और मैकारति ने प्रयाग किया था और (ग्रानियर में) सिंधु नदी के तट पर वा पुष्पमित्र के साम्राज्य तथा दक्षिणी यामन के दबन राज्य की नीना बनायी है यमनों की पराजित किया था। चौथा नगर वा बिदिआ और अजैन

के बीच स्थित गोनर्ब (जिसे गोनर्बीय भी कहा जाता था) वहाँ उस युग के विख्यात साहित्यकार पतञ्जलि का जन्म हुआ था। और पाँचवाँ नगर था भारकुत। मही परसुप्रसिद्ध बौद्धस्तूप का निर्माण हुआ था जो गुप्त-सम्राटों की आर्थिक सहिष्णुता का प्रभावशाली प्रमाण है। इन नगरों में से राजधानी पाटलिपुत्र को छोड़कर सबसे अधिक महत्वपूर्ण नगर था उज्जयिनी। असोक के कारण इस नगर का महत्व बढ़ा और उठावियों तक यह एक महत्वसामी कलाकेन्द्र के रूप में विकसित होता रहा। साँची की कुछ सर्वोत्कृष्ट द्वार-मूर्तिकामो का प्रकट शुंगकाल में ही हुआ था।

✓ सर्वदेशीय युग भागवत और पाञ्चरात्र के रूप में यवन

शुंगकाल में तक्षशिला मयूरा बिदिशा और बारबर सर्वदेशीय नगर थे। दूसरी शताब्दी ईसापूर्व में तक्षशिला के एक यवन होलिवाडारस मैकामुदेब के सम्मान में बिदिशा के समीप बेसनगर (भिसा) में एक स्तम्भ का निर्माण कराया। वह महाराजा अठमि क्रित (अर्थात् अस्थिरसिद्धास) के दूत के रूप में राजा काशीपुत्र भागमद्र के दरबार में आया था और स्वयं भागवत बन गया था। बाह्यी भित्ति में अंकित है तीन प्रमदराजों के द्वारा स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता है। ये साधन हैं—धर्म (आत्मसंयम) श्रम और दान। इन्हीं साधनों का इसी क्रम में बचन ममवर्णीता और महामारत (११ ७ २१) में है। इसी प्रकार मयूरा के समीप मोरा में प्राप्त पहली शताब्दी ईस्वी के एक अभिलेख से हमें पता चलता है कि एक बिदेसी महिला सोस ने 'पंचवीरों' (सकयन बामुदेब प्रद्युम्न शाम्भ और अनिरुद्ध) की मूर्तियों की स्थापना की थी।

✓ द्रष्टव्य है कि कृष्ण बामुदेब की मूर्ति का इतना अधिक प्रचार हुआ कि पहली और दूसरी शताब्दियों में मयूरा में जो उस समय शक-संबलेश्वरों के अधीन था उनकी सर्वप्रिय मूर्तियाँ बनीं। लड़े हुए कृष्ण-बामुदेब और कुछ बालों की मूर्तियों का निर्माण प्राचीन पार्सल तथा अन्य यज्ञ मूर्तियों की ही ध्वनी में हुआ था। इस प्रकार, हिन्दूधर्म और बौद्धधर्म दोनों की समझाया में नये भागवतधर्म की व्यक्त करने की उत्कलनीन आवश्यकता भी पूरी हो सकी। मोरा में प्राप्त (पहली शताब्दी ईस्वी) पांच मूर्ति मोडाओं की मूर्तियों के प्रतिरिक्त उसी युग की सकर्षण की प्रथम प्रतिमा भी प्राप्त हुई है जिसके चित्र पर सर्ग की छाया है। यह मूर्ति अब मयूरा-सम्राज्य में है। मयूरा का सम्बन्ध उत्तर-पश्चिम में नापिड और तक्षशिला तथा समुद्रतटीय बारबरा और बेटी गाडा के साथ था। और इन्हीं नगरों से बिदेसी युगानी और शक प्रभाव सीधे बंगाल की खाड़ी में पहुँचा। यह प्रभाव हंगल हबामय राजकुल छोडास तथा उनके उत्तराधिकारियों के शासन-काल में पिछली सहस्राब्दी के अस्थिरताओं से लेकर दूसरी शताब्दी ईस्वी तक विशेषरूप से पहुँचा। बामुदेब-कृष्ण की सर्वप्रथम मूर्तियों के निर्माण तथा रुद्रिवासी ब्राह्मण-समाज में मूर्ति-पूजा की लोकप्रियता का कारण उत्तराधिकारी कला का प्रभाव नहीं था जिसका स्वयं को भागवत धर्मवा पाञ्चरात्र कहनेवाले बिदेसियों की धोखेसी भक्ति का उत्साह।

शुंगकाल में केवल भागवतधर्म ही नहीं बल्कि माहेश्वर और पाञ्चपत सम्प्रदायों

का भी भारत में दूर-दूर तक प्रसार हुआ। और यह तो स्वाभाविक था जो कि विदेशी लोग साधुओं और धर्मियों के धार्मिक-चिन्तन और धार्मिक विवेकवाद की अपेक्षा भागवतधर्म (फिर चाहे वह बौद्ध, जैन या ईसाई भी हो) को मनी प्रकार समझ और स्वीकार कर सकते थे। एक और पक्ष पर ध्यान देने पर भी इसका स्पष्ट है कि जिस के प्रति विदेशियों में कितनी घृणा थी। यद्यपि के पास-पास विस्तृत प्राप्त हुए हैं किन्तु एकमुख का बताया जाता है।

हमने देखा कि युग-पुनरुत्थान में धर्म की पुनर्जागरण और दिया गया था और उसके आधार धार्मिक-धार्मिक-सम्बन्धी लोगों ने। यह विदेशियों की विषय और धार्मिक के सम्बन्ध में धार्मिकों के विरुद्ध एक शक्तिशाली विरोध था और इसी कारण ब्राह्मण-समाज और संस्कृति का अनुभूति पुनर्जागरण भी था। इस युग के विविध मन्त्र धार्मिकों ने जिसका केन्द्र था वह धर्म का अनुभूति की पुनर्जागरण और विरोध को प्राप्त था दिया। इसी युग में महाभारत और गीता में एक विस्तृत आधार पर धार्मिक साहित्य का निर्माण हुआ जिसके रूप पर सामाजिक और धार्मिक सम्मिलन में अधिक प्राप्त की गई। गुप्तकाल के स्वर्णयुग का धार्मिक करनेवाले इस युग में धार्मिक बनाम और साहित्यिक किमतीलता में सहसा वृद्धि हुई और इस प्रकार एक सम्भावना पूरा सामाजिक वातावरण उत्पन्न हुआ जो विदेशियों को अपने में सम्मिलित करने के लिए आवश्यक था।

संस्कृत का पुनरुत्थान

इस पुनरुत्थान में पञ्चमूर्ति का असाधारण योगदान महत्वपूर्ण था। उन्होंने ब्राह्मण शास्त्र का एकत्र किया। उन्होंने पाणिनि के व्याकरण-सूत्रों की विख्यात टीका लिखी। इन टीका ने धर्मोक्त के समय की पाणिनि के स्थान पर संस्कृत को प्रतिष्ठित करने में विशेष योग दिया। प्राचीनतम ब्राह्मी धर्मोक्त (एक धार्मिक-धार्मिक-धार्मिक) तथा धर्मोक्त के अनेकानेक धर्मोक्तों से स्पष्ट है कि मौर्यकाल में संस्कृत का धार्मिक-धार्मिक भाषा में लिखा जाता था। धर्मोक्त का तो प्रमाण ही यह था कि संस्कृत को हटाकर पाटलिपुत्र की बानी भारत की राष्ट्रभाषा बन जाए। लोकप्रिय धर्म-धर्मोक्त साहित्य में संस्कृत का योगदान था और लोकप्रिय धार्मिक धार्मिक धर्मोक्त बौद्धधर्म के साहित्यिक भाषों में संस्कृत का प्रयोग होता था। संस्कृत उपेक्षित थी और उसका बटन-पाटन केवल ब्राह्मणों तथा परम्परावादी धर्मोक्तों के लोग ही करते थे। महाभारत में एक धर्मोक्त प्रकार की संस्कृत का प्रयोग है जो पाणिनि की भाषा से अलग है। महाभारत के धार्मिक धर्मोक्त से स्पष्ट है कि संस्कृत में साहित्यिक धार्मिकों के धर्मोक्तों और उद्देश्यों पर धर्मोक्त धर्मोक्त किया जाता था। 'हे रामन् भाषा राम प्रतिमान गुण्ड हानी चाहिए। अनुभूति धर्मोक्त और धर्मोक्त को हटाने कर देना है। भाषा में धर्मोक्तों तथा धर्मोक्त गुणों का होना धर्मोक्त है। भाषा के गुणों और लोगों का विवरण धर्मोक्त धर्मोक्त धर्मोक्त महाभारत में प्रमाण दिया गया है।

संस्कृतभाषाभाषी धर्मोक्तों के विरुद्ध पञ्चमूर्ति ने 'संस्कृत' कहा है धर्मोक्त गुण

उत्पारण और उत्पत्ति संस्कृति से स्पष्ट है कि संस्कृत की व्यवस्था बेजोहूर है। इसीलिए संस्कृत धर्म भाषाओं से सुविधाजनक थी। पतंजलि ने लिखा है कि संस्कृत साहित्यिक भाषा प्रकाशन की भाषा थी तथा उसका उपयोग उत्पत्ति भाषाओं द्वारा लोक-जीवन में भी होता था। इसके विपरीत अनेकानेक बोधिया जिन्हें पतंजलि ने 'अपभ्रंश' नाम दिया था सामान्य जन द्वारा प्रयुक्त होती थी। रामायण में ब्राह्मण तथा जनसाधारण दोनों संस्कृत का ही व्यवहार करते हैं किन्तु ब्राह्मणों की भाषा तथा जनसाधारण की बहुत भाषा में बड़ा फर्क है। अथर्ववेद नाटक के अर्थों में जिसका रचनाकाल पहली या दूसरी शताब्दी ईस्वी माना जाता है, हम देखते हैं कि ब्राह्मण धर्म तथा शास्त्रिक संस्कृत बोधता है तथा द्वितीय और निम्न सामाजिक स्तर के पुरुष प्राकृत का व्यवहार करते हैं। तथ्य तो यह है कि विशिष्ट व्यक्तियों की बोधनाम की संस्कृत—भाषा' अथवा 'लोक—तथा जनसाधारण की प्राकृत अथवा अपभ्रंश परस्पर आधारित हैं। कीच ने इस ओर संकेत किया है

'हमें यह नहीं मानना चाहिए कि बोली जानेवाली भाषा तथा पण्डितों की भाषा में कोई विरोध है। दोनों अलग अलग वर्गों की भाषाएँ हैं। यद्यपि समान वस्तु से संस्कृत निकलता और बोलता था। अशोक के पत्रिकारी जिस भाषा में सरकारी काम-काज करते थे उसीका व्यवहार बोधने में करते थे। उसी युग में अमरावती के निम्नवर्ग के लोग बोधियों का व्यवहार करते थे जिनमें और अधिक भाषा-वैज्ञानिक परिवर्तन हो चुके थे। कुछ ने अपने शिष्यों को आदेश दिया था कि उनके उपदेशों के प्रसार में केवल लोकप्रिय बोधियों का प्रयोग किया जाए। कुछ समय तक शिष्यों ने उनके आदेशों का पालन किया। इस प्रकार उत्तरभारत की अनेक बोधियों का प्रयोग स्थानीय बौद्ध धर्मानुयायियों द्वारा किया जाने लगा। एक ऐसी बोली भी पामी का भूत 'आवक' उत्पत्ति में बोली जाती थी। पामी का प्रसार चीन तथा बर्मा आदि देशों तक पहुँचा और उसने दक्षिणी बौद्ध धर्म की धार्मिक भाषा का बर्मा धर्मप्रचारक बनाया। इसी प्रकार की एक धर्म बोली थी जिसके मूलस्थान का पता नहीं है। कुछ समय पश्चात् स्थानीय बौद्ध-धर्मानुयायी इस बोली का रूप परिवर्तित करने लग गए कि वह संस्कृत-सी मामूम पड़ने लगे क्योंकि संस्कृत उस समय के ब्राह्मणों की भाषा थी जिसे सामाजिक सम्मान प्राप्त था। पहले तो यह संस्कृतीकरण भीमा और आसिन्ध का। समय के साथ साथ प्रविष्टा धारों बढ़ती गई, किन्तु कभी पूर्ण न हो सकी। प्राकृत रूप का प्रयोग जारी रहा। अनेक रूप मिश्रित अथवा संकर बन गए, न कुछ प्राकृत और न प्रामाजिक संस्कृत। विशेषतः उत्पत्ति अथवा अशोक-प्राकृत का रहा। हजारों ऐसे अर्थों का प्रयोग किया जाता था जो या तो संस्कृत के न थे या संस्कृत में उन अर्थों में प्रयुक्त न होते थे। इस विभिन्न भाषा का प्रसार उत्तरभारत में हुआ। फ्रेडरिक एमर्टन ने इसे 'बौद्ध संस्कृत संस्कृत' का नाम दिया है। बीस वर्ष से अधिक समय के अध्ययन के पश्चात् उन्होंने १९२६ में इस भाषा का एकमात्र व्यवहार और व्याकरण प्रस्तुत किया। इस विद्या में धर्म कोई प्रयत्न कभी नहीं हुआ।

✓ सुमरानीय ब्राह्मण-पुनरुत्थान का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि संस्कृत का व्यवहार बानी ब्राह्मणों तक सीमित नहीं रह गया बल्कि उसने एक लोकप्रिय धार्मिक

भाषा का रूप धारण कर लिया। मुद्रादि विभाग और भाषाविज्ञानी एक-दूसरे टॉमस का कथन है। व्यवस्थित और मिथित दोनों की विमृशता के मध्य संस्कृत ही एक व्यवस्थित भाषा थी। इसका साम भी हुआ। कम से कम पहली शताब्दी ईस्वी में संस्कृत ने प्राकृत का स्थान लेना प्रारम्भ कर दिया। फिर भी अनेक भाषा में तीसरी या चौथी शताब्दी तक प्राकृत का प्रयोग जारी रहा। सषमग इसी समय जैनों ने मन्त्रन में निवृत्ता प्रारम्भ कर दिया। सर्वास्तिवादी बौद्धों ने संस्कृत का उपयोग बहुत पहन प्रारम्भ कर दिया था। ब्राह्मण प्रत्यक्ष ने जिसन बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था बौद्ध प्रसंगों को भाषा पर अधिकार तथा काव्य की विकसित संस्कृत दोनों प्रधान की। कहा जाता है कि महामाधिक प्रारम्भ से ही मिथित बोली-धार्मिकों की लोकप्रियता मन्त्रन जिसमें प्राकृत का विषय था—का व्यवहार करत थे।

युग की धार्मिक भोजस्वित्ता

सामान्य धारणा है कि युगकाल में ही साहित्य-साहित्य के धार्मिकता-जिसमें रामायण और महाभारत के अंतर्गत युग युग और मानवधर्मशास्त्र धर्मशास्त्रमूर्ति सम्मिलित हैं—का उत्पन्न हुआ। पुष्पमित्र ने विद्वत् प्राधिपत्य के प्रतीक के रूप में महान् बौद्ध यज्ञ का पुनः आयोजन किया और स्वयं पत्रजलि में समस्त धार्मिक काय किया (इह पुष्पमित्रं याजयाम्)। पत्रजलि ने राजभूषण और राजनेत्र जैन विद्याल यज्ञों के साथ-साथ बौद्ध महायानों का ध्यान भी किया है और कहा है कि प्रत्येक गृहस्थ को ये धर्म प्रतिष्ठित करने चाहिए। एक और विविध बात यह है कि साहित्य के प्रवर्धन करने के लिए पत्रजलि की बात भी उन्होंने लिखी है। युगकाल में ब्राह्मण-परम्परा नाटिका का पुनरुत्थान हुआ इसके अन्तर्गत है—बौद्ध धार्मिक हथौड़े और संस्कारों द्वारा द्वितीय और ब्राह्मण प्राधिपत्य की पुनः प्रतिष्ठा हुआ मागधतथम का उदय आ कमवय तथा बौद्धधर्म-सम्बन्धी नाटकों की लोकप्रियता से स्पष्ट है तथा बौद्धों को दण्डित करना। किन्तु बौद्धधर्म और जैनधर्म का अन्त नहीं हुआ क्योंकि युगवर्धन के शासननाम में अनेक शासनार बौद्ध और जैन स्मारकों का निर्माण हुआ। कनिष्क के महाराज धारवेत जिनका शासन अनुमानतः पहली शताब्दी ईसापूर्व में था और जिन्होंने पूर्वी भारत में एक विद्याल साहाय्य की स्थापना की जिसका प्रचार सुदूर दक्षिण तक था जैनधर्मनुयायी से। उन्हें 'मिशुराज' कहा जाता था। उन्होंने राणमिरि पर अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण कराया। मधुरा में एक जैन मन्दिर था जिसका निर्माण १२० ईसापूर्व में करने हुआ था। मधुरा में प्राण्य प्राचीनतम धर्मधर्मों में उन तीर्थस्थलों की प्रतिमाएँ पायी जाती हैं। युगकालिक धर्म की एक विशेषता यह थी कि परम्परागत प्राण्य जैन और बौद्ध धर्मो परम्पराओं और धर्म धर्मों तथा लोकप्रिय देवताओं परियों और छोटे देवताओं की पूजा सम्मिलित रूप में करते थे। जनों के देवताओं और प्रतीकधर्म धर्मियों के धर्म रिक्त बनाकर और निम्नतम धर्म धर्मों की धारणधर्मों के अनुसार इन विषयों का उपयोग भी अपनी तथा में करते थे।

राजों का भारतीयकरण

इस प्रकार यमुनावाटी तथा उत्तर-पश्चिमी भारत में बौद्धधर्म जैनधर्म तथा कृष्ण विष्णु और महाेश्वर सम्प्रदाय साव-सावकुल-कमर रहे ब । फिर भी एक और कुपाय युग के अधिकांश मधुरा अभिलेख जैन और बौद्ध हैं । भागवत अभिलेख बहुत कम हैं । एक शासकों ने जो पहली सातावही ईस्वी के प्रारम्भ में शकस्वाम से बोसग बर्ग पार करके पंजाब और यमुनावाटी तक या पहुँचे थे कमरा भारतीय-बकिट्माई शासकों का स्वाम से लिया । वे पहले काठियावाड़ और राजपूताना होते हुए मुस्तान उज्जैन और बाद मेमपुरा तक पहुँचे और शकस्वाम ब डसकी राजधानी मिन बधवा मिम्नवर के नाम अपने साथ ईरान से भारत लेते आए । नये शासनकरण में पाकर शकों ने ललित-परिवारों में बिबाह किए भारतीय नाम अपनाए और गिब महावीर तथा बुद्ध को अपने देवताओं के रूप में स्वीकार किया । अनेक एक वासुदेव के स्वाम पर छत्र नाम का प्रयोग करते थे ।

उत्तर पश्चिमी और पश्चिमी भारत में विभिन्न स्थानों पर बौद्धधर्म के लिए एक राजाओं ने अनेक बार दान दिए ब । मासिक के एक गुफा-लेख में जिनका समय सभसम ११६ ईस्वी से १२२ ईस्वी तक है, एक शकुरावा अजवदात (अजमवत) की बिम्बुने प्राहणबर्ग स्वीकार कर लिया था सहृदयता का बर्णन है । अभिलेख में बर्णित है कि अजमवत ने हिन्दू देवताओं और ब्राह्मणों के बिबाह के लिए दान तो दिया ही था साथ ही बौद्धसंघ को एक मुफ्त बी बी तथा स्वावी बल-ब्यवस्था का प्रबन्ध किया था । दान का बिबरन भी प्रस्तुत किया गया है और उसका रिकार्ड नियमानुसार एक स्वामीय रिकार्ड दफ्तर में दर्ज कराया गया था । अजवदात की पत्नी का नाम भी भारतीय था—बल मित्रा । अजवदात ने प्रसास में प्राप्त प्राहण कुमारियों के बिबाह का प्रायोजन किया था और हिन्दूधर्म के प्रति सहृदयता क लिए उन्हें बिगोषयसहृदय (तीन बाब मायों के बाबा) की पदवी प्रसाग की गई थी ।

बिदेधियों पर भारतीय बर्गों का इतना प्रभाव पड़ा कि वे आए तो प्राक्रमक कारियों के समान किन्तु कमरा उनका सामाजिक रूप से भारतीयकरण हो गया ।

भारतीय संस्कृति के परम्पराप्राचीन केन्द्र मधुरा पर शकशासक माडस (लगसग २० ईसापूर्व से २२ ईस्वी) का अधिकार हुआ और राजुबल तथा उसके पुत्र सोमशास या सोमास के समय तक बहु अधिकार कायम रहा । दूसरी शतावही ईस्वी के बुरुरे बतुपाई तक भारत का काफी बड़ा भाग कपिथ से मधुरा और करमीर से बधिग तक शकमडमेवबर्गों के अधीन रहा बधपि कुपायसम्माद् कनिष्क ने अपनी बिजययात्रा के प्रारम्भ में ही शकों को मधुरासे बाहर कर दिया था । कुछ बित्राग साहबियाइयों-पाविबा इयों के शकसंबद् की २७ ईसापूर्व का बिक्रम-संबद् ही मानते हैं । शकों के नानों और उपाधियों से स्पष्ट है कि उनका पूर्णकपेय भारतीयकरण हो गया था । उनमें 'शम्ब' का उद्भव संस्कृत शब्द 'शरप' से हुआ है । शकशासकों के भारतीय भायों में से कुछ हैं मटन खडामा, राजुम सोमशास शिवबोप और शिववत ।

बैदिक संस्कार विदेशियों के लिए भी

विदेशी विजय, सम्मिलन और परिवर्तिकाय के प्रति ब्राह्मण-समाज की प्रति क्रिया प्रायः और साहस से परिपूर्ण थी। महाभारत में बड़ा आमासी युग में शत्रुओं और उनके सहयोगी दास्य श्रेष्ठों की सङ्ग्राम का वर्णन अत्यन्त अपौरुषेय ढंग से किया है (१-१८८) यहाँ यह भी लिखा है कि धर्म राजाओं के राज्यों के निवासी यत्नों द्वारा ही संभारों नुसारों और पक्षों को भी वैदिक संस्कारों और पूजा-विधियों में सम्मिलित किया जाए (१५, ५ १३)। यहाँ तक कि वनसुतर सोमों अथवा विभिन्न शत्रु या जातियों के सोमों के लिए विभिन्न कृत्यों के बारे में स्वयं कृष्ण भीष्म ने कहने हैं "चारों बर्षों की निश्चित संस्तानों अथवा विभिन्न देशों जातियों और गोशों के लिए निश्चित कृत्या तथा वेदों और प्रबुद्ध मुनियों द्वारा व्यवस्थित कृत्यों के बारे में आप सब कुछ जानते हैं।" (राजपर्व ६ पृष्ठ १५८)।

महाभारत में एक और सा पक्षों का वाक्य यत्नों और सम्बन्धों को दासी बहुर निम्नरीय ठहराया गया है और दूसरी ओर ब्राह्मण समाज के द्वारा उनके लिए घोषणा दी गई है तथा वैदिक संस्कृति के संस्कारों में विदेशियों को सम्मिलित करने का आदेश है। हमारे विदेशियों के सामाजिक सम्मिलन में आमासी हुई। तीन महीने समाजशास्त्रीय विचारों के वर्णनमय में उद्धार का समुद्देश दिया जिसमें ब्रह्म युग का बर्णन हुआ जिसमें ब्रह्म आचरणकर्ताओं को पुरा कर सके। प्रथम महाभारत (शांतिपर्व, ७८ ५ २) तथा धार्मिक धर्मशास्त्रों में 'आरक्ष्य' के सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ। इसमें यह निश्चय मिलता कि उक्त जातियों के साथ ऐसे काम और व्यवहार करने का उद्देश्य उनके लिए निश्चित अथवा गृहीत है। दूसरा विचार का कनिष्ठ के सिद्धांत का विचार जिसमें सामाजिक विगृह्यता और निम्नता जमी बुराई का यम हो सके। इन सिद्धांत के अनुसार इन ब्राह्मणों को युगक के अग्रजाति नियम का अन्वयकारी परिणाम समझा जाने लगा। 'अविध्य' में एक धर्मन्याय सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होगी—तभी अविध्यकारी करके सामाजिक पराजय मानना का दूर किया गया। तीसरा विचार या व्यवहारवाद। व्यवहारवाद का बीजारोपण का अन्वय अत्यन्त तदा अन्व प्राचीन धर्मों में हो चुका था किन्तु इनका विकास इसी युग में हुआ। इस विकास के आधार पर कृष्ण-नामुदेव और गौतम के व्यक्ति और सोचा जाता था कि समय समय पर इनके व्यवहार से समाज में धार्मिक व्यवस्था कायम रहनी। प्रारम्भिक प्रायण-साहित्य में हम पाते हैं कि यगुरी में वेदशास्त्रों में पृथ्वी की छीन लिया था और पृथ्वी का पुनः प्राप्ति करने के लिए विष्णु ने अनेक व्यवहार किए थे। इसी प्रकार आर्युत के रितीर्थों में हम ब्रह्म के अनेक व्यवहार-न्यायों को सिद्धांत का परिचय प्राप्त होता है। हम सबसे ऊपर, एक साधारण देश को पूजा में विदेशियों के मन में यथा मानना जगई और आप-आप भाग लीया के मन में विचार जगया कि समाज की व्यवस्था ईश्वरपरत है। हमने एक साथ यह हुआ कि विदेशी व्यवस्था व्यवस्था सामन के व्यवस्था व्यवस्था समाजों में भारतीय करने रह सके। आरक्ष्य कनिष्ठ और व्यवहार—इन तीनों व्यवस्थाओं में भारतीयों

को नैतिक रूप से तयार कर दिया कि वे अपनी ईश्वरपूज्य सामाजिक व्यवस्था में विदेशियों को स्वीकार कर सकें। महाभारत में भारतीय संस्कृति के मानवतावाद को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—“मैं तुम्हें अत्यन्त रहस्यमय और अदृश्य सिद्धांत बतलाता हूँ। विश्व में मनुष्य से अधिक श्रेष्ठ कुछ नहीं है।”

ब्राह्मण, ईरानी और यूनानी संस्कृतियों का पारस्परिक उत्कर्ष

उस युग की सहिष्णुता के फलस्वरूप प्राचीन ब्राह्मण ईरानी और यूनानी संस्कृतियों ने आपस में प्रभाव ग्रहण किए और उनका विकास हुआ। इस काम में पाबियाइयों ने मध्यस्थों का महत्वपूर्ण पाठ्य भूमा किया। तद्विषया क्षेत्र में पाबियाई नगर सिरकर की सुवाई से यह बात साफ साफ प्रमाण हो जाती है। मध्यस्थ के भारतीय व्यापारी यानी और विद्वान काटियाकाए पंजाब, कश्मीर और पंजाब ही नहीं सीरिया और मिस्र तक जाते थे। यूनानी-बैक्ट्रियाई और साइथियाई दोनों युगों में भारत और पश्चिमी एशिया के बीच जल और स्वयं मार्गों से पूर्व व्यापार होता था और तद्विषया बारबरा पामा इरा। वेदा और सिक्खरिया जैसे नगर महान अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बन गए थे। बात है कि यूनानी-बैक्ट्रियाई के तट पर स्थित तारन में भारतीय जा रहे थे जहाँ दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में ही भारतीय मन्त्रियों का निर्माण किया जा चुका था। इसके अतिरिक्त ११७ ईस्वी के सासपास बायो काइसॉस्टिम ने सिखाया कि भारतीय स्वामी रूप से सिक्खरिया में रहते थे। दूसरी शताब्दी ईसापूर्व में बैक्ट्रिया सांगहायना अफगानिस्तान और उत्तर पश्चिमी भारत पर सेलेट्रियस और मेगाडर का आधिपत्य था। इस आधिपत्य के कारण सेलैट के साथ भारतीय व्यापार स्वतन्त्रता से होता था। लगभग ११५ ईसापूर्व में बैक्ट्रिया पर साइथियाइयों ने अधिकार कर लिया तथा रोम और पाबिया के बीच ५१ ईसापूर्व में एक बीचकालीन संघर्ष का प्रारम्भ हुआ। फलस्वरूप भारत और सेलैट का व्यापार-सम्बन्ध टूट गया। किन्तु जब पाबियाई ने सीरिया पर ‘पैन्सरोमना’ नाम कर दिया और पामीरीन्स ने उत्तरी अरबी मरुभूमि के व्यापार दूर और हमिरक के बीच एक छोटा रास्ता ढूँढ निकाला, तब यह सम्बन्ध फिर स्थापित हो गया। फिर भी ईरान के बीच से जानेवाले प्राचीन व्यापार-मार्ग से व्यापार पूरी तरह तभी संभव हो सका जब कुपार्गों ने पहली शताब्दी ईस्वी में पश्चिमी एशिया के इस मार्ग पर, तथा बार में सम्पूर्ण गंधार और उत्तरी-पश्चिमी भारत पर अधिकार कर लिया।

टार्न ने इस युग के भारतीय सेलैटई व्यापार का अध्ययन किया है। जलमार्ग से होनेवाले व्यापार के बारे में उन्होंने निम्नलिखित अवस्थाएँ बतलाई हैं। जलमार्ग से होनेवाला व्यापार दक्षिणी अरबी मध्यस्थों के नियंत्रण में लगभग १२० ईसापूर्व तक रहा। इसी वर्ष के सासपास साइथियस के यूडोनसस ने पहली बार मिस्र से भारत तक सीधी समुद्रयात्रा की। यूडोनसस के समय में सारा रास्ता समुद्र के किनारे-किनारे तय किया जाता था लेकिन इसके यूनानी उत्तराधिकारियों ने थिरे, थिरे, मानसून के सहारे, स्वाहा से रमावा खुले समुद्र में अंतरा मोल भेंट हुए, रास्ते की पूरी कल्पना की। रास्ते की पूरी को कम करने का यह काम १००-८० ईसापूर्व में आरंभ और ४०-२० ईस्वी में समाप्त

हुया। यह भारत महासागर में यात्रा करनेवाले यूनानी भाषिक सोमाली तट से भारत के दक्षिणी भाग तक सीधे चारज जाए बिना पहुँचने सय। ७०-८० ईस्वी में विजित एराइथ्रियन सागर के पेरिप्पस में बंटीगाहा और बारबरा से फारन की लाड़ी और सामसागर की यात्राओं का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें सोकोका में एक भारतीय बस्ती की बात भी मिली है। भारत महासागर पर यूनानियों की इस क्रिय के कारण ही - ईसापूर्व में एलेन में कामी-विर्ब लूब मिलती थी। सर पनाइरस वटो ने मिडगेशिया में बर और निगुन-सहिण एक बौद्ध नैय खोज निकाला है जिसका निर्माण टासेमी युग के प्रन्त से पहले हुआ था।

भारत में मोक्ष-साम्राज्य की स्थापना लगभग ३२४ ईसापूर्व में हुई थी और पश्चिमी एशिया में सेल्यूसिड्स के साम्राज्य की स्थापना लगभग ३०१ ईसापूर्व में। लगभग ४१ ईसापूर्व में यूनानी भाषिक हिप्पामस ने मानसून की खोज की थी। उपर्युक्त दोनों साम्राज्यों की स्थापना और मानसून की खोज के बीच की चार सतावियों में सीरिया और मिस्र के साथ भारत का सम्बन्ध निकट से निकटतर होता गया। भारत से सीमा सम्बन्ध स्थापित करना टासेमी की नीति थी। इससे समुद्री व्यापार को बढ़ावा मिला और फलतः रोम-साम्राज्य व्यापारिक क्रूर से घरों पर निर्भर नहीं रह गया। ऐन रोमना के प्लूटार्क ईस्वी सन् की पहली दो सतावियों में यही नीति फारम रही और दक्षिणभारत के प्रमुख नगरवाहों में रोमन और किसी व्यापारियों की बस्तियाँ बनीं। रोम-साम्राज्य में जिस भारतीय वस्तुओं की खबर माल थी उनमें से प्रमुख में मसाले, इन मोती बहाहरात रोमन और मलमल। भारत में व्यापार की जानेवाली वस्तुएँ थी मिरा और बंकीलोन के तन के कपड़े सामसागर का पुष्कराज लवेट का मूगा तथा रोम की घराब सोना और चाँदी। इस व्यापार निर्यात के बाद मूलतः भारत के पक्ष में बाकी रह जाता था। रोम-साम्राज्य को हर साल बन करोड़ सेल्डेनी का मूलतः भारत को करनापड़ता था। प्लाइनीने इन भाषिक लक्ष के विरुद्ध व्यापार बुरा की थी।

परबसागर में मानसून हवाओं की खोज रोम-साम्राज्य में पामपीरु की वस्तुओं का मांग तथा सामसागर और परबसागर के तट के नगरवाहों के बीच सीमा सम्बन्ध स्थापित होने से विश्वी पारिवा-साम्राज्य के बीच में जानेजाने स्पष्ट मांग की आवश्यकता न रहने के कारण भारत और पश्चिम के बीच निरन्तर सम्बन्ध स्थापित होने में बड़ी मुश्किल हुई और एगी सतावसी ईस्वी तक रोम के साथ समुद्री व्यापार लूब होता रहा। बंसाह, दक्षिणी निगुपाटी सीरोट, कर्मीर और गवार के नगर भारतीय मूलानों मंरानि ने केंद्र बन गए। सताविया और बारबरा के पश्चिदिन मायन समुद्र और मिनगर इस युग के महान सामाजीय नगर थे।

नागर जीवन और एरब

मिनिगन-ह में सावल का प्रत्यक्ष प्रमाणपूर्व बचन है

“मोनर देश में एक प्रमुख व्यापारकेंद्र है जिसका नाम है मागन। यह पहाड़ियों के बीच बड़े समीक स्थान पर स्थित है जहाँ पाकी लूब मिलता है। पनेजानेक

पाकों उद्यानों कुर्चों मीनों और तामाबों वाला यह भूमान वास्तव में नवियों पहाड़ों और जंगलों से भरापूरा एक स्वर्ग है। कुशल वास्तुकों ने इस नगर की योजना बनाई है और यहाँ के लोगों में निर्दयता का भेष नहीं है क्योंकि इनके घारे छत्रुओं और विरोधियों को पराजित किया जा चुका है। सुरक्षा के लिए इसे एक सुदृढ़ प्राचीर से घेरा गया है जिसपर घनक मण्डित मीनारें और परकोटे हैं तथा विद्यालय काटक और प्रवेशद्वार हैं। बीच में राजप्रासाद है जिसकी दीवारें सफेद हैं और जिसके चारों ओर एक नहरी बहती है। इसकी सड़कें चौराहे बस्ती के बीच लुमे मैदान और बाजार सुनिश्चित हैं। इनकी बूकानें घणवित कीमती सामानों से भरी पड़ी हैं जिन्हें घण्टे ढंग से सजाकर रखा गया है। अनेक प्रकार के घनावालय तथा सादों सामदार हमारतें इसकी छोमा बढ़ाते हैं। य हमारतें हिमालय के छिन्नो की मांति प्राकाश को भूम रहो हैं। इसकी सड़कों पर हाथी थोड़ों रथ तथा पंदरों की वेसुमार भीड़ रहती है तथा अनेक प्रकार के अनेक व्यवसायों वाले व्यक्ति—बाइण राजवरवारी छिन्नी और मूल्य—बीज पड़ते हैं। वप्रत्येक वर्ग के उप देशकों का स्वागत उच्छकंठ से करते हैं और विभिन्न मठों में से प्रत्येक के नेता यहाँ व्यवस्थ पाते हैं। बनारस की मममस कोटम्बरा की वस्तुओं तथा अनेक अन्य प्रकार की वस्तुओं का विक्रय करनेवासी बूकानें हैं तथा बाजारों में अनेकप्रकारक फूल और इन वणिपूवक सजाकर रके जात हैं जिससे मभुर यंथ निकलती रहती है। बचाइरातों का प्रम्मार है तथा बाबाघ की सारी विद्याओं में कैसे बाजारों में व्यापारी-संघ अपनी वस्तुओं का भाकर्यकतम ढंग से प्रवर्धन करते हैं।

वो अन्य कृतियों—वास्त्यामनकृत कामसूत्र तथा धूर्तकृत 'मृच्छकटिक'—से उस युग का चित्र पूर्ण हो जाता है। ए० ए० रास मुष्ट के पहली कृति का समय दूसरी छताब्दी ईसापूर्व निर्धारित किया है तथा दूसरी कृति का समय पहली छताब्दी ईसापूर्व से पहली छताब्दी ईस्वी के बीच। कामसूत्र में अत्यन्त स्पष्ट ढंग से काम-क्रियाओं को परिमाणित किया गया है तथा उनके मेथों को बताया गया है। इतना ही नहीं इसमें उस ढंग के सुसंस्कृत मानव जीवन का विषय बलन भी प्राप्त होता है। बीच के अनुसार, प्रत्येक मगर निवासी अर्थात् 'नागरक' के घर में 'युग का सम्पूर्ण वैमर्ष उपस्थित था—मुमायम विधीने उद्यान में स्थित प्रीम्नमूह फूलों से सजे हुए वर्जन पुरष के व्यवसाय के समय को अपने सहयोग से कुशलता बना देनेवासी रमणियों के मनोरंजनार्थ मूखे। नागरक का अधि कांश समय मृगार में बीतता है। स्नान के पश्चात् उसके शरीर पर तैय सजाया जाता है सुगन्धि छिड़की जाती है पुष्पमालाएं पहनाई जाती हैं। तब वह पित्रों में बन्द पक्षियों को बोसना सिखाता है या भेड़ों चरवा भुगों का कुछ देखता है। (उस युग के पक्षिक मोजवानों के ये दो प्रमुख मनोरंजन थे।) या फिर घर से बाहर की स्थियों के साथ मगर के बाहर के उद्यानों में जमा जाता है और उन स्थियों द्वारा छोड़े हुए फूलों से प्राभु पित वापस पाता है। मूल्य गान प्रावि के समारोहों व्यवसा माटकों में भी वह भाग लेता है। उसके पास सर्वत्र एक सारंगी रहती है ताकि मोज घाने पर बजा सके और एक पुस्तक होती है कि व्यवसाय के छणों में पढ़ सके। उसकी लुत्ती के लिए बिट पीठमर्ष और बिहू पक जैसे अनेक प्रकार के नाट्यकार और सानी आवश्यक हैं। मद्यपान की बातें होती हैं

सिर्फ वीकर उन्मात्त मचाना मना है। नागरक का लक्ष्य है कि उसके मनोरंजन में भी सौम्य संयम और किसी सीमा तक सीरव रहे। वह कभी-कभी कृपापूर्वक जनसाधारण की बोला में बातें ता कर लेता है किन्तु उसमें भी सम्कृत का पुट दता है ताकि उसकी अष्ट संस्कृति का प्रदर्शन हो सके। रखें उसके लिए भावमय है किन्तु रसों में भी गुण यती हाती है। 'कामगुण' में तो लिखा है कि ऐसी स्त्रियों को अपार ज्ञानवनी तथा काम्यात्मक रसि वाली होना चाहिए। इस प्रकार की सर्वाधिक प्रसिद्ध स्थिया के पास प्रामाण बन हो जाता था जैसाकि 'पूज्यकटिक' की नायिका के महल के निवरण से स्पष्ट है। और वेरिबलीड-आसीन ऐश्वस के सपान यहाँ भी साहित्य संगीत और कला सम्प्रदा विचार-विमर्श में भागलेनेवालों को बहुमानन्द प्राप्त होता होगा का उह धपनी पत्नियों से नहीं निग पाता था पत्नियों से तो वे सिर्फ सन्ताप और घर की देखभाल की धाना करते थे।

'पूज्यकटिक' एक सामाजिक नाटक है और उसमें सत्य के नमर उदरजिप्सी की सावसीम प्रकृति का विवरण कराया गया है। अपने हीय बेगवान कबानक तथा घटमाओं और पानों (धनेक पास तो जिसकुम प्राधुनिक नगरनिवासियों जैसे हैं) की विविधता के कारण यह नाटक धनेक प्रयोग में अडितीय है। नाटक की आत्मा वास्तव में आरम्भ के समय से प्राधुनिक है। इसका नायक एक भूजा बाह्यक है और अपने समय के भार तीव्र पीय का सावक है—सावक जो हिन्दू और बौद्ध धिचारों के सामंजस्य से निर्मित हुआ था। वह अपनी पत्नी को जितनी ईमानदारी से प्रेम करता है उतनी ही ईमानदारी से नाटक की नायिका एवं पारोपना का भी प्रेम करता है। और उस उदारमन में इसमें कोई बिरोधानात नहीं था। पारोपना पारस्पायन के कायगुण के अनुसार गुणवती है। पक्षनायक को अपने पास तक नहीं पटकने देती और अपने पुर्णों तथा प्रदी के प्रति ईमान दारी के बल पर अखत नायक को अपने घर में कर ही लेती है। एड गजनीतिक पक्षन के कारण सामकर्म के परिवर्तन के कमस्वरूप (जो नाटक का उपकथानक है) अष्ट में नायक और नायिका दोनों को सम्पत्ति और धामन्य की प्राप्ति हाती है।

'पूज्यकटिक' नाटक नहीं प्रकरण है। नाटक में दीरी सबका राजदरबार के जीवन का प्रवचन होता है और प्रकरण में जनसाधारण के जीवन का। नाटक का कथा बह महाकाम्यों सबका पुराणों पर आधारित होता है और प्रकरण का कथानक 'बृहत्साल' पर। संस्कृत का मध्यकाल सामाजिक नाटक निरूपण है 'पूज्यकटिक' है। अन्य अष्ट नाटक हैं बबभूति इव 'मामतीनायन' और विपापदसकृत देवी बग्भुत्ता।

भारतीय कला में यूनानी और दार्शनिक

पटनी सतायी ईमानुष से ही भारतीय कला पर रोमक प्रभावी प्रभावों और उमर-गतिनी रीतियों का यही प्रभाव पड़े लगा। भारतीय सुत्रिकला में पतिवेलिम के बग परपहा और Addorsted पशुओं का चित्रण कर दिया था। भारहुत मयरा दोष र्मा और उदरनिर्ग की मूर्तिरुता में ईरानी पाम-बुद्धों गुमाव की भादियों और पुन

के पीलों के गुच्छों तथा सेंटार^१ डिफिन^२ तथा धम्म कालानिक आगवर्णों को मनोहारी तथा शास्त्रीय दृष्टि से संरचित नमूनों में व्यक्त किया गया है। ये प्रभाव सीधी छोटे हुए समरावती तक जा पहुँचे (दूसरी से चौथी शताब्दी ईस्वी)। किन्तु सभी स्तानों पर जिस कला में इन प्रभावों का परिपाक हुआ उसकी आत्मा और खैली घट प्रतिष्ठित मौनिक एवं भारतीय थी। मौर्यकाल में पश्चिमोत्तरी के स्तम्भों, बौद्ध परगणों, पशुओं की मूर्तियों तथा सजावट के नमूनों को भारतीय शिल्पियों और मूर्तिकारों की कल्पनाशक्ति ने एक नया रूप दे दिया था। अशोक के स्वम्भ इस काल की भारतीय वास्तुकला की श्रृंखला में उपलब्धियाँ हैं। इसी प्रकार बाद के समय में गुप्तानी एशिया के बिस्तीर्ण का पूर्ण परिपाक एक स्पष्ट प्राच्यमान भारतीय शैली में हुआ। आवांठित कला और वास्तुकलात्मक बन जाती है। मौलिक कला सर्वत्र प्राच्यमान कोमल और होती है और भारत में कला अपनी सय आकार और संरचना द्वारा शान्ति और समामिता को उद्गार करती है। अनेक बसकों तक बुद्ध और गुप्तानी भोसो का मिश्रण (धर्मभारतीय और कृवेर (धर्मरोमक और धर्मभारतीय भववा शककुलीन व्यक्ति)। हारीति (प्रसन्नमना रोमक माता) की मूर्तियाँ बनती रहीं ॥ ॥ ॥ एरॉस और बैकानामियाई बुध को अंकित किया जाता रहा। भीतर भारतीय धार्मिक कला की प्रत्यक्ष और अतिरिक्तानी हेनेमबाह को भीचे बना दिया।

सक-कुपाण राजाओं कनिष्क वेम कवकीसेह और मूर्तियाँ पहली शताब्दी ईस्वी के अन्तिम अनुवांस की हैं। संक्षिप्त है व्यक्ति अक्षर कर रहे हैं और उनके पोश में एक का अंकन बोधोम है जिससे पता चलता है ये कृतियाँ गुप्तानी सम्राटों और महानरवरों ने रोम और पार्थिया के निवासियों। जानेबासे सम्राटों की मूर्ति निर्मित करने की प्रथा को, प्रासन के कडेपन और उद्गच्छता से सुस्पष्ट मानव को देखते अन्तर्गत है। किन्तु इन मूर्तियों के मारी बस्तों, पूर्ण किनारियों पर ईरानी-शक प्रभाव है। फिर भी अपटे रैशिक की शक-परम्परा का बाद के समय में बुद्ध-मूर्तिकला में मसी बुद्ध-मूर्तिकला में रैशिकता और कोनीयता का पूरा भाग बिगुनमीन प्रासन की सुपीरिचिद निओनीय रचना में २०-२५ दृष्टव्य है।

पंचार स्कूल की कला पहली शताब्दी ईसापूर्व तक अत्यंत उन्नत और फलवती थी किन्तु पार्थक्य है कि ॥

१ शोताविश क्ले, किरका कवर से बाँके का भाग छोड़े तथा ऊपर

२ एक कालानिक क्ले, मिश्रक तार और रंग रोर के समान तथा

नाथार हेमचन्द्र का प्रभाव सीधे यूनानी-बौद्धवादी और पार्थिववादी छात्रों के समय में नहीं परन्तु उसके बाद यूनानियों के चरण-चिह्नों पर बसनेवाले छात्रों और कुपायों के काल में हुआ। कला का यह चरण एक नवीन और अद्वितीय ब्रह्मसूत्र के युग में पहुँचने ही वाला था कि हथों का आक्रमण हुआ और इसे एक महान् आघात लगा।

संस्कृतियों के पारम्परिक प्रभाव

इस युग में भारत की भूमि पर संस्कृतियों का अभूतपूर्व सगम हो रहा था। इसीलिए प्रश्न किया जा सकता है—यूनानी विज्ञान और दर्शन तथा कारकीर्मी का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा? बिनापाठ है कि मौर्य-सम्राट् ने संस्कृत के सामने अन्य अस्तुष्टा के साथ एक यूनानी विद्वान की माँग पेश की थी जो जा पूरी नहीं हुई। भारत में ब्राह्मणदर्शन परिपक्व और संयुक्त सुस्पष्टीकृत हो चुका था और सभी तर्क का प्रभाव नहीं पड़ पाता था। समकालीन यूनान का निःस्पृह भाग्यवाद भारतीय दार्शनिकों और विद्वानों के लिए इतना विमोक्षण नहीं था कि वे प्रभावित होते। इसके विपरीत पता चलता है कि ४० ईसापूर्व से पहले एक भारतीय दार्शनिक ने मुंबरात से गैट की थी। यदि यह बात सत्य है तो उपनिषदों के परमविज्ञानवाद ने प्लेटो का अद्वय प्रभावित किया होगा। इससे भी अधिक संभाव्य है पाइथागोरस के विज्ञान और दर्शन पर संस्कृत दर्शन का प्रभाव। इतना ही संभाव्य है जेनोवादियों और मक्मेटोवादियों के 'सोफोस' सिद्धान्त पर बौद्ध 'मा' का प्रभाव। फिर भी ग्योतिष के लिए भारत यूनान के प्रति आनारी है। भारत ने इस दिन के लिए यवनों के प्रति अपना आभार उल्लासपूर्ण और स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है जेताकि 'आर्गी-सहिना' के सुप्रसिद्ध ग्रंथ से स्पष्ट है 'यवन भारत में बर्बर है किन्तु ग्योतिष का उन्मेष उनके यहाँ हुआ, और इसके लिए उनका सम्मान देनाओं के समान करना चाहिए।' ग्योतिष के पास भारतीय दर्शनों में से दो—'रोमक सिद्धान्त और पीनित सिद्धान्त' (जिसका नामकरण सिक्कन्दरिया के पास जो सन् ३३८ ईस्वी में जीवित थे के नाम पर हुआ था)—की रचना पश्चिम के आचार्य पर हुई थी।

पूर्वोक्त भूमध्यसागरीय प्रदेशों में बौद्ध-ब्रह्मचर्यों की भली प्रकार पहचाना जाता था। वे विजयनगर में पराजुट्ट (पराजुन) और फिनिस्सिम में एमीन्य कहलाते थे। फिर भी ग्योतिष पट्टा यूनानी दार्शनिक या जिनम बुद्ध का नाम लिया। पश्चिमी एशिया के इन्हीं बीच भिन्नता से ईसाई धर्म की कुछ आधारभूत विचार और बर्णन मिली थी। यवन ईसाई इतिहासकारों का मत है कि परम्पराकारी ईसाई धर्म ने बौद्ध धर्म के सबसे बड़ा अवधारण को माना का प्रभाव तथा अन्य सरदार और धार्मिक धर्म बौद्ध धर्म से ग्रहण किए। ईश्वर के मंत्रिक में भारतीय धर्मियों की प्राप्ति में पता चलता है कि दार्शनिक-धर्म के दार्शनिकाल में बौद्ध धर्म और बौद्ध खाहार सुविज्ञात था। इसके पश्चात्तः धर्म के धर्मियों को भारतीय धर्म द्वारा गुरुवादा हुआ कहा जाता है। एक औरिया कथा के अनुसार बुद्ध रामदेव-भगवत्पुत्र मुरारिजन राम-नाम से औरिया पहुँचा था और दूसरी पतागरी ईसापूर्व तक में प्रचलित था।

के पीछों के मुण्डों तथा घेंटार^१ प्रिकिन^२ तथा अन्य कार्यात्मिक आनवरों को मनोहारी तथा शास्त्रीय दृष्टि से संरचित समूहों में व्यक्त किया गया है। ये प्रमाण सांघी होते हुए प्रमदावती तक जा पहुँचे (बुधरी से चौथी शताब्दी ईस्वी)। किन्तु सभी स्थानों पर जिस कला में इन प्रमाणों का परिपाक हुआ उसकी भावना और रीति सच-अविद्यत मौलिक एवं भारतीय थी। मौर्यकाल में पर्सिपोमिस के स्तम्भों पर पशुओं की मूर्तियों तथा सजावट के समूहों को भारतीय चित्रियों और मूर्तिकारों की कल्पनाशक्ति ने एक नया रूप दे दिया था। प्रद्योत के स्तम्भ इस काम की भारतीय वास्तुकला की कुछ स्पष्ट तम उपसम्भियाँ हैं। इसी प्रकार, बाद के समय में यूनानी एशिया के विस्तीर्ण प्रमाणों का पूर्ण परिपाक एक स्पष्ट प्राणवान भारतीय शैली में हुआ। प्रायः प्रमाण प्रायः प्रायः और वास्तुकलात्मक बन जाती हैं। मौलिक कला सर्वत्र प्राणवान कोमल और भावप्रबल होती है और भारत में कला अपनी सय भाकार और संरचना द्वारा समय जीवन की शान्ति और समागिता को उजागर करती है। अनेक वस्तुओं तक बुद्ध (भारतीय धर्म और यूनानी अफोको का मिश्रण) मायादेवी (धर्मभारतीय और धर्मयूनानी मूर्ति) कुबेर (धर्मरोमक और धर्मभारतीय प्रपञ्च सककुलीन व्यक्ति) और उसकी संगिनी हारीति (प्रसन्नमता रोमक माता) की मूर्तियाँ बनती रहीं तथा यूनानी रूप और वस्त्र पार्श्व और वैकालामियाई बुद्ध को प्रकट किया जाता रहा किन्तु कुछ ही समय के भीतर भारतीय शिल्प कला की प्रत्यक्ष और अतिशयनी अभिव्यक्ति ने गौतम हेमनवाद को नीचे धा दिया।

सक-कुपाय राजाओं कनिष्क वेम कच्छीसेह और चट्टन की मबुरा की मूर्तियाँ पहली शताब्दी ईस्वी के अन्तिम चतुर्थांश की हैं। सभी मूर्तियों की गहन संक्षिप्त है व्यक्ति सकड़कर लगे हैं और उनके पोष में तनिक भी सन्नत नहीं है। वस्त्रों का संरुत कोणीय है जिससे पता चलता है ये कृतिवा हेमनीय नहीं सक हैं। कुपाय सम्राट और मंडनेश्वरों ने रोम और पाश्चिमा के निवासियों की शैलीयों के समान पुने जानेवाले सम्राटों की मूर्ति निर्मित करने की प्रथा को अपना लिया था। मूर्तियों के प्रासन के कड़ेपन और उद्विगता से मुस्पष्ट मानव को शैवतुस्य मानने की यह प्रथा पूर्वत भारतीय है। किन्तु इन मूर्तियों के भारी वस्त्रों जूतों और कपड़ों की सजावटी किनारियों पर ईरानी-सक प्रमाण है। फिर भी अपटे रैखिक और कोणीय रचना-विधान की सक-परम्परा का बाद के समय में बुद्ध-मूर्तिकला में बलौ भाति परिपाक हो गया। बुद्ध-मूर्तिकला में रैखिकता और कोणीयता का पूरा साथ उठाया गया। तथापि के भिन्नमनीन प्रासन की सुपरिचित त्रिकोणीय रचना में इस सक-परम्परा का भारतीय रूप दृष्टस्य है।

महार स्कूल की कला पहली शताब्दी ईसापूर्व के मध्य से पाँचवी शताब्दी ईस्वी तक प्रत्यन्त उन्नत और फलवनी थी किन्तु आवश्यक है कि भारतीय कला के विकास में

१ पोतखिब बन्नु, तिनका समर से नाके का भाग कोरे तथा ऊपरी भाग मनुष्य का माना जाता था।
२ एक कार्यात्मिक प्रेरण, जिसका शरीर और पैर शेर के समान तथा शीर्ष और टैला शत्रु की के समान माना जाता है।

गोपार हेननबाद का प्रभाव सीधे यूनानी-बिद्यार्थी और पाषाणार्थी शास्त्रों के समय में नहीं बरन् उसके बाद यूनानियों के चरण चिह्नों पर बसनेवाले शास्त्रों और कुपायों के कास में हुआ। कला का यह चरण एक नवीन और अद्वितीय कलात्मक मूर्ति के युग में पहुँचने की बात है कि हूणों का आक्रमण हुआ और इसे एक गहरा आघात लगा।

संस्कृतियों के पारस्परिक प्रभाव

इस युग में भारत की भूमि पर संस्कृतियों का समुत्पन्न संगम हो रहा था। इसीलिए प्रश्न किया जा सकता है—यूनानी विज्ञान और दर्शन तथा फारसीधर्म का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा? बिज्यात है कि मोय-सनाद ने संपूर्ण संसार के सामान्य धर्म-वस्तुओं के साथ एक यूनानी विज्ञान की भाँति पद की ची जो पूरी नहीं हुई। भारत में ब्राह्मणधर्म परिवर्तन और अन्तः-सुम्बन्धित हो चुका था और यहाँ तक का प्रभाव नहीं पड़ पाता था। समकालीन यूनान का निस्पृह भाष्यकार भारतीय शास्त्रियों और विद्वानों के लिए इतना विमर्श नहीं था कि वह प्रभावित होते। इसके विपरीत पता चलता है कि ४ ईसापूर्व से पहले एक भारतीय शास्त्रिक ने मुक्तपत्र से मेट की ची। यह यह बात सत्य है तो उपनिषदों के परमविज्ञानवादी न ज्योती के धर्म प्रभावित किया होगा। इससे भी अधिक संभाव्य है पाश्चात्तरस के विज्ञान और दर्शन पर संस्कृत धर्म का प्रभाव। इनका ही संभाव्य है ज्योतीयों और नवज्योतीयों के 'सोफोस' सिद्धान्त पर वैज्ञानिक 'वाक' का प्रभाव। फिर भी ज्योतिष के लिए भारत यूनान के प्रति आनारी है। भारत ने इस क्षेत्र के लिए यवनों के प्रति अपना आभार उदाहरण और स्पष्ट धर्मों में प्रकट किया है जैसा कि 'गर्गो-संहिता' के मुखसिद्ध धर्म से स्पष्ट है 'यवन शास्त्र में बर्बर है किन्तु ज्योतिष का उद्भव उनके यहाँ हुआ और इसके लिए उनका सम्मान देना ही के समान करना चाहिए। ज्योतिष के पाँच भारतीय धर्मों में सवो- 'सोमसिद्धान्त' और 'ज्योतिष सिद्धान्त' (जिनका नामकरण सिन्धुद्विधा ॥ पौल ओ सनन २३- ईस्वी में जीवित थे के नाम पर हुआ था) की रचना पश्चिम के आचार पर हुई थी।

पूर्वोक्त यूनान-संगरीय प्रभावों में बौद्धधर्म-प्रचारकों का भी प्रचार पड़ना आता था। वे गिरमरिया में बराप्पुत्ते (बरापुत्र) और चिमिलोन में लसीम्ब बहसाते थे। फिर भी बनीमेट पहला यूनानी शास्त्रिक था जिसने बौद्ध का नाम लिया। पश्चिमी एशिया के इन्हीं बौद्ध भिक्षुओं से ईसाईधर्म का कुछ आचारभूत बिचार और कथाएं मिली थी। यनेर ईसाई इतिहासकारों का मत है कि परम्परावादी ईसाईधर्म न बल्कि बौद्ध धर्म प्रभावपूर्वक रूप करने की भाँति का प्रभाव तथा सम्यक-मार्ग और धार्मिक रूप बौद्धधर्म से ग्रहण किए थे। धर्म के क्षेत्र में भारतीय भूतियों की प्राप्ति न पता चलता है कि टानमी-युग के शासनकाल में बौद्धधर्म और बौद्ध स्थावर मुक्तिप्राप्त थे। इनके पठित धर्म के धर्मालेख को भारतीय लोग द्वारा गुरुवाया हुआ कहा जाता है। एक सारिवादी कथा के अनुसार बुद्ध-समुत्तम-महाराज मुक्तिप्राप्त रूप-मार्ग से सीरिया पहुँचा था और दूसरी गताली ईसापूर्व तक में प्रचलित था।

इसी प्रकार ईरान के सीस्तान प्रदेश में हेसमन्ग मधी की पाटी में एक बौद्धमठ के प्रवेशोप पाए गए हैं। एक प्रस्ताव किन्तु महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि दूसरी शताब्दी ईस्वी में पार्थिया के एक राजा ने अपने सिंहासन का परित्याग करके बौद्ध भिक्षु का जीवन अपना लिया था। सीस्तान बेनिटया और अफगानिस्तान में बौद्धमठों के अनेक अवशेषों की सुरक्षित रक्षा गया है। विशेषरूप से सीस्तान में कम से कम १०० ईसापूर्व के अभिलेखों के रूप में सिद्धित प्रमाण पाए गए हैं। एक डब्ल्यू० टॉमस का कथन है कि मध्य एशिया के प्रारम्भिक सहर तुर्कों ने बौद्ध-साहित्य का विकास किया था। दोस्त्रियाना में कुपानों और सोकारियाइयों का अपना बौद्ध-साहित्य ईसा सन् के प्रारम्भ से ही प्रवेश रहा होगा। अशोक के समप्रचारकों के भूमध्यसागरीय प्रदेशों में पहुँचने के बाद मध्य और पश्चिमी एशिया की जनता पर बुद्ध के नाम और संदेश का इतना महत्त्व प्रभाव पड़ा कि पश्चिम के अनेक धार्मिक नेताओं ने अपने नाम बुद्ध रख लिए। त्साहुरवत प्रान्त्तोस (२७८ ईस्वी) के अनुसार टेरिन्थस न स्वयं को दूसरा बुद्ध घोषित कर दिया था। स्वयं बुद्ध को एक ईसाई संत स्वीकार करके संत जोसाफट 'भारत का राजकुमार' का नाम प्रदान किया गया है। बौद्धधर्म ने ही मामिकीबाद के सिद्धान्तों को रूप दिया। इसके संस्थापक मनि ने जो तीसरी शताब्दी ईस्वी में बौद्ध के अपना नाम 'तथागत' रखा और बुद्ध प्रथम बोधिसत्व के प्रति अपनी भक्ति का प्रदर्शन किया। इसके विपरीत 'मामिकीबाद' और ईसाईधर्म दोनों के पुनर्जन्म सिद्धान्त ने बौद्धधर्म और महायान बौद्धधर्म के अनेक अवतार सिद्धान्त को सम्भवतः प्रभावित किया होगा।

अपनी सीमाओं के भीतर भारत यन्त्रों यन्त्रों तथा अन्य विदेशियों की अपनी जनसंख्या के स्वाधीनताओं के रूप में सम्मिलित करता या रहा था और उन्हें प्रत्येक प्राप्ति के धर्म प्रदान कर रहा था। ईसाईधर्म भूमध्यसागरीय प्रदेश का एक नया धर्म था और कठिनाता से एक स्वानीय सम्प्रदाय का वर्ण वा सका था किन्तु दूसरी शताब्दी ईस्वी के अन्त तक उसके कई गिरफे बक्षिणी भारत में स्थापित हो गए थे। इससे अधिक महत्वपूर्ण की सूर्यदेवता की पूजा जिसे एक-पार्थियाई युग में पारसी विविधरूप में अपने साथ भारत लाए थे। दूसरी शताब्दी ईसापूर्व के राजा रिबीयों ने बिजलाया गया है कि सूर्य को परिचारिकाओं के साथ चार घोड़ों वाले एक रथ को हाँक रहे हैं और रथ का तम राक्षसों पर चल रहा है। पारसी धर्म की मिथ-सम्बन्धी पीराणिश कथा में ये राक्षस प्राणकार की दुष्टारमाएँ हैं। जोड़ो पर सवार प्राकृतिवा सूर्य के अनुसर बिदेसी हैं उनकी बीनी ईरानी हैं। सम्भव है कि सूर्य यहाँ बिदे-शासक बुद्ध हैं और यह धार्मिक व्यवस्था के भारतीय विचार और 'धार्मिक' (प्रकार और जीवन की प्रारम्भ) के पारसी विचार के सम्मिश्रण को व्यक्त करता है। मधुर-सम्राज्य में सूर्यदेवता को चार घोड़ों वाले रथ पर सावधान बड़े स्थूलकाय-प्राकृति के रूप में दिखलाया गया है। वह कपड़े पहने हुए है और उसके कंधा पर ईरानी राजा के अनुसार छोटे-छोटे पंख लगे हैं। मूर्ति सगमन दूसरी शताब्दी ईस्वी में निर्मित हुई थी। 'अधिव्यपुत्रा' में सूर्यपूजा को जिसका प्रागमन 'मानी पुजारियों के साथ हुआ था निश्चितरूप से कुछ पारसी धर्म ज्ञानों के साथ सम्मिश्रित माना गया है, और लिखा है कि दुष्क के पुत्र साम्ब ने इस प्रकार

को मूर्खोपासना का भारत में प्रचार किया था। पुराणों में मूर्खोपासना के सर्वप्रथम और सर्वाधिक पवित्र स्थान के रूप में मूलस्थान अथवा मुलतान का नाम लिया गया है। यही वह जंगल था जो बाद में छकों के अधीन हुआ। राम जीवरी महाप्रिय ने टालेमी के कस्पीरियोई (कास्पियपुर) को मुलतान बताया है। भारतीय-शक्तियुग के बाद से मूर्खोपासना ने इति-वाने हिन्दुधर्म में अपना एक अल्पज्ञात किन्तु सुनिश्चित स्थान बना लिया है। ✓

भारत पाणिपत, ईरान विषय और रोम एक बौद्धिक बन्धन में आबद्ध थे मानो वे एक ही सांस्कृतिक संसार के अंग हों। भारत ने अलास्त्रियों के दौरान ईराना शासन व्यवस्था के तत्त्वों हेमनीय कला श्रुतीकों अरागिया की भाषा तथा उसकी व्युत्पत्ति यरोफ्डी ईरानी और यूनानी सबों यूनानी रामकसिचकों की सीधी और यूनानी ज्वातिप के सिद्धांतों को अनुसर स्वीकार किया और अपने अनुसार बना। दूसरी ओर भारत का जर्म रवंग और बीजम-व्यक्ति तथासिना पुष्कलावती बारबरा और बीरोमाबा सं-रक्षत या जस मागों द्वारा अनुप्यसागरीय प्रदस पहुँचे। बारण स्पष्ट है। प्राचीन भार-तीयों में जर्मप्रचारकों का उल्लाह था। इस उल्लाह को सहारा और बड़ाबा मिना पश्चिम में रोम तथा पूर्व में मलय चीन लंका और इंडोनेसिया के साथ होनेवाले भारतीय व्यापार के नाम से। और बिज्ञानों मिदु को तथा व्यापारियों के साथ भीरे भीरे बिदियों में जाती रही कहानी कहन की कला। पञ्चतन्त्र और हितोपदेश में बर्णित भारत की प्रत्येक प्राचीन मोक्षरूपाएं भूगर्भगतानीय प्रवेशों में पहुँच गई। बहा सीडिया के शासक जोएसस के दरबारी बिक्याल ईसप ने उनका ग्रीक भाषा में अनुवाद किया। इन्हीं कहा-नियों का एक ओर अनुवाद जो बारबियस द्वारा बताया जाता है तीसरी अलास्त्री ईस्वी में निकला। दूसरी अलास्त्री ईस्वी के एक यूनानी मुलान्त नाटक में अहाह दूब जाने पर एक स्त्री भारत के समानार लट पर जा पहुँचती है और वहाँ के स्थानीय निवासी नाटक में वहाँ की बोली में ही बात करते हैं। मामबला के रंग-बिरंगे इतिहास में एकाधिक बार ऐसे मुप आए हैं जब अन्त सांस्कृतिक सम्बन्ध और कमी-जमी ज्ञान जून तेजी से बढ़े हैं। रोम में, घायस्य और नीरो के बीच का याही युग और भारत में बिदयी यूनानी-बिदु याई तथा एक पाणिपत्य का युग भारत और पश्चिम दोनों में इसी प्रकार का सुनिश्च-जनर नाम था।

द्वितीय सुधार-युग

बौद्धधर्म का विदयधर्म में रूपान्तर

महायान बौद्धधर्म का उदय

महाराज देवपुत्र कमर कमिष्क (समय ७८-१०१ ईस्वी) के संरक्षण में आसमर घबरा करमीर के कृष्णमवन-बिहार में आयोजित सामान्य बौद्ध-समिति का सम्मेलन एगियाई संस्कृति के इतिहास में एक अद्वितीय घबसर था। इस सम्मेलन में समस्त भारत के पाँच ही मित्रधो मे माय लिया था। कमिष्क ने इसका आयोजन बुद्ध के उपदेशों के स्पष्टीकरण के उद्देश्य से किया था क्योंकि धनेक बौद्धसम्प्रदायों द्वारा उनकी प्रमय प्रलय व्याख्या की जा रही थी। समिति ने बौद्ध उपदेशों और विचारों को सर्वास्तिवाद मत के अनुसार नियमित किया और बौद्धधर्म के विकास में महायान नामक एक नय रूप का प्रबलन किया। महायान नामका धार्मिकी पाँच घताविर्यी में मध्य एशिया चीन मंगोलिया जापान और फिलिपाइन द्वीपसमूह सहित बलिष्कपूर्वी एशिया में फैल गया। तब 'यान' का अर्थ है यात्रा, पय प्रमया जीवन-व्यति और 'महायान' का धार्मिक अर्थ है परम प्रमया महान् पय प्रमया बोधिसत्त्वों की यात्रा (बोधिसत्त्वजान)। बोधिसत्त्व बीड़िन मानवता की मृति के लिए प्रमया बलिदान करते हैं। यह पय थोताप्रो प्रमया धिप्यों के पय से प्रिम है जो प्रपनी व्यतिपय मृति प्रमया मानप्रति के उपाय करते हैं। बौद्धसाहित्य मे हीनयान प्रमया मुख्य छोटा बब बहुत कम प्रमया किया जाता है। हीनयान तब का प्रमया बीमी किनामों औरमाधियों ने प्रबलित किया है। बौद्ध मिठाँठों के बिकाम को मसी प्रकार सममने के लिए आवश्यक है कि हय हीनयान तब को छोड़ कर और प्रमि प्रबलित आवश्यकता तथा प्रत्येकबुद्धयान का प्रयोग करें जिनका प्रयोग संरुतदय में अर्हत् के जीवन के सम्बन्ध में किया गया है। समरथाय है कि ग्धार में एक रिमोक वनेस (दूमरी से बीपी घताली ईस्वी) है जिसमें बुद्ध को बकरागाही पय दिगताया गया है—यह हीनयान का बिहू है।

विदयधर्मों का रूप में बौद्ध और ईसाई धर्म

महाभाषियों ने कमर बुद्ध के मिठान्त और बोधिसत्त्वत्व के मतिमील बिचार का विकास किया। सर्वास्तिवादियों ने बिकाय-गिठान्त का प्रतिपादन किया। महा साधियों और सर्वास्तिवादियों दार्शनिकों ने महारुपर्म स्थान सभी प्राप्त हो सका जब बुद्धस

जनसमिति ने इन मये बिचारों को कुछ वसकों बाद महापान में सम्मिलित किया। यह वास्तव में सर्वास्तिवाद-सम्प्रदाय की, उन दिनों कश्मीर में जिसका खूब बोलबाला था बिजय थी। जिस समय बौद्ध धर्म को विश्वव्यापी धर्म के रूप में विकसित करने के प्रयत्न चल रहे थे मगधग उसी समय एशिया के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में—जो अनेक जातियों के लोगों संस्कृतियों और धर्मों का एक अन्य कोड़ाक्षेत्र था—एक तिरस्कृत धर्म के स्वरूप-निर्धारण के प्रयत्न चल रहे थे। ईसा का जन्म फिलिस्तीन में जोसी या पांचवीं शताब्दी ईसापूर्व में हुआ था और टाइबेरियस के शासनकाल में क्रूरतम ढंग से उसकी हत्या की गई। टारसस के पॉल ने ईसाईधर्म और बूढ़ावाद में बिभेद किया तथा एशिया माइनर ऐबेन्स कोरिन्थ और धन्तल रोम में पहली शताब्दी ईस्वी में ईसाईधर्म का प्रचार किया। मीरो के शासनकाल में रोम के महान सम्रिकान्ड के पश्चात् ६७ ईस्वी के आसपास उन्हें भी मोठ के बाट उतार दिया गया। बिस्व इतिहास में यह एक बिबिध संयोग है कि महापान बौद्धधर्म को विश्वव्यापी रूप एक ही समय में प्राप्त हुआ तथा संसार भर के निवासियों की इनमें रुचि आती। दोनों धर्मों ने धर्म के सिद्धान्त पर जोर दिया। बिस्व की ठरकासीन आवश्यकता भी यही थी। हूँ दोनों के ऐसा करने के कारण असमय थे। महापान बौद्धधर्म में धर्म के व्यक्तित्व मोठ के संकीर्ण हीनमान आदर्श के बिरोध में धर्म का नारा उठाया तथा ईसाईधर्म ने बेगोबाधियों के संसार-परित्याग के सिद्धान्त के बिरोध में। अनेक भाषाओं के कारण धाणामी दो शताब्दियों तक ईसाईधर्म एक प्रकार से मिट-सा गया और इसी समय में महापान बौद्धधर्म एशिया के एक के बाद दूसरे देश में फैलता गया। मानवता के इतिहास में महापान बौद्धधर्म के प्रसार से अधिक सफल और बिस्तृत मानवतावादी आन्दोलन दूसरा नहीं है। महापान के धर्म प्रचार-निघन ने मध्य एशिया के सर्व पठारों और जसते हुए रेगिस्तानों तथा पूर्व के अठरनाक समुद्रों को पार करते हुए सम्मता का जो सर्वांगीण शांतिपूर्व विकास किया था वसा ईसाईधर्म तक के प्रचार से भी सम्भव नहीं हो सका।

कनिष्क और कुषाण

कनिष्क मध्य एशिया की खानाबदोश जाति येठ की थी 'कुषाण उपजाति का था। लगभग १९५ ईसापूर्व में हूणों से जस्त होकर कुषाण बहिदूबा और पंधार पहुँचे तथा उन्होंने उत्तरी और मध्य भारत के बिशाल भू भाग जीत लिए। अपने पूर्वजानिकों मगना समकालिकों मगनों और धर्मों की भांति उनका भी धार्मिकरुच हो गया। कदप्रहसैख द्वितीय ने धर्मधर्म स्वीकार कर लिया और धर्मधर्मिकों पर धर्मना नाम संरक्षक माहेश्वर खुशनामा। उसका पिता कदप्रहसैख प्रथम बौद्ध था। कनिष्क (संस्कृत में कनिष्ठ) भी बौद्ध था और लगभग ७८-१ १ ईस्वी तक उसने राज्य किया। उसके साम्राज्य का बिस्तार नापिच से पूर्वी उत्तरप्रदेश और कश्मीर से बिबिधा तक था। उसने अपनी राजधानी पृष्यपुर में कुछ के कुछ स्मारकबिहनों की स्थापना के लिए १०० फुट तक ऊँचा एक सुन्दर स्तम्भ बनवाया। नाथ की शताब्दिया में हू न साइ से लेकर धर्मधर्म की तक बिदेसी मानी हू स्तम्भ की प्रशंसा करते रहे। उसके दरबार में धर्मधर्म चरक

नामारुन धार्यदेव कुमारलक्ष्य और बभ्रुमित्र जैसे विद्वानों ने जिन्होंने ज्ञान के अपने अपने क्षेत्र में अमरता प्राप्त की। सम्राट की उदारता उसके अनेक प्रकार के विष्कों से स्पष्ट है। उसके विष्कों पर हिन्दू, मुसलमान, सुमेरियाई और पारसी देवताओं के चित्र हैं जो उसके विद्यालय साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में पूजे जाते थे। एक विवरण के अनुसार, कनिष्क ने ६० ईस्वी में एक सेना पामीर के पार तारिम नदी की घाटी में खेजी ताकि चीनी सेनापति पाम बाओ को उग दाग में धाँसे बड़ने से रोका जा सके। इस युद्ध में कनिष्क की बुरी तरह पराजय हुई। फिर भी कुछ समय बाद ही पाम का नामोनिगम नहीं रह गया। औरसगता है कि तारिम नदी की घाटी के अधिकांश भाग पर कनिष्क का धार्मिक स्थापित हो गया। इस प्रभाव में बहिर्भी कारबा-माय पर पड़नेवाला खोनान शारकन्द और काम नर नामक नगर भी थे। उनका ह्रास में अनेक भोग पड़ गए, जिन्हें हमने 'अतीरबंदको' के रूप में अपने मुख्य नगरों कापिशी और बुधपुर में रोक लिया। चीनी तुकिस्तान में कुछ समय पूर्व परोपि के सरकारी कामकाज में हैं जो कहा कुपाओं के धातन का प्रभाव प्रस्तुत करते हैं। रामको और पारिबा'वा व लचपी और हुषा के बलात्कारमन की लम्बी सतावियों के बदला कुपा-साम्राज्य पहली बार मध्य-एशियाई कारबा माओं पर पूर्ण सुरक्षा कायम करने में समर्थ हुआ। इस काम में भारत और चीन के बीच इतना ही एक स्थापित ह्रास और मध्य तथा पूर्वी एशिया में महामान के प्रसार का कारण कारबा-माओं की सुरक्षा ही था।

प्राचीन संस्कृत महाकाव्य और नाटक के सञ्चल अद्वयधोप

कुइसलन-अमेसन की अध्यक्षता मुविष्पान बौद्ध बुलपति बभ्रुमित्र ने की थी और धार्य अद्वयधोप (जिन्हें उपलब्ध बना गया) बभ्रुमित्र और नामारुन जैसे प्रसिद्ध विद्वानों और साधकों ने उसमें भाग लिया था। बौद्ध-मतार में अद्वयधोप और नामारुन के नाम विख्यात हैं। अद्वयधोप एक अनुभूत बह्मपुत्री प्रतिभावाली व्यक्ति थे। उनकी विचारलक्ष्य और सर्वनामिक समाधारण थी। विद्वानों का मन है कि वे 'कामिनाम' के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रंज तथा महाकाव्य नाटक और चीन के रचयिता थे। निम्नदेह के भारत के प्रथम अष्टमगवति से और धार्य उर्गोंने प्रथम अष्ट मंगलनामों की रचना की। उनकी रचनाओं में धार्य हा जाता है कि अविष्य में काव्य और नाटक की अष्ट उपलब्धियाँ होंगी। वे महान् धार्मिक और बहुभाषाविद् भी थे। वे धार्य धार्य या पाटलिपुत्र के निवासी थे और कनिष्क के दरबार में उन्हें खबरगी से जाया गया था। एक निष्कर्षी विवरण है कि वे अष्ट मंगलनाम से और उर्गोंने 'रमनाम' नामक काव्य का आविष्कार किया था। इसी विवरण के अनुसार, वे धार्य-भाषिणों की एक मंडली मकर भारत प्रवास किया करने थे मानव जीवन की निम्नारता से निम्नित उनके उन्नी-अरे चीन में विमान जलममुराव बिज-निमित्त रह जाता था और बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेता था। धार्मिक (१७१-१८२ ईस्वी) में 'चीन' पुग के नामारुन देव (धार्य) और अद्वयधोप की देह प्रथमा की है जो भारत में देवताओं और महा पुराण से अधिक पूजे जाते हैं। धार्मिक के अनुसार, अद्वयधोप व 'बुद्धचित' और

‘सूत्रासंकार’ की रचना की भी तथा अनेक पीढ़ सिले से जो बीड़मठों में गाये जाते थे। बुद्धचरित के बारे में उलने लिखा है कि ‘भारत के पाँचों विभागों में और बसिषी समुद्र के दोनों में बहुसंख्यक लोग इसे पढ़ते या गाते हैं।’

✓ बुद्ध-भागवतधर्म का कवि भस्ववोप

‘बुद्धचरित’ बुद्ध के जीवन पर प्रथम और विशिष्टतम महाकाव्य है। इसमें वास्मीकि का हय धपनाया गया है किन्तु इसका कलात्मक विधान निर्बोध काव्य-सी सजीवता और धर्मकरणाहित सगीतात्मकता रामायण से अपेक्षित है। मनीष सम्प्रदाय महायान की विशिष्टता भी बुद्ध के प्रतिमानवीय व्यक्तित्व के प्रति गंभीर व्यक्तिगत प्रेम और भ्रष्टा तथा बुद्धचरित में इन्हीका अच्छे विवरण किया गया है। महाभारत और मयवद्पीठा में श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया गया है उसी प्रकार बुद्धचरित में भस्ववोप ने सीतम को ‘धर्म-पुरुष’ माना है। बुद्धचरित में तथागत गौतम महायान जिसका निर्माण सभी बुद्धों ने सभी जीवधारियों के कल्याण के उद्देश्य से किया था प्राप्त करने में सफल होते हैं (१६, ७३, ८३)। तथागत को महान परोप-कारी पिता के समान इन्धामु और सरमागतों के शोकहर्ता (शोकस्य हर्ता सरमा-गतानाम्) माना गया है तथा उनके विद्यास व्यक्तित्व के सम्मुख सरमागति और भ्रष्टा निवेदित किए गए हैं। बुद्धचरित में ही नहीं बल्कि भस्ववोप की अन्य कृतियों ‘सूत्रा-संकार’ और ‘महायानभद्रोत्पाद’ में भी महायान के विशिष्ट स्वर ‘मक्ति’ का अत्यन्त काव्यात्मक और सजीव वर्णन किया गया है।

‘सौन्दरनन्द’ में भस्ववोप ने स्वयं को धर्म्म नन्द के रूप में प्रस्तुत किया है। सौन्दर्यमयी पत्नी सुन्दरी के धर्म्म नन्द द्वारा परित्याग के प्रसंग को जिस सम्मुख मुकुटा और नाभित्व के साथ चित्रित किया है वह बुद्धचरितकर्म नहीं सीखता। मिथु होते हुए भी भस्ववोप को एक सच्चे भारतीय कवि की हैसियत से वात्स्यायनकृत ‘कामसूत्र’ का पूरा पूरा ज्ञान था। ‘अपनी माया प्रवर्धन करने के इन सौन्दर्य मुक्तानों कृत्रिम क्रोध-प्रवर्धन मोहवास और मीठी-मीठी बातों से स्त्रियों ईश्वरीय और पदसी ऋषियों तक को अपने बन्ध में कर लेती हैं।’ भस्ववोप ने स्त्री-सौन्दर्य के सम्मुख वर्णन किये हैं।

ततः कुमारः कञ्जु गच्छतीति श्रुत्वा स्त्रियं प्रीथयन्ताद्यभूत्सिन् ।

विबुधया हर्म्यतलाणि जम्बुजमेन मान्येन कृताभ्यमुद्रा ॥

(१ ११)

(तब कुमार जाते हैं यह मन्त्रार्थ वृत्तान्त सेवकों से सुनकर, स्त्रियाँ मान्यजनों से आज्ञा पाकर, घटारियों पर चढ़ गईं ताकि वे कुमार को देख सकें।)

ताः अस्तकाञ्चीगुणविधितामश्च सुप्तप्रबुद्धाङ्गसोचनामश्च ।

वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च क्रीडुङ्गोत्तानिमृताः परीयुः ॥

(१ १४)

(कुछ को सीधेता के कारण करवनी सरकने से बिघ्न हो रहा था कछ के नवन तत्काम सोकर आपने से) व्याकुल थे, कुछ ने वृत्तान्त सुनकर सीधे भूषण कारण किए और

द्वितीय सुधार-सुध

की गृहमन्त्र से सब परिवर्तित एक हो गई।)

प्रासादसोपानमलप्रभावी काञ्चीरवैर्नूपुरमिस्वरैश्च ।
विभासयन्तो गृहपक्षिमधामन्योग्यवेगादिभ्य समाक्षिपन्त्य ॥

(छत और सीढ़ियों पर पद-चम की ध्वनि से नरपत्नियों के स्वर एवं नूपुरों की
मंजार से घर के पानपू पक्षिप्रभ की मधवीय करती हुई एवं एक-दूसरे के बेग को
विरस्तृत करती हुई वे वहाँ गई।)

बातापनेभ्यस्तु विनिभूतानि परस्परपामितकण्डलानि ।
स्त्रीषां विरेचुर्नृपकुञ्जानि सत्त्वानि हर्म्येष्विष पट्टवानि ॥

(परस्पर संपर्क से जिन स्त्रियों के कंडल हिल रहे थे उनके मुखकमल बातापना
से बाहर निकले थे। वे ऐसे लप रहे थे मानो प्रायद्वीप कमल तिले हों।)
एक स्थान पर एक छोई हुई स्त्री का वर्णन है
विषमो करलम्बवेणुरम्या स्तम्बविसस्तमितांगुका घायना ।
कनुपटपदपङ्क्तिमुष्टपथा जलकनप्रहमतटा नशीव ॥

(एक घम्य स्त्री हाथ में बांसुरी लिए थी उसके स्तन पर से पुष्प बहने लिये
गया था वह खोटी हुई ऐसी सुन्दर लग रही थी वैसे मीठी भ्रमरपक्षि से सेचिउ
रगदपुस्त कमल बानी जलकन-की उज्ज्वलता-से हँसती हुई नदी हो।)

कवि घल्लत स्पष्ट और सरल शब्दों में कदम हल्य उपस्थित करता है। "बड़ी
बड़ी सातवालों के माथ पीड़ा सहते हुए उनमें मुझे अपने गर्म में बारण किया था।
जलका छाया प्रपल व्यर्थ मिट हो गया है। वह क्यों नहीं बनी? मैं क्यों उसका पुत्र
हुमा?" और धारवत यथार्थ के वर्णन में भी कवि की सरमता और कोमलता उनका साथ
नहीं छोड़ती। पीठम भ्रमचार्य बाहर निकलते हैं तो रास्ते में एक बूढ़ दिगवाई पड़ता है।
उसके बाल मक हो गए हैं कमल मुक गई है हाथ-पाँव बाँध रहे हैं और वह एक माँगी
के सहारे धीरे-धीरे रेंग रहा है। गीतम से प्रत्येक के उत्तर में उनका सारथि प्राप्यत मन्वीय
शब्दों में बुझाये के साटमन का वर्णन करता है। गीतम पूछते हैं कि विविधैरा प्रहृतिप
रूपस्य हन्ती व्यमर्ग वनस्य घोषस्य दोनिनिपन्न रतीनाम् ।
साध स्मृतीनां रिपुतिनिपापामेषा जग नाम सर्वेष मग्न ॥

(कौन को मष्ट करनेवाली बन व पिए विनातिमन्त्र्य घोष की जगती धामन्द
की नाम स्मृतिविनामिनी और इन्द्रियों की शत्रु प्रचारय्या में इसे तोड़ डाला है।)
पीठ हनेनाति गम-गिन्त्य कायेन मूय-परिमृणमुष्मात् ।
जमेन मूवा व मुषा वतुप्यात् समप मेनैव जगमुने ॥

(१ ११)

(इसने भी बास्याबस्था में बूब पिया था फिर समय आने पर पृथ्वी पर सरककर पगला सीसा था। क्रमशः स्वस्व मुखा होकर, यह उसी क्रम से बृहत्त्व को प्राप्त हुआ है।)

अश्वघोष की गुरुजी परिभाषा उष्णकोटि की है 'आर्सें बन्द रहने पर भी केवल गुरु ही आर्सें बुझी रखनेवासे आरमियों से अधिक वेद सकते हैं। आर्सें होते हुए भी मनुष्य तक तक वेद नहीं पाता जब तक उसके बुद्धि की आर्सें न हों। महर्षि अश्वघोष महाकाव्यिक की पूजा में कवि का गौतम निर्दिष्टावस्था से सर्वोपेक्ष्य है।

महायान-मिथान्त में बोधिसत्त्व-आदर्श का महत्त्व बहुत अधिक है। अश्वघोष ने इसका आकर्षक वर्णन इस प्रकार किया है 'सर्वोष्ण और अन्तिम अवस्था पर पहुँच जाने के पश्चात् भी जो व्यक्ति अपने परिधम को गहर-गन्धार करते हुए अन्य लोगों को साक्षि प्राप्त करने के उपाय बतलाता ॥ वही ससार में सर्वोपेक्ष्य व्यक्ति समस्त जाता है। अतः अपने व्यक्तिगत काम को परे रखकर स्थायी महत्त्व के काम आरम्भ करो अपने साधियों का कल्याण करो और राजा के अन्धकार में अन्धों प्राणियों को ज्ञान का प्रकाश दिखलाओ।' ये शब्द 'सौन्दर्यनन्द' में मन्त्र संवत्साराप के बीच बुद्ध के मुख से कहाए गए हैं।

अश्वघोष ने 'सारिपुत्र प्रकरण' नामक एक नाटक की रचना भी की थी। इसमें उन्होंने बुद्ध के दोनवर्षप्रसिद्ध शिष्यों—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन—के बीड़सुर्म में दीक्षित होने का अष्ट प्रसंग बताया है। आधुनिक विद्वानों और चीनी लेखकों का मत है कि अश्वघोष ने इन कृतियों के अतिरिक्त महायान के दो अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थों 'सूत्रासंसार' और 'अष्टोत्पादसात्र' की रचना भी की थी। 'सूत्रासंसार' को कभी-कभी अश्वघोष के समकालीन किन्तु कम अवस्था के कुमारसप्त की रचना बताया जाता है। इस कृति के कुछ प्रसंग ही मिलते हैं। 'अष्टोत्पादसात्र' महायान बीड़चर्म के आधारभूत विचारों को सुस्पष्ट निश्चित ढंग से रखने का प्रथम प्रयास है। इसके अतिरिक्त यह सभी महायानमतों के एक प्रमुख विद्वान का मतव्यवहार है ही। यही कारण है कि सुबुद्धी इसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मानते हैं। बुद्ध के प्रेम को अश्वघोष ने एक काव्यात्मक रूप दिया था। अश्वघोष के इस प्रयास न गांधार कला और महायान के परम सिद्धान्तों के पूरने-अपूरने में समुचित योग दिया।

गांधार कला पर अश्वघोष नागार्जुन और आर्यदेव का प्रभाव

महायान के उद्भव के साथ ही और प्रसिद्ध बाधनिकों नागार्जुन और आर्यदेव के नाम सम्बन्ध हैं। ह्वेनसाङ्ग और फाई-त्सिङ्ग दोनों ने उनका चित्र किया है। ह्वेन साङ्ग के अनुसार, अश्वघोष नागार्जुन आर्यदेव और कुमारसम्प (कुमारसप्त) समकालीन थे। उसने इन चारों को 'संसार को प्रकाशित करनेवाले चार सूर्य' कहा था। नागार्जुन का जीवन और कार्यों के बारे में जिन्हें अक्सर गलती से प्रसिद्ध रसायनज्ञ और ताम्रिक मिश्रक सम्झ लिया जाता है सभी कुछ निश्चित नहीं है। वे विचर्य में अपने वे और ब्राह्मणशास्त्रों में पारंगत थे। उन्होंने ही 'भूम्य' अथवा 'तपता' का सिद्धान्त अपने माध्यमिकशास्त्र में प्रतिपादित किया था। इस सिद्धान्त के बस पर विश्व के दर्शन में उनका अमर स्थान है। इसी ढंग में उन्होंने दो सत्तों—परम्परागत सत्य और सर्वोष्ण सत्य—में अंतर बताया। इस अंतर को जाने बिना धून्य अथवा निर्वाण दोनों में से किसीको भी

समझता सम्भव नहीं है। क्योंकि धर्म्य मयका निर्वाण बुद्धिब्राह्म नहीं अपितु प्रमा
प्राप्त विषय है। नागार्जुन को 'पतसाहसिकप्रज्ञापारमिता' 'अनुभूति विभाषा-शास्त्र' और
'गुह्यसूत्र' का रचयिता भी कहा जाता है। आई-रिंग ने अंतिम कृति की बहुत प्रशंसा
की है और लिखा है कि अपने समय में इसे भारत भर में खूब पढ़ा और मान लिया जाना
पा। बाद में नागार्जुन मार्तंडा विद्वत्विद्यालय में प्रधान नियुक्त हुए। उनके बाद इस पद
का भार ग्रहण किया उनके विस्थापित सिध्द सिंह में जन्म धर्मदेव ने। उन्होंने कुछ समय
तक प्रयाग में बौद्धधर्म का उपदेश दिया और त्रिवेणी-स्नान करनेवाले जाया ध्यस्तिया ने
संपत्तिकाम का साहसपूर्व विरोध किया। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति 'अनुगतक' है।
विद्वत्सिद्ध के अनुसार 'जापान के मैनरोन सम्प्रदाय के धर्म का आधार आज भी नागार्जुन
कृत 'साध्यामिषास्त्र' तथा धर्मदेवकृत 'अनुगतक' अथवा 'पतसाहस्य और 'द्वान्त
निरास्य' हैं।' धर्मकोष नागार्जुन और धर्मदेव महापान बौद्धधर्म में धारमिक
मंत्रालय के। इस विस्थापित विमुक्ति में अपने सभी ग्रन्थों में इस पद धर्म की प्रमुख भाषा के
रूप में बुद्ध की उपासना धारणागति तथा धर्म साध्यामिषा मिहान्ता का साक्षात्
प्रतिपादन किया है।

जिस काम में महाकादम्बिक के जीवन और काय का चित्रण बुद्धचरित और
'सत्तिवित्तर' (दूसरी छायाही ईरबी में कभी लिखित और १०८ ईस्वी में चीनी भाषा में
अनुलिखित) में किया जा रहा था लगभग उसी काम में यथार की पूतानी-बौद्धधर्म अपने
चरमबिन्दु पर थी। इस कला का जन्म ईसा के जन्म से कुछ ही पहले हुआ था तथा 'मन्त्री
दीप्ती ने कनिष्क के शासनकाल तथा (दूसरी छायाही ईस्वी में) उसके बाद के कुछ समय
में परिपक्वता प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार हम पाते हैं कि धारमिक महापान-ग्रन्थ
की रचना और बुद्ध भागवतधर्म के उत्तरी उद्योग के पुष्पा यथार और मधुरा में पूतानी
बौद्धधर्म का चरमोत्थान एक ही समय में हुआ। और इसमें कोई संशय नहीं है कि कला
कारों की कलाकृतियाँ में महापान-सम्प्रदाय के प्रचार में बहुत महामत्ता थी। कनिष्क द्वारा
पुर्यपुर में बुद्ध-संस्थापना के लिए विभिन्न धरम्य धारक स्तम्भों का बांध की गताश्रिया
में ब्राह्मणों के धारक्य का कारण बना रहा 'मन्त्रा' का प्रमाण है कि गांधार तथा महापान
के प्रचार में अपना योग दिया था। महापान के प्रचार के दा कारण थे। प्रथम बुद्धूमा
के प्रति लोगों में बढ़ता हुआ विश्वास तथा द्वितीय बुद्ध धारक्यमुनि निर्धने जन्मा का मान
बुद्धों और महाकादम्बिकों—बोधिसत्त्वों—अवमोक्षितस्वर, मनुष्यी अथवाणि और मैनय
की साहसिता का मानक-रूप में मूर्ति धारण।

महापान और धर्ममौम मुपाण

महापान ने उद्भव और प्रचार को टीक-टीक उस समय की बौद्ध धर्म और गुमा
त्रिक पृष्ठभूमि में रखकर ही समझा जा सकता है। यह पृष्ठभूमि हम प्रकार थी। गुप्त
भागवतधर्म तथा महाकादम्बिक और महासिंहारी बौद्ध-सम्प्रदाय में साध्यामिषा-आन्दोलन
चल रहे थे। लगभग बार गताश्रियों के दौरान पूतानियाँ पाकिस्तान और शरों को
भारतीयों में विभाजित किया गया था। उन्होंने भारतीय धर्म का स्वीकार कर लिये थे किन्तु

परिपक्वी और मध्य एशिया के साथ अपने निकट सम्बन्ध कायम रखते थे। कुषाणों के नगर-व्यापारिक और सार्वभौम काल में यह विशेषरूप से समभव हो सका था। विदेशियों के इस विलयन के फलस्वरूप उत्तरी भारत में अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए थे। एक भारतीयक महायान-ग्रन्थ 'महासाहसिकप्रज्ञापारमिता' के अनुसार निष्कर्ष निकाला गया है कि महायान का जन्म वक्षिणापथ (वक्षिणभारत) में हुआ प्रसारपूर्वक देशों में हुआ तथा वहाँ से यह उत्तर पहुँचा। और उत्तरमें कापिश से मधुरा तक कुषाणों के शासन काल में 'चतुर्विधस्य' के प्रसार के लिए स्वान और समय सर्वथा अनुकूल थे। विदेश जाने वाले मिश्रकों, विद्वानों कलाकारों व व्यापारियों तथा स्वदेश आनेवाले यात्रियों व्यापारियों और तीर्थयात्रियों के साथ लगातार सम्पर्क स्थापित किया जा सकता था। बड़ी विभिन्न जातियों लोगों और धर्मों के संघात के फलस्वरूप बौद्धधर्म क्रमशः एक विश्वधर्म का रूप ग्रहण कर सका।

कुषाण-साम्राज्य की सार्वभौम प्रकृति का प्रतीक है कनिष्क की राजसी पदविधियों के चार प्रकार—भारत का 'महाराज' चीन का 'वेनपूज' ईरान का 'आमोनानो शाघो' तथा हेलेनीय एशिया का 'केसर' (सीजर)। कुषाण-सिक्कों पर अनेक धर्मों के बहु संस्म्यक देवी-देवताओं के चित्र खूबे हैं जिनसे स्पष्ट पता चलता है कि उस काल में कितने विभिन्न धर्म फूल-फूल रहे थे। इन सिक्कों पर ब्राह्मण बौद्ध, पारसी एसामी सुमेरियाई, यूनानी और रोमक सभी देवता अंकित हैं। सर्वधर्ममन्दिर में निम्नलिखित देवजन हैं वीदीसोनिमाई देवगण—नन अथवा मनस्व्या (उत्कृष्ट की प्रमुख देवी भारतीय मना) और हीरो (सीरिया की प्रमुख देवी हेरा) यूनानी और रोमक देवगण—ममरबागो (मिनर्वा) अक्षमस्यो (अरेस) हेराक्लिसो (हेराक्लीस अथवा हरक्युलीस) हीस्वोस (सूर्यदेव) सेसीन अन्तदेवी और रायम (रोम) ईरानी देवजन—मन्ध्रुषानो (मन्था) ओरस्तानो (अरेष्टण) मित्रो (मित्रात्रया मित्रा वैदिक मित्र सूर्य) मीरो (मिहिर अथवा सूर्यदेव) माओ (मह अथवा अन्तदेव) ओगिम्बो (ओराइष्टी) अय्बो (आतप अथवा अग्नि अग्नि देव) फारो (फार अग्निदेव) आओरियोरो (आहरेथार) और अदोम्बो (अदिबहिस्त अथवा अदबहिस्त) हिन्धु देवगण—शिव (महेश्वर और नन्दी) धाएओ (ईश) ओम्बो (उमा) ओरस्तो (बृहस्पति) मित्र (मित्र) ओरन (वस्त्र) ओघाओ (आत अथवा आयु) सरपिस (सम) स्कन्धो कुमारो बिबगो (स्कन्धकुमार विशाख) बिबनो (विशाख) मासेनो (महासेना अथवा नासिकेय) और गणघ (केवल नाम दिया गया है) और सबसे अन्त में बौद्ध देवगण—बोहो (बुद्ध) और ओहोओहोउ सकमानो (अज्ञ-बुद्ध सायममुनि)। महायान बौद्धधर्म में प्रभावित होने से पूर्व अनेक धर्म-सम्य विदेशियों का बौद्ध-अवैतनाद से अधिक आकर्षक हिन्दूधर्म के अनेक धार्मिक सम्प्रदाय मान्य पड़े। ये सम्प्रदाय थे (पाणिनि और पतंजलि द्वारा लिखित) वासुदेव-कृष्ण धर्मुन शिव स्कन्ध और विभाज तथा (मुस्तान और काश्मीर में) मिहिर अथवा आदित्य की पूजा। ✓

वास्तव में सैद्धान्तिक विकास के बाव ही बौद्धधर्म का आकर्षक इतना अधिक हो सका। धार्म्यात्मिक दृष्टि से हीनयान के महावर्षवाद की तुलना में महायान का 'एक मस्तिष्क' का सिद्धान्त विश्वधर्म की स्थिति के अधिक अनुकूल था। सामाजिक दृष्टि से

संस्कृत के निपवात्यक आरम्भकेन्द्रित सीमित युगों की तुलना में बौद्धधर्म की स्वयं को भूमी रहनेवाली पारमिताएं एक समृद्ध विस्तारशील बनेक विभिन्न तत्त्वों से निर्मित साम्राज्य की आभ्युदयकताओं को अधिक प्रबली तरह पुरा करती थीं। नैतिक दृष्टि से, महायान में आत्मा और विद्यास विद्यामा गया था कि 'युग स्वयं बुद्ध बन सकते हैं।' 'यमा के बाहुका-कथा के समान अवस्थित' सभी इन्द्रियप्राप्त प्राणी 'बाहेर चित्तने ही निम्न प्रज्ञानी और बुद्ध क्या न हों। कारणों के नेता के समान महाकरणा के बस पर बुद्ध बन सकते हैं और सार्वभौम निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। और महायान का यह मिश्रित मुपाय युग की उदारता आत्मावादिता तथा प्रयत्नशीलता के संस्था अनुभूत था।

एक सामान्य आदिम धर्म का विदवधम में सद्धान्तिक रूपान्तर

हीनयान और महायान में अन्तर केवल इतना है कि दोनों में धर्म-असम बातों पर और दिया गया है। महायान के प्रमुख प्रकार पामी-निकायों में प्राप्त हैं, किन्तु उनमें परस्पर एक सम्पूर्ण रूप और पृथक् सामाजिक व बौद्धिक वातावरण का अन्तर है। सरवा स्त्री ने ठीक मिला है "धर्म के इतिहास में ऐसा घायक ही कभी हुआ हो कि नये और पुराने मतों में इनका अन्तर हो किन्तु फिर भी दोनों धर्मों को एक ही धर्म-सम्पादक का उत्तराधिकारी बनाएं।" हीनयान और हिन्दू धर्मधर्म धर्म के साथ महायान की तुलना करने पर बुद्ध अन्तर स्पष्ट होवते हैं। संक्षेप में ये इस प्रकार हैं

- ✓ (१) हीनयान में बुद्ध एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व धीनम धाम्यमुनि हैं। महायान में उनका स्वरूप धाम्यात्मिक हो जाता है—धारवत और परम सभी धार्मिक धर्मों धर्मका धाम्यात्मिक विचारों वाले व्यक्तिता द्वारा स्वीकार्य धर्मों में इस प्रकार का मुबार हो जाता है। यह मुबार बाह्यधर्म बौद्धधर्म और ईसाईधर्म सभी में देखा गया है।
- ✓ बाह्यधर्म में महायान के समानांतर धाम्योन्मत्त रूप-बाहुदेव-सम्प्रदाय का विकास है। पांडवों के भिन और बुद्ध तथा बुद्धि जाति केनायक रूप को एक धारवत देवधर्म व्यक्तित्व मान लिया गया है और बाहुदेव विष्णु नामक धाम्यात्मिक-धार्मिक देवता बना दिया गया है। बौद्धधर्म में धाम्यात्मिक बुद्ध के विचार को विकसित करने में महायानिक सम्प्रदाय का बड़ा हाथ रहा।

- ✓ (२) उपर्युक्त धार्मिक परिवर्तनों के साथ-साथ भक्ति करुणा और धारजागति पर जोर दिया गया है। बाह्यधर्म में इनके समानांतर विकास सम्पूर्ण पांडवता माहित्य और प्रगल्भीता में भिन गवता है। इनके अनुसार किन्ही धर्म धर्म को मानना या धारकीवार करना धाम्यक नहीं है। धर्म रूप की एकात्म भक्ति ही मुक्तिदायिनी है। धर्म गणाधिका व धीरान दिन विवेकियों को धार बनाया जाता रहा, उन्हें भारतीय धाम्य धर्म और धार्मिक मिश्रण में धार्मिक गणान रूप और बुद्ध धारधर्म धर्म की धारजागति में मिलना रहा है। धर्मधर्मों और 'गर्भपुंरीक' (एगरी रचना तीयरी गवामी रंगी में हुई थी और बीती अनुसार २९५-३९९ ईस्वी में हुआ था) धर्म रूप और बुद्ध धारधर्म धर्म के धर्मधर्म हैं और दोनों ही धर्म तथा धाम्यात्मिक विचारों के परिपूर्ण हैं। दोनों का धर्म है कि धाम्यात्मिक जीवन में धर्म का रवान धर्म से पढ़ने है। धीन

में सिखा है 'जो व्यक्ति यज्ञासु, वैयंपूर्वक प्रमत्तधीन और इन्द्रियवित् है उसे ज्ञानप्राप्ति होती है और वह हीन ही मोक्ष प्राप्त करता है। इसी प्रकार पुष्करीक का मत है 'तर्क से सत्य की प्राप्ति नहीं होती यह तर्क से पर है और केवल तथागत से इसे सीखा जा सकता है। 'सत्यमपुष्करीक' और 'अहामानमद्योत्पाद' जैसे महामानग्रन्थों पर, जिनसे श्रीमत् पापान और बसिनी एशिया के कराङ्गों बौद्धों ने प्रेरणा ग्रहण की है भगवद्गीता का स्पष्ट प्रभाव है। ठीक उसी प्रकार, जैसे भागवतधर्म में विष्णु-प्राय की पूजा से ही गंगाधर, अमरावती और बोरोबोपुर में बुद्ध की पाद-पूजा का प्रचलन हुआ था।

(३) हीनयान से महायान को अलग करनेवासी एक अन्य बात है त्रिकायसिद्धान्त। इसके अनुसार बुद्ध की तीन 'काया' अर्थात् 'स्वरूप' है (अ) धर्मकाय जो अविभाजित और सभी बुद्धों में समानरूप से उपस्थित है। यह परम पारमार्थिक अथवा तत्त्वज्ञ है; (आ) सम्मोपकाय जो विभिन्न बुद्धों के स्वरूपों के अनुसार बदलता है। यह ब्रह्म का अतिमानवीय स्वरूप है जो स्वयं के स्वतन्त्रों अथवा ईश्वर के समान मानव विवेक और प्रसिद्धि का रसास्वादन करता है। (इ) निर्माणकाय अर्थात् बुद्ध के अथवा, प्रेम और सेवा करने वाले मानव बुद्ध। ये परमात्मा के मानव-शरीर हैं जिनमें अधिक स्पष्ट वे अपूर्ण प्राणियों में हो सकते हैं। त्रिकाय सिद्धान्त में भी हमें वही आध्यात्मिक स्थिति दिखलाई पड़ती है वही भागवतधर्म में। धर्मकाय का समनुस्य है ब्रह्म अथवा शास्वत और अवस्था रहित सम्मोपकाय का समनुस्य है ईश्वर और निर्माणकाय का समनुस्य है प्रत्येक मानव की आत्मा अथवा प्रत्येक मानव में प्रत्यक्ष अवतार। किन्तु 'सत्यमपुष्करीक' में व्यक्त महामान-आस्तिकता ने जोर दिया गया है कि जिन त्रिकायों की सहायता से निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है वे केवल माहुरूप हैं। अर्थात् मानवमान की काया प्रत्येक बुद्ध की काया और बोधिसत्त्व की काया। बुद्ध की पारमार्थिक अतिमानवीय महाकला के मत पर ही 'गंगा की वासु के कर्णों के समान' अवलित प्राची ज्ञान प्राप्त करके बुद्ध बन जाते हैं। महामान बौद्धधर्म के त्रिकाय-सिद्धान्त का उद्देश्य था—बुद्धत्व और सामाजिकता के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या करना। और इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में ध्याय हिन्दू धर्म ईसाई, नेस्टर, मन्त्रा और मागीकी सभी धर्मों का संश्लेषण था और ध्याय सभी ने ससार के बुद्धों से मुक्ति से सम्बन्धित आत्मिक उत्साह को बढ़ावा दिया है। इस विश्वास को भी ध्याय सभी धर्मों ने स्वीकारा है कि बुद्ध और बोधिसत्त्वों की ईश्वरीय कृपा छारी मानवता पर बरसती है। महामान के त्रिकाय-सिद्धान्त में पारमार्थिकता अवतारवाद व ईश्वरीय कृपा के विचारों का बड़ी कुशलता से सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है। इसमें बोधिसत्त्व का परमात्मक विचार भी है कि वे मानवता के बुद्धों और कष्टों का निवारण महाकला के मत पर करते हैं और मानवता को परमात्मा की ओर अग्रसर करते हैं।

(४) महायान में अवलित बोधिसत्त्वों की कल्पना की गई है और प्रत्येक बोधिसत्त्व ने सर्वव्यापी होने तथा सभी सौमिक प्राणियों के उत्थार का प्रयत्न किया है। इसके विपरीत हीनयान के अनुसार बोधिसत्त्व केवल एक शीतम ध्यायमुनि हैं। महाकार्त्तिक बोधिसत्त्वों के पद्मपाणि अम्बोकिटेश्वर, मञ्जुषी वैपयराज तथा अन्य अवतारों ने और अनेक धर्मों में वलित बन्धकधर्मों ने (जिनमें से एक ग्रन्थ है ध्यायधुरजित 'यातक-माता' जिसकी रचना

प्राकृतिक काव्यमय दीर्घी में तीसरी शताब्दी ईस्वी में हुई थी) शताब्दियों तक एशियाई कला को प्रेरणा थी। 'संदर्भपुण्डरीक' के सुप्रसिद्ध पक्षीमर्षे धर्म्याय मं बोधिमत्त्व ध्वसोक्ति तैस्वर का गुणमान किया गया है। इसमें लिखा है कि मानवता की सत्ता के सिधे उन्होंने बलीम धारीरों में प्रवेश किया था ताकि उनकी पूजा करके प्राणी गुणवान हो सकें। पूव म यनं धीर कसा दोनों ने विकास के लिए इस मिथ्यान्त के विकास का बडा महत्त्व था। महा सधिमिक सम्प्रदाय ने प्रारम्भ म बोधिमत्त्व-यान कथ्य का ही प्रयोग किया था जो बाद म बदमकर महायान हो गया। इस प्रकार विचारधारा का केन्द्र बडा म रहकर बोधिमत्त्व हो गया। फलस्वरूप बौद्धकला के स्वर्णयुग का प्रारम्भ हुआ धीर सम्प्रदाय की परम्परा न उल्लाहहीन प्रनिया में गतिरीम साध्यात्मिक एवं धतिप्राट्टिकि लक्ष्य रीदा हुए।

✓(५) ईसा की प्रारम्भिक शताब्दिया म ध्वनार-मिथ्यान्त का जन्म एकाधिक धर्मों हो हुआ था किन्तु इसकी सचधष्ट प्रतीकारमक धमिध्वरित महायान म हो हुई। महा भारत धीर समबद्धीना में भागवतधम के ध्वनारवाद का प्रतिपादन हुआ। दूसरी धीर पहली शताब्दी ईसापूर्व में ब्यूह का पांचरात्र सिथ्यान्त प्रचलित था जिनके धनुमार पर मारमा के तीन कर्पा—बासुरेक सकपण धीर प्रधुम्न—की पूजा की व्यवस्था थी। तमा मानुय पढ़ता है कि वेतना की ध्वनारवादों के धनुमार ईस्वर के तीन या चार कर्पा की पूजा के प्रति बिदेसिया का जो यहाँ धाकर धाय हो गए थ धाकर्षक धधिक था। चार ब्यूहों धीर इत्य-बासुरेक की पूजा लगभग पांच या छ शताब्दी पुरानी है। छिर ध्वन्य स्थित ध्वनारिधम बिद के कष्ट निवारण के लिए किन्तु के ध्वनारवाद का जन्म हुआ। पारमीधर्म में केरेधन्य के जिन्हें कभी-कभी धुन्य या इत्य भी धाना जाता है ध्वनारग का मिथ्यान्त है। ईसाईधर्म म इस विचार का विकास हुआ कि ईसा का धारीर स्वर्गिक था जिनका ध्वनार हुआ था। कृपाय-नाम्राज्य में धीर बिदेसण उनक उत्तर-पश्चिमी धाय में बिभिन्न धर्मों धीर मर्तों के धनुयायी बहुमस्यक बिदेसी रहूथ। इत्यमन्नेह नहीं है कि ईस ममय भारत तथा पश्चिम में प्रचलित ध्वनारवाद म महायान बौद्धधम को ध्वनय प्रभावित किया था। छिर धायिग ध्वनार धैमागक बुद्ध के धमस्य ध्वनारा की ज म भी निरचय ही बुद्ध क धन्य धर्मों का विचार उपस्थित है। बुद्ध कृपा की पूजा की तीसरी शताब्दी ईसापूर्व के स्तुपा म की जाती थी। किन्तु मधिय के बुद्धा धीर पुण्डरीक के मानवत्राण के धम का विचार कबम महायान का है। भागयन धैव धीर देवी धर्मों में धनेरानैक ध्वनारों के मिथ्यान्त तो ध्वनय थ किन्तु उमम महायान क महायन ध्वनारवाद का सेधमाध भी नहीं है। महायान के धनुमार गण कर्नमान धीर बडा कभी ध्वनारी प्राणी के कथ में कभी बासु-मन्ध्यामी क रूप में कभी गमार के बीच धीर कभी निरर्ण की ध्वनार म ध्वनारित होने है एक मन्ध की धोयणा कथन है धीर एक ही स्थान पर मन्धूम बिद का उद्घाटन करते हैं। (ध्वनारकमूत्र)।

(६) महायान में मिथु या धट्टन के धाशग पर नहीं धरिगु नामाग्य ध्वनिक ध्वनार बोधिमत्त्व के धाशरी पर धीर निया धया है। महायान के धनुमार यह मन्धार एक धयाय

स्वर्ग है वहाँ बोधिसत्त्व अपने श्रावियों को जिनमें पापी कुलजाती और पतित भी शामिल हैं आध्यात्मिक ज्ञान स्वार्थरहित उपदेश और कल्याण का पाठ पढ़ाते हैं। बुद्धी भाससाधों की समाप्ति के पश्चात् ही निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार 'निर्वाण ही संसार है और संसार ही निर्वाण'। 'सत्ता' में संसार और निर्वाण दोनों अपने-अपने सही काम करते हैं। हीनयान के अनुसार निर्वाण मृत्यु के पश्चात् प्राप्त एक निश्चित ब्रह्मा है किन्तु महायान में घादब्रह्म अस्तित्व। पहले बौद्धधर्म में गृहस्थांग और संन्यास पर जोर दिया जाता था जब समाज में खूबसे मानव के व्यावहारिक और परोपकारी जीवन पर जोर दिया जाने लगा कि मानव बोधिसत्त्वों की भांति महाकल्याण और अपने को भूतने का अभ्यास करे। नये सिद्धान्तों के अनुसार समाज का सम्बन्ध मनुष्य की भाससा और पीड़ा से नहीं बल्कि निर्वाण से जोड़ा जाने लगा। समाज अर्थात् भौतिक सम्प्रदाय बुद्धों और बोधिसत्त्वों की भूमि। संसार को जब भी नष्ट और भायावी समझा जाता था किन्तु मानव का नवीन सत्य बन गया था अपने व्यक्तित्व का जोष और धर्म का अनात्म में विसर्जन। पीड़ा के अवरोध के निवेद्यतमक उद्देश्य का स्थान आध्यात्मिक सौन्दर्य ने ले लिया तथा कल्याण और परोपकार जैसे सामाजिक गुणों ने गम्भीर आध्यात्मिक आधार प्राप्त किया।

(७) सबसे बढ़कर, हीनयान के विपरीत महायान में सार्वभौम निर्वाण पर जोर दिया गया। इसका आधार वा सार्वभौम अस्तित्व का सिद्धान्त। इसका परिणाम हुआ एक अद्वितीय नैतिक धारणा कि सभी जीवित प्राणियों के प्रति कल्याण रहे। हीनयान और पार्थिव की सम्पूर्ण व्यवस्था का एक नई पारमिताओं की ओर हो गया तथा उद्देश्य केवल संसार के दुःखों और कष्टों का निवारण नहीं बल्कि एक विस्म-बन्धुत्व की स्थापना हो गया। इस दृष्टिकोण ने पहली शताब्दी ईस्वी से सातवीं शताब्दी ईस्वी तक विदेशियों—बैक्ट्रियाई, गुलानियों, ईरानियों, बुखारियों, खोतानियों और चीनियों—को आकर्षित किए रखा। संसार के सर्वाधिक विसर्जन और गम्भीर आत्मिक धर्मों में से एक है 'अवर्तचक्रमूर्त'। इसमें लिखा है 'बोधिसत्त्व की महाकल्याण इस प्रकार से जागती है अस्मरण प्राणियों को देखकर, प्राणियों को कुमांगों पर देखकर मरीच और अयोध देखकर, संसार के साथ लिप्त देखकर, बुद्धी प्राणियों में फँसे देखकर भाससाधों से बंधे देखकर, संसार-मनुष्य में डूबते पाकर, असाध्य रोगों से पीड़ित देखकर मलाई करने का इच्छुक न पाकर और सभी बुद्धों के धर्म से विसृज्य अलग पाकर। महाकल्याण और कल्याण से भरे हृदय को ही 'बुद्धप्रकृति' कहा गया है। कल्याण तथागत है तथागत कल्याण। मूल बौद्धधर्म प्रकृति हिन्दुधर्म में भावना की यह बहुलता नहीं। महायान बौद्धधर्म में गई व्याख्या का विचार बिन्दु ही कल्याण बन गया था। इसी विचार ने बौद्धधर्म को गया बल दिया जिसके कारण वह पर्वतों, रेगिस्तानों और सामर्यों को पार करके सुदूर देशों और वहाँ के निवासियों को प्रभावित करने में समर्थ हो सका।

मध्य एशिया पर कुपाण-मुनर्जागरण का प्रभाव

कुपाण-साम्राज्य ने अपनी मत्ता उत्तरापथ में कम से कम तीन शताब्दियों तक कुपुल कदप्रदेश (१५-६५ ईस्वी) से लेकर बासुदेश और उसके उत्तराधिकारियों

(बीबी राधास्त्री ईस्वी के मध्य) तक कायम रखी। अधिक सम्भावना इस बात की है कि उत्तरी और दक्षिणी दोनों कार्वा-यार्म उनके नियंत्रण में थे। दक्षिणी भाग तो निश्चित रूप से था। इस भागों के कारण मध्यएशिया भी एशिया माइनर, मिस्र मूमान और रोम के साथ पवित्र व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो सके थे। बुध-साम्राज्य में हेमेलीय सेपेटिक ईरानी और चीनी मस्तिष्कों की आर्याओं का स्थापित था तथा इनका परिणाम किया जाता था। समोके के उन्नाह और मछा तथा पहले की राधास्त्री में मूमाजी ब्रिटिशराष्ट्रों की धार्मिक अवसरवादिता के कारण कापिग गन्धार और कादमीर में समेत बौद्ध स्तूप और मठ स्थापित हो गए थे। कनिष्क ने जिसे हेमेलमाद्र ने बौद्धधर्म में सच्चा दीक्षित कहा है अवसर ही समोके का उदाहरण धनमाया होगा कि बौद्धधर्म का प्रचार साम्राज्य की सीमाओं में बाहर किया जाए। लगभग १९० ईसापूर्व में बौद्धधर्म पहली बार ग्रीसम पहुँचा और लगभग १५ ईस्वी में बर्बरता और कस्वम मार्तप इसे चीन ले गए। चीन में ही उन्होंने पाँच छोटे सूत्रों का अनुवाद किया। ईसा की दूसरी और तीसरी शताब्दियों में मू-बी के अनेक सिन्धु बर्बरपरिवर्तन करने चीन गए। उनमें से एक का नाम रत (२८४ ईस्वी)। वह चीन में जीम मास रत और अपने २११ संस्कृत कृतियों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। उस समय कादमीर उत्तरभारत में बौद्धधर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था और सर्वास्तिवाद-मध्यम का तो जन्म ही वहाँ हुआ था। इसके सबसे पुराने और प्रसिद्ध मठ जालंधर और प्रवरपुर में थे। इस स्थानों में तथा कादमीर के समस्त जलकैश्यों में कुछ ग्रीसम कामर और बारकन के बिड़ान बौद्धधर्म का ज्ञान प्राप्त करने आया करते थे। ग्रीस ही ग्रीसम में मोमनी-बिहार नामक एक महान मठ का निर्माण हुआ। यही लगभग मध्यएशिया और चीन के यात्री आया करते थे। इनके प्रतिष्ठित प्राचीन बारका-जानों के संघ पर स्थित ब्रिटिशराष्ट्र प्रथम बसम में सब-समाज्य की स्थापना हुई। यह सब उस समय हुआ जब पूर में बौद्धधर्म के केन्द्र नामदा की स्थापना नहीं हुई थी। रोमक साम्राज्य ने दो शताब्दियों तक (४४ ईसापूर्व से १९३ ईस्वी तक) ग्रीसम में शांति कायम रखी। इसीका समकालीन और स्त्रीके समस्त विस्तृत या बुधम साम्राज्य जिनका प्रसार उत्तर में हिन्दुपुर और तारिम नदी की घाटी से लेकर पूर में मंसा की घाटी तक था। इस विभाग मूमास में आ उस समय विश्व की मध्युदियों का अग्निमन-स्थान था शांति और मस्तिष्क स्थापित करने का अथ बुधम-साम्राज्य का ही है।

बुधमराज्य प्राचीन इतिहास के शांतिपूर्ण अनुविधानी और ग्रीसम भाषा में ले गए है। इस काम की विशेषता थी मधीर राजनीतिक बौद्धिक धार्मिक और बगाम्मा मस्तिष्क। यह बौद्धिक बुधमराज्य का काम था और इस आगरण के लिए उत्तराश्वीय अन्तर्देश चरक मार्गार्थ पात्र समुचित मधरत बुधमराज्य और मार्गपुर जैसे स्थान। इस काम में सैबदा स्त्रुमिमिन और मन् स्थापित हुए। इसी काम में बुधपुर का प्रसिद्ध स्त्रुम बना जिसका निर्माण मूमाजी ईरानीनवर समेधाम में किया था। इसी काम में उत्तर के अनेक नगरी—बागिग बुध, मगरागर, मगरागवा और महरा—ने तथा मोमर्ग पाया और वहाँ मस्तिष्क तथा वृत्तन के। यह प्रभाव था रामक रागर के साथ धर्मरत सगर्ग का। केसाय (प्राचीन बागिग) ने प्रात अनेक प्रकार के

सीरियाई कांच के बर्तनों और चीन के पालिघरार बस्तियों की प्राप्ति तथा गन्धार की कुछ चारोंगना जैसी स्थियों के वेष्टाविस्थास और फैसन रोमक प्रभाव के प्रमाण हैं। इसी काल में जनघाघारण में जागिक भयभूतपूर्व बैठना जामी। अनेक प्रकार के देवताओं की पूजा की जाती थी। कुछ हैं—बोविसरत्न सिन कण्ठ-वासुदेव कातिकेय कुबेर और मिहिर। इसी युग में भारत की प्राप्त बोसी तथा बाह्यी और लरोष्ठी सिपियां तारिम की घाटी में पहुंचीं। इसी घाटी में सिन कुबेर और यथस जैस हिन्दू देवताओं की पूजा होती थी और बौद्धधर्म का प्रसार तो था ही। प्राप्त बोसी दोनों सिपियां बौद्धधर्म और हिन्दू देवताओं की पूजा—इनके फलस्वरूप वहाँ के विभिन्न प्रकार के धर्मबर्बर सामावरोध एक होन लबे। उन्होंने भारतीय नाम अपनाए और साब-साब भारतीय साधनपद्धति थी। इनके प्रतिरिक्त वे एक विस्तृत कुच और ठोकारी साहित्य के विकास में बूट गए। इस साहित्य का आचार निषेध ही संस्कृत था। यह राजनीतिक दूरों के आबायमन तथा कूटनीतिक सजियों का कास था। इसी काल में पारिया के राजकुमार सोकोतन ने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया और बौद्धधर्मों के संस्कृत अनुबाध किए। इसी युग में धर्मरत्न और कस्मय मालग का पहला भारतीय मिशन चीन की राजधानी पहुंचा। वहाँ के सद्य-स्थापित 'रेवेत प्रसन्न मठ' में अनेक चीनी प्रसक्तों ने उनके उपदेश सुने। इसी कुपाण-काल में बौद्ध विज्ञान और मात्रा एक घोर कास्मीर, उद्दीयान कापिष और बनिमान तथा दूसरी घोर जोतान कुच और कासगर आते-जाते थे। इस गमनागमन के फलस्वरूप तारिम घाटी का धार्मिक-करण हो गया और बाब के बसकों ने भारतीय संस्कृति का पूर्वी देशों में प्रसार इसी घाटी में होकर सम्भव हुआ। जोतान और कुच की भारतीय बस्तियों मन्दिरों और मठों ने पूर्वी एसिया में भारतीय धर्म्यता के प्रसार का पत्र प्रसस्त किया। यद्यपि महायान-धर्मों के प्रथम और सर्वश्रेष्ठ चीनी अनुबाधक कुमारजीव (१८१ से ४१३ ईस्वी) का मिशन घनी प्रारम्भ नहीं हुआ था। कुपाण-सम्राट् वासुदेव द्वितीय ने चीन में अपना दूत २१ ईस्वी में भेजा था, इसके लममन डेढ़ सताब्दी बाद ही कुमारजीव का मिशन प्रारम्भ हो सका। तीसरी सताब्दी ईस्वी के अन्त तक चीन में १८१ बौद्धमठ निर्मित हो चुके थे और ३७० भारतीय सिन्धु कामरत थे।

बौद्धधर्म की द्वितीय पवित्र भूमि

कापिष और गंधार में मुलानी-बैक्ट्रियाई लोगों का आगमन सबप्रथम दूसरी सताब्दी ईसापूर्व में हुआ था। एपिग्राफ्ट लोगों का आक्रमण लगभग ४१० ईस्वी में हुआ था। दोनों के बीच का समय लगभग छः सताब्दियों का है। इस समय के दौरान हम धार में अनेकानेक स्तूपों मन्दिरों और मठों का निर्माण हुआ तथा मठों में बुद्ध और बोविसरत्नो की मूर्तियां स्थापित की गईं। इस प्रकार यह धार यमन में गौतम आनन्दमुनि की प्राचीन पवित्र भूमि की तुलना में एक द्वितीय बौद्ध पवित्र भूमि में परिवर्तित हो गया। अनेक पवित्र अवशेष रंगा की पुष्पभूमि से वहाँ आ पहुँचे और वहाँ स्तूपों में बिनका निर्माण राजाओं और प्रजा के स्वास्थ्य शान्ति और आरर के लिए हुआ था उन्हें रस दिया गया। अनेक कबाड़ प्रकटित हुईं, जिनमें कहा गया कि बुद्ध स्वयं जमकार करने आ गए हैं।

गिरजों की मूर्तिकला के स्वर्णयुग और कृपायुग के बीच एक हज़ार साल का अन्तराल था लेकिन दोनों में कुछ समानताएँ थीं। महायान बौद्धधर्म और ईसाईधर्म दोनों की धार्मिक गतिियों में ऊँची श्रेणी की एकता और समुलन की मांग थी लेकिन दोनों जगहों में मानवीय सहृदयता पर धोर दिया गया तथा धार्मिक व्यक्ति और तनाव को व्यक्त किया गया। इससे एक ठाड़ी प्रभावना मानवीय शैली का धार्मिक रूप। गंधार और उत्तरी फ़ारस दोनों जगह मानव की धाकृतियों विशेष ढंग से बनाई जान लयी। इन धाकृतियों में मानसिक अवस्थाओं के सूक्ष्म भावों को व्यक्त किया जाता था जिनमें से होकर बौधिसत्व धर्मवा ईसाई सन्त को गुजरता हुआ माना जाता था।

यूनानी रोमक कला की व्यापार-सम्बन्धी परम्परा पर महायान धर्म्यात्म का बही असर हुआ और उसी प्रकार गौंधिक बने जिस प्रकार पश्चिम में सैटिन ईसाईधर्म का एक हज़ार साल पूर्व प्रभाव पड़ा था। यह 'मानव-मस्तिष्क के विचित्रतम कारनामों में से एक है। मानव की प्रकृतिबुद्धि का यह बीपक अभी जला ही था और कमियाँ कापिश न मयराहार होकर बफ़ीति हिन्दुधर्म के पार सैकड़ों बिसुकों और कलाकारों ने इसे मध्य एशिया और चीन में पहुँचाया ही था और मध्य एशिया व चीन की कला में और अधिक चमक पैदा हुई ही थी कि मूर्तिमंजक हज़ों ने इस बुद्ध दिया। पाँचवीं सताब्दी ईस्वी के अन्तिम भाग में तोरमाण और उसके पुत्र मिहिरकुस ने भयंकर बिनाश किया और यह बिनाश बिन्द की कला और संस्कृति के इतिहास की एक अत्यन्त दुःखद घटना थी।

गुप्त-पुनर्जागरण का चरम उत्कर्ष और वैभव

शान्तिपूर्ण शताब्दियाँ

हम इस चुनौती हैं कि विश्व इतिहास की एक अवधि में एक घोर कुपाय-साम्राज्य ने कम से कम तीन शताब्दियों तक भारत और उसके उत्तरी-पश्चिमी सीमांत प्रदेशों में शान्ति कायम रखी तो दूसरी ओर रोमक साम्राज्य ने पश्चिम में। और इस शान्ति ने ही पश्चिम यूरोप में द्वार खोल दिए ताकि भारतीय सम्पदा उत्तरापथ से होकर पश्चिमी मध्य और पूर्वी एशिया में प्रसार पा सके। किन्तु घामू और कानुन नदियों के तटवर्ती भारत के सीमान्तों पर शासन हो सके। मध्य एशिया पर स्वेत हूणों का आधिपत्य ४०७ से ५२१ ईस्वी तक रहा। उन्होंने बैक्ट्रिया पर अधिकार कर लिया (४२१ ईस्वी) और ससानिद बहुराम और के हूणों द्वारा के बाद (४२८ ईस्वी) यंवार पर कब्जा कर लिया। स्वतन्त्र हो गए कि पंजाब से होकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर सकें। उनके आक्रमणों से कुपाय-साम्राज्य, पुनर्जागरण ध्वस्त हो गया। हिन्दुस्तान पर हूणों का आक्रमण अधिक सशक्त स्फुटित विक्रमादित्य के शासनकाल (४१४-४६७ ईस्वी) में आरम्भ हो गया था। इस दौरान हूणों का आधीकरण हो चुका था और अपने अनेक शासकों के आधिपत्य में वे पश्चिमी भारत में पूरी तरह जम गए थे और उनकी शक्ति शून्य बढ़ गई थी। यह भी था। सामान्य ऐसे ही विदेशी थे। मसमन १६०-४०० ईस्वी में भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग पर उनका आधिपत्य रहा। इस क्षेत्र में निज काटियावाड़ गुजरात और मातवा शामिल थे। ४०० ईस्वी में कल्पगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने दण्डर पुन आधिपत्य कर लिया। दण्डर द्वितीय के समय (११०-१७६ ईस्वी) का पड़ोसी भाग में एक अधिभेद परमिनीमिग से मिला है। इनमें दण्डर के सामान्य शून्यार को 'शायनगार' तथा हिन्दू (भारत) का यह रूपन महत्त्वपूर्ण है जब रघु ने क्षत्रात्मक समय-मागदारा पश्चिम की ओर प्रयाण किया तो दाढ़ी बाने पारसीरों ने मुश्किल हुई। समुदायायी के लोगों में उत्पन्न हुए जो भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त की ओर भगा दिया। विदेशिया व इन शत्रुओं के कारण भारतीय सभ्यता का अन्तर्गत मजबूत था। किन्तु तब भीय-साम्राज्य के लगभग पाँच

सत्ताभिषेकों बाध गुप्त-साम्राज्य का जय गंगापाटी में हुआ। इस साम्राज्य की राजधानी भी प्राचीन नगर पाटलीपुत्र।

३२० ईस्वी से ५३५ ईस्वी तक का समय गुप्त-साम्राज्य का स्वर्ण-युग था। यह साम्राज्य धरमसागर संवर्णन की साक्षी तक फैला था। बाह्यीकरण (वस्तु) तक पश्चिमी और उत्तरपश्चिमी भारत के तक और कुषाण शासकों को भी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। सीसका और द्वीपान्तर भारत के 'समस्त द्वीपों' अथवा पूर्वीय समुद्रों के भारतीय उपनिवेशों के राजाओं से भी राजस्व प्राप्त होता था। इसपर भी इतना शक्तिशाली साम्राज्य हूणों के आक्रमणों व घामन कुछ समय के लिए लड़कड़ा गया। स्कन्दगुप्त (४५५-४६७ ईस्वी) ने लगभग ४५६ ईस्वी में हूणों को पूरी तरह हराया। इस विजय की प्रशस्ति सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर' में विज्ञप्ति की कहानी में गाई गई है। मिथली के स्तंभ अभिलेख में इस विजय का वर्णन सुन्दर काव्यात्मक शैली में किया गया है। गुप्त-साम्राज्य के साम्राज्य और वैभव की चेष्टा के लक्ष्मण स्कन्दगुप्त को उसके शत्रुओं ने हिला दिया था। किन्तु युद्ध के पश्चात् 'वह 'विजयथी हमारी है' कहता हुआ अपने शत्रुओं को मारने के पश्चात् हृष्ट की भांति अपनी माता देवकी के पास पहुँचा जिसकी छाँव में प्रसन्नता के धासू भर पाये थे। स्कन्दगुप्त की विजय अद्वितीय थी। इससे केवल पाँच वर्ष पहले रोमकों और गौनों ने बालोंस के युद्ध (४५१ ईस्वी) में बुर्गन्ड हथसेनापति अतिसा को हराया था। अतिसा की पराजय के कारण पश्चिम में रोमक साम्राज्य के पतन में पचीस वर्ष की देर और हुई (४७६ ईस्वी)। हूणों ने अपने साम्राज्य को—जिसका विस्तार प्यारस और खोतान से लेकर पंजाब और भासना तक था—पुनर्गठित करने के बाद एक बार फिर मिहिरकुस नामक निरंकुश शासक के नेतृत्व में गंगापाटी में प्रवेश करने का प्रयत्न किया। कई राजाओं ने मिलकर मणोवर्धन के नेतृत्व में हूणों के इन प्रयत्न को भी विफल कर दिया (५३३ ईस्वी)। हूण उत्तरी पंजाब में बस गये थे और भारतीय बन गए थे। उनके कुछ कबीले चित्तकूट और एरिकिन प्रवेश (मध्यप्रदेश में पुरान) तक पहुँच गए थे। उन्होंने धर्मधर्म स्वीकार कर लिया।

गुप्त-संस्कृति का स्वर्ण-युग

पचीस सताब्दी से आठवीं सताब्दी के अन्त तक गुप्तवंश तथा हर्ष और उनके उत्तराधिकारियों के शासन की पाँच सताब्दियों में जनता भारत में अत्यन्त सुख-समृद्धि पूर्णक रही। इन पाँच सौ वर्षों की तुलना एबेल में पैरिक्लीज रोम में आगस्टस और इंग्लैंड में एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल से की जा सकती है। इसी अवधि में छ. आहुण दार्शनिक सिद्धान्तों का जन्म हुआ। इसी अवधि में कासिदास भारवि कुमार दास दण्डी और विशालवत्स के काव्य और नाटक रचे गए। महाकाव्यों और पुराणों के महान नवविचार इस समय समुद्रगुप्त और बिहनाग के महायान अध्यात्म धर्ममठ और बराहमिहिर के ज्योतिष मधुरा विविधा सारनाथ और नासिका की कला वस्तुशिल्प शास्त्रों के विद्वानों और बलमी के विश्वविद्यालयों गंगा की पश्चिम भूमि पर भीनी वाधियों के शासन के अन्तिम वर्षों में विद्वत्त्व के प्रचार—इन सबका समय यही था। इसी युग

में चीनका का राजतुल्य समुद्रमुक्त के दरबार में (मगध २६० ईस्वी में) भाषा हुए का राजतुल्य चीन गया (६४१ ईस्वी) बाइ-हवेन-से ने तीन बार भारत-भाषा की (६४२-६५० ईस्वी) यशोवर्धन का राजतुल्य चीन गया (७३१ ईस्वी) साम्राज्य और पक्ष यमक धर्म प्रचारार्थ विजय गए और घाटकीं राजाओं की समाप्ति तक पूर्वी उपनिवेशों का विकास तथा बहा की कला में पल्लवा में योग दिया। इस युगकी समाप्ति राज-राज पाल साम्राज्य का उत्कर्ष हुआ (७२५-११०० ईस्वी) सम्राट् का साम्राज्य (७३०-८१० ईस्वी) में साम्राज्य का प्राचिण्य गवार से बर्णित तक हो गया और मगध निश्चय दक्षिणभारत चीनका और भाषा में राज्यनिष्ठता धर्मप्रचारक नर गए। गुप्तका क पतन और पञ्चाब का सामका पर हुआ क प्राचिण्य की स्वायत्ता के पञ्चात् तीन राजाधिया तक सम्पूर्ण देश में (हून्नाह के अनुसार) काश्मीर में काशी और बननी में नागविजि नर मस्तिष्क और ज्ञान का दीपक जलता रहा। हय यशोवर्धन प्रविहारका क नागमृत् द्वितीय और बगान के समपाय नामक सम्राट् में गुप्तवध की द्वारा की कायम रहा—

मयि विदेगी शाकम्बा का मरुत प्रविरोध किया तथा मस्तिष्क और ज्ञान की धर्मवृद्धि की जिस तो यह है कि राजाधिया क दौरान भारतीय मस्तिष्क की प्राचीन साम्राज्यिका गुप्तवध की महान परम्परा ही है तथा सुसम्माना और अक्षय्य म इस मित्रता नहीं है

✓ इसका बाह्य गुलजान की अ अतिनीय धीवृद्धि को नहीं टीक-टीक समझा

का सनना है जब इस उम्र शाक्य-पुनरुत्थान का अरमोत्कर्ष मान। इस पुनरुत्थान का कारण राजाधिया पहन उत्तर में पुनर्जागरण और दक्षिण में वातवाहक-वध का समय म ही हो चुका था। इसी पुनरुत्थान का ही रूप था कि हमारा देश का अक्षय्य नाम मिला। यहा बाह्य मानकी राजाधिया म हून्नाह म मित्री थी। परन्ती राजाधिया ईसापूर्व म पक्षध के पतन के बाद राजतुल्य म पञ्चाब तक विस्तृत राज्य के राजाओं की राजतुल्यगारी की धर्मवृद्धि करनेवाले प्राचीन-विधि और धर्म की राजधानी मस्तिष्क (नागपुर म ठेठ मोन दूर रामटेक) बनाकर मध्यभाग पर शासन करनेवाले वातावरण-विधि में यचना और कुशाका के शासनका क विस्तृत शाक्य राष्ट्रीय प्रविरोध गच्छता बरु जानम रहा। यह तक है कि उत्तरभारत के विज्ञान भूभागों पर यचना और कुशाका के प्राचिण्य के निष्ठा थे जिसे वे जिदगी मरि छ गए थे। मगध माह तीन राजाधिया तक उत्तर भारत पर काशी और कुशाका के प्राचिण्य का पक्षधक उनका राज्य पर म विदेगी प्रभाव मिला। इन गाढ़े तीन राजाधिया तक भारत विद्वानों के प्राचिण्य म गवधा मुता

उदार नव प्राचिण्य-पुनरुत्थान

मुद्राधिया और गुलजान के म मध्य म ही ब्रु प्राचिण्य प्रमुख की जिन पर गुलजान की म मरि हो गया। गुलजान की अतिनीय मस्तिष्क के अनुसरण थी। इस युग की विद्वाना थी—धर्मवृद्धि क सदान पर परिणत मध्य के स्थान पर

गमनम् । गुप्तवंश के सम्राट् स्वयं को 'मगध' धर्मात् भगवान् वासुदेव के पूजक कहते थे । वे मग-शाहान-मुनस्त्वान व भगुधा वे किन्तु उन्हें ही बौद्धधर्म के प्रसार में भी योग दिया । शाहान बिष्णु-स्वानों देव-कुरा और देवमगधों की भाँति बौद्ध तथा जैन विहारों को भी उनका आश्रय और संरक्षण मिला । जैनसाह के अनुसार, मासन्वा का बौद्धमठ गुप्तराज्राट् दाकविरय ने बनवाया था । कुछ इतिहासकारों का कथन है कि सराविल्य वास्तव में अष्टगुप्त द्वितीय (देवराज) का ही दूसरा नाम है । पश्चिम में वलमी-स्मिथ बुद्ध के प्रसिद्ध मठ को बनवाने का येय छिव-पूजक मैकवधियों को है । मासन्वा की इमारत छः मज्जिमा की सी सीर छ राजाधा ने उन्हें बनवाया था । उनमें दस हजार विद्यार्थी विद्याध्ययन कर सकते थे । वहाँ के १५१ शिक्षक प्रतिदिन भी विभिन्न प्रवचन रोज़ देते थे । गीत वेदा एव अथर्ववेद हनुविद्या छन्दविद्या (व्याकरण और वचन) चिकित्साविद्या सांख्य न्याय और योगशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी । इनके अतिरिक्त कानून दर्शन ज्योतिष और पाणिनिद्वारा व्याकरण का अध्यापन होता था । मासन्वा में जैनसाह ने बौद्धधर्मों के सभी मठों तथा शाहाना के पवित्र स्थलों का अध्ययन किया था । इस विश्वविद्यालय में एक प्रथा थी कि विभिन्न भिन्न-भिन्न एवं परस्परविरोधी विचारप्रणालियों की शिक्षा दिया करते थे । इससे विद्यार्थियों के मस्तिष्क में बाँकाए उठती थीं और वे विरोधी तक प्रस्तुत करते थे । गुप्तवंश के एक उत्तरकापीन सम्राट् वैष्णुगुप्त ने महायान बौद्ध विहार वैबर्तिक मठ को दान दिया था । गुप्त और गुप्तीतर काल में बौद्धधर्म के अन्य केन्द्र प्रयोध्या कान्यकुब्ज विदर्भ उदयन वलमी पुण्ड्रवर्धन उड्ड और काँचीपुर थे । विभिन्न दर्शन प्रणालियाँ के उदय और विकास तथा स्वामीय शासकों के सराव के अनन्तर प्रत्येक केन्द्र का अपना उत्कर्षकाल था । दर्शन साहित्य कला तथा विज्ञान के क्षेत्र में पूरी आकाशी से विभिन्न प्रणालियों और मठों तथा अन्य विवेचनों से प्रभाव ग्रहण किए जाते थे ।

साहित्यिक सरक्षण और प्रयासन में शाहाना बौद्धों निर्धर्मों छैलों और वैष्णवों विद्वत् एक मिथिल बनों यहाँ तक कि नारनीयो और विवेचियों के बीच अन्तर नहीं गमन्य जाता था ।

धार्मिक बुनाव की गुप्त-सरम्भरा

यस शाहानधर्म के क्षेत्र-विशेष की बात । मुत्त-साभाय्य का सर्व मानवधर्म था । अधिकतर गुप्तराज्राट् और उनका अनुसरण करते हुए उस काल के स्वामीय राजा स्वयं को 'परम मगध' (मगवान धर्मवा इण्ड-वासुदेव के पूजक) कहते थे । किन्तु वे वास्तव में गुप्तों की पूजा भी करते थे । शाहानधर्मकारी हठों पर विद्वत् प्राप्त करने धर्मवा प्रतिरक्षा के लिए कठिन संघर्षों के समय उसका आवाहन करते थे और अपने सिक्कों पर दुर्गा की आकृति बनवाते थे । गुप्तकाल के अनेक सिक्कों पर मिहनाइया और सरमी की आकृतियाँ हैं । सिद्ध धर्म और बुद्ध के देवता कार्तिकेय की पूजा भी प्रचलित थी । अधिसर्वा में लिखित अन्य अनेक देवताओं के नामों से पता चलता है कि गुप्तकाल में हिन्दू धार्मिक विश्वास किशता विस्तृत था । ये देवता हैं कुबेर, बल्ल इन्द्र यम कुमारदेव लोकपाल

ममकन् श्रीर कृत्स्नपति । मर, किन्नर, विद्याधर और गणेश भी पूज्य थे । महत्त्वपूर्ण हिन्दू सम्प्रदाय के भागवत पाशुपत माहेश्वर और सौम्य । ध्यायवाक्य-सम्प्रदाय भी जिते हुयेन गाद् म कापानिक कहा था काफी महत्त्वपूर्ण था । गुप्तसम्राटों में वैदिक यज्ञो-संस्कारों का पुनरारम्भ किया विशेषतः अश्वमेधयज्ञ जिग विभिन्नय का प्रतीक समझा जाता था । समित्तों में अथ्य अनेक वैदिक संस्कारों का विज्ञ है, जो वाक्यान्त राजाया शास पुन किए जाने से अमिष्टोत्त प्राप्तोपाय उत्पन्न पोडविन् अतिरात्र राजपेय कृत्स्नपतिवत और मद्यस्कर । ब्राह्मण पञ्चमहायज्ञ और अमिष्टोत्त का आयोजन करते थे और इन यज्ञों की पूर्णाहुति के लिए उन्हें गाव दिए जाते थे ।

गुप्तकाल के सम्राटों ने ब्राह्मणधर्म का पुनरुत्थान किया । उनमें से एक सम्राट् धातरण करते-कामा' कहा जाता था । इस पुनर्जागरित शासनकाल में धार्मिक के अनुसार हुआ । अमर धार्मिक सम्प्रदायों को एक में मिलाया जान लगा । अमर प्रकार के हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा होने लगी तथा बौद्ध संस्था पुन प्रतिष्ठित हो गए । साथ ही मयाम को मान्यता देनेवाय जैनधर्म और बौद्धधर्म के प्रति सहिष्णु हटिकोच अपनाया गया । इस धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप ही निम्नलिखित विदेशों में भारतीय ब्राह्मणधर्म का प्रसार सम्भव हुआ । सभी धर्मों में भी कायम रही । इसका प्रमाण है हर पांच वर्ष की गुलबालीन परम्परा वर्ष के समय में भी कायम रही । इसका प्रमाण है हर पांच वर्ष में आयोजित 'मोक्ष-मन्त्रा' का अधिवेशन जिगम सम्राट् ह्य स्वयं विविट् बीडा ब्राह्मणों तथा अन्य धर्मानुयायियों को आम रूप से तथा समस्त बूढ़ नृप और गिर की पूजा करते थे ।

राष्ट्रीयकरण और व्यवस्थापन का विविष्ट युग

गुप्तकाल तथा उसके बाद की तीन शताब्दियों में भारतीय जनता की गरजना में तेजी से परिवर्तन आया । विभिन्न जातियों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप बौद्ध स्वधीनता में अमिष्टि हुई और एक उदार व सहिष्णु हटिकोच अतिगण बनना व प्रति गम्भीर अति-भावना तथा (पूजा के सामाजिक स्वरूप) समस्त प्राणियों व प्रति कदना भावना का विकास हुआ । अत्यन्तमविद्या और उत्तमार्जन के क्षेत्रों में विवेक व गार्हमपूजा उदार्ने अरी । अमर नाय-नाय सम्प्रदायों तथा हिन्दू बौद्ध और जैन धर्मों प्राणियों की आ-वचनमरक हुई हुई ।

हिन्दूधर्म की छ. प्राणियों में सर्वाधिक प्राचीन है मान्य और योग । 'धर्म' नामक महाभाष्य तथा अन्य ग्रन्थों में इनका उल्लेख है । चौथी शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ में ईसाई धर्म में आन्वेषकारिता की रचना की । इसी कृति में 'मोक्ष-मन्त्रा' का उल्लेख अमिष्टम गम्भीर प्रदान किया । इसी प्रकार योगदान के मित्राभावा निरूपण व्यामभाव्य' में हुआ । इसरी रचना पत्रविन व योगयुता व ध्यायन पर ३०० ईस्वी के आसपास हुई । लगभग ३० ईस्वी में अमिष्टम गम्भीर मान्य व भीमाभावावा की प्रमवत् व्याख्या प्रस्तुत की गई । गुप्तकाल में वेदान्तधर्मों की उपनिषदों का समर्पण मान लिया गया ।

वेदान्तसूत्रों द्वारा मान्य एक प्रामाणिक ग्रन्थ निस्तम्येह भगवद्गीता है। किन्तु वेदान्त-सूत्रों में महाभारत (विशेषतः वारहों कांड) के कुछ वेदवादी भागों का जिक्र है। अनेक भागों में वेदान्त के ऐसे प्रकार हैं जो शंकर ने उपदेशों से मिला है किन्तु भागवतों के विचारों का अनुरूप है। किसी समकालीन परम्परा के अनुसार वेदान्त का माध्यम प्रस्तुत करने का काम शंकर ने नहीं बरन् रामानुज ने किया किन्तु वह परम्परा साध हो चुकी है। वेदान्त-सूत्रों की टीका करनेवाले बोधायन का ठीक-ठीक पता नहीं है। हम भट्ट प्रपंच प्रमिषा-धाय उपर्युक्त ब्रह्मनन्दिन या टंक के बारे में भी कुछ नहीं जानते। न शंकर और रामानुज से पहले हुए वे और सायब पुस्तकाल में ही प्रामाणिक थे। व्यासवेदिक दशम के निदान्ता को मुख्यवस्थित करने का काम गौतम और वात्स्यायन ने किया। गौतम ने अपने व्याससूत्रों का प्रथम पुस्तकाल के आरम्भिक वर्षों में किया तथा वात्स्यायन ने अपने सुप्रसिद्ध 'व्यासभाष्य' की रचना चौथी शताब्दी ईस्वी के अन्तिम चरण में की। अपने ग्रन्थ में वात्स्यायन ने भाष्यमिक धूमताबाध तथा बौद्धयोगाचार-सम्प्रदाय के परम विचारवाद का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इसी काल में प्रसस्तपाद ने वैशेषिक सूत्रों का मुख्यवस्थित सैद्धान्तिक निरूपण 'वदार्थधर्म-संग्रह' में किया।

बौद्धवर्धन-सम्प्रदाय और भी अधिक सक्रिय थे। अयोध्यानिवासी सुप्रसिद्ध ब्राह्मण अरुण और बसुबन्धु, ने चौथी शताब्दी ईस्वी के आरम्भ में परम-आदर्शवादी बौद्ध-योगाचार-सम्प्रदाय की स्थापना की। अरुण के विख्यात ग्रन्थ थे 'महायान-सम्परिपह' 'योगाचार भूमिदान्त्र' और 'महायान-सूत्रार्थकार'। 'विद्युत्तिक' 'विद्युत्तिक' और 'परमार्थ-सम्पत्ति' के रचयिता बसुबन्धु थे। महायान-सम्प्रदाय ने जिस परमविचारवाद का विकास किया उसमें ओर देकर कहा गया कि बाह्य ससार का अस्तित्व है तथा धर्मकाय के सार तत्त्व-विज्ञान का अस्तित्व। इस विचारधिनन्दु ने हिन्दू और बौद्ध वर्धन-प्रणालियों के बीच तथा विभिन्न बौद्धवर्धन प्रणालियों के बीच भी तीव्र विचार उत्पन्न किया। इसी काल में तदुपास्य का विकास हुआ और इस क्षेत्र में अग्रणी बौद्धवर्धनगुणायी रहे। बसुबन्धु का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'तर्कशास्त्र' और विद्वानागत 'व्यासमुक्त' भारतीय दर्शन की महान्तम उपसम्पत्तियों में से है। इसी दौरान जैनवर्धनसम्प्रदायों ने 'तत्त्वार्थविगम-सूत्र' का प्रथम किया। यह दर्शन को मुख्यवस्थितरूप में प्रस्तुत करने की विधा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। पुस्तकाल वास्तव में एक ऐसा समय था जब विभिन्न विद्वानों का जन्म हुआ विचारों को क्रमबद्ध और मुख्यवस्थित किया गया व्याख्या प्रस्तुत की गई और आलोचनाएं हुईं। य माटी बातें इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि उस काल के विभिन्न सक्रिय धार्मिक सम्प्रदायों और वर्धन प्रणालियों में वास्तविक धार्मिक शायदा और भौतिकता थी।

वासुदेव और धार्मिक शास्त्रार्थ सर्वमान्य विद्वानों और नियमावधियों का आधार पर आयोजित किए जाते थे। इन वास्तव्यों में पूर्ण सहिष्णुता और उदारता रहती थी। इस बात का प्रमाण हमें 'हर्षचरित' के एक प्रसंग में मिलता है। इस प्रसंग में लिखा गया है कि एक बौद्धविद्वान् उपदेशक की अध्यक्षता में (वे उपदेशक पहले ब्राह्मणधर्म के अनुयायी थे) एक समा का आयोजन किया गया जिसमें इतने धार्मिक सम्प्रदायों और विचारधाराओं के व्यक्तियों ने भाग लिया जिनकी गणना करना वास्तव में सम्भव नहीं

या । यह प्रयोग इस प्रकार का है "सम्माद् भव भी काफ़ी दूर, पेडा के एक मुगमुट के बीच
म से फिन्नु ममा का हृदय उनसे सामन था । विभिन्न प्राप्ता म पाण हुए घनेकानर बीड
भाग समग हग म बैठ थे । कुछ राप्ता पर बैठे थे कुछ चट्टानों पर, कुछ पनापा व माण
म विषाम कर रहे थे धमक भाइयों घबका पेडा के साये में बैठे थे या पेडा की जडा पर
बैठे थे । ममी मिशु से मामारिक काममाभो म मुक्त । दोनाम्बर जैन दिने मरुद बरु
पाटी भिनुक दिने और दिगमाई पर हृदय के अनुयायी । कर्म के विचारों भी बैठ थे ।
घने बाव माचनेबाते हटयोगी कथा के सिष्य उपनिषदों के अनुयायी ईश्वर का
ममल्य सृष्टि का मर्मक माननेवाले धानुभा क पारपी कापून की मर्यादा के विचारों
पुराण के विचारों मान बरुका पुराणियों द्वारा मरु काने म मिशुष ध्यति बैपाकरण
माचराव के अनुयायी भेषा धम्य घनेक प्रकार के व्यक्तिसमा में उपस्थित थे । ममी घन
जान मिडाणा के अनुयायी थे ममी विचारवान थे धकाण उठाते थे विचारा के प्रति
जाण्य करते थे धकाभा का निवारण करने से व्युत्पत्ति बनाने से बाद विचार करने
थ धम्यमनीन थ धीर व्याख्याएं प्रस्तुत करने से । विद्वानों के इस विषाम मनुष्याय को
देगकर भी सम्माद् को उन पवित्र व्यक्तिकी उपस्थिति का धामाभ हो गया जिसने चारों
धोर यह विषाम मनुष्याय गिष्य की भाति उपस्थित था ।

नव-ब्राह्मण-भुनस्त्यान की प्रकृति

धस्यायी मामाजिक और बौद्धिक परिस्थिति के प्रति ब्राह्मण-रुद्धिवादिना की
प्रतिक्रिया घनेक स्पष्ट रूप में हुई । ममभग २००-१०० ईसापूर्व तक 'महाभारत' (विष्णु
भाषार म) तथा 'मानवधर्मशास्त्र' ने परम्परागत समाज के समस्त वैदिक जीवन प्रणाली
को प्रस्तुत किया । फिन्नुवाणिक और धार्मिक हटिकोण म ब्राह्मण मिडाणा का मुमगन्य
गुतरान म ही सम्भव हो सका । गुणकाय में विदेशियों का भारतीयकरण तो प्रबल रहा गया
या फिन्नु वैहिन्दूधर्म के विभिन्न पाठों की मगप्रदाया को धनमाना मने । इसके अनिरिक्त
मनु के प्रारम्भ म महानान के उदय के समस्त रूप बौद्धधर्म म भक्ति की बाड़ था म धीर
ममात्र की स्थिति बदलने लगी । इन दोनों स्थितियों ने ही मामाजिक विविधता व पथभ्रष्टता
के नय गतरे का जन्म दिया । इस गतरे का नामना करने के लिए ही ब्राह्मण मिडाणों
का मुमगन्य धमिबाप हो गया । गवप्रथम तो ब्राह्मणधर्म की प्रतिक्रिया माहितिक धन में
थ म ब्राह्मणधर्म के मामाजिक और नीतिक धारणों की ध्याना हुई । ममे एक महान उदय
की प्रति हुई कि भारतीय जीवन म मगानार प्रबेग पानेजान घबका और धम्य धनाने
के विदेशी और बरर धानों के धात्रमण के विरुद्ध फिन्नु कानून धाकार और मरुद
की भुननप्रतिष्ठा हुई । मुक्तता में गतरे के मुक्त म धन मामानी मुक्त धाधोर
मिष्य घन धानि विविधता और धम्यता में मुक्तता का विचार म मापना मगान
धोर गवाह म पूरे-पूरे राज्य स्थापित कर गिया ।
इस देग बृहद् कि प्रारम्भिक धमधर्म म धात्रम और धनिमुग (धर्म
मामाजिक हान का मुद) का मिडाण विवर्णित हुआ । इस मिडाण के अनुसार उपस्थान

धर्म भी यदि अपने कर्तव्य को निभा नहीं पाते थे तो इसे बदलावत किया जाता था और यहाँ तक कि स्वीकार भी कर लिया जाता था—सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार अनिवार्यता यही थी। महाभारत में इस बात का विषय है और मगधगीता तथा पुराणों में तो यह मसीहार्थ आशा बगाने का यत्न भी किया गया है कि मानवता के रक्षक कृष्ण बासुदेव का अवतार भविष्य में भी होगा। कहा गया है कि जब-जब धर्म की भ्रान्ति होती तब-तब कृष्ण-वासुदेव वर्मात्माओं के उदयान और पापियों के विनाश के लिए अवतरित होते। इस ईश्वरीय अनिवार्यता ने कि धर्ममूलक समाज की स्थापना अवश्य होती प्राचीन मूर्खों और आदर्शों के प्रति जनसाधारण का विश्वास मजबूत कर दिया और विदेशी प्रभुता बीड़ नये प्रभावों और आदर्शों से उसे बचाए रखा। महाकाव्यों पुराणों और धर्मशास्त्रों में उन आचार्यवृत्त आध्यात्मिक सिद्धांतों और नैतिक मूल्यों की व्याख्या और स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है जो ब्राह्मण-संस्कृति के सभी अर्थों और दार्शनिक सम्प्रदायों को मान्य थे। वास्तव में बृहत्काव्य महाकाव्य और पौराणिक साहित्य तथा प्राचीन संस्कृत काव्यों में भारतीयों की सम्पूर्ण सामाजिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि तथा जीवन प्रणाली का बीसा विचार और सक्षम विवेक हुआ है बीसा पहले कभी नहीं हुआ था। संस्कृत का पुनरुद्धार सुगुप्तकाल में ही प्रारम्भ हो गया था गुप्तकाल में तो वह एक तरह से प्राकृत के स्थान पर लोकभाषा ही बन गई। गुप्तकाल के महान सम्पादकों और विद्वानों ने महाभारत और रामायण स्कन्द शिव भक्त्य और वायु पुराणों की विषयवस्तु को पढ़ाया उनमें कुछ और जोड़ा तथा उसका परिवर्तन किया। अपने इस कार्य से उन्होंने इन ग्रन्थों को विस्तृत होने से बचा लिया और साथ ही बीड़धर्म से ब्राह्मणधर्म की रक्षा करने के लिए पहला कदम बढ़ाया जो किसी न किसी को बढ़ाना ही चाहिए था। सूत्रों और स्त्रियों की शिक्षा के विषय उद्देश्य को लेकर महाकाव्यों तथा प्रमुख पुराणों को एक ऊँच स्तर तक बिभूत किया गया।

धार्मिक आन्दोलन में वैदिक और राष्ट्रवादी दोनों रुत अवतार। प्रारम्भिकपाँच राज वैष्णवधर्म शुकधर्म शाक्तधर्म और अन्य धर्मों की समतावादी प्रवृत्तियों के प्रतिरित पुरातनवादी ब्राह्मण सिद्धांत और उपदेशक जनसाधारण के बीच आते थे और अपना दृष्टि कोण सामन रखते थे। शत्रियों से वे कहते थे कि उन्हें मठ या ग्राम में एकान्तवास न करके धैर्य कर्तव्यों को निभाने का अपना वास्तविक सामाजिक कर्तव्य करना चाहिए। वे वैद्यों और क्षत्रियों को भी अपने व्यवसाय का समपादन करने को कहते थे। इस तरह वे देश को मिथ्या धर्महीनता और पारसीकता से मुक्त कर रहे थे क्योंकि यह मिथ्यावाद सम्पूर्ण जाति के पुरोहित को स्तब्धित कर रहा था। वे उपदेश जन साधारण को पसन्द आए। वे ब्राह्मणों से वर्णित शत्रियों की बुद्धि में बीड़ता की शानदार परम्परा से रोमांचित हो उठते थे। साथ ही वे उस धर्मरता के प्रति विवर्धित भी हो रहे थे जो क्रमशः बीड़-सञ्चारमा में प्रवेश करती जा रही थी और धर्म संघारम बन ब ऐश्वर्य से पटे पड़े थे। शायद यही कारण था कि समय में मिथुनिया की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। वैसाकि बुद्धधर्म के समग्र १० ई. में लिखा था बीनी भिद्यु माधी ई-लिप् (६७१-६८१) ने व्यवस्था ही किनी बीड़मठ में विपुल जन भगाम तथा स्त्री और

कालिदासकृत 'रघुवत्स' और संस्कृत-काव्य
अनेक विद्वानों के द्वारा

[illegible]

गण-साम्राज्य के युग के शाही वादियों का हृदयगत मे क्या कि मनुष्य
मुमहृदय के भाग है जिसमें बीड़ भी सम्मिलित है तथा मनुष्य के मनुष्य
प्रकाश बोरी धीरे विगो जाती है। किन्तु हृदयगत मनुष्य कि मनुष्य भाग हृदयगत भी
मनुष्य प्रयोग करने-करन मनुष्य बन गए धीरे विनष्ट कारण किन्तु मनुष्य मनुष्य बन गए
हृदय घनपद बाविया का जगमग हुआ है। मनुष्य का मनुष्य है कि पापी धीरे प्रारम्भ व
रमान पर जनतापारम्भ की भाग मनुष्य बन गए जिस मनुष्य दन में धीरे दन मनुष्य

दक्षिण-पूर्व एशिया में भी समझा जाता था। यही कारण है कि बौद्ध और जैन शस्र्त्रिकों और साहित्यकारों ने अथ संस्कृत में मिथिला भारम्भ कर दिया। यह एक और कारण से आवश्यक था मुद्रबलित और लोकप्रिय बौद्धग्रन्थ कथामों के अतिरिक्त 'बुद्धचरित' 'मौदरानन्द' और 'आतकभासा' जैसे महत्त्वपूर्ण बौद्धग्रन्थों की रचना संस्कृत में हुई थी और प्रबुद्ध हिन्दुओं ने इन्हें पसन्द किया। भारतीय गृहस्थी और परिवार की पवित्रता को विषयवस्तु बनाकर लिखे गए कासिदास के 'रघुवध' और 'कुमारभगव' वास्तव में बौद्धकथा को ब्राह्मणधर्म और ब्राह्मण-समाज-व्यवस्था के प्रत्युत्तर थे।

ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों में विश्वासों का पारस्परिक परिपाक

बौद्धधर्म की कुनौती को स्वीकार करने का ब्राह्मण-संस्कृति का दूसरा बड़ा भाग था धर्मात् बौद्ध-उपासकों का स्वयं उपयोग करने लगना। उन्होंने बुद्ध को विष्णु के वस अवतारों में से एक मान लिया। "य प्रकार उन्होंने हिन्दू जनमुखाय को प्रेरणा दी कि वह बौद्धधर्म को भी हिन्दूधर्म के अन्तर्गत अनेक अटिष्ठ बौद्धिक सम्प्रदायों में से एक स्वीकार कर ले। महात्म सामाजिक सम्बन्धों का प्रश्न था भारत के विभिन्न राजसी परिवारों में बिनाह सम्बन्ध हाथ में फिर आने से बौद्ध धर्म अपना धर्म बन किन्ती भी धर्म के अनुयायी क्यों न हों। इस अतिरिक्त दोनों धर्मों में मिथिलाओं और विश्वासों का पारस्परिक आदान-प्रदान और समन्वय स्थापित होने लगा। ब्रह्माण्ड के मूलन से पहले और-सागर में विषम करने वाले वैदिक देवता विष्णु ने गुप्तकाल में आकर अवतारराज के कारण मानवता के अति मान रख कर का रूप धारण कर लिया। मानवता के प्रति विष्णु की मनीहारी भाषा और पुनरुत्थारक प्रेम महायान बौद्धधर्म के महाकाव्यिक बोधिसत्व के समतुल्य था। महायान बौद्धधर्म और मधोविष्ट हिन्दूधर्म दोनों में ही देवता में धर्मित अति थी जिसकी वजह से जनसामान्य धर्म को और अधिक मानने लगा। यह स्थिति उन मार्क्सवादी काम के संबंध अनुकूल थी जिसमें उपासना और कमसीलता होना का सामंजस्य था। सब दो यह है कि गणधर्म के सभी धर्मों में कुछ अनन्य समान रूप से उपस्थित थे। वे सक्षम थे आत्मत्याग सेवा भावना और सभी जीवों के प्रति करुणा। और उपासना तथा कर्मसीलता मन्त्रीयता तथा सक्रियता में सामंजस्य स्थापित करने के आदर्श की खेष्ठतम अभिव्यक्ति का निवास की बाधों और मरणात् मरुत् जिनकी विधुद्ध और सतिन आपा ने हम भारतीयों को अनेक अनाभिव्यक्ति के दौरान अनुप्रेरित किया है।

"भी बीच बौद्धधर्म में भी बंधी परिवर्तन हो गया। पहले इस बात पर जोर दिया जाता था कि सभी को समार में नाना छोड़कर मन्त्रात्मक करना चाहिए। अब नये महायान सम्प्रदाय में इस बिचार को त्यागकर नयी व्याख्या प्रस्तुत की गई। इस व्याख्या में बाधि राक्ष की शान्ति और सक्रियता को सामाजिक जीवन के साथ समन्वित किया गया और इस प्रकार सामाजिक और धार्मिक जीवन में सामंजस्य उपस्थित किया गया। निर्वाण का अर्थ अकाल की ओर प्रस्थान न रहकर समष्टि में व्यक्ति का एक पवित्रतम आरवध और अनन्य सम्मिलन हो गया। "नक अतिरिक्त बौद्धधर्म में अर्थ और धायन के अनुसार ब्राह्मणधर्म के सामाजिक स्तरों और विभिन्न कर्तव्यों को अस्वीकार किया गया। किन्तु पुनः

काय की विपत्ति ही थी क्योंकि व क्योंकि के विभिन्न कठिना का मित्रण । यत्र इम संनर्मे में उग बुध के ममात्र म परस्परवादिता धीर धमवादिता में बार्न् अन्तर मती रह गया ।

महायान धीर वेगन्त की विचारधाराया म पागस्पगिक प्रनिगान

बीजधम की बुनोती को वाह्यधम ने एक नीमने इम से मी स्वीरार किया । यह स्वीरुति बीडिक स्तर पर हुई । बीजधम के प्रति उचि बीडिक गिण्टरता म ही थी धीर यह भारत के प्रथमक्यक मगो का धम रह गया बा । इमम धम्मन् मम उन्मि धीर बिम्बुन धाम्माधिक मिडाम्मो का बिगाम हुया बा धीर ये ही गिडाम्म क्रमम प्रगारह अनन-अलग मम्प्रदाया म बहस पाउ जिमका शिक जूनमाड ने किया है । "न मम्प्रदाया मे नर्वाधिक मम्प्रवपुष म धाम्मिक धीर यावाचार मम्प्रदाय जिमका बिकाम गुनराय म नायाजुम धमम समुबन्ध तथा धम्य महान कुसवतिता ने किया बा । महायान बीड धम ने धमक धाम्माधिक मिडाम्म मानववडि की उक्थनम उडाया म म है धीर उनक ही वारस धमक परस्परवादी बमो म सब प्रतिक्रियाए हुई प्रतिबान् कित गए धीर ममन्वय हुमा । इनमें नर्वाधिक महर्बपुष बा वेडाम्मन्तोन । साक्षिय क इतिहासकारा ने धमक जिमड वेडाम्मो उपनिषद् का ममय ईगाई सन् क धारम क बर्ई गणाजिया बा" माना है । मागहस उपनिषद् धीर उसकी टीका 'गोइपादीयकारिका' की रचना ममबन मानवी दलाणे म हुई थी । पहली धीर पाचवी गणाजियो के बीच शास्त्रगुधम के शानिक विचार का बिगाम हुया धीर उहें मिडाम्म का रूप दिया गया । उन मभी का धाधार बा धाम्मा धीर धाम्मन मक्यागी बह्य । बाम्म म ईतवाद को धम्बोकार किया गया धीर इन गिडाम्म पर उार दिया गया कि मधार की अनेक अलग अलग जियाए दबाव है क्या कि उनका धाधार है धाम्म बह्य । इम विडाम्म का एक अनिधाय निरुप यह निरुपना है कि मानव क बाम्म मायावी है धीर उसकी धाम्मा म माया का परता हुन ही उनक बन्धन मीर बाम्मनसि पुनर्बैम धीर मविन धम्मिग्व धीर धमग्निन्व एक हो जाने हैं । वेगन्त बा यह मिडाम तथा मीर मीर के बीडिमिडाम्म का मून है । यत्र इम मानना बाशिा कि बीजधम पर प्रारम्भिक वेगन्त का प्रभाव अवरय पहा हाया ।

महायान-मम्प्रदाय के एक भण्ड ग्रन्थ 'लकावगारमूष' की रचना ममबन पाचवी दलाणे ईग्वी में हुई थी धीर इनम मायावी मगात्र की अयधावना को गुनता रागगात्र के गोव बाव के बेने धीर जमनी हुई लकरो (धमाल) को गोयाई म पुमाने मे बमन धमि कत्र मे बी गन् है । यह विचार तथा इगिया की बन्नामा क बाण्ड उन्मन् ज्ञान गरी मायात्रा धानुतिता मे डका हुया लयागन-मर्मे का मूडवाग्मक विचार बरती यत्र क विगाम का एक अनिधाय धम है । बाम्मा धर्म धीर धमग कमुरगु धीर बुधार्मि तथा धाम के हु गिडाम्मो का विगाम मयभग माय पाय हुया बा जिमकी बर्बा जूनमाड मे कर् बाव की है । लयावगारमूष म धाम्मा को धाम्मन धीर परिगियतिता मे को मानने क मिडाम क माय ममना को रीपात्र विगम मया है । उमम विगा है कि "नयाम्मन्-मर्मे क धमिग माय धीर दबाव धमिग कहा गया है ताकि धाम्मा के मिडाम पर हु विगाम रागगात्र इगवे धर्मोदारी हमार धम क धीर धावतिग हा । रवी दग्ग म म भी

मिथा है कि नैराश्रम्य को स्वीकार करनेवासे वर्शनों से अनुयायी भड़क उठते हैं। दूसरी ओर बेदान्तदशम के प्रसिद्धतम उन्नायक गौड़पाद ने जो स्वयंशायद बौद्धों से माध्यमिक और योगाचार बौद्धमतों के बहुप्राण्णीय रिक्तता और तथता के सिद्धान्त को पूर्णतः धर्गीकार किया था और ने इस परिणाम पर पहुँचे थे कि अ सम्बन्ध शास्त्रतः सार्वभौम और मौल्यमाना का उपनिषदीय सिद्धान्त बही है जो अद्वैत सास्त्रतः अपरिभाषित मौल्य विज्ञान ('विमल से किसी भी प्रकार का भी अस्तित्व नहीं उत्पन्न हो सकता यह बुद्ध प्रमाहित कर चुके हैं') नामा बौद्ध अन्तिम यथार्थ का सिद्धान्त।

बेदान्त में 'नेति नेति' पर धोर दिया गया है। माध्यमिक धृत्यतावाद और बेदान्त में काफी समानता है। किन्तु दोनों में अन्तर भी है। बेदान्त एक अनिवार्यतः व्यावहारिक वर्णन है कि बहु-आत्मन् पारलौकिक किन्तु फिर भी शास्त्रतः और सर्वव्यापी है तथा अन्त्यक समय न वेतना की प्रत्येक अवस्था में उसकी अनुभूति होती है। इस प्रकार गौड़पाद के निष्कर्षों के आधार पर बौद्ध विचारधारा के अनुसार, उपनिषदों की पुनर्स्थापना हुई और संकर ने उसे बेदान्तवर्धन का रूप प्रदान किया। बौद्ध और जैन वर्मों से संकर का प्रभावित होना आवश्यक था। सम्भव है कि दोनों वर्म उस समय भी अपने अन्तस्त्वान में भूल-भूल रहे हों। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसाङ् की भारत-यात्रा के समय में महा कौशल महाराष्ट्र और बौद्धों में सत्ताश्रम से जहाँ बौद्धसिद्धि—महायान और हीनमान दोनों सम्प्रदायों को माननेवासे मिली—रहते थे। अमरावती प्राचीनकाल से बौद्धधर्म का केन्द्र था। विख्यात बौद्ध ताकिक विद्वान्ग धात्र के रहनेवाले थे। सुप्रसिद्ध महायान विद्वान् नागार्जुन का नाम भी उस स्थान से सम्बन्ध था जहाँ नागार्जुन कौशान्तुप है। धात्र विस्वास किया जा सकता है कि बौद्ध विचारधारा का ज्ञान संकर को था। अपनी एक टीका में उन्होंने लिखा है 'बाह्य समार की अवधारणा का सिद्धान्त वास्तव में बुद्ध द्वारा प्रतिपादित किया गया था। जब उन्होंने पाया कि उनके कुछ शिष्य बाह्य वस्तुओं के प्रति आसक्त हैं तो उन्होंने शिष्यों की मानसिक दशा का अनुसंधान स्वयं को दास किया किन्तु उनका अपना विचार यह नहीं है। उनका अनुसार तो ज्ञानप्राप्ति ही यथार्थ है। विद्वानों ने 'कमलसूत्र' में सविस्तार लिखित महायान सिद्धान्त तथा संकर की तर्क पद्धति (जिसमें 'पर' और 'अपर' विद्या को अलग-अलग बताया गया है) तथा बोना के पाठ्यों में आश्चर्यजनक समानता पाई है। इस प्रकार परम्परागत धर्म ने बौद्धसिद्धान्त के एक सम्पूर्ण अंश को अपना लिया था। महायान बौद्धधर्म के उत्पन्न का अर्थ है हिन्दुधर्म की गौतम के मरम वर्म पर विजय। भारत की सर्वाधिक प्रसिद्ध और सुविस्तृत वर्णन प्रगासी बेदान्त के जिसने अनुयायी आज भी भारत के चुने हुए व्यक्ति हैं उन्मय का अर्थ है बौद्धधर्म की हिन्दुधर्म पर विजय। फिर क्या आश्चर्य कि संकर की व्याख्या की निन्दा करत हुए रुद्रिवादियों ने कहा था कि यह तो 'अधवेष्टी बौद्धधर्म' है।

साहित्य में उत्कृष्ट निर्मलता और सरसता

बेदाध्यायी शान्ति और मुख्यतः के कारण राष्ट्र की बौद्धिक समता को पूर्ण अभिव्यक्ति समन हो सकी। बुद्धिवादियों में मारे बिगड़ी चर्चों के विरुद्ध ऐसी प्रतिक्रिया

हुई जैसी पहले कभी नहीं हुई थी। मूसामी ईरानी और चीनी समारों के साथ सम्पर्क व फलस्वरूप व्यापारमूर्ति बहुत पहले ही सीधार हो चुकी थी। अब विस्तृत गुणकाम में जब गिट्ट समुदाय के पास काफ़ी समय का काव्य माटन दीर्घिकाव्य तथा प्रेम और माहम की कथाओं का प्रथित उच्छेद हुआ। स्वभावतः प्रेम और माहम का स्थान प्रथम था। भारत के प्राचीन काव्य में न ही यौन के प्रति विरक्ति है और न पात्राधिक बामना। यस्पर प्रेमी-पुष्प के रति-मुग्ध का बचन 'कामसूत्र' के नियमानुसार किया गया है फिर भी यौन भावनाओं का अनिरंजन प्रथम बाहुल्य नहीं है। कामिदास के जिनका जीवनकाल कुछ विद्वानों के अनुसार ४०० से ४७५ ईस्वी के बीच है, महान् काव्या में प्रथम सुन्दर भावों प्रथम में यौन और पाम्प परिवारिक प्रेम का विशेष हल मिलता है। प्रम एक अनुमान और वास्तव का सम्पन्नि है तथा इसके मुख की अनुमति उसी दम्पति को ही मक्नी है जिनके 'वास' को परास्त किया है। कामिदास के काव्य में ही हम भरी विरह-प्रथा (रति और कामदेव के विवाह से पहले विधवा द्वारा कामदेव को प्रेम कर देने पर रति की विरह-प्रथा) और प्रथाह्म बाहुल्य (वर्षा की बृहद्-वृद्ध के साथ सम्पूर्ण विरह में वामनेवासी अपनी प्रिया के लिए वन की घातुपत्ता) का बचन भी हम मिलता है। सचम्पादी और सचमिद्विजयक फिर भी मरम और यौन उन्माह-वामाज्य प्रम ही कामिदास के काव्य का मुख्य विषय है।

कामिदास का 'कुमारगम्भ' वायव्य मरुत का मर्षोन्मृष्ट काव्य है। इसमें विस्तृत यौन दृष्टि-गुणम गिर और उमा का ध्वज विष प्रकट है। मिष-मम्यता के प्राचीन समय में जब माहमजोवहो में चुनिया पम्प का 'टोपों' निमित्त किया गया था उगी समय में गिर भारतीय योगी के मूर्तिमान प्रतीक है। गुणकाम में बौद्ध विष्णु और मूर्ति बान के प्रभाव से गिर की मूर्ति की निमलता और प्रथित शक्तिमान हो उठी। 'कुमार गम्भ' में शिवभावा गया है कि गिर देवनाद वृद्ध के नीचे माग्नीम बँट है—वायु की अनुगम्भिनि में प्रथम। बिना पानी के बारम और बिना पत्तन की भीष के गमान गिर वनम और कामदेव के धाममन व बारम प्रवृत्ति की प्रथामपि उन्मत्तता का उन्मत्त भी प्राप्त नहीं है।

उसी वामन कनु के पुत्रों की प्रथा पहले हुए यौन्यमयी उमा उनकी पुत्रा वरम धारी है। वह गिर के वरमा पर पून प्रणि करम व वरमान प्रथम वरतो है। गिर बने धामीरार देव है 'धन्यप्रथम' परिपयजुर्गति। उमा धन्यप्रिनी में उम कम्प व बीजा की एक भावा (पुत्रवर्धीवामा) गिर की प्रणि करमा है। धिर भावा का रवीवार करम हो वार है कि प्रम व देवता वामदेव धाने धन्य पर वाम वडाकर धारत है तथा वाम प्रिमका लव कभी वृषता नहीं। गिर की हुता गतिर ति उन्मी है जैव वडाकर के समय गम्भीर मायम में हम्पा-मा वरमन जाता है। उन्मी धाने एक धा का उमा के दिग्धक-म माव माड जाग पर टरगा है। उमा की धमप्रता भी धवत हो जाती है। उमा धुव धोडा धार उन् जागा है और धाने में गिराव धा जाता है। गिर लवम धन पर निवंधन वरम है देवता है कि धर वरम वामदेव का है और धाना यौनता में गानकर उमे धम कर देव है।

काम की पत्नी रति अपने पति की मृत्यु पर विलसकर रोती है और अपने पति के शव के माथ धिता में बसने का निश्चय करने बसत से धिता तैयार करने को कहती है। उमा उलम्बन में पड़ जाती है। उम बड़ी धम धाती है। वह अपने सौंदर्य की निशा करती है। वह अपने सौंदर्य को पल्लवप्रद बगान के सिध सप करने का निश्चय करती है। ऐसा तप जैसा किसी योगी ने भी कभी न किया हा। अनन्तर पति के अनन्तर प्रेम की प्राप्ति का और क्या हथ हो सकता है? शीघ्र शत्रु में वह अपने चारों ओर अग्नि बसाती है और जीवन दाता मृग की आशंका करती है। बर्षा शत्रु में वह नगे पत्थर पर झटती है और पानी से भीजती है। अपनी बिजली की चमक से रात्रि उसे ऊपर से देखती है। शीत शत्रु में वह बर्फ से पानी में लकी रहती है। बर्फ से लकी हुआ उसके शरीर को बर्फ के पानी से ढँक बेनी है। किन्तु अपने तप से उसे स्वयं बर्षा नष्ट नहीं है। जो बकबाक पक्षी अचंरी रात में एक-दूसरे से बिजुब जान पर कबगा स्वर में परस्पर पुकारते हैं तो उमा को उनपर हवा धाती है। अंत में योगी देवता शिव देखते हैं कि तप तपस्या से उमा का कोमल शरीर नष्ट होता जा रहा है तो वे उसे स्वीकार करने का निश्चय करते हैं। उमा के प्रेम की परीक्षा के लिए वे छपबेरा में उनके पास आकर विवाह प्रस्ताव रखते हैं। 'इनी शत्रु से हे मुन्वरी मैं मुन्वारा शत्रु हूँ' अश्वमेध कहते हैं और उमा उमा की स्वयं धामोचित कष्ट की बधन मिट जाती है—अम के फलीभूत होने से उस ऐसा धामोचित होने लगा मानो उसने किसी प्रकार का कष्ट कभी उठाया ही न हो। तब सपत्नि पाते हैं और विवाह निश्चित करते हैं।

शिव और उमा अखिल ब्रह्माण्ड के देवता और देवी हैं। शिव का समय 'प्रत्यम' और 'प्रकृति' का संयोग है ('रघुवधम्' ११ ५६) और उमा का काम है ब्रह्माण्ड के रचना बिधान मनुष्यजाति और उनके धर्म की परम्परा को बनाए रखना। शिव और उमा का तप ही उनके विवाह और पारिवारिक जीवन का आधार है। वैवाहिक मुक्त से पहले के देवी तप द्वारा ही मानवीय धर्म और विवाह के आगच्छ निश्चित होते हैं। भारतीय घर और परिवार की निर्माता शक्तियों की पवित्रता का विश्व वर्णन 'कुमारमम्ब' में है। शिव और उमा के संयोग के पल्लव रूप युद्ध-देवता कार्तिकेय का जन्म होता है जो तारक नामक शत्रु के उपश्रवों से संसार की रक्षा करते हैं।

प्रेमासक्ति बनाम वैवाहिक प्रेम

भारतीय संस्कृति में गामात्रिक कर्तव्यों से अग्रत प्रेमासक्ति को सर्वत्र निम्ननीय ठहराया गया है। कालिदास के दोनों महान नाटकों—'शाकुन्तल' और 'विजयोर्वशीर्य'—में अग्रत आकर्षक धर्मी में कामना तथा मुक्त प्रेम और तत्पराय विभोय तथा पीड़ा को कथानक बनाया गया है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में प्रमी और प्रमिका का बिच्छोह विविध परिस्थितियों में होता है। अग्रत धर्मपूर्वक वे आपत्तियों को बहल करते हैं। शिव के पल्लव रूप उनकी धाम्ना परिशुद्ध हो उठती है। उनके पूर्ण संयोग के प्रतीक-रूप एक बध्न का जन्म होता है। तब कही आकर शोना विवाह-बन्धन में बंध पाते हैं। नाटक में जब दुग्धस्त शाकुन्तला को प्रसीकार कर देता है तो शार्ङ्गरथ शाकुन्तला की धर्मना करता है। 'अमावसा' से ऐसी ही मुसीबतें घाती हैं। प्रम के गले में दूरी शाकुन्तला के

कष्टमध्युन होन पर अभिमानी और महाशर्षा बुवासा का साथ बाण्डव में बन्ध्या कष्ट का विचार भूमकर प्रथम में ठूली रहनेवासी नासिका के प्रति समान की कथा चिन्तु पावप्रद भक्तता का प्रतीक है। इसी प्रकार 'विश्वमार्गदीय' में उबसी का जगन का साथ समान की कठोर निम्ना का प्रतीक है। पुत्रकाक प्रथम में ठूली उबसी स्वयं म म की स्वर्णर के समय नृप करन गुणस्वय का जगन भय जाती है कि 'नृपका' हृदय का स्वाधी कीन है ? पूष ज्ञान पर 'पुदयोनम' ब्रह्म व स्थान पर उलग बना है 'पुत्रका'। जनों नायकों में जगन बुवासा और जगन के साथ पर श्री ब्रह्मण्ड का उदयान हाता है। 'कृमारमम्ब' में उमा का उन्मूल्य पीवन या निव की कामना में म काई की इव-पुत्र का संयोग नहीं करा सकते। उनके विचार को धाउपक जनों हैं विजय और परिवर्तन। 'शाकुन्तल' और 'विश्वमार्गदीय' में जब पीछा की पक्ष्या का मरन करन व पक्ष्या प्रथम की तीव्रता और भारकता समान हा जाती है, सभी प्रती गता तथा नासिका विविध की छाया और संभावनाम् के रूप में बीर बावक भग्न छपका अपूर्व के साथ पुनर्दिन्य और स्वाधी मुख व निग सैयार हो पाते हैं।

मुञ्जनाम में पक्ष के समय में लपकविचार—जिसकी माथी बाका की छायाएं होती थीं—ब्रह्मण्ड का। मुञ्जनाम में स्वका जगन निम्ना हा गता वा और कामिनाम में इस प्रकार की मल और बाधनाम्ब कायकित को बड़ दृष्टा म निम्ना की। 'शाकुन्तल' में कामिनाम न मिला है

भन मर्यादय कनस्य विदपाप्यगण एव।

अत्राउहृदयवर्धन बीरीनवनि भीहृदम्॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम् १ ३१)

मकुन्तला और उबसी के कुन्तों का बाण्डव अपिकान्त उम्हियर है भन एन बमठक में कपाक के विचार पर निर्वन्धन रत्नबान अत्राविक और अत्राव नाय के समान नाग लेते हैं। यह नायकीय युक्ति भूरिपिरीड और वास्मविषय में 'अन' बाकी युक्ति के समान है। 'मणिप' में बाण्डव अथवा बीरी नहीं मन्ना हा सकता। कामिनाम की माय पर बाधारित एव विषयवासी धरणा—'अन अथवा 'अन'—पर विचार है फिर भी व भावकीय दुर्भाव अथवा दुःख के बाण्डव में पने मानक को नहीं मानत। यही नायक है कि उनके नायका का समान के स्वर्णर नायका म मना जाता है।

भारत की साहित्यिक परम्परा के अनुसार, मण्डुन कथाओं में सर्वप्रथम नायकता है मार नायकों में सबसेष्ठ 'अभिज्ञानशाकुन्तल' है, 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में सर्वप्रथम नृप धक है तथा इन धक में सबसेष्ठ है वह जगन विमये ज्ञापि नायक धनकी पावित पूर्ण का विना करत है। इस धन में बाधम के जनों और मनाओं की मिष्ट छकुन्तला म सम्य समय तक वाया-नाया वा बह्यजगनमृति और कोमलता को व्यक्त किया गया है धक उमा हृदय के दृष्टार व निग प्रमाण करने समय शकुन्तला उनस विदा मना है ना के मित्रता और समरण की माधना में मुक्त भात है। जनों पक्षियों और वपुषा ममी के बदलों से धनु भरणे हैं माता शकुन्तला के भाषी दुर्भाव के प्रति उनमें एक अनदानी

काम की पत्नी रति अपने पति की मृत्यु पर बिभक्षकर रोती है और अपने पति के शव के साथ बिता में जलने का निश्चय करके बर्तन से बिता तैयार करने को कहती है। उमा उत्पन्न में पड़ जाती है। उसे बड़ी शर्म आती है। वह अपने सीधर्म की निंदा करती है। वह अपने मोक्ष के फलप्रव ब्रह्मा के लिए तप करने का निश्चय करती है। ऐसा तप र्जसा किन्नी योगी ने भी नहीं किया हो। अनन्तर पति के अनन्तर प्रेम की प्राप्ति का और क्या ढंग हो सकता है? श्रीप्य ऋतु में वह अपने चारोंघोरअग्नि जमाती है और जीवन दाता सूर्य की ओर देखती है। वर्षा ऋतु में वह नये फलपर लेटती है और पानी से भीगती है। अपनी बिजली की जगह से राजि उस ऊपर न देखती है। शीत ऋतु में वह बर्फसे पानी न पड़ी रहती है। बर्फनी हवा उसके शरीर को बर्फ के गामों से ढँक देती है। किन्तु अपने तप से उसे स्वयं कोई कष्ट नहीं है। दो बरुबाक पसी धबरी रात में एक-दूसरे से बिबुध जाने पर कबल स्वर में परस्पर पुकारते हैं तो उमा को उनपर बसा आती है। धंत में योगी देवता गिब देखते हैं कि इस तपस्या से उमा का कोमल शरीर मट्ट होता जा रहा है। तो वे उसे स्वीकार करने का निर्णय करते हैं। उमा के प्रेम की परीक्षा के लिए वे छप्रवेरा न उसके पास जाकर बिबाह प्रस्ताव रखते हैं। इसी क्षण से हे सुन्दरी मैं तुम्हारा दाम हूँ। अद्वयकर कहते हैं और तत्काल उमा की स्वयं आयोजित कष्ट की बक्रान मिट जाती है—धम के फलीमूल होने न उसे ऐसा आभास होने सवा मानो उसने किसी प्रकार का कष्ट कभी उठाया ही न हो। तब सज्जि आठे हैं और बिबाह निश्चित करते हैं।

सिब और उमा अक्षिप्त ब्रह्माण्ड के देवता और देवी हैं। बिनका संयोग 'प्रत्यय' और 'प्रकृति' का संयोग है ('गुणधाम् ११ ५१) और उसका काम है ब्रह्माण्ड के रचना विधान मनुष्यजानि और उनके बर्म की परम्परा को बनाए रखना। सिब और उमा का तप ही उनके बिबाह और पारिवारिक जीवन का आधार है। वैवाहिक धुल से पहले के देवी तप द्वारा ही मानवीय धर्म और बिबाह के मानव्य निश्चित होते हैं। भारतीय घर और परिवार की निर्माता छलियाँ की पवित्रता का बिबल बर्नन 'कुमारसम्मब' में है। गिब और उमा के संयोग के फलस्वरूप युद्ध-देवता कातिकेय का जन्म हुआ है जो ठारक नामध दानव के उपद्रवों से संसार की रक्षा करते हैं।

प्रमासक्ति बनाम वैवाहिक प्रेम

भारतीय संस्कृति न आमात्रिब कठब्यों से श्रुत प्रमासक्ति को शरैब भिन्दनीब उठरामा गया है। नामिधाम के दोनों महान मानकों—'आश्रुतस' और 'बिबमोर्बधीय'—न ध्ययन्त आकपक लमी न बामना तथा गुप्त प्रेम और तपुपराय बिधाय तथा पीड़ा को कबानक बनाया गया है। अत्रिजानसाकुत्तस' में प्रेमी और धमिका का बिबोइ बिबिब परिस्परिनी में हागा है। ध्ययन्त धर्मपूवक के आपतिता को बहन करते हैं बिनके फलम्बरूप उमकी आत्माएँ परिशुद्ध हा उठनी हैं। उनक पूर्ण उपयोग के प्रनीक-स्वरूप एव बन्ने का जन्म होना है। तब कही जाकर दोनों बिबाह-बन्धन में बंध पात है। नाटक में जब ध्ययन्त राहुत्तसा को अस्वीकार कर देता है तो धार्जूरब राहुत्तसा की भर्मेना करता है। मगाबबानी से ऐनी ही मुनीबलें आती हैं। प्रेम के गले में बूबी धकुत्तसा के

कठम्यभ्युत होने पर अभिमानही और महाक्रोधी दुर्वासा का घाप वास्तव में कठम्य कर्तव्य का विचार भूलकर प्रेम में डूबी रहनेवासी नायिका के प्रति समाज की कठोर विनियोग साधन प्रत्यक्षता का प्रतीक है। इसी प्रकार 'विजयमोक्षनीय' में उन्नीसवीं की प्रेम का घाप समाज की कठोर विनियोग का प्रतीक है। पुष्करवा के प्रेम में डूबी उन्नीसवीं स्वयं में 'मन्मथी स्वयंभर' के समय नृत्य करते हुए स्वयं का इतना भूल जाती है कि मुष्कारे हुएप का स्वामी जान है ? पूछे जाने पर 'पुरुषोत्तम' कहने के स्थान पर उत्तर देती है 'पुष्करवा'। दोनों नाटका में कथ्य दुर्वासा और भरत के नाया पर ही कथानय का उद्घाटन होता है। 'कृमारमण्डप' में उन्नीसवीं का उल्लुभित यौवन या शिख की वागवा मने कोई भी देख-पुगन का संभाव नहीं करा सकते। उनके विवाह की आवश्यकता नहीं है किन्तु और परिवर्तन। 'साकुन्तल' और 'विजयमोक्षनीय' में जब पौड़ा की मन्त्रणा की मन्त्र कर्त के पक्षान् प्रेम की तीव्रता और नादकता समाप्त हो जाती है तभी प्रती राधा तथा नायिका कविप्रिय की भागा और संभावना के रूप में और नायक भरत अथवा प्रभुम् के माय पुनर्मिलन और स्वासी मुख के लिए तैयार हो जाते हैं।

गुप्तकाल से पहले के समय में नवविवाह—विमकी गान्धी आवास की आन्तर्गत होती थी—कथानिक या। गुप्तकाल में इसका समान मिलना या राजा का और कानिदाम में इस प्रकार की गुप्त और कानिदामक आन्तर्गत की कथ्य राजा में निर्या की। 'साकुन्तल' में कानिदाम में निर्या है।

अतः समीक्ष्य कलम्य विद्यापत्नमन रह।

अज्ञातहृदयेष्वनं बरीनपति सीहुरम् ॥

(अभिज्ञानसाकुन्तलम् ५, २५)

मकुन्तला और उन्नीसवीं के दुःखों का दायित्व अधिकारित उन्नीसवीं है अतः घाप वास्तव में कथानय के विकास पर नियन्त्रण रखनेवाले अग्रभाषित और अज्ञात माय्य का समान भाग लेते हैं। यह नाटकीय मुक्ति यूरिपिडीय और रोससिपर में प्रत्यक्ष बानी कुन्ति के समान है। इसलिए इस बाह्य अथवा दैवी मही समान का शक्ति। कानिदाम को माय्य पर आधारित एक विनियोगापी व्यवस्था—'अज्ञ' अथवा 'अज्ञ'—पर विनियोग है फिर भी वे मानवीय दुर्भाग्य अथवा दुःख के दायित्व से परे मानव को मही मानते। मही कारण है कि उनके नाटका को संसार के सर्वोत्कृष्ट नाटकों में माना जाता है।

भारत की साहित्यिक परम्परा के अनुसार, सम्पूर्ण कलाओं में सर्वश्रेष्ठ नाट्यकला है, घारे नाटकों में सर्वश्रेष्ठ अभिज्ञानसाकुन्तल है 'अभिज्ञानसाकुन्तल' में सर्वश्रेष्ठ चतुर्थ अंक है तथा इस अंक में सर्वश्रेष्ठ है वह अंश जिसमें अज्ञि कथ्य अपनी पोषित पुत्री को बिदा करते हैं। इस अंश में आभय के अज्ञों और लताओं की बिन्हे सकुन्तला ने लम्बे समय तक पाला-पोसा का महान् सहानुभूति और कोमलता को व्यक्त किया गया है जब राजा दुष्यन्त के दरबार के लिए प्रस्थान करते समय सकुन्तला उनसे बिदा लेती है तो वे निवृत्ता और समर्पण की भावना से भुक्त जाते हैं। कृता पक्षियों और पशुओं सभी के लपटों से अंधु अछूते हैं मानो सकुन्तला के मात्री दुर्भाग्य के प्रति उनमें एक प्रवर्तनी

आकुसुता भर उठी हो किन्तु सकुसुता अन्ततः भागवी है और जगका हृदय यौवनमय प्रेम से पूरित है इसलिये वह अपने भावी पुर्णाय की कल्पना तक नहीं कर पाती। जंगमी हिरन उसके बन्ध का कोना पकड़कर उसे सीटाने का प्रयत्न करता है उसके पीछे पीड़ना हुआ बहुत दूर तक जाता है, भावी वह सकुसुता के प्रारम्भ में लिखित मशगला को न होने देना चाहता हो। सकुसुता की भावी यंत्रणा के विचार में हुआ चक्रवाक पक्षी अपनी सापीन की पुकार का कोई उत्तर नहीं देता। इसपर माया खोर से चीखती है। यह मामो उस वृक्ष का पूर्वाभास है जब वृक्ष पर सकुसुता की किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ता तो वह दरबार में ही बिलाप करने लगती है। सकुसुता अपने प्रेम में इस सीमा तक दूबी है कि किसी चेतावनी पर उसका ध्यान नहीं जाता किन्तु उसकी सखियों—विशेषरूप से प्रियम्बदा की चेतना का स्पर्श मादा चक्रवाक की चीख कर संती है। मानवीय ममत्त्वनिर्मा और आत्मन के बूला पशुधर्म तथा अन्य वस्तुधर्म की परस्पर प्रक्रिया को आधार बनाकर कालिदास की काव्य-नवेचना में सबीब और निर्बीब पक्षों में गहनतम ऐक्य का सूचन किया है जो बिम्ब-साहित्य में अनुकूलनीय है। और प्राकृतिक वृक्ष में धुल-मिलकर एक हो जाने वाली इन अत्यन्त तीव्र और कल्याणक मानवीय परिस्थिति की पट्टिका पर श्रुति कव्य का विवेकशील सौम्य गंभीर व्यक्तित्व सबसे असंग उभरता है।

भारतीय आदर्श प्रेमासक्ति नहीं बरन् गम्भीर, स्थायी और अंतरंग वैवाहिक मुक्त है। कालिदास और भवभूति (जो सातवीं शताब्दी ईस्वी में जीवित थे) दोनों ने रामायण में बलिष्ठ रामचन्द्र और सीता के वैवाहिक प्रेम के प्राचीन महाकालक को अपनी हृदयों का आधार बनाया है। किन्तु भवभूति ने सप्रथम इस प्रेम के कष्टपूरित मार्ग को नाटक का रूप दिया। उनके 'उत्तररामचरित' की विशेषताएं हैं तीव्र पीड़ा और नाटकीय स्थितियों का कुशल प्रजन। इस प्रभाव के उत्पादन के लिए कभी-कभी नाटककार को मूल महाकाव्य की कहानी से अलग भी होना पड़ा है। प्रथम अंक के एक दृश्य में सीता को वन जीवन की घटनाओं के चित्र दिखाए जाते हैं तो वह वकान और चिन्ता के कारण सो जाती है—यह इस वैवाहिक प्रेम की गम्भीरता और पवित्रता का स्पष्टतम प्रकट है। कालिदास का जीवन गुप्तवंश के स्वर्णयुग में बीता और वे प्रेम की सुखानुभूति के कोमलता का वर्णन करने में अद्वितीय थे। इसके विपरीत भवभूति का जीवन इतने वैभववासी युग में नहीं बीता तथा उन्हें कप्रीय की राजनीतिक उलझ-पुलझ का अनुभव हुआ अतः उनमें कालिदास से अधिक गहराई, धोख तथा भावना की परिपक्वता है। भवभूति का कथन है 'कोई रहस्यमय आन्तरिक बंधन वस्तुओं को एकत्र करता है। निश्चय ही प्रेम बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करता। सूर्योदय होते ही बंधन कमजोर पड़ता है। सीतल चक्रवाक के उदय के साथ-साथ चंद्रकाण्टमणि पिघल जाती है। कालिदास और भवभूति दोनों राम और सीता की कहानी में वैवाहिक त्याग गौरव और सहनशीलता के आदर्श को सफलतापूर्वक चित्रित कर सके हैं। राम ने केवल अपनी प्रजा की इच्छा के लिए अपने प्रेम और करुणा पर ध्यान न देकर सीता का त्याग कर दिया—सीता के भाव्य की गंभीर पीड़ा का प्रजन भी दोनों कवियों ने उत्तम रूप से किया है। किन्तु भवभूति ने निरसिंह कालिदास से अधिक गंभीर तथा प्रीति अनुभव है जिसकी अभिव्यक्ति अनेकाहुत अधिक प्रांमत्व तथा

व्याख्या अधिक गूढ़ है। इस प्रकार भवभूति ने एक प्राचीन कथा को एक सामान्य भारतीय के दैनिक अनुभव का माध्यम प्रदान किया। विद्युत् के समान मिश्रण और कसिका के समान कोमल सोवोत्तर गरित महाकाव्य के बिसास और दीर्घपूष रगत्यन्ती से नीच उगारकर सामान्य गहर मानवा के स्तर पर आ जात है और उन्हींके समान तीव्र प्रकाश और कष्ट भोगने है।

गुप्तकालीन साहित्य का विस्तार

दूसरी दिशाओं में भी भारतीय साहित्य का विकास इन सीमा तक हुआ कि विद्यालक्ष ने 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक लिखा जिसमें प्रेम का स्थान तक नहीं है किन्तु राजनीति—सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रति भक्ति—मनव्याप्त है। कामिधान ने अपने नाटक 'मायविक्रान्तिनिव' में भाव सीमित और कविपुत्र जैसे पूर्ववर्ती प्रसिद्ध साहित्यकारों का बिड़ किया है। भाव के सुप्रसिद्ध नाटकों में से एक का नाम है 'बासुदत्त'। इसका कथानक बही है जो विष्णुनाटक मृच्छकटिक का है और कामिधान से बहुत पहले इसका प्रतिनय हुआ था। गुप्त और और बेर्याएं इन नाटकों के पात्र हैं किन्तु फिर भी जीवना के बीच प्रच्छाई और मानवता तथा जीवन की प्राथियों और सामसाधों के बीच सौम्य प्रेम और विश्वसनीयता के दर्शन होते हैं। सम्राट् गुप्तकाल 'मृच्छकटिक' जैसे मनेशनलीस पदार्थवादी नाटक का प्रतिनय एक ग्रीक और मुरशिन मयता नहीं समझ पा। यह नाटक 'कृपा के लिए कृपा' का एक उत्कृष्ट उदाहरण है और फिर भी भारत की विवेकशीलता और निर्ममता इनमें परिलक्ष्य है। इनके अनिर्दिष्ट गुणाग्रहण बृहत्कला में अनेक प्राप्तान हैं, जिसकी रचना रामायण पहली या दूसरी गंगाघाटी ईस्वी में हुई थी। इन प्राप्तानों में नाटकों लुटेरों बदमाशों और बेस्वार्थों द्वारा राजाओं और देवताओं तक के ठगे जाने की अभिव्यक्ति बटमाएँ गयी पड़ी है। फिर बन्धी बुबन्ध और राज के काल्पनिक प्राप्तान हैं। इनमें अस्मर नैतिकता को तो बसाए ठाक में रक्त दिया जाता है किन्तु बेरना को नहीं। अममम किन्तु मनोब्राही भूगताओं और साहित्यिक कृत्यों का प्रसार है इन प्राप्तानों में।

सम्राट् हर्ष (६०६-६४७ ईस्वी)—कृत 'रत्नावली' और राजसंवरकृत 'अनुरमजरी' (जिसकी रचना मनी घाग्री के अन्त में हुई थी) इन दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं कि उनमें 'कामोत्सव' मयुत्सव भवता 'अमृतोत्सव' के विषय वर्णन है। अयोध्या पर बैठे कामदेव की पूजा की गई और बुद्ध की बड़े के पान कामदेव के तथाकथित भवतार प्रसन्न को बिठा दिया गया। स्थियों ने तब अग्रज केशर और पूज्य कामदेव को अगित किए और फिर कामदेव अग्रज सखी का अमृतोत्सव एक माह तक अमनेबावे शताब्दियों के बीच कामदेव अग्रज सखी का अमृतोत्सव एक माह तक अमनेबावे पार्वर्तिक अमृतोत्सव 'भीरी' में मिल गया और भी बाह में इस उत्सव ने 'होमी' का रूप धारण कर लिया। रत्नावली के अमृतोत्सव का वर्णन पढ़कर आपुनिक अमृतोत्सव होमी में आते जानेवाले रंग-धारी की याद आती है।

इसी युग के एक अत्यप्रसिद्ध किन्तु अस्थ कवि थे वल्लभट्टि। मंसरी में एक

विकास मूल-महिर की राज-संज्ञा वहाँ व रेसमी कपड़ा के बुनकर-सब ने की थी और परम्परा में एक अभिषेक (४७१-४७४ ईस्वी) सिद्ध था। उन्होंने उपमा और रूपक का उपयोग परम्परा की भाँति से किया और उनका अभिषेक अष्ट काम्य के स्तर तक पहुँचता है। वेदम-बुनकर अपनी कला में पारंगत तो थे ही उन्हें अनुबिधा ज्योतिष प्राचीन कथाओं और वासिष्ठ शास्त्रार्थ में वधि भी और के युद्ध में भी भाग सहे थे। मय सम्पत्ति प्रामी और समुद्र का तथा राजाओं द्वारा सम्मानित था। उनके सबसे भीतिक वस्तुओं की मरकरता को मयसते से और बर्मनिष्ठ थे। अभिषेक में वरापुर नगर का परवन्त प्राचपक बनन है।

जीवन के आनन्द और आकर्षण की कृति में साहित्य की अनेक विधाओं के प्रति रिक्त विचकता मगीत और नृत्य का भी हाथ था। मयूर, माध और अनू हरि सातवीं शताब्दी के महत्त्वपूर्ण गीतिकवि थे। ये कवि प्रेम के विभिन्न रूपों का विस्तार और प्रोज पूर्ण वर्णन करते थे। इनके पश्चात् आठवीं शताब्दी में एक और विस्मात कवि अमर हुए। 'मामविक्रान्तिमित्र' में तो एक नृत्य प्रतियोगिता भी आयोजित है तथा एक मापन में तो नृत्यकला को सम्पूर्ण कलाओं में सर्वोत्कृष्ट बताया गया है। गुप्तकाल में ही (हीनरी-बीवी शताब्दी ईस्वी में) 'कामंडकीय नीतिसार' की रचना हुई। भबभुति और वल्ली ने इसका डिङ किया है। इसमें राज्य और प्रशासनविधि-सम्बन्धी कौटिल्य परम्परा को आगे बढ़ाया गया है तथा अपने सामान्य सिद्धांतों और सूत्रों के कारण नीति शास्त्र में इसका उच्चस्थान है। इस ग्रन्थ का ब्रह्म प्रसार हुआ और यह वाणिज्यीय तन्त्रों का पट्टा जहाँ के निवासी नीतिशास्त्र और कामंडकीय दोनों से परिचित थे। कुछ विद्वानों के अनुसार 'कामंडकीय नीतिसार' के रचयिता के अन्तर्गुप्त द्वितीय विजयनाथ के प्रधानमंत्री शिवरस्वामी।

विस्तृत पुस्तकालय की स्वच्छन्दता मुख्यतः तथा जीवन विचार और सक्रियता का उत्कृष्ट तत्कालीन अद्वितीय साहित्य में गहरी भाँति परिलक्षित है। विदेशी सांस्कृतिक प्रभावों का प्रभाव गण्य है और नाटक में रोमांच को छोड़कर किसी अन्य साहित्यिक विधा में विद्रोह नहीं पड़ता। विदेशी प्रभावों के प्रति भारत की प्रतिरक्षा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है पुस्तकालय भूतिकला और विचकता में एक राष्ट्रीय दैमी का विकास। इनका अध्ययन बाध में किसी अध्ययन में किया जाएगा।

विज्ञान की उपसङ्घिया

विज्ञान के क्षेत्र में अक्षय्य भूगोली संचार के अर्थों का सुन्दर हुआ। मगध ११ ईस्वी में बराहमिहिर ने अपनी कृति 'ब्रह्मसिद्धांतिका' में दो ऐसे विज्ञानों को सम्मिलित किया है जिनके नाम विदेशी हैं। ये हैं 'रोमक' जो रोम से सम्बन्धित है और घायर मिन्दरिया से यहाँ आया था और पौलिज जिसका उद्भव सम्भवतः पौलिज एमेकन गिनुम से हुआ है। बराहमिहिर, आर्यभट्ट तथा बाद के गणितज्ञों के ज्योतिष और गणित के विज्ञानों में भूगोली विचारों का परम्परा अक्षा प्रभाव पड़ा। यही पर एक बार फिर भारत की भौतिकता का पता चलता है। भारत ने यद्यपि विदेशी प्रभावों को ग्रहण किया

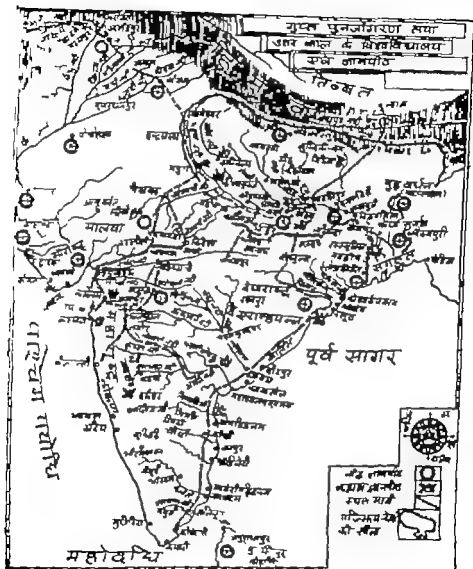
किन्तु इसके बावजूद ज्योतिष, बीजगणित और ज्यामिति की अपनी प्रगतिवादी का विकास किया तथा इन प्रगतिवादीय धारणों में प्रवेश करने के पश्चात् 'परिचयी' समाज को प्रभावित किया। चापमट्ट (४०६-४६६ ईस्वी) इस काल के महान गणितज्ञ थे। उन्होंने घूर्णन और दायमण्ड का प्रयोग किया, ब्रह्मगुप्त और ब्रह्मगुप्त निकाम तथा विमान समीकरणों को हल किया। ब्रह्मगुप्त के बिना उन्होंने ग्रहों की स्थितियाँ और गणितों की काफी हद तक गूढ़ गणना की। हर्ष के शासन-काल में जीवित ब्रह्मगुप्त भी धारण समाज के संबंधित ज्योतिषी गणितज्ञ थे। उन्होंने ब्रह्मगुप्त-विज्ञान का प्रतिपादन किया था जो बाद में गूटन के नियम के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उनकी मृत्यु के बाद एक राजाजी के भीतर ब्रह्मगुप्त के समीका संस्करण में उनके विज्ञान को ब्रह्मगुप्त भगवान् उद्धृत करती प्रस्तावित किया।

गुप्तकाल में चिकित्साविद्या का भी काफी विकास हुआ। ई-मिहिर के अनुसार बड़े नगरी और कस्बों में चारमियों और पदार्थों के अध्ययन से तथा सामान्य चिकित्साविद्या में चिकित्साविद्या का अध्ययन सभी के लिए अनिवार्य था। चीनी यात्री ई-मिहिर ने लिखा है कि चिकित्साका का चिकित्साविद्या की बात लाया था का ज्ञान था और वे उन्हें काम में लाते थे। वे लाया था (१) बाहरी और भीतरी काह (२) वर्ण में ऊपर की बीमारियाँ (३) बदन से नीचे की प्रवाह्य गारीयिक व्याधियाँ (४) दुष्प्रमाणों के साक्ष्य से उत्पन्न वैज्ञानिक व्याधियाँ (५) अग्रे प्रोपिया पर्याप्त विरों का उपचार करनेवाली प्रोपिया (६) भ्रूणविकास से लेकर मातृ वर की प्रवृत्ति तक बालों की व्याधियाँ (७) जीवन-अवधि ब्रह्मगुप्त के उपाय और (८) शरीर को चिकित्सक के उपाय। चीनी यात्री का कथन है कि इन बातों परास्त्रों में निपुण वैद्य मरकारों की प्रोपिया करके सामान्य से अपनी जीविका चला सक्ता है। ई-मिहिर ने वर्ण लाह से हागत और फोड़ को बीरों की विधियाँ की बात भी लिखी है। चिकित्साविद्या का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'नवनीलकण्ठ' की रचना गुप्तकाल में हुई। इसमें पहले के प्रमुख मुद्रित ग्रन्थों—'चरकसंहिता', 'सुसुतसंहिता' और 'नेरसंहिता'—से काफी सामग्री ली गई है। 'नवनीलकण्ठ' की एक हस्तलिखित मुद्रितान में मिली थी। गुप्तकाल में ही ज्ञानियों की बीमारियों के विषय में एक ग्रन्थ पालकाम्यकृत 'हृन्ध्यानुषंग' की रचना हुई।

ब्रह्मगुप्त के अनुसार चिकित्सक सामान्य प्रथम सभी के सामानिक मात्र न थे बल्कि समाज और आनुविज्ञान के महान वैज्ञानिक भी थे। भारतीय वैज्ञानिकों और कारीगरों ने आनुविज्ञान में विषय योग्यता प्राप्त कर ली थी। 'महा एक उच्छ्र' उदाहरण है दिल्ली के चिकित्सक 'जीह्मसुख' से छोड़े को बच से मुरारिज बराना। गुप्तकाल के 'सूत्र' बरहमिहिर थे। वे ब्रह्मगुप्त-साहस से लेकर ज्योतिष और आनुविज्ञान से लेकर निम्न जीवितारिष तक सभी विज्ञानों और कलाओं ('विज्ञानाय विद्या') के प्रकाश विज्ञान थे। उनका मुद्रित ग्रन्थ 'ब्रह्मसंहिता' विज्ञान और कला का एक विश्वकोष है और है वैज्ञानिक बुद्धि और तत्परता का सुविमान प्रतीक।

सार्वभौम और शास्त्रसुत की खोज

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तकाल में संस्थासुत पर और देनवास बौद्धधर्म में एक सांसारिक और संस्थासुत धर्म का रूप धारण कर लिया। सभी धर्मों और सम्प्रदायों में भक्तिभाव का प्रसार हुआ। विदेशों के साथ व्यापार, उपनिवेशीकरण और सम्पर्क में वृद्धि हुई, एक बहुराष्ट्रीय व्यापारीबल के उदय के कारण आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आया और सबसे बढ़कर एक राष्ट्रीय संस्कृति तथा आक्रमणकारियों व बहुराष्ट्रीय समुदायों के विरुद्ध संघर्ष के प्रतीक एक सभितसाली साम्राज्य की स्थापना हुई और वह सुरुद्ध बना। इस सारी परिस्थितियों की अनुकूलता के कारण साहित्य तथा समितकला दोनों में 'परम्पराओं' और रीतियों की स्पष्ट परिभाषा की गई तथा भारत में एक 'कलासिद्धि' कला का युग आरम्भ हुआ। गुप्तकाल अनिवार्यतः ऐसा काल था जब भारतवासी जीवन के सभी क्षेत्रों में शास्त्रसुत और असूत में उन्नति भर सका। गुप्तकालीन भारत में सार्वभौमिकता के लिए विशेष प्रयास किए गए। सार्वभौम सम्प्रदाय और सार्वभौमिक संस्कृति पर आधारित राज्य का सिद्धांत (जिनके साथ धर्मसुत का राजनीतिक प्रसार और ऐक्य सम्बद्ध था) सार्वभौम मानव और सार्वभौम समाज के धार्मिक सिद्धांत सभी धर्मों और सम्प्रदायों में मानव-सृष्टि की मसीहाई आद्या वर्णन में सार्वभौम सिद्धांतों और विचारों का स्पष्टीकरण विज्ञान का फलप्रद विकास साहित्य कला और मूर्तिकला में बसासि सिद्धि 'वर्णसुत' और 'वर्णसुत' के सिद्धांत तथा विदेशियों की नवीन वर्ण के रूप में स्वीकृति तथा कानूनी और व्यावहारिक दृष्टि से वर्ण भेद का खमन ऐसे ही प्रयास थे। यह है गुप्त संस्कृति का भारत के लिए कालातीत उत्तराधिकार। यह तो यह है कि भारतीय इतिहास के उस स्वर्णयुग का पदचाल जब तक भारत की विचारधारा और संस्थासुत का बिंदु को धारण करने का काम इसी उत्तराधिकार में किया है।



बौद्ध विश्वविद्यालयों में जीवन-यापन और विद्याध्ययन

बुद्ध के चरण-चिह्नों पर एक यात्री का पश्चिम की ओर प्रस्थान

६२३ ईस्वी की बात है। चीन के गुप्तविद्य प्राचीन नगर काइ-सन में बड़ा पाषाण शताब्दियों पहले काश्मीर, कुछ और कासगर के भारतीय भिक्षुओं ने बौद्धमठों की स्थापना की थी एक नवयुवक चीनी विद्यार्थी को बौद्ध भिक्षु बनाया गया। इस वीरवर्षीय सम्मे और मुख्य नवयुवक के बड़े भाई को पहले ही दीक्षित किया जा चुका था। कुछ वर्षों तक वह बौद्धपर्यव्रत्तो का अध्ययन करने के उद्देश्य से चीन के प्रमुख मठों का भ्रमण करता रहा। फिर अपने मन में 'पश्चिमी देश' के उन सभी पवित्रस्थलों को देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी जो बुद्ध धर्मयुग के जीवन से सम्बन्धित थे। कुछ दिनों के बाद ही प्रवृत्ति उत्पन्न होगी जो बुद्ध धर्मयुग के जीवन से सम्बन्धित थे। कुछ दिनों के बाद ही प्रवृत्ति उत्पन्न होगी जो बुद्ध धर्मयुग के जीवन से सम्बन्धित थे।

पढ़ा—प्रायः उसकी यात्रा विश्वविख्यात है। चीन के तत्कालीन सम्राट् ताई-मिन्ह (६२७-६४९ ईस्वी) नेसा और साहित्य के महान सरदार थे। उन्होंने मध्य एशिया पर अपनी विजययात्रा तक भारत नहीं की थी और ६४३ ईस्वी में उन्होंने भारत के सम्राट् ह्वेन-सांग (६०९-६४७ ईस्वी) के दरबार में अपना राजदूत भेजा था। चीन के सम्राट् ह्वेन-सांग ने बुद्ध-भिक्षु को इस यात्रा की आज्ञा दी थी कि 'पश्चिमी देश' के रास्ते में घनेक लगे थे। किन्तु भिक्षु ने सम्राट् की आज्ञा पर कोई ध्यान न दिया। अपने भाई के चट्टानी चारे रेगिस्तान के लहरों को पार किया सीमा के चीनी पहरेदारों की मदद के पदास्त करके बच निकला दिन में छिपकर और रात में घाये बड़े हुए अपनी यात्रा जारी रखी तथा प्राचीन कारवां-मार्ग पर पड़नवाल प्रमुख नगरिस्तानी नगरों—तुलहाइ, तरफन, करगहूर और कुछ—में विमान किया। इन नगरों में वह यह देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ कि लोग अत्यन्त निष्ठापूर्वक प्रवर्तित बर्तन बौद्धधर्म का पालन करते थे। यहां की उच्च संस्कृति की शैलिक सम्पन्नता में भी उसे प्रभावित किया। वह घनेक सामरिक कृपा के बाद उसने बमियान में हिन्दूगुफ पार किया। पश्चिमी देश की यात्रा जारी रखते हुए वह कान्जुस नदी की घाटी में पहुँचा। राह में कपिध सम्पन्न गंधार और तक्षशिला में उसे सैकड़ों मष्ट भष्ट स्तूप और मठ मिले जहाँ नेबल दो सदियों पून रहेत हूँ न बौद्धधर्मी कुपाय-सम्पत्ता का निनाश किया था। धारुम-जहाँ से हूण-सम्राट् निहिरगुल ने अपने बर्बर सैनिकों को उत्तरी भारत पर सूरभार करने को भेजा था—होते हुए वह उपजाऊ पंजा-यमुना के दोषाव पहुँचा और जहाँ से भी पूर्व की ओर बढ़ता गया।

नासन्दा विद्वद्विद्यालय

बड़े पुस्तकालय या लाइब्रेरी। उसने प्रत्येक व्यक्ति की मेरी पूर्ण, चेतावनी के उत्तर में केवल इतना कहा था कि यात्रा के समस्त खर्चों के बावजूद बीठबर्म की पवित्र भूमि के दर्शन की मेरी उत्कण्ठ इच्छा है। 'आप समझ सकते हैं कि मेरे भीतर बुद्ध के नियम को स्वयं जाकर खोजने और प्राचीन स्मारकों को देखने की इच्छा प्रबल है ताकि मैं अत्यन्त यत्नापूर्वक उनके चरणचिह्नों पर चमकूँ।' आश्चर्यचकित, मगध में बुद्ध के जीवन और उपदेशों से सम्बन्ध विख्यात स्मरकों की यात्रा करने के बाद बीनी मिस्र-यात्री ६५३ ईस्वी में बीठ नगर नामन्दा पहुँचा। बीनी घाटाभी में काश्मिर की नासन्दा घाया या वह समझकर कि मरिचक का जन्म और परिनिर्वाण वही हुआ था। ज्ञानसाह ने लिखा है कि नासन्दा विद्वद्विद्यालय के संस्थापकों में से दो थे चण्डाक्षिप (जो बाद में कुमारगुप्त ४१६-४५३ ईस्वी) और बुद्धगुप्त (४७३-५०० ईस्वी)। विख्यात सम्राट्म की मुहूर्ततापूर्वक प्रशंसित मीनारों उनके धनेकाग्रेष्ठ वस्त्र और हस्तिका तथा बनेक मन्दिर-कला 'आकाश की बुँब से ऊपर उठे माधूम पड़ते थे। वह इतना ऊँचा था कि 'बादलों पर हवा का जन्म देता जा सकता था।' भठों के ईर्ष्य निम्न नीचे पानी का एक माता टेडा-मेडा बहता था। फूल हुए नीलकमल के पुष्पों से नाला और भी अधिक सुन्दर लगता था। मन्दिर के भीतर सुन्दर कलिकाट वृक्ष चमकदार सुनहरे पुष्पों से लभे थे और बाहर धाम के बगीचों की बनी छाया में छुटियाए थीं। ज्ञानसाह के जीवनोत्प्रेरक ने घावे निराला है। भारत में घाव हज़ारों मठ हैं किन्तु इन मठ के समान सौम्य मण्डप और ऊँची इमारतें कहीं नहीं हैं। भीतर और बाहर दोनों मिसाकर अत्यन्त बस हज़ार धर्मार्थी हैं और सभी महात्मा मित्रान्त के अनुयायी हैं। घाटाओं मध्याह्न के अनुयायी यहाँ एकत्र हैं और वेद जैसे लोकप्रिय ग्रन्थों से लेकर चिकित्साविद्या तर्कविद्या तथा गणित के ग्रन्थों का पठन-पाठन यहाँ होता है। मठ के भीतर ही सब प्रतिदिन लोगों से भरे रहते थे और विद्यार्थी एक साथ भी मठ में करके अपने गुरुओं के प्रश्नों के ध्यान पूर्वक सुनते थे। 'इन सब महावाणी व्यक्तिओं के बीच स्वभावतः जीवन कठोर और धर्मोपर अनुष्ठानन म कहा था। यही कारण है कि मठ के मात ही मात के मन्त्र जीवन काम में एक भी व्यक्ति ने अनुष्ठानन के नियमों का उल्लंघन नहीं किया है। मगध मठ का सम्मान करते हैं और इसका मुख्य समस्त है। मठ के विभूतियों के जीवनयापन के लिए उन्होंने भी भगवान की धाम इस भू के लिए प्रसंग रण थी है। दो ही परिवार प्रतिदिन कई ही मन चाकस तथा प्रभुर माता में यज्ञम और पूज वहाँ सेकते हैं। अतः विद्यार्थी विन्नीस कुछ मांगते नहीं क्योंकि उन्हें जीवन की बार धावदक वस्तु धामानी से प्राप्त हो जाती है। प्रप्यपन में उनकी प्रगति तथा पवित्रता यज्ञमता मगध की उदारता का परिणाम है।

बीठ सिद्धास को ज्ञानसाह का अध्यापन

एक ही छः वर्षीय गीतमय विन्ही 'ममनिधि' कहा जाता था उस समय नासन्दा के कुम्पति थे। उन्हींके धिप्यस्व में ज्ञानसाह ने महापानधन का अध्ययन किया। यह

महान् विद्वत्विद्यालयों के पूर्वकुलपति धर्मपाल के सिष्य थे धर्मपाल की मृत्यु लगभग १६० ईस्वी में हुई। और धर्मपाल ने जो काशीपुर के निवासी थे अपना ज्ञान मुनिसिद्ध तार्किक दिग्गज से प्राप्त किया था। इन कारण ज्ञानपाद् इनका जीवनसाथी था कि नामन्त्रा में उनके महापति के निरपेक्ष आदर्शवाद का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया। उनके जीवनी लेखक ने लिखा है 'धर्म के परिणाम में मार्गार्थ के शब्दों का अध्ययन किया था। उनके प्रतिरिक्त उन्हें योगाचार का सम्पूर्ण ज्ञान था। उनका विचार था कि इन शब्दों के पर्यायारी रचनाओं में धर्म अपने धर्म विचारों का अनुसरण किया था और वे परस्पर विरोध में भी न थे। उनका कथन था कि उन ज्ञान में पूर्ण मार्गज्ञान नहीं स्थापित किया जा सकता तो इसका धर्म यह नहीं है कि वे परस्पर विरोधी हैं। विरोध प्रदर्शित करने का प्रयत्न स्विकारी नहीं करते हैं। इस प्रकार के विचार-वैविध्य का धर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

नामन्त्रा में अपने जीव विचारों के परचाद् ज्ञानपाद् ने अपने इन विज्ञान मान्यतासिद्धि की रचना की। हमें योगाचार के मुख्यधर्मों का संक्षेप और उनसे टीका है। हमने बभ्रुवन्तु की दो अन्य हस्तियों का अनुवाद किया। ये हस्तियाँ थी 'सम्मानविर्मम नास्त' (१६१ ईस्वी) और 'विश्विक प्रकरण' (१६१ ईस्वी)। धर्म और बभ्रुवन्तु द्वारा प्रतिपादित आदर्शवादी धर्म के आधार पर हमने स्वयं एक नवीन जीव विचार का विकास किया। हम दर्शन प्रणाली में जीव दर्शन के विकास पर बड़ा प्रभाव डाला। जीव में इसे नाम दिया गया 'का-हस्याद्' (धर्मज्ञान)। इन विचारधारा के अनुसार धर्म के सभी धर्म धर्मार्थ हैं। मन्त्रा वचन है 'वचना धर्मोत्तम' 'आनन्दविज्ञान'। यही विश्वास है। जीव में का-हस्याद् और आपात में इनकी सहयोगी 'होस्मो' ही ऐसी जीव विचार प्रणालियाँ हैं जो आज तक नहीं जीवित हैं। ज्ञानपाद् को एक अन्य विचार-प्रणाली 'क्यु-यो' (कोय) का जन्म कहा गया है। इस नाम का उद्भव बभ्रुवन्तु के विचारों से 'अनिर्णय कोय' के नाम पर हुआ है। ज्ञानपाद् के आध्यात्मिक विचारों का प्रारम्भ बभ्रुवन्तु के इन विचारों से हुआ था। आपात में इन प्रणाली को 'कुम' कहा जाता है। एक तीसरी प्रणाली 'न्यू' (विनय) का जन्म भी ज्ञानपाद् और उसके जीव सिष्य तापो-स्वयान का माना गया है। इस विचार प्रणाली का प्रसार आपात में हुआ और वही इसे 'उयोल्तु' कहा जाता है। इन विचारधारा में धर्म-निर्माण और निरन्तर के लिए धर्म-अनुष्ठान को आवश्यक माना गया है। इसी स्वयं पर निर्भर है कि नव-कल्पवृक्षधारी दक्षत पर भी 'विज्ञान वाद' के सिद्धांता का धर्म प्रभाव पड़ा था।

ज्ञानपाद् सातह वर्ष तक भारत में रहा। पाँच वर्ष तक अपने नामन्त्रा में रहकर नामन्त्रा में विद्वत् जीव विज्ञानों के अध्यापन में अध्ययन किया। दोपहर वर्षों में हमने अपनी दक्षिणी और पश्चिमी भारत के विभिन्न ज्ञान-केंद्रों—जन्म से कामरुन और कारपीर से काशी तक—का भ्रमण किया। कारपीर के भारतीय मिश्रक-वासी कुमारजीव के समान ज्ञानपाद् ने भी पूर्वी देशों में जीव जन्म तथा भारतीय संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया। कुमारजीव संस्कृत और जीव दोनों भाषाओं के प्रकाश विद्वान् थे। सिस्तेन बेरी ने लिखा है 'कुमारजीव सम्भवतः अष्टम धनुषाक्षक व और उन्होंने

भारतीय बौद्धधर्म की आत्मा तथा कृतियों को भीम पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण काम किया।” ज्ञानसाहू भी चीनी व सरहट्टा भाषाओं का ज्ञाता था। उसे ब्राह्मण व बौद्धधर्मों तथा कल्पसूत्रियसंवादियों के सिद्धान्तग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान था। वह भारतीय व चीनी ध्वजना में अंतर-सम्बन्धस्थापक सर्वव्यापक चीनी अनुवादक था। भारत में ज्ञानसाहू को दो संस्कृत नाम मिले—महायानवादियों द्वारा ‘महायानाथेन’ हीनयानवादियों द्वारा ‘मोक्षानाथ’।

नालन्दा का विनाश

६४६ ईस्वी में ह्वेनसाहू और ह्यु का मायास्कार प्रयाग में हुआ। इसके केवल तीन वर्ष पश्चात् (६४७ ईस्वी में) ह्यु की मृत्यु हो गई और उनकी मृत्यु के बाद तत्काल उत्तरी भारत में गृहयुद्ध छिड़ गया जिसके फलस्वरूप बुद्धिमान भारतीय-चीनी सांस्कृतिक आदान प्रदान क्षीय ही समाप्त हो गया। इस गृहयुद्ध से मुक्तकामीन पुनरुत्थान का प्रसंग हुआ तथा आन्तरिक घुट और दुर्क-अफगान आक्रमण व सूटमार का सुत्रपात हुआ। ज्ञानसाहू को एक रात एक विचित्र स्वप्न में यह भासूम हो गया था। उसने देखा कि वह नामन्दा संधाराम में पहुँच गया है। (किन्तु) कोठरिया खाली और निर्जन थीं। प्रायण गन्दे और कुत्तोत्पादक थे। वहाँ जैसे बन्धी थी। वहाँ न मिलाक वे न उनके शिष्य। ज्ञानसाहू ने नीचे प्रवेश किया और देखा कि एक प्रांगण के ऊपर चौबीस बज्जिन पर एक स्वयम्भूत व्यक्ति कड़ा है और उसके गम्भीर, कठोर मुख से वक्राक्षीय करनवासा प्रकाश घुट रहा है। वह व्यक्ति का बोधित्व मनुष्यी। व ह्वासे से ज्ञानसाहू को मिलन की ओर एक विद्यास अग्नि दिखा रहे थे अग्नि को नगरो और कस्बों का विनाश कर रही थी। उसने हर्ष की असामयिक मृत्यु तथा देश पर बिगनेवासी विपत्तियाँ की बहिष्मवादी की। चीनी मिश्रक ने जिस विद्यास अग्निकांड की पूर्वसूचना थी वो दुर्क-अफगान-आक्रमण के समय मगी थी और जिसने पूष ने सर्वाधिक विख्यात विद्वद्विद्यालय को मिट्टी में मिला दिया। अपनी वास्तुकला और मूर्तिकला गुप्त के आश्चर्यजनक कार्यों तथा मध्यएशिया चीन और समुद्रपार के भारतीय उपनिवेशों के विद्याचार्यों के बाबजूद नामन्दा के भ्रम में यही था कि वह सुनसान और जनविहीन बन जाए—और गांधवासी उसमें अपने डोर बांध कर। फिर भी नालन्दा का वैभववासी और कमप्रद अस्तित्व कम से कम घाट खतामिया तक रहा यह महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय ज्ञान के परम्परागत विभाग

चैन धार्मिकग्रन्था—‘जन्दी’ और ‘अनुयोगदार’ (‘अनुयोगदार’)—में ज्ञान विज्ञान की निम्नलिखित शीर्षक प्राप्ताएँ बताई गई हैं। सूची का प्रारम्भ ‘भारतम्’ (महाभारत) और ‘रामायणम्’ से होता है। तब ‘कोशित्तमम्’ (कौटिल्य का ‘अर्थशास्त्र’) ‘प्राज्ञमृद्म्’ (वात्स्यायन के पूर्ववर्ती घोटनमुखकृत ‘कामसूत्र’) ‘वैसमियम्’ (वैशेषिक दर्शन) ‘बुद्धसासनम्’ (बुद्ध का सिद्धान्त) ‘काचित्तम्’ (कपिल का दर्शन) ‘सोपायतम्’ (‘भोकायत’ शीतिकवाद का दर्शन) पुराण व्याकरण (वायसम्) ‘आगबयम्’ (मागधत

प्रथम) 'पातञ्जली' (पतञ्जलि) यथित (यथितम्) माटक (माटयार्ह माटकानि) के नाम लिए गए हैं। फिर अन्य में 'अंगो' और 'उपागा' सहित चारों वेदों के नाम हैं।

समस्त समय तक जंगलों के आश्रम भारतमणिगा और ज्ञान के केन्द्र रहे थे। उत्तरी यमापाटी के जमा के आश्रमों में मुख्य उपनिषदों और ब्राह्मणों की रचना हुई थी। बौद्ध और जैन दोनों का प्रसार होने पर उनके सिद्धि भी गहरा और बसा मे दूर आश्रमों में विद्याभ्यास देने लगे। मुख्य दार्शनिक और धार्मिक विद्या के युगों में मकीम बौद्धिक आन्ध्रान्त के प्रसार समस्त व पयटक सिद्धि और विद्याओं की यात्राएं तथा कथिया के आश्रमों की विद्या गताओं के साथ सामान्य के दृष्टिकोणों में आयोजित आन्ध्रान्त। सम्पूर्ण ब्राह्मण-माहिष्य बौद्ध कीम 'अर्थशास्त्र' 'मिथिलपत्र' और 'वाल्मीकी' में 'नदीधर्म' मिलनी है। वैदिकोत्तर युग से प्रचलित ज्ञान की परम्परागत विभिन्न शाखाएं थी (१) आन्धी तनी विमम साक्ष्य मोम (बौद्धिक) और लोकेशन जल दान गम्भिरिय से (२) जमी अक्षान बगाए सहित तीनों वेद (३) जिवानी अर्थात् कृषि पशुपालन और व्यापार में सम्मिलित जीवन मनाए (४) दण्डीति अर्थात् राजनीति। महाभारत की एक सूची में अध्ययन के निम्न विषय दिए गए हैं। अष्टांग आयुर्वेद (वीरचविज्ञान तथा उसकी शाखा शाखाएं) श्रमर सामवेद यजुर्वेद अथर्ववेद सप्तसामानि इतिहास उपवेद अथवा सात प्रकार की सामी साम स्तुतिपात्र विभिन्न प्रकार का भाषासाहित्य भाष्य (भाष्यानि तर्कपुस्तकानि) नाटक काव्य और कलाव्यापिका (२ ७ २२)।

वीरच-बुद्धमूल (१ ७ ७-८) के अनुसार ज्ञान के परम्परागत स्तर से (१) ब्राह्मण अर्थात् वह व्यक्ति जिसने उपनयन तथा ब्रह्मचर्याश्रम के पञ्चान ब्र का किचित् अध्ययन किया है (२) मोक्षि अर्थात् वह व्यक्ति जिसने वैदिक शाखा का अध्ययन किया है (३) अनुजान अर्थात् वह व्यक्ति जिसने 'अंग' का अध्ययन किया है (४) कृषिकर अर्थात् वह व्यक्ति जिसने 'अर्थ' का अध्ययन किया है (५) भूय अर्थात् वह व्यक्ति जिसने जून और प्रजनन का अध्ययन किया है (६) कृषि अर्थात् वह व्यक्ति जिसने चारों वेदों का अध्ययन किया है (७) देव अर्थात् वह व्यक्ति जो उपर्युक्त सभी भाग बड़ गया है।

सकनीची कलाएं

बौद्धधर्म में दर्शन पर कोर ली बिधा ही गया था कला-कौशल। वीरचमास्त्र और अन्य-चिकित्सा पर भी ब्रह्म व्यास दिया गया। पूर्व में धनर कलाश्रितों तक लगभग विरचविद्यालय ज्ञान का सर्वांगिक प्रतिष्ठ कन्त्र था। वीरचमास्त्र दार्शनिक-चिकित्सा तथा विभिन्न तकनीकी कलाओं (जिसमें बुद्धकला भी सम्मिलित है) का अध्ययन विद्यार्थी से होता था। दूर और पास से विद्यार्थी बड़ी पढ़ने आते थे। बौद्धधर्म के प्रसार के कालखण्ड प्रभावा बीमारों और अर्थर व्यक्तियों के प्रति साधनों बसा और कदवा धार्मिक हार्म की। इन कारण वेद में पशुशास्त्रों और अस्पताओं की सकृप धनिक होगई। प्याहल (४ १-४११ ईस्वी) ने पाटलिपुत्र के अस्पताओं के बारे में लिखा है "साधना और नापरिकों के गहर में अनेक अस्पताएं स्थापित किए हैं, जिनमें सभी रोगों के यरीब निराकरण

अपग और बीमार व्यक्तिओं का इलाज होता है। उन्हें प्रत्येक सहायता निःशुल्क प्राप्त होती है। बीच उनकी बीमारियों की जांच करते हैं और उनकी दवा के अनुसार खान-पान धोपनि और पेय का आदेश देते हैं। वहाँ बीमारों की मलाई के लिए प्रत्येक संभव प्रयत्न किया जाता है। अच्छे हो जाने पर लोग अपनी सुविधा से चले जाते हैं।

‘अमिठबिस्तार’ में ६४ कलाओं के इतिहासिक गानवतावादी शिक्षा के निम्नलिखित भग गिनाए गए हैं (१) गणना (‘यमबाय’ में गणितम्) धर्मगणित (२) सख्या (धर्म-विज्ञान) (३) वेद (४) इतिहास (५) पुराण (६) निषष्टु (कोपरचनाशास्त्र) (७) निबन्ध (अष्टध्यात्मि) (८) निगम (व्यक्त धर्मग्रन्थ) (९) शिक्षा (स्वरक्षास्त्र) (१०) अन्न (अष्टध्यात्मि) (११) ज्योतिष (१२) व्याकरण (१३) यज्ञकर्म (यज्ञ विधान के तहत ‘कर्मसूत्र’) (१४) सांख्य (१५) योग (१६) वैद्यिक (१७) वैद्यिक (एक प्रकार का दशन) (१८) बार्हस्पत्य (बृहस्पति का दशन) बार्हिक धर्मवा लोकायत धर्म) (१९) हेतुविद्या (न्यायदर्शन) (२०) धर्मविद्या धर्मवा आनीकज्ञानम् (धर्म शास्त्र) (२१) काव्य (२२) धर्मरचितम् (संनम-कला) (२३) आस्थातम् (कथा कहने की कला) (२४) हास्यम् (विनोद-कला)।

लगभग दूसरी छताब्दी ईसापूर्व य लिखित ‘निमित्तपञ्च’ के अनुसार अध्ययन के विषय वे चारों वेद इतिहास पुराण कोपरचनाशास्त्र अष्टध्यात्मि स्वरविज्ञान व्याकरण अष्टध्यात्मि ज्योतिष न्याय तथा छह वेदाय श्रुतों स्वर्णों और सक्षणों की व्याख्या धर्मवेदों के आगमन विज्ञानी ग्रंथों के योग उल्पापाठ भुक्त्य दावानत तथा आकाश और पृथ्वी के मजलों की व्याख्या सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों अक्षगणित और धर्मप्रचारविद्या का अध्ययन तथा कुत्तों हिरनों और बूढ़ों इत्यादि के मिश्र पक्षियों के स्वरो और पुकारा द्वारा श्रुतों का धर्म ज्ञान (४ ३ २६)।

चिकित्साविद्या के अध्ययन में निम्नलिखित बातें सिखाई जाती थी—प्रत्येक बीमारी को पहचानने तथा बढ़ी-बूटिया के आचार पर उनका उपचार करने के सिद्धान्त धर्मचिकित्सा में बमन कराने पेट का मल बाहर निकालने और पुष्टा हाट तसीब धोपनि आमाशय में बढ़ाने की विद्या नीरज खेत्ने धर्मवा खेद करने भीतर की बीजों को बाहर निकालने पाव माफ करने व उन्हें मुझान लीबे और बर्द करनेवाले मनुष्यों का उपचार करने और वागने में आघरेधन के बीजार को ठीक-ठीक साबने का प्रघिक्षण। ई-रिष्ट न भिक्षा है कि चिकित्साविद्या का आरम्भिक अध्ययन सभी के लिए अनिवार्य था वहाँ तक कि शिशुओं के लिए भी। इस विचार के पक्ष में उसने धपना मत दिया है ‘क्या यह दु खद मही है कि बीमारी के कारण कोई व्यक्ति धपने कर्तव्य धर्मवा व्यवसाय में पुरुष-तत्पर न हो सके? क्या यह माधमक नहीं कि चिकित्साविद्या का अध्ययन करने के पदवान् मोय अपम तथा दुगरी के काम धा सके?’

मानन्दा में जीवन और अध्ययन का कार्यक्रम

इनसाफ और ई-रिष्ट बीजा बीजा याबी सतबी छताब्दी ईस्वी में अनेक बयों तक विख्यात मानन्दा विद्वानिवालय में रहे थे। उन्होंने गविस्तार भिक्षा है कि वही शिक्षा

के विषय क्या वे अध्यापन किस प्रकार दिया जाता था और वहाँ रहनेवालों का दैनिक कामकाज क्या था। निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण उन्हींके विवरणों पर आधारित है। ह्येनसाह के समय में नालन्दा में कुल १० ००० विद्यार्थी थे और २ ५१० गिराह। विश्व विद्यालय में चीन औरिया मंगोलिया जापान तिब्बत मोघर और पूर्वी द्वीपसमूह से विद्यार्थी आते थे। इनके वे अपने सम्बन्ध नाम भी रख लिए थे जिसके बारे में ह्येनसाह ने लिखा है। चीन से चीन के औरिया से आयवालों को नौबर से बोधिसत्व। भारत के प्रत्येक भाग से सर्वाधिक सुदृढ़मान व्यक्ति आनेवाले महाशय पहुँचते थे। प्रत्येक नये विद्यार्थी को एक परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता था। यह परीक्षा विभिन्न वर्गों के विद्यार्थी द्वारा भी होती थी। बिदेसा के प्रवेशार्थी विद्यार्थियों में से अधिकतर को परीक्षा के प्रश्न इनके कठिन मचते थे कि वे स्वयं अपना भाग आपन लें मते थे किन्तु प्राचीन और नवीन विद्यालयों में पारम्परिक व्यवस्थाओं को प्रवेश मिल जाता था। हम में से केवल दो या तीन व्यक्ति मफूज होते थे। नालन्दा के सभी विद्यार्थी महाशय तथा महाशयों सम्प्रदायों के वर्गों का अध्ययन करते थे। और केवल इनका ही नहीं किन्तु सामान्य वर्गों जैसे वेद तथा अन्य ग्रंथ हेतुविद्या धर्मविद्या विविधविद्या इन्द्रजाल ग्रन्थ या अथर्ववेद और साक्य का अध्ययन भी सभी को करना पड़ता था। इनके अनिश्चित वे अन्य विभिन्न वर्गों का भी पारायण करने थे। बौद्ध विश्वविद्यालय जिनमें भी दत्ता में बौद्ध ज्ञान विज्ञान तक सीमित न थे। धार्मिक और लौकिक शास्त्रों और बौद्ध-ज्ञान की सभी शाखाओं का अध्ययन समीरतापूर्वक किया जाता था।

होनों कोनी विद्वानों ने सामान्य और आरम्भिक शिक्षा का विवरण भी दिया है जिसके बाद ही विद्यार्थी मठों में उच्च अध्ययन कर सकते थे। बज्ज द्वा वर्ग की व्यवस्था में पठन शुरू करते थे। पहली पुस्तक का नाम था 'सिद्धिर्गु' ('आत्मक के प्रवर्तन सफल हों') जिसमें वर्तमान के ४१ अक्षर दिए गए थे। पाणिनि-सूत्र जिसमें १००० सूत्र थे दूसरी पुस्तक थी। छठ वर्ष की अवस्था में आत्मक इसका अध्ययन आरम्भ करते थे और छठ महीने में कटस्थ कर लेते थे। फिर 'आहु' और 'कालिकावृत्ति' का अध्ययन होता था। व्याकरण के साथ ज्ञान प्राप्ति का आरम्भ होता था। सम्पूर्ण ज्ञान को पाँच विद्याओं में विभाजित किया गया था (१) धर्मविद्या (व्याकरण और कोषरचनाशास्त्र), (२) चित्तस्थानविद्या (विभिन्न जलाएँ) (३) विविधविद्या (४) हेतुविद्या (तर्कशास्त्र) और (५) अध्यात्मविद्या (यशस्व)।

विश्वविद्यालयों के द्वार सबके लिए खुले थे। जो लोग मिथुन बनने के पाकांती न थे किन्तु विद्याध्ययन करना चाहते थे 'मानव' धर्मका 'व्यवहार' कहलाते थे। उन्हें अपना भोजनभक्ष्य स्वयं बहल करना पड़ता था या फिर वे विश्वविद्यालय के लिए धारी-रिक्त धर्म करते थे। विश्वविद्यालय में कार्यक्रम का नियमन 'कर्मवर्ग' नामक एक अधिकारी द्वारा होता था। वही नियंत्रण करता था कि किस विद्यार्थी को क्या काम करना पड़ेगा। किसी न किसी विषय में विशेष योग्यता प्रमाणित करने पर ही धारीरिक्त धर्म से मुक्ति मिल जाती थी। दूसरी ओर मठ-निवासी विद्यार्थियों को मठ की ओर से भोजन और वस्त्र मिलते थे। वे बस्तुएँ स्वदेयी थीं और धर्मरूप हलपर आताओं के बिह्व बने

होते थे। विनय-नियमों के अनुसार मित्रियों के लिए अनस्पर्श ब्रजित था। उपहारों के पसन्दस्वरूप विद्वद्विद्यालयों के पास विपुल सम्पत्ति थी। इसी सम्पत्ति के बल पर वे अपने विद्यार्थियों की निःशुल्क शिक्षा तथा भोजन वस्त्र बिस्तर और चिकित्सा का प्रबन्ध कर पाते थे। उदाहरणतः 'अनेक पीढ़ियों के राजाधों द्वारा दान दिया गया' विद्यालय भू माग तथा 'दो गो से अधिक गाव' मासन्दा विद्वद्विद्यालयों के पास थे। इस भूमि पर मठ के जागृकों द्वारा ही खेती की जाती थी जसका 'बिहारपाल' नामक अधिकारियों के निरीक्षण से दूसरे समित्त खेती करते थे। विनय के नियमों के अनुसार मित्र-विद्यार्थी अपने लिए खेती के जोतने-बोतने का काम नहीं कर सकते थे किन्तु 'बिहार' के लिए वे ऐसा कर सकते थे। पाण्डित्यियों की प्रतिभितियाँ तैयार करने के लिए पारिधमिकस्वरूप अक्षर विद्वद्विद्यालयों को हीरे उदाहरण मिला करते थे। भोजन इस प्रकार होता था प्रातः चावस का पानी दोपहर में चावस मक्खन दूध फल और मीठ तरबूज और शाम को हलका खाना।

महाभूमि में अध्ययन करनेवाले मित्र विद्यार्थियों की निम्नलिखित श्रेणियाँ थी (१) धम्मतर (निम्नतम श्रेणी) (२) बहुर (मधुमिक्षु) (३) स्वबिर (४) उपाध्याय और (५) वल्लभुत (उच्चतम श्रेणी)।

ई-गिण्ट के शब्दों का प्रयोग किया जाए तो इन मध्ययुगीन विद्वद्विद्यालयों में 'समी सम्मभ और असम्मभ सिद्धान्तों का अध्यापन और प्रतिपादन किया जाता था। विद्वद्विद्यालया में मठ-वैमिन्त्य की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। यह इस अमर निदान का स्पष्ट प्रमाण है—और वर्णन के क्षेत्र में इने भारत में बहुत पहले स्वीकार कर लिया था—कि सत्य की खोज की प्रथम अनिवार्य शर्त है स्वतन्त्रता। शिष्टक और विद्यार्थी समानस्तर से प्राज्ञगर्भन वीक्ष्यमर्भ और ज्ञानगर्भ तथा उनके विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के बारे में विचार-विमर्श और आलोचना प्रत्यालोचना करते थे। अध्ययन और विवाद में बिन बड़ी बस्ती बीत जाता था छात्रे और बड़े सभी दिन रात एक-दूसरे की गमतिमा बताते थे और इस प्रकार परस्पर सबका विकास करते थे। 'जब किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठि एक ऊँचे स्तर पर पहुँच जाती है तो वह आस्वाय के लिए एक सभा का सम्मोजन करता है। आस्वाय में भाग लेनेवाले व्यक्तियों की योग्यता की जाँच करता है और यदि सभा का कोई व्यक्ति अपनी परिष्कृत भाषा सूक्ष्म ध्वन्येन गहराई और अकाठ्य तर्कों द्वारा स्वयं का स्पष्ट निष्ठ करता है तो उस धनकारो से सज्जन एक हाथी पर बिठाकर मठ कक्षाटक तक ले जाया जाता है और उसके प्रधासक पीछे-पीछे चलते हैं। इससे विपरीत यदि कोई व्यक्ति अपना तर्क पूरा नहीं कर पाता अपरिष्कृत भाषा का प्रयोग करता है जसका तर्क सत्य के नियमों का उल्लंघन करना है तो उसपर कीचड़ उछालकर गड में गिरा दिया जाता है।

ममय बनाने के लिए प्रत्येक मठ में जलपाइयाँ थी। प्रत्येक बप्पा पूरा होने पर होम और मरा बजाए जाते थे। बिहार में कार्यकाल प्रतिबिम्ब पाठ बच्चे था। प्रातः और अपराह्न में दो-दो घण्टे तथा मध्याह्न में चार घण्टे काम करना पड़ता था। अनुमासल सम्मग्री सभी कार्यों की द्विमेवारी मित्रुक-विद्यार्थियों पर थी यह एक विशेष बात है। परिष्ठा के आधार पर कमरा का विवरण तथासंघ के प्रति अपराधों की जाँच करने और

होते थे। विनय नियमों के अनुसार भिक्षुओं के लिए वनस्पर्श मजिठ था। उपहारों के फलस्वरूप विस्वविद्यालयों के पास निपुण सम्पत्ति थी। इसी सम्पत्ति के बस पर वे अपने विद्यापिया की निःशुल्क शिक्षा तथा भोजन वस्त्र बिस्तर और चिकित्सा का प्रवन्ध कर पाते थे। उदाहरणतः 'अनेक पीढ़ियों के राजाओं द्वारा दान दिया गया' विद्यालय मुगल तथा 'दो नौ से अधिक गांव' मालवा विस्वविद्यालय के पास था। इस भूमि पर मठ के 'भारत' द्वारा ही भेटी की जाती थी जबकि 'विहारपाल' नामक अधिकारियों के निरीक्षण में दूसरे धर्मिक भेटी करते थे। विनय के नियमों के अनुसार भिक्षु-विद्यार्थी अपने निजामीन का जोतने-बोने का काम नहीं कर सकते थे। किन्तु 'विहार' से लिए वे ऐसा कर सकते थे। पांडुलिपियों की प्रतिनिधियाँ संभालकर लेने के लिए पारिवर्त्मिकस्वरूप अस्तु विस्वविद्यालयों को हीर जवाहरान मिला करते थे। भोजन इस प्रकार होता था 'प्रातः चावल का पानी दोपहर में चावल सबजन कुछ फल और मोठ तरबूज और शाम को हलका खाना।

छात्राश्रमों में अध्ययन करनेवाले भिक्षु-विद्यार्थियों की निम्नलिखित धनियाँ थीं (१) धर्मतर (निम्नतम धर्णी) (२) बहुर (मधु भिक्षु) (३) स्वविर (४) उपाध्याय और (५) बहुभुत (उच्चतम धर्णी)।

ई-लिङ्ग के शब्दों का प्रयोग किया जाए तो इन मध्ययुगीन विस्वविद्यालयों में 'सभी सम्मन्ध और असम्मन्ध सिद्धान्तों का अध्यापन और प्रतिपादन किया जाता था। विस्वविद्यालयों में मत-वैविध्य की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। यह हम धर्मर सिद्धान्त का स्पष्ट प्रमाण है—और वर्तमान के क्षेत्र में हमें भारत ने बहुत पहले स्वीकार कर लिया था—कि सत्य की खोज की प्रथम धर्मिण्य धर्म है स्वतन्त्रता। शिक्षक और विद्यार्थी समानान्तर से आत्मबोध और बौद्धधर्म और जैनधर्म तथा उनके विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के बारे में विचार-विमर्श और आलोचना प्रचालोचना करते थे। 'अध्ययन और विचार में दिन बड़ी बस्ती बीत जाता था छोटे और बड़े सभी दिन रात एक-दूसरे की गतिमा बताते थे और इस प्रकार परस्पर सबका विकास करते थे। 'जब किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठि एक ऊँच स्तर पर पहुँच जाती है तो वह शास्त्रार्थ के लिए एक समा का आयोजन करता है। शास्त्रार्थ में भाग लेनेवाले व्यक्तिओं की साम्यता की जाँच करता है और यदि समा का कोई व्यक्ति अपनी परिष्कृत भाषा सूक्ष्म अन्वेषण महारत और अकाट्य तर्कों द्वारा स्वयं को श्रेष्ठ दिख करता है तो उस अलंकार से मजिठन एक हाथी पर बिठाकर मठ के फाटक तक ले जाया जाता है और उसके प्रसक्त पीछे-पीछे चलते हैं। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति अपनी तर्क पुरा नहीं कर पाता अपरिष्कृत भाषा का प्रयोग करता है जबकि तर्क शास्त्र के नियमों का उल्लंघन करता है तो उसपर कीचड़ उछालकर गड्ढे में गिरा दिया जाता है।

समय बताने के लिए प्रत्येक मठ में जलघड़ियाँ थी। प्रत्येक बप्ता पूरा होने पर होम और सल बजाए जाते थे। विहार में कायकाम प्रतिदिन घाट चले जा। प्रातः और अपराह्न में दो-दो घण्टे तथा मध्याह्न में चार घण्टे काम करना पड़ता था। अनुमासन सम्प्रदायी सभी कार्यों की जिम्मेदारी भिक्षु-विद्यार्थियों पर थी यह एक विशेष बात है। बरिष्ठता के आधार पर कमरा का वितरण तथा समय के प्रति अपराधों की जाँच करने और

दण्ड इस का निषेध सभी विद्वान मिलकर करते थे। विद्यार्थी स्वयं अपना गुणधर्म की व्यक्ति पर मेला करते थे। उदाहरण के लिये तोमिया दान छोड़ने की सीका का प्रबन्ध करना उनके धर्म व्यवस्थित रहना और उनके कमरा में भाइ समाता।

बुद्धोप के 'विमुक्तिमण' में मय की धार्मिक प्रवृत्ति का मुख्य चित्रण है। इसमें धर्म-मय जीवन व्यतीत करनेवाले भिक्षु की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि भिक्षु मुख में विषम करता है तथा कल्पामृत का पान करता है। बुद्धोप का यह विवादी है और उन्होंने श्री श्री गंगाजी ईस्वी के धर्म में धीमेका और धर्मों का धर्मन किया था। 'विमुक्तिमण' की रचना धीमेका से हुई थी और 'म' राज भी धर्मवाद का एक पवित्र पत्र है जो मय से सम्मान प्रदान किया जाता है। मय के धर्म का कर्म निम्न वर्णों पर होने की आज्ञा है—वर्ण विद्यापथ विद्या और धीमेका धर्म पर धारण।

हनुमान्त का विद्योप सम्मान

भारत में धार्मिक और सामाजिक कार्य विचार के धर्म मनुज उदात्ता थी। 'म'का एक स्पष्ट प्रमाण है। मन्नाड-कवि हर्ष दीवादिन्य न राजधानी कधीक में एक विद्यालय धार्मिक धर्मार्थ का आयोजन किया था उसमें हनुमान्त की भी धारण किया। बौद्धिक विज्ञानप्रमाणों की स्थिति के लिए दिया जानेवाला उच्चतम सम्मान मन्नाड न हनुमान्त को प्रदान किया। उन्होंने हनुमान्त को १००० स्वर्ण-मुद्राएं १००० रत्न-मुद्राएं और बहिया सूती कपड़े के १० वर्ष प्रदान किए। उन्होंने एक अधिकारी को आज्ञा दी कि एक बड़े हाथी को मृत्युवाले बस्ती और धामपथा में मगिजन किया जाए और मुमगिन हाथी का गया तो हनुमान्त से उनपर नवारी करम का अनुरोध किया। धर्म में उन्मान अपने धर्म विद्वानों को आज्ञा दी कि वे हनुमान्त के हाथी की छिछोरी से नगर धर्मन करें धोपना करें कि हनुमान्त ने सत्य के विद्वानों का प्रतिपादन करके विविध विद्वान कर दिया है और वे किसी भी विद्वान् द्वारा पराजित नहीं हुए। हनुमान्त को उनकी धार्मिक कृतियों के लिए अष्ट बरसात हुए मन्नाड न उपस्थित भजना से कहा 'कीनी विद्वान ने महापान विद्वान्त का अष्ट प्रतिपादन किया है और सभी विरोधियों की शकाओं का समाधान किया है। अठारह दिन तक उनसे विवाद करने का हक्क एक भी व्यक्ति सामने नहीं आया। ऐसी विजय का समाचार शत्रुके व्यक्ति तक पहुंचना चाहिए।'

हनुमान्त की नील-शापरी के इन वर्ष पश्चात् मानन्द के एक अष्ट विद्वान् धर्म धर्म ने दो स्वैत वर्ष क्वेनसाह का धर्म भेजे कि 'भारत में हनुमान्त को सुनाया नहीं गया। हनुमान्त ने मानप्रभ को पत्र लिखा। इस बीच धीमेका की मृत्यु हो चुकी थी और हनुमान्त ने दोनों देशों के बीच की विद्यालय दूरी का धर्मन भारत धर्म में अपनी धर्मधर्मता प्रकट करने के पश्चात् धीमेका की मृत्यु पर बहुत दुःख प्रकट किया। अपने पत्र में उन्होंने यह भी लिखा था कि धीमे में बौद्धधर्म के प्रसार में समझ बना प्रगति की। यह तीव्र धर्मों का अनुवाद कर चुका था जिसमें वे एक था 'धोपानाधर्मविद्यालय'। उसे आधा भी कि धर्म धर्म 'कोप' (धर्मधर्मधर्म 'धर्मधर्मधर्मधर्मधर्मधर्म') तथा संभवतः 'म्यापानुमार धर्म' का अनुवादका समाधान कर लेता। धीमे के तत्कालीन मन्नाड महान् तादर्थ्य के

एक धार्मिक व्यक्ति ने श्रीर ह्वेनसाङ्ग के काम में पूरी सहायता कर रहे थे। उन्होंने भूमिका स्वयं मिली और अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि प्रश्नों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाया जाए। अपने पत्र के अंत में ह्वेनसाङ्ग ने लिखा कि सिंधु नदी पार करत समय कुछ पवित्र ग्रन्थ को गए थे। इसलिये उनकी एक-एक प्रति मित्रता दी जाए तथा अनुरोध किया कि साथ में भेज जा। रहे बहुत उपहारों को अस्वीकृत न किया जाए।

लगभग दो गी बर्ष पश्चात् एक जापानी बौद्धयात्री भारत आया श्रीर उसने लिखा 'अध्व्यभारत' के अनेक बौद्धमन्दिरों में ह्वेनसाङ्ग को चित्रों में प्रदर्शित किया गया है। वे पटसन के पीछे पहने चम्मच और कानों की लकड़ियाँ लिए हुए रंग-बिरंगे बादलों पर बैठे हैं। प्रत्येक अवसर पर ह्वेनसाङ्ग के चित्र के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं।

ह्वेनसाङ्ग को हमने सुनाया नहीं हमने तो उध बेचतुस्य स्थान प्रदान किया।

बौद्धधर्म के पवित्र देश का परिमोहन

बौद्धधर्म के तीर्थस्वर्गों की यात्रा तथा सत्यधर्म का अध्ययन करने की आकांक्षा से प्रेरित होकर अनेक चीनी भिक्षु, विद्वान् और यात्री कई सताव्वियों के दौरान भारत आए थे किन्तु उनमें से बहुत कम व्यक्ति यात्रा की कठिनाइयों से जीवित बचकर बौद्ध धर्मों और कलाकृतियों सहित चीन वापस पहुंच सके। ई-स्व (६३४-७१३ ईस्वी) ने इसकी होकर लिखा है

कुछ लोग पश्चिम की 'बैंगनी रंग की बाधा' (विद्याल वीबार) को पार करके अकेले चल पड़े। अथर्व बिस्तृत सागर को पार करके बिना समी-साधी यात्रा करने लगे। एक भी व्यक्ति ऐसा न था जिसके बिचार 'पवित्र अक्षेपों' पर केन्द्रित न हो। श्रीर जिसने उनका सम्मान के लिए साष्टांग प्रणाम न किया हो। सभी को आशा थी कि वे वापस आकर अनुपम्यमान के लिए शांसा का संचार करके स्वयं को बहुवर्ण्य का अधिकारी घोषित करेंगे।

"किन्तु हम एक्सपेक्शनी पक्ष पर कठिनाइयों के धम्यार थे। तीर्थ-स्वम बहुत दूर और बिस्तृत थे। इस कठिन काम को पूरा करने की बात सोचनेवाले दर्जनो ने प्रयाग करनेवासे कई थे किन्तु एकाध के ही प्रयासों का कुछ परिणाम होता था। श्रीर काम पूरा करनेवाले तो नहीं ही थे।

इसका कारण है 'हस्तिदेश' (भारत) के बिस्तृत पथरीले रेगिस्तान विद्याल नदियाँ ठेक थूप जो मुसमानेवासी धर्मों की बर्षा करती है। अथर्व भीमकाय मछलियों से भरे मांगरों की ऊँची-ऊँची सहर्षे गहराइयाँ तथा आकाश की ऊँचाइयाँ तक उठने मिरने वाली सहर्षे। 'लौह पट्टका' (ममरकस और बेकिट्टिया के बीच) के पार अरुन वन हज़ार पहाड़ों के बीच अटकना पड़ता है और मार्गों में मिर पड़ने का अवसर रहता है। 'ताम्र लग्ना' (ताङ्-किङ्ग के दक्षिण में) के पार जहाज पर अकेले यात्रा करने पर नदियों के हज़ारों मुहाने मिलते हैं और जल जल का अवसर रहता है। इसी कारण जानबान व्यक्ति तो पक्षम के करीब थे पर सभी अंतरों से बचकर जानेवाले थे केवल इने-मिने लोग।

जियाङ्ग बी-चाओ ने अपने 'चीनी इतिहास का अध्ययन' में भारत की यात्रा करनेवाले प्रारम्भिक चीनी यात्री विद्वानों का सम्पूर्ण और प्रमाणमिद्वि विवरण प्रस्तुत

किया है। उनके निष्कर्षों से ई-लिंक के कथन प्रमाणित होते हैं। अत्यधिक धोम क बाध उन्होंने समयम से ही यात्रियों का पता लगाया जिन्होंने सीसरी और घाटमी शताब्दिया के बीच भारत-यात्रा का प्रयास किया था। पाँचवीं और सातवीं शताब्दियाँ में सबसे अधिक यात्रियों ने प्रयास किया था। इनमें से कम से ४२ यात्री भारत जाने अभ्यसन पूरा करने और तीन बारमपहुचन में सफल हुए। पापम से धर्मिक मध्यम न होमके और ३७ व्यक्ति जान का बापम घाटे हुए रात में मर गए। यात्रा बड़ी मुश्किल थी और उन दिना यात्रा में समनग अपराजेय मुश्किलें सामने आती थी इसलिए टुलने व्यक्तिगत की राह में मृत्यु अभ्यसन न थी। उदाहरण के लिए यू मेन ठार को पार करके वे बाह मा-हो मन मरुमि र्म पहुचने पर ह्वेनसाङ् ने लिया थाच दिन और पार राता से घेने पानी नहीं पिया और मैं इना व्यासा हू कि धार्मिक बहना असम्भव है। किसी भी दान मेरी मृत्यु हो सकती है। मरुमि के घसीम विस्तार में ह्वेनसाङ् तथा अन्य उक्तान यात्रियों को रास्ता बढानासा कोई न था। अस्पष्ट रास्ते के घासपाम पड़ी घासमिया और पशुओं की पुपनी हड्डियों से ही राह का पता चलता था। दूसरी ओर समुन्नाया न अनेक जगहें थे और यात्रियों को धापी व लहरो से घपनी जान की और मरानी पड़ती थी। फाह्यान समुद्री रास्ते से वापस चीन जा रहा था कि उसका जहाज भीषण तूफान में फंस गया। जब उसे अपने बच्चों और बौद्धधर्म तथा मूर्तियों को छोड़कर छप सारी चीजें फेंक देनी पड़ी।

अप्रहार और भटिकाएँ

बौद्धधर्म में मठ-निवास पर और बिना मया था। यही कारण था कि नामदा बमभी, विक्रमसीम शालमर, पुष्कछपठी और कांचीपुर जैसे प्रसिद्ध मठीय विस्वविद्यालयों का विकास हो सका। वे विस्वविद्यालय कामागार में विख्यात ज्ञानकेन्द्र बने। मुल्तकान में ब्राह्मणधर्म के अवेलाकृत छोटे किन्तु प्रसिद्ध ज्ञानकेन्द्र स्थापित हुए। ये ही मयरो और कर्णों से दूर सम्प्रतिपासी मठों अथवा कालेजों में तीर्थस्नानों में थे। इन्हें 'अप्रहार' नाम कहा जाता था और इनके साथ भूमि होती थी जिसका उपयोग ब्राह्मण अध्यापकों और विद्यार्थियों के जीवनसापन के लिए होता था। ज्ञान की वृद्धि के लिए अक्सर सम्प्रतिपासी व्यापारी अथवा सामान्य जगदा दिया करते थे। इसी प्रकार बहिषभारत में पत्तिकाएँ स्थापित हुईं। ये प्रसिद्ध नगरों के मन्दिरों में थीं। प्राचीन सिंधियाधर्मों में कर्ममासा और व्याकरण का पाठ पढ़ाया जाता था। सबों और प्रमाण लिपियों को प्रयोगधामार्थों में मने लिपियों का प्रचिदान के लिए रखा जाता था और इस प्रकार प्राविधिक शिक्षा की जाती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँवों और नगरों दोनों में विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पूरा प्रबन्ध था। यही कारण है कि भारत की बौद्धिक निरीक्षण और अन्वेषण की प्रवृत्ति शताब्दियों के दौरान जीवित रह सकी।

अध्याय ११

एशियाई एकता का निर्माता बौद्धधर्म

मध्य एशियाई कारवां-मार्गों का महत्त्व

हिमालय तथा उत्तर में तकसमकन रंगिस्तान तथा पूर्व में सागरपार द्वीपान्तर भारत में भारत का भौगोलिक प्रसार एक घात अक्षय प्रक्रिया की बाँक से कम दो हजार वर्ष तक चलती रही और जिसके साथ विश्व इतिहास में क्या नहीं किया गया। मध्य एशिया और चीन के सम्बन्धमायों तथा पुषसागर के अहाजी मार्गों द्वारा प्रसारित भारतीय संस्कृति में एशियाई एकता का निर्माण किया जो शताब्दियों तक कायम रही। मजुरा समराजनी और समस्ता की कमा तथा कोतान काश्मीर, नालन्दा अतुराबापुर और श्रीविजय के बौद्ध विस्वविद्यालया के ही वन पर अत्यन्त विकसित भारतीय संस्कृति की पीर पूर्वी और बलिन-पूर्वी एशिया में प्रवेश कर सकी। ईसाई सन् के प्रारम्भ से मध्य एशिया में हूणों के आगमन तक की पांच शताब्दियों में सम्पूर्ण मध्यएशिया का भारतीयकरण हुआ। इस प्रक्रिया की गति को तब करने में सहायक कारण थे—गंधार और सू बिहार से बनारस तक विस्तृत कुषाण-साम्राज्य की स्थापना रोमक और चीनी साम्राज्यों के साथ हार्मीशत मतमल रेधमी कपड़े आदि विलास-सामग्री के व्यापार में विकास तथा महायान बौद्धधर्म का उदय। मुहम्मद ने ५९९ ईस्वी में लिखा था कि छठी शताब्दी के प्रारम्भ में तारिम नदी की बाटी पर स्वेत हूणों का आधिपत्य हो गया। तब तीन दशकों बाद इन क्षेत्र पर तुर्कों ने कब्जा कर लिया। ६१८ ईस्वी में चीन में सुईवंश के उत्पन्न प्रिकारी शासक का शासन स्थापित हुआ और ६६० ईस्वी तक उसके साम्राज्य का विस्तार प्रस्ताई पर्वत से हिन्दुकुश के पार तक हो गया। इस प्रकार समग्र एक अनाब्दी के अन्तराल के पश्चात् मध्यएशिया और चीन में बौद्धधर्म और भारतीय संस्कृति के प्रवेश का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण युग प्रारम्भ हुआ। उसी शताब्दी के अन्त तक गजनी के शासकों का साम्राज्य आत्मम से सिन्धु नदी तक हो गया तथा गुरासन गंधार और मध्यएशिया के कुछ भाग पर भी उनका आधिपत्य स्थापित हो गया। एशिया के स्वसमायों के महारे संस्कृति के प्रसार का जो कथप्रव काम समरे समय से चल रहा था अब उनका अन्त हो गया। अगली पांच शताब्दियों तक एशियाई कारवां-मार्गों पर मुसलमान शासकों का नियंत्रण रहा। परिणाम यह हुआ कि भारतीय चीनी सम्बन्ध 'द्वितीय भारत' अथवा द्वीपान्तर होकर समुद्री मार्ग पर भ्रमप्रचारकों के प्रयत्नों पर निर्भर हो गया। उन्हें सुमात्रा में कम्बुज जाना पड़ना था। कम्बुज में भारतीय और चीनी सम्बन्धों का मिलन पूर्वीय

सागर के तट पर हुआ करता था।

महान् कुपाशों के काम में बौद्धधर्म और संस्कृत संस्कृति का प्रसार तारिम नदी के विस्तृत कांठ में हुआ। यह कांठ चीन को भारत और पश्चिमी एशिया से मिमाने नामे दो रेघम-भागों में चीन में पड़ता था। उत्तरी माय सखसिता कविज कामपर, कुच कड़गहर (अग्निवेश) किजिन सरफान (भारत) हूयी और धम्मी होकर जाता था तथा दक्षिणी माय यारकान्द खोतान बदन घोइलिक निय मिरज और सोबनोर होकर। दोनों मार्ग घन्ट में चीन के पश्चिमी सीमान्त पर स्थित गुन-कुमाइ में मिल जाते थे। यही पर सुप्रसिद्ध १८२ गुफाएँ काटी गईं जिनकी दीवारों पर चित्र बने हैं। ये गुफाएँ जननामारम में हुआओं बुद्धों की गुफाएँ नाम से प्रचलित हैं। उत्तरी और दक्षिणी दोनों रेघम-भागों के नाम-नाम १०० मील तक पीछे रेगिस्तान में भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। दक्षिणी रेघम-भाग कुपाशों के अधिकांश में था। कविज के सासनकाम में कुपाशों में चीनियों के नाम मध्यएशिया में युद्ध किया और चीनी राजकुमारों को कैद कर लिया।

एशियाई स्थल-भागों पर हिन्दू उपनिवेश

तारिम कांठ के प्राचीन साधकों में से धनेक के नाम भारतीय हैं। कुस्तम विजित नाम और विजितकीर्ति (खोतान में) मुचम-मुय्य हरि-मुय्य और मुचम-य्य (कुच में) तथा इन्द्रार्जुन और चन्द्रार्जुन (कड़गहर में)। भारतीय उपनिषदों अथवा रामों के नाम भी संस्कृत के अथवा उनके रूपांतर थे। सैमदय (कासगर) चोफुक (बारकान्द) माहन (उच-सरफान) कुचि (कुच) अग्निवेश (कड़गहर) और तुरपमि (तुरफान) उत्तरी कारवां मार्ग पर प्रचलित थे। कुस्तान (कुस्तन अथवा खोतान) बरोन (निय) और पनमव (शान-मान) दक्षिणी कारवां-मार्ग पर प्रचलित थे। खोतान कुच तथा समीप क्षेत्र में भारतीय मित्रियों—हाही और खरोन्डी—के ही बरत हुए रूप प्रचलित थे। खोतान कामपर, कुचि कड़गहर और तुरफान में जिसका मठ और गुफाएँ वो तथा सीमरी और सातबीं सदाचरियों के बीच थे नगर बौद्धधर्म में निघनरी प्रयत्नों के प्रमुख केन्द्र बन गए। तारिम (संस्कृत में 'तीता') कांठ के निवासी संस्कृत चीनी सीरियाई, सीमरियाई, तुर्की तोसारियाई और खोतानी भाषाएँ व्यवहार में लाते थे। किन्तु महायान बौद्धधर्म के प्रभाव में आकर सभी लोग काश्मीर, मन्वार और बमियान की भारतीय संस्कृति के साथ में बन गए। कारण यह था कि महायान में भक्ति का प्रभाव था और सात्त्विक जीवन पर जोर दिया गया था और यह विविधता विश्व के एक प्रमुख व्यापारमार्ग के सहारे विकसित होनेवाली प्रसिद्धित सांकेतिकीय नक्कलिस्तामी संस्कृति के सर्वथा अनुकूल थी। भारत में चीन से कच्ची रेघम का प्रभाव होता था तथा चीन को समस्त रेघमी वस्त्र हाथी दांत तथा अन्य बिलाल-सामग्री का निर्यात किया जाता था। इन मन्मूर्त शत्रु में बाजारों और भेतों तथा मठों और गुफाओं की संख्या बहुत अधिक हो गई। अचानक बाघ काशों और बमियान की गुफाओं के समान कुछ और गुन कुमाइ के समीप की पहाड़ियों की गुफाएँ बिहानों भिक्षुओं और माधवी का आकर्षण-विष्णु तथा महत्त्वपूर्ण बौद्धकेन्द्र बन गईं। बमियान और कोन्किस्तन के समान मिरज इन्धन घोइलिक निय तथा अन्य

स्वाध्यायों पर बौद्ध भित्तिचित्र हैं जिनमें अजन्ता की मक़ रेखाओं कीवन्त रंग और गतिमय समय का चीनी और ईरानी विशेषताओं के साथ सर्वश्रेष्ठ सम्मिलन हुआ है। बोतान का गोमती विहार, कुचि का आर्यय विहार और बल्लभ का मधुसूताराम ज्ञान और शक्ति के उत्तरे ही बड़े केन्द्र के चित्रों के केन्द्र गणार का कल्पित-विहार और जाम्बून का कुम्भसवन विहार। कोताम मठमें नवीन बौद्धधर्मों की रचना संस्कृत प्राकृत तथा स्थानीय भाषाओं में हुई। कुचि और कोताम में बुद्ध की मूर्ति के बुरस भारत के बुरसों के समान थे। कुचि की विद्यामकय बौद्ध प्रतिमाएँ अभियाग की बुद्ध प्रतिमाओं के समान हैं। महायान के महान धर्मप्रचारकार्य को शक्ति प्रदान करने का काम काश्मीर, उद्दिमान और गन्धार के मठ करते थे। ईसा सन् के आरम्भ से चौथी शताब्दी ईस्वी तक बौद्ध और संस्कृत ज्ञान के प्रमुख केन्द्र यही मठ थे। चौथी शताब्दी ईस्वी में ही मासन्दा प्रमुख कन्द्र बन गया।

महान्तम भारतीय धर्मप्रचारक विद्वान कुमारजीव

कुमारजीव ने ब्राह्मणदर्शन का अध्ययन काश्मीर और काशगर में तथा महान बौद्धधर्म का अध्ययन भोजपुर में किया था। कुच मठ में उसे मध्यएशिया के सर्वप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान होने का सम्मान प्राप्त हुआ। ४०१ ईस्वी में कुच पर चीन का आक्रमण हुआ और कुमारजीव को एक सप्ताह बन्दी के रूप में चीन भेजा गया। चीन के सम्राट ने उस अपना आध्यात्मिक गुरु बनाया। कुमारजीव ने बड़ी लगन से चीनी भाषा का अध्ययन किया। उसे बौद्धधर्म का गभीर ज्ञान था तथा संस्कृत और चीनी भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। यही कारण है कि संस्कृत के बौद्धग्रन्थों के चीनी भाषा में अनुबादों में यह सर्वाधिक सफल था। ४१३ ईस्वी तक में उसने १६ ग्रन्थों का अनुबाद किया जिनमें से कुछ ग्रन्थ हैं 'संयमपुष्करिक' 'सूत्रार्थकार' नागार्जुन और अश्वघोष के जीवन-चरित्र तथा आध्यात्मिक मठ के कई ग्रन्थ। उन्होंने 'वज्रसूत्र' का अनुबाद भी किया। केवल इस अनुबाद के कारण बौद्धधर्म का चीनी शिष्टदर्शन में जिसका प्रसार हुआ उतना अन्य सारे ग्रन्थों के सम्मिलित प्रभाव से भी नहीं हुआ।

अपने कुछ महान्तम व्यक्तियों के बारे में भारत को कुछ भी मालूम नहीं है। भारत के सांस्कृतिक प्रसारकी कहानी में कुमारजीव निरसरेह महान्तम व्यक्ति थे जिन्होंने हमारे देश में उन्हें मुसा दिया गया है। कुमारजीव के पिता कुमारधन भारतीय थे तथा माता चीनी थी कुच की राजकुमारी। कुमारजीव के जन्म के बाद प्रसूती ही चीनी बौद्ध त्रिशुली बन गई। फिर जब वे कुच वापस गईं कुमारजीव उनके साथ थे। अपने समय में कुमारजीव को भारत और मध्यएशिया में कुछ प्रतिष्ठि मिली। सेह-बाघो (३८४-४१४ ईस्वी) और ताघो-सेह (मृत्यु ४३४ ईस्वी) जैसे श्रेष्ठ चीनी विद्वान उनके शिष्य थे। इन दोनों विद्वानों ने मध्यएशिया में राज्य के छोरों और मरिचक की शार्वसीमिकता प्रचारा बुद्धप्रवृत्ति तथा नीतिशास्त्र में कमसिद्धांत जैसे भारतीय विचारों को लोकप्रिय बनाया। प्राचुरिक चीनी बार्थनिक फूड यु ज्ञान का कवच है 'शार्वसीम मरिचक का सिद्धान्त चीनी दर्शन को भारत की देन है। बौद्धधर्म के प्रवेश से पूर्व चीनी दर्शन

में वैयक्तिक गरिमा या सामाजिक गरिमा नहीं। तारीख के अनुसार ताम्रों की बालियों का ताम्रों सबसे बड़ा रहस्य तो यह किन्तु सामाजिक गरिमा नहीं था। बौद्धधर्म के प्रवेश के बाद के समय से चीनी दण्डन वैयक्तिक गरिमा और सामाजिक गरिमा

धर्म प्रचार के एक हस्तारथ

पाचवीं शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ से तेरहवीं शताब्दी ईस्वी तक अनेक भारतीय मिश्र-विद्वानों ने चीन की यात्रा की। उन्होंने अनेक बौद्धग्रन्थों के अनुवाद किए बौद्धधर्म का प्रचार किया तथा संस्कृतों में स्थापित हुए। अनेक मिश्र केवल धर्मप्रचारक बनकर गए। टी. टी. टी. यांगची ने उनके नामों की सूची तैयार की है। किन्तु इनमें से प्रमुख के कल्पित मातंग और धर्मरत्न (लगभग ६५ ईस्वी में) और अन्य अनेक मिश्रों में प्रमुख धर्मरत्न (२८४ ईस्वी) और बुद्धमित्र (३६८ ईस्वी)। एक हजार वर्ष तक भारतीय धर्मप्रचारक यातायात चीन जाते रहे। मध्ययुगीन के मार्गों तथा समय प्रायोगिक सुभाषा और पासा के बन्दरगाहों से होते हुए चीन के प्रमुख दक्षिणपूर्वी बन्दरगाहों तक पहुँचने के अन्त्य माग थे। एक रास्ता बिद्वानों और राजा की पाठियों से होकर बुद्धमित्र गुरुकुल या तथा एक अन्य माग नेपाल से तिब्बत होकर जाता था। चीन से भारत जानेवाले चीनी साधु-यात्रियों के समान भारतीय धर्म प्रचारकों को भी अपनी यात्राओं में अनेक कठिनाइयों और जोखिमों का सामना करना पड़ता था अनेक की मृत्यु भूमिगत में हो जाती थी या राजदण्ड अथवा भीड़ की हिंसा का शिकार बनना पड़ता था।

कुमारजीव ने चीन-यात्रा ४११ से ४१३ ईस्वी तक की थी। उनके बाद चीन जानेवाले विस्माय मिश्र निम्न थे 'महीधामक विनय' के अनुवादक संभवतः ४२० ईस्वी में चीनका से चीन गए थे गुनबर्न ने चीनका और जावा में धर्मप्रचारक के रूप में खूब स्थापित प्रसिद्धि की थी इसीसे प्रेरित होकर चीन के सम्राट ने उन्हें मानकिय पद (४३१ ईस्वी) 'संयुक्तधर्म' के अनुवादक धर्ममित्र ४३५ ईस्वी में चीनका से चीन गए बोधिबर्न 'समुद्र पर तैरते हुए पान-भू' (कैप्टन) ४७० ईस्वी में पहुँचे और सम्राट् के शासनकाल में उन्होंने चीन के अधिकांश भाग की यात्रा की जिनान के बौद्ध विद्वान् (जांग) की प्रसारित किया तथा उत्तरी और दक्षिणी मार्गों के बीच की नौका पाठने का रास्ता साफ किया संभवतः जिन्होंने ४८८ ईस्वी में 'सामन्तपासादिका' का अनुवाद किया उरुजियीने के निवासी परमार्थ ५४८ ईस्वी में नागकिङ्ग गए और लगभग ५० वर्षों का अनुवाद उन्होंने किया जिसमें प्रमुख हैं—अश्वघोषकृत 'महायान-अष्टोत्पाद' बसुबन्धु का जीवनचरित और 'तर्कसारंग' छठी शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्ध में जिनगु चीन गए और साइबेरिया के एक सम्राट् के शास्त्रात्मिक गुरु बने और उन्होंने संतरी भूम संस्कृत-ग्रंथों के चीनी अनुवाद प्रस्तुत किए ६६३ ईस्वी में चासुक्वर्ग के एक राजा

ने बोधिसत्व को चीन भेजा। तब चीन के सम्राट् ने बोधिसत्व का खूब सम्मान किया तथा महायान-ग्रन्थों के अनुबाण के लिए भारतीय और चीनी विद्वानों की एक समिति बनाई तथा अनुबाणों की टिप्पणियाँ स्वयं मिली बंगाल के मिथु-विद्वान कुमारबोष (छाठवीं शताब्दी में) सुमासा और चाबा के शैलेन्द्र सम्राटों के धार्म्यात्मिक गुरु बने।

बौद्ध धर्म और संस्कृति की महाभारत चीन से जानेवाले प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रचारक थे कास्मीर के बुद्धजीव (४२३ ईस्वी) मध्यभारत से धर्मगुरु (४१४-४३३ ईस्वी) और गणभद्र (४३२-४६८ ईस्वी) बंगाल और असम से ब्राम्हण और यशोगुप्त (छठी शताब्दी) जलालाबाद से बुद्धिमान कान्यकुब्ज से धर्मगुप्त (५ ईस्वी) पौठम धर्म ज्ञान (५७७ ईस्वी) जिन्होंने चीन के एक बिसे का गवर्नर नियुक्त किया गया तथा नामग्याम शिसिठ बज्रबोधि (७१०-७३२ ईस्वी) जो ७१० ईस्वी में चीनका से चीन गए तथा जिन्होंने बौद्धधर्म के धार्म्यात्मिक अध्ययन-सम्प्रदाय का उपदेश चीन में किया।

यह सबसा स्पष्ट है कि भारतीय धर्म कला और दर्शन ने कठिन किन्तु प्रबल प्रसार में भारत के प्रत्येक कोन में भाग लिया था। ४३३ ईस्वी में 'नन्दि' नामक एक जहाज पर भिक्षुनियाँ भी चीनका से चीन गईं और वहाँ उन्होंने भिक्षुनी-संघ स्थापित किया। बौद्धधर्म प्रचार के एक अभियान की उपलब्धि की वर्षा करते हुए चीनका ने एक इतिहासकार ने लिखा है 'संसार के कस्याम ने हनु ने सबको बौद्धधर्म में दीक्षित करने के इच्छुक थे फिर यला घातसी प्रथमा उवाधीन कैसे रह सकत थे। चीनी-बौद्ध भिक्षु बोध के अनुसार म्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब गङ्गा की सुसज्जित महामुख भारत के मन्दिरों और पवित्र स्थानों को छू रहा था चीन के दरबार में भारतीय भिक्षुओं की संख्या सर्वाधिक थी। कुछ भिक्षुओं ने धायर चीनी नाम भी अपना लिए थे। उसी शताब्दी के मध्य तक चीनी शिष्टवर्ग में नस विदेशी धर्म के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया आती तथा चीन में बौद्धधर्म का प्रभाव सहसा बहुत कम हो गया और फलस्वरूप भिक्षुओं की संख्या घट गई। चीन पहुँचनेवाले पश्चिम भात भारतीय भिक्षु का नाम था वे-की-सियाङ्ग और यह १२३ ईस्वी में पश्चिमी भारत से गया था। हाँ भारत में अनेक शताब्दियों तक चीनी विद्वानों धर्मप्रचारकों व यात्रियों का लगातार आगमन जारी रहा। सुङ्ग-साम्राज्य के उत्कर्षकालीन वर्षों-म्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी-में तो उनकी संख्या में बहुत वृद्धि हुई।

एशिया में बौद्धधर्म का प्रसार

३७२ ईस्वी में बौद्धधर्म चीन से कोरिया पहुँचा और वहाँ से ३३८ ईस्वी में उसका प्रवेश जापान में हुआ। ६०४ ईस्वी में राजकुमार धैमोकु तायसी ने बौद्धधर्म को जापान का राष्ट्रीय धर्म स्वीकार किया और जल्दी ही मन्दिरों मठों और धर्मस्थलों का निर्माण हुआ। जापान का विख्यात होर्युजी का मन्दिर ६०७ ईस्वी में बना था। बोहो नामक एक जापानी भिक्षु ह्युनसाङ्ग का एक प्रमुख शिष्य बन गया और उसने अपने देश में योगाचार-सिद्धान्त का प्रसार किया। सातवीं शताब्दी का अन्त होते-होते समस्त मध्य और पूर्वी एशिया में बौद्धधर्म का प्रसार हो गया। कुप्त पात और पस्तक ऐशिया की गई

बौद्धकला मध्य और दक्षिण-पूर्वी एशिया का पशुची। अजन्ता बाघ और धमरावती की कला द्वारा सृजित महायान स्वर्ण के धाकर्यक और महाकलापुत्र बौधिसत्त्वों के रहस्यमय रूप ब्रिन्हे हार्मों की मुद्राएं भारतीय थीं और उनमें भारतीय कमल से तथा महायान ग्रंथों की कलाएं सब सम्पूर्ण महाद्वीप में सुपरिचित हो गई और जन-सामान्य में बिम्बाम एवं मन्त्र बनाने लगीं।

मंगोलिया के साथ भारत का सम्पर्क घाठबी घाटाव्ही ईस्वी में चारम्भ हुआ जब भारतीय भिक्षु प्राप्त ने बौद्धग्रंथों का मंगोल भाषा में अनुवाद करने में भाग लिया। चियेज्वा द्वारा स्थापित विद्यालय मंगोल-साम्राज्य में बौद्धधर्म इस्लाम और नेस्टोरियाई ईसाईधर्म का प्रतिफलन साथ-साथ हुआ। चियेज्वा के पीछे कुरयन ने तिब्बत में पाक्य मठ से आए हुए बौद्धभिक्षु-विद्वान साक्यपत्रित का सिध्दत्व स्वीकार कर लिया। बाद में उसके दो भर्तृजे मंगोलिया में बौद्धधर्म प्रचार-कार्य करने लगे। उनमें से एक फस्त-या (१२३६-१२८६ ईस्वी) ने कुम्मागो (१२३६-१२६४ ईस्वी) द्वारा करगोरम में स्थापित एक बमसना में भान लिया तथा लामोबाबी भिक्षुओं को विद्या में परामित किया। इस पर कुम्मागो ने तिब्बती बौद्धधर्म को मंगोल-साम्राज्य का राजधर्म स्वीकार किया तथा फस्त-या को विद्यालय मंगोल-साम्राज्य के बौद्धधर्म का राजगुरु एवं तिब्बत के तीन जिसा में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। फस्त-या बम-परिवर्तन करने में कुशल था इसलिए जल्दी ही बौद्धधर्म मंगोलों में सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म हो गया। कुम्मागो ने चीनका कं वासक द्वारा भेजे गए बुद्ध के अवतारों का स्वागत किया। कुम्मागो के 'कुम्पो-य' भजना राजगुरु की हैसियत से फस्त-या ने विद्यालय साम्राज्य की विभिन्न भाषाओं ने लिए एक बमनामा का आविष्कार किया। इस प्रकार कुम्मागो के शासनकाल में उसने एक नई एशियाई एकता का स्वप्न देखा जिसका धर्म भाषा और संस्कृति एक हो—किन्तु कलाओं की मूल्य के तत्काल बाद मंगोल-साम्राज्य चिल्ल चिल्ल हो गया और उसके साथ वह गया फस्त-या का स्वप्न भी। बौद्धधर्म के बारे में कुम्मागो ने कहा था 'हमारी वे मंगुलिया निकसती हैं, बौद्ध-विद्यालय हवेली के समान हैं, तथा धर्म धर्म मंगुलियों के समान।'

तिब्बत में सम्राट लोङ-रसन गम्पो (१००-१३० ईस्वी) ने जिन्होंने उत्तरी भारत उत्तरी बर्मा और चीनी तुकिस्तान के प्रदेशों पर भी अधिकार कर लिया था काश्मीर से प्राप्त भारतीय धर्मशास्त्र और लिपि का प्रयोग चारम्भ करामा तथा तिब्बत में सर्वप्रथम बौद्ध मन्दिरों का निर्माण करवाया। घाठबी घाटाव्ही के मध्य (७४७ ईस्वी) में पद्मसम्भ ने तिब्बत जाकर वहाँ बज्रयाम बौद्धधर्म का उपदेश दिया। सुप्रसिद्ध बौद्ध तांत्रिक केन्द्र उड्डिबान (जिसे कुछ लोग स्वात पाटी और धर्म लोम डाका जिले में स्थित बज्रयोगिनी मानते हैं) में उनका जन्म हुआ था तथा नामग्या बिम्बविद्यालय में उन्होंने अध्ययन किया था। वे तिब्बत में तीस वर्ष तक रहे तथा नागरिक एवं धार्मिक कानून बनवाने का काम उन्होंने किया। पद्मसम्भ को बाद में देवता मान लिया गया। म्यारज्वा घाटाव्ही के मध्य में तिब्बत के सम्राट के धर्मप्रचार पर विजयधीन मठ के प्रसिद्ध मठविधि पवि धर्मीय भजना दीर्घकर बीजान ने तिब्बत-भारत की। धर्मीय के करियर उन्हें तिब्बत

में बोधिसत्व को भी भेजा। तब चीन के सम्राट् ने बोधिसत्व का ब्रह्म सम्मान किया तथा महायान-ग्रन्थों के अनुबाह के लिए भारतीय और चीनी विद्वानों की एक समिति बनाई तथा अनुवादों की टिप्पणियाँ स्वयं मिलीं। बंगाल के भिक्षु-विद्वान् कुमारभोज (भारतीय छताब्दी में) मुद्राजा और वाबा के समेन्द्र सम्राटों के धार्म्यात्मिक गुरु बने।

बौद्ध धर्म और संस्कृति की महाम चीन में जागेबामें मध्य महात्त्वपूर्ण प्रचारक ने काश्मीर के बुद्धजीव (४२३ ईस्वी) मध्यभारत से धर्ममार्ग (४१४-४३३ ईस्वी) और गजमद्र (४३५-४६८ ईस्वी) बंगाल और असम से ज्ञानमद्र और यक्षोपुष्ट (छठी शताब्दी) जनामाबाह से बुद्धिमद्र कान्यकुब्ज संघसंगुण (५० ईस्वी) चौथम धर्म ज्ञान (५७७ ईस्वी) जिन्हें चीन के एक जिले का गवर्नर नियुक्त किया गया तथा नामग्याम विहित बज्जबोधि (७१०-७३२ ईस्वी) जो ७१ ईस्वी में चीनका से चीन गए तथा जिन्होंने बौद्धधर्म के धार्म्यात्मिक बज्जयान-मन्त्राचार का उपदेश चीन में दिया।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि भारतीय धर्म कला और दर्शन के कठिन किन्तु प्रबल प्रसार में भारत के प्रत्येक कोने में साग मिया का। ४३३ ईस्वी में 'मन्दि' नामक एक बहादुर पर भिक्षुभिया भी चीनका से चीन गई और वहाँ उन्होंने भिक्षुची-संघ स्थापित किया। बौद्धधर्म प्रचार के एक अभियान की उपलब्धि की चर्चा करते हुए चीनका के एक इतिहासकार ने लिखा है 'संसार के कल्याण के हेतु वे सबको बौद्धधर्म में दीक्षित करने के इच्छुक थे फिर भला प्राप्तही प्रबला उदासीन कैसे रह सकते थे। चीनी-बौद्ध विस्व भोज के अनुसार प्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब सबनी का मुसलमान महदुब भारत के मन्दिरों और पवित्र स्थानों को चूर रहा था चीन के दरबार में भारतीय भिक्षुओं की संख्या सर्वाधिक थी। कदा भिक्षुओं ने शायद चीनी नाम भी अपना लिए थे। उसी शताब्दी के मध्य तक चीनी लिपिबग में इस विदेशी धर्म के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया जारी तथा चीन में बौद्धधर्म का प्रमान सहसा बहुत कम हो गया और प्लवस्वरूप भिक्षुओं की संख्या घट गई। चीन पहुंचनेवाले अन्तिम ज्ञात भारतीय भिक्षु का नाम था वे-की-सिवाह और वह १०५३ ईस्वी में पश्चिमी भारत से गया था। हाँ भारत में अनेक शताब्दियों तक चीनी विद्वानों धर्मप्रचारका ब यात्रियों का लगातार आगमन जारी रहा। सुइ-शास्राज्य के उत्कर्षकालीन वर्षों-प्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी-में तो उनकी संख्या में बहुत वृद्धि हुई।

एशिया में बौद्धधर्म का प्रसार

३७२ ईस्वी में बौद्धधर्म चीन से कोरिया पहुँचा और वहाँ से ५३८ ईस्वी में उमका प्रवेश जापान में हुआ। ६०४ ईस्वी में राजकुमार सीनोफु ताबरी ने बौद्धधर्म को निपन का राष्ट्रीय धर्म स्वीकार किया और बज्जी ही मन्दिरों मठों और प्रस्थानों का निर्माण हुआ। नारा का विश्वात हारयुजी का मन्दिर ६०७ ईस्वी में बना था। योहो नामक एक जापानी भिक्षु ह्युजमाह का एक प्रमुख शिष्य बन गया और उसने अपने देश में योगाचार सिद्धान्त का प्रसार किया। सातवीं शताब्दी का अन्त होते-होते समस्त मध्य और पूर्वी एशिया में बौद्धधर्म का प्रसार हो गया। गुप्त पाल और पल्लव सैनिकों की गई

बौद्धकला मध्य और दक्षिण-पूर्वी एशिया का पटुषी। धर्मशास्त्र बाब और समरपट्टी की कला द्वारा सृजित महायान स्वयं के आकषक और महाकल्याणपूर्ण बोधिसत्वों के रहस्यमय रूप जिनके हाथों की मुद्राएं भारतीय थीं और उनमें भारतीय कमस से तथा महायान प्रयोगों की कलाएं धर्म सम्पूर्ण महादीप में सुपरिचित हो गईं और जन-सामान्य में विश्वास एवं भक्ति बगाने लगीं।

मंगोलिया के साथ भारत का सम्पर्क घाटवीं शताब्दी ईस्वी में आरम्भ हुआ जब भारतीय भिक्षु प्राज्ञ ने बौद्धप्रयोगों का मंगोल भाषा में अनुवाद करने में मार्ग मिला। चचेइला द्वारा स्थापित बिद्याल मंगोल-साम्राज्य में बौद्धधर्म इस्लाम और नेस्टोरियाई ईसाईधर्म का प्रतिप्रस्तन साथ-साथ हुआ। चचेइला के पोते कुरयक ने तिब्बत के शासक मठ से प्राप्त हुए बौद्धनिबन्ध-विद्याल शास्यपरिचित का गिप्यत्वं स्वीकार कर लिया। बाद में उसके दो भतीजे मंगोलिया में बौद्धधर्म प्रचार-काय करने लगे। उनमें से एक कम्स-या (१२१६-१२८६ ईस्वी) ने कुम्माखा (१२१६-१२६४ ईस्वी) द्वारा चणकोरम में धर्मोक्ति एक बर्मसमा में भाग लिया तथा ताघोबादी भिक्षुओं को बिबाद में पराजित किया। इस पर कुम्माखा ने तिब्बती बौद्धधर्म को मंगोल-साम्राज्य का राजधर्म स्वीकार किया। इस कम्स-या को बिद्याल मंगोल-साम्राज्य के बौद्धधर्म का राजगुरु एवं तिब्बत के तीन जिला में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। कम्स-या धर्म-परिवर्तन करने में कुशल था इसलिए बन्दी ही बौद्धधर्म मंगोलों में सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म हो गया। कुम्माखा ने भीमका क सातक द्वारा नेत्रे गए कुछ के भवसेषों का स्वागत किया। कुम्माखा के 'कुमो-य' धर्मवा राजगुरु की ईशित से कम्स-या ने बिद्याल साम्राज्य की विभिन्न भाषाओं के लिए एक बर्मभाषा का आविष्कार किया। इस प्रकार कुम्माखा के धामनकास में उसने एक नई एशियाई एकता का स्वप्न देखा जिसका धर्म भाषा और संस्कृति एक हो—किन्तु कुम्माखा की मृत्यु के तत्काल बाद मंगोल-साम्राज्य क्षिप्त-त्रिग्न हो गया और उसके साथ यह धर्म कम्स-या का स्वप्न भी। बौद्धधर्म के बारे में कुम्माखा ने कहा था "हूवेनी स धंगुसियां निकसती हैं बौद्ध-विद्याल हूवेनी के समान हैं, तथा धर्म धर्म धंगुसियों के समान।"

तिब्बत में सम्राट खोङ-रसन गम्पो (६० - ६४० ईस्वी) ने जिन्होंने उत्तरी भारत उत्तरी बर्मा और चीनी तुर्किस्तान के प्रदेशों पर भी अधिकार कर लिया था कास्मीर से प्राप्त भारतीय बर्मभाषा और लिपि का प्रयोग आरम्भ कराया तथा तिब्बत में सर्वप्रथम बौद्ध मन्दिरों का निर्माण कराया। घाटवीं शताब्दी के मध्य (७४७ ईस्वी) में पद्मसम्भव ने तिब्बत आकर वहाँ वज्रयान बौद्धधर्म का उपदेश दिया। सुप्रसिद्ध बौद्ध तांत्रिक केन्द्र उद्दिमान (जिसे कुछ लोग स्वात पाटी और धर्म लोग डाका जिले में स्थित बलभोमिनी मानते हैं) में उनका धर्म हुआ था तथा नामग्या निरवविद्यालय में उन्होंने धर्मप्रवर्तन किया था। वे तिब्बत में तीन वर्ष तक रहे तथा नागरिक एवं धार्मिक कानून बनाने का काम उन्होंने किया। पद्मसम्भव की वाद में देवता मान लिया गया। म्याङ्गली शताब्दी के मध्य में तिब्बत के सम्राट के धर्मप्रवर्तन पर विश्वासघात मठ के प्रसिद्ध मठाधिपति घटीस धर्मवा दीर्घकाल कीर्तन ने तिब्बत-यात्रा की। घटीस के वरिष्ठ उन्हें तिब्बत —

नहीं जाने देना चाहते थे क्योंकि उन्हें भय था कि धर्तीस की अनुपस्थिति में मगध के मठों का चरित्र गिर जाएगा। इस भय का एक कारण बज्जी के तुर्कों के धाकड़न भी था। (महमूद गज़नवी ने १०१८ ईस्वी में कन्नौज पर अधिकार कर लिया था तथा १०२६ ईस्वी में सोमनाथ का विनाश किया था।) इसलिए निश्चित किया गया कि धर्तीस तीन वर्ष के भीतर विक्रमशील बापम आ जाएं किन्तु हुआ ऐसा कि १०४० ईस्वी से १०४१ ईस्वी में अपनी मृत्यु तक वे तेरह वर्ष उन्होंने विम्बल में बिताए। उन्होंने महायान का प्रचार किया तथा ऐन्द्रजासिक तत्त्वों को विमल करक बौद्धधर्म को पुनः उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया। रास्ते में उन्होंने नेपाल का भी भ्रमण किया। उनके साथ विमलवर्ध, प्ला-स्तोन भूमिपुत्र तथा पदिबमी भारत के एक राजकुमार शिष्य भूमिपुत्र भी थे। भारत के अन्य विख्यात यात्री थे चीनमित्र और समनकरगुप्त। कई घटान्तिकाएँ तक मानव्या ब्रह्मचारील जगद्गुरु और आनन्दपुरी तथा विम्बल व नेपाल के मठों के बीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित रहा जिसके ठोस परिणाम हुए। दोनों देशों की धर्म और संस्कृति पर महायान बौद्धधर्म सहज और तन्त्रवाद के विचारों का घनिष्ठ प्रभाव पड़ा।

नेपाल विम्बल भूटान और सिक्किम सीमावर्ती क्षेत्र हैं और वहाँ के निवासियों के जीवन आचार-व्यवहार और विचारों को भारतीय संस्कृति ने सबसे प्रभावित किया है। किन्तु बौद्धधर्म का प्रसार तो मध्य-एशियाई कारवां-मार्गों द्वारा मध्यएशिया चीन मंगोलिया कोरिया और जापान तथा समुद्री मार्ग से द्वीपान्तर भारत में हुआ। यह एक अद्वितीय सांस्कृतिक आन्दोलन था और इसीके कारण एशियाई सभ्यता की एकता की स्थापना हुई जो अनेक घटान्तिकाएँ तक कायम रही। ९१ ईस्वी में ही कश्यप मातस्य और धर्मरत्न ने बौद्धधर्म का प्रचार-प्रमिशन आरम्भ कर दिया था किन्तु लगभग १० ईस्वी में कुश्टनवन बिहार में बौद्ध समिति की समा के पश्चात् प्रमिशन की गति तीव्र हो गई। १३१ ईस्वी में एक शाही घोषणापत्र में बौद्धधर्म को चीन का राजधर्म घोषित किया गया। यह निश्चय ही एक बड़ी उपलब्धि थी। घोषणापत्र में कहा गया था बुद्ध विदेशों में पूजे जानेवाले एक देवता हैं। सम्भव है कि वे चीन के सम्राटों प्रबन्ध चीनी जनता की पूजा के अधिकारी न हों। किन्तु मेरा काम एक सीमावर्ती क्षेत्र में हुआ था और मुझे चीन का सामक्य बनने का सीमावर्ष मिला है। मेरे वार्षिक कर्तव्यों का निबन्धन मरी जनता के आचारों के अनुसार ही होगा। बुद्ध यद्यपि विदेशी देवता हैं फिर भी मेरे लिए उनकी पूजा करना उचित ही है। कुप की बात है कि प्राचीनकाल के समूह पुराने नियमों का पालन धार्य भी किया जाए। कोई धार्य और विपुल वस्तु प्राप्त हो जान पर भी लोग क्यों प्राचीन रीति के धार्यों से चिपटे रहें? मरी जनता बहर दृष्टान्त है। मैं उन्हें धार्य देता हूँ कि वे चाहें तो बुद्ध की पूजा तथा बौद्धधर्म का अधिकार करने के लिए स्वयम्भू हैं।

बौद्धधर्म के चीनी सम्प्रदाय

चीन में बौद्धधर्म का सबसे अधिक प्रभाव पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में कुमार जीव की चीन-यात्रा से दसवीं शताब्दी के आरम्भ में ताइचंग के पतन तक रहा। यह

की स्थापना की। इस सम्प्रदाय में सभी सम्प्रदायों की अच्छी बातों को एक स्थान पर इकट्ठा कर लिया गया था। बि-काई ने बुद्ध के उपदेशक जीवन के पाँच मुमों के अनुसार बौद्ध धर्म के बिदास साहित्य का वर्गीकरण किया और इस प्रकार उनके विभिन्न और प्रत्यक्ष विरोधी उपदेशों में एक सर्वसम्मत सम्मेलन स्थापित की। चीनी बौद्धधर्म में उनका वर्गीकरण भाव भी मान्य है। 'तियेन-ताई' एक अद्भुत सम्मिश्रण है। इसके अनुसार सभी दार्शनिक विचारों का सत्य केवल एक है और यह महत्त्वपूर्ण अर्थ-प्राप्ति है उसका उपाय नहीं। बि-काई के उपदेशों का प्रसार जापान में भी हुआ जहाँ अब भी उनसे अनुयायी हैं।

चीन में बौद्धधर्म के मोमाचार-विज्ञानवाद-सम्प्रदाय (जोन्साह् इसी सम्प्रदाय का अनुयायी था) की प्रभावशालिता का बहुत कुछ अर्थ मध्यभारत के एक राजवंश के सदस्य प्रभाकरमित्र को है। दक्षिणभारत में जब पर्यटन करने के पश्चात् प्रभाकरमित्र नासत्या पहुँचा जहाँ उसकी भेंट सीसम्रा से हुई। जहाँ से वह मध्यएशिया गया। और पश्चिमी तुर्कों के समय को बौद्धधर्म में दीक्षित करने में सफल हुआ। वह ६२७ ईस्वी में जाइ-अन पहुँचा और चीन के सम्राट पर उसका काफी प्रभाव हो गया। चीन में ही ६११ ईस्वी में उसकी मृत्यु हुई।

'ज्याम' के पश्चात् बौद्धधर्म के जिस चीनी सम्प्रदाय का नाम आता है वह है 'अमिद' अथवा 'पवित्र भूमि'। यह भी काफी प्रचलित था। इसकी स्थापना बोधिरथि ने की जो ६६२ से ७२७ ईस्वी तक (जब उनकी मृत्यु हुई) चीन में उपदेशक थे। अमिताभ अथवा अमिद बुद्ध (जापान में 'अमित') का दार्शनिक अर्थ है 'अपार प्रकाशवाने बुद्ध जो पश्चिमी स्वर्ग अर्थात् 'पवित्र भूमि' अथवा 'सुखावती' में रहते हैं। ज्याम-सम्प्रदाय के समान अमिताभ-सम्प्रदाय के कारण भी चीन और जापान में जब साहित्य निरमा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तिम लोकावत (बर्मकर नामक एक भिक्षु) को बर्म अमिताभ अथवा अपरिमित प्रकाश अथवा जीवन माना गया है। उनके नाम का उच्चारण करनेवाला कोई भी व्यक्ति तत्काल उनके पूर्ण और एकान्त संरक्षण में पहुँच जाता है। अपने हृदय से एक किरण के समान निकलकर वह अपनी इच्छानुसार कितनी ही दूरी पर बैठ किसी भी व्यक्ति को प्रकाशित कर सकता है। कोई भी समिकष्टमृत्यु व्यक्ति चाहे वह कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो यदि ईशानशायी से परचासाप करे और 'सुखावती' में पुनर्जन्म लेने का इच्छुक हो तो मृत्यु के पौरुष बाद उसका जन्म वहीं हो जाएगा फिर 'सुखावती' में उसे पिला मिलेगी उसका सुचार होना और मुक्ति की राह पर उसे पहुँचा दिया जाएगा। भारतीय भक्ति-आन्दोलन के साथ इसकी समानता स्पष्ट है। इसके बार में एक और बात महत्त्वपूर्ण है। जोन्साह् अथवा ई त्साह् दोनों ने ही इसके बारे में कोई ज्ञान न था। अमिताभ बुद्ध के प्रति प्रेम और भक्ति की भावना पूर्वी देवतासिद्धांत के कलात्मक एवं सवेदनात्मक प्रकृति के सबका अनुकूल थी। पश्चिमी स्वर्ग को—जहाँ पहुँचकर भक्त को सुख भ्रमरत्व प्राप्त हो सकता है—चीन जापान और तिब्बत ने अनेक सुन्दर चित्रों का आधार बनाया गया है।

चीन में उद्भूत अन्तिम सम्प्रदाय का जन्म कांजीनरैय के राजगुरु नन्दबोधि के

बज्रयान धर्मवा मंत्रयान उपदेशों से हुआ था। बज्रबाधि भीमंश्वर में निवास करने के पश्चात् चीन पहुँचि के और वहाँ उन्होंने ७१०-७३२ ईस्वी तक अपने बौद्धधर्म का ज़िमें अनेक तानिक मंत्र भी ब उपदेश दिया। इसका व्यापार है एक आधिकारिक ब्रह्मचर्या धर्मवा 'महावीरोचन' का सिद्धान्त। इसके अनुसार महावीरोचन अनेक रूपों और आकारों में जन्म लेते हैं। इस सम्प्रदाय की स्थापना और प्रसार में वज्रबाधि के शिष्य समोषवज्र (७२४-७७४ ईस्वी) ने उनकी बहुत सहायता की (समोषवज्र ने सो-यड हो-सी और लिपाङ-बाऊ में उपदेश दिए थे)। सो-यड के निवास 'वेन धम्ममठ' से प्रतापित एक संकीर्ण बौद्धधर्मों का सृजन जनमाधारक के लिए होता रहा। इन धर्मों की रचना 'बौद्ध मन्दिर' नामक बोली में होती थी। जापान का कोबो-दाइजी शिरा सृष्टि करने के उद्देश्य से समोष के पास गया और उसने जापान में नन्धबाद का प्रसार किया। समोष के ही एक शिष्य चीनी शिष्य हुई-कुओ से जापानी साधु कुकई (७७४-८१२ ईस्वी) ने आठवीं शताब्दी के अन्त में बज्रयान के सिद्धान्त सीखे तथा उन्होंने जापान में 'शिणो' सम्प्रदाय की स्थापना की। 'शिणो' आज भी बूज लोकप्रिय है। इसमें तानिक धर्म के बीच में वीरोचन को बिकाराया गया है—सतिष्ठाती सृष्टि जिसमें हथ और अहंत्व वस्तुएं समाहित होती हैं और पूर्णता प्राप्त करती हैं।

चीन में बौद्ध कला

बौद्धधर्म में 'महासूत्र'—धर्मवा बाह्य संचार की रिक्त और अवास्तविक प्रकृति—पर जोर दिया गया था। इसी कारण इसके द्वारा चीनियों के व्यावहारिक मस्तिष्क का पुनर्निर्माण हुआ तथा अन्ततः चीनी संस्केपण हुआ कि निष्क्रियता में सर्वत्र सक्रियता होती है और सक्रियता में सर्वत्र निष्क्रियता। यह सिद्धान्त संसार और निर्वास की एकत्वकता के भारतीय महायान सिद्धान्त के समान है। सम्पूर्ण वाचि की विचारधारा के इस रूपान्तर का चीनी कला और साहित्य पर स्थायी प्रभाव पड़ा। नन्धर की यूनानी बौद्धकला ने सर्वप्रथम चीनी मूर्तिकला में मानव आकृति का प्रवेश किया और उसे उच्चतम नैतिक और प्रदान किया। छः राजवंशों के बेई-युय में मुन-काऊ और मुङ-मेन की युद्धों में मूर्तियों का सृजन हुआ। ये मूर्तियाँ वास्तव में अत्यन्त वाच और वियान के निम्न बुद्धों और बोधिसत्वों के चीनी रूपान्तर थीं और जिन अन्ध-साधक पहारों को काटकर उन्हें बनाया गया था उन्हीं पर्वतों का एक भाग बन गईं। लेकिन चीनी-मूर्तिकला का सर्वोत्कृष्ट काल साङ्-युय (६१८-६०७ ईस्वी) है। चीन के बुद्ध में कथम मानवीय आकर्षण और सीन्ध तथा साम्प्रदायिक समुत्तता और पारलौकिकता का उत्कृष्ट सामंजस्य स्थापित हो गया। इस बंध के मितिविज्ञों में काल्पनिक चीनी स्वर्ग के आकाशीय धर्मोन्मोदितस्वर्गों और धर्मिताओं की रचना में मूर्त और धर्म मूर्त विचार का और अधिक प्रभावशाली संयोग देखने को मिलता है।

चीन में बौद्धकला के तीन मुख्य कम्प ब मुन-हुपाङ मुन-काऊ और मुङ-मेन। इनमें से मुन-काऊ और मुङ-मेन अत्यन्त प्राचीन मान्य पड़ते हैं यद्यपि मुन-हुपाङ चीन की परिचयी सीमा पर, कारवा-मानों के मिलन-स्वम पर स्थित है। मुन-काऊ बेई-

वंश की प्रथम राजधानी ने समीप सांसी प्रवेश में ता-कुङ के पास स्थित है तथा मुङ-मेन सो-याङ के पास है। अनुमान है कि युन-काङ की गुफाओं को ३१८ और ४११ ईस्वी में छोड़ा गया होगा। मुङ-मेन की गुफाओं की खुदाई सांसी से राजधानी सो-याङ स्वतन्त्र रित होने के बाद ही हुई थी। पांचवीं और छठी सताब्दी ईस्वी में बेईवंश के शासन काल में ही गुन हुआङ में अनेक मन्दिर छोड़े और बनाए गए।

'बेईवंश का इतिहास' में लिखा है कि उत्तरी बेईवंश के सम्राट बेन चेङ के समय में मुङ-काङ पहाड़ पर पांच विद्यालय मुङ काटने का विचार एक भारतीय भिक्षु तान-माओ ने सम्राट के सामने रखा था। सबसे बड़े मुङ की ऊँचाई सत्तर फुट की और सबसे छोटे की साठ फुट। ये मूर्तियाँ संसार की विद्यालयतम मुङ-मूर्तियों में से थीं और इनकी प्रेरणा स्पष्टतः बमियान की मूर्तियों (१२० और १७३ फुट ऊँची) से मिलती थी। मुङ की विद्यालय मूर्तियाँ सर्वप्रथम तीसरी और चौथी सताब्दी ईस्वी में जब महायान बौद्धधर्म का प्रचलन प्रसार हो रहा था बनी थीं। गुन-हुआङ में 'एक हजार बुद्धों की गुफाओं' में मुङ की विद्यालय मूर्ति १ फुट से अधिक ऊँची है। ताङ-वंश के एक धर्मिनेश के अनुरोध पर एक भारतीय भिक्षु जो-स्तुन ने ६६१ ईस्वी में पहला मन्दिर—'अनुसनीय ऊँचाई की गुफा'—बनवाया। शायद उसे भी बमियान से ही प्रेरणा मिली होगी। इन विद्यालय मूर्तियों में हमें दो चारणाओं के सम्मिश्रण के दृश्य होते हैं। एक है मुङ को ब्रह्माङ का चक्रवर्ती मानने की भारतीय धार्मिक धारणा और दूसरी है सम्राट को देवता 'कोस्मा क्रटर' बना देने की यूनानी राजनीतिक धारणा। पंचाब के उत्तर पूर्व में १० फुट ऊँची नैबम की एक काष्ठ-मूर्ति की बात ज्ञानसाहू ने लिखी है। युन-काङ में सिङ्-ओ-जू की सीमा के भीतर पांचवीं गुफा की कठी हुई प्रस्तर-मूर्ति शायद चीन की सर्वाधिक सुन्दर मूर्ति है। मुङ-मेन की पहाड़ी कन्दराएँ युन-काङ की कन्दराओं से छोटी हैं। इन विद्यालय कन्दराओं की चारों दीवारों और छत पर हजारों मुङ उकड़ी हुई प्रस्तरएँ, हिन्दू देवता और संरक्षक तथा फूलों की सुन्दर डिब्बादमँ छोड़ी गई हैं। मुङ-मेन की अधिकांश कन्दराओं में उन्हें छोड़ने का समय मूर्तिकारों और जनजातों के नाम तथा खुदाई का वर्षन हमें मिलता है। सबसे पुराना धर्मिनेश उत्तरी बेईवंश के सम्राट सियाओ-येन के 'ताई-हो' के सातवें वर्ष (४८१ ईस्वी) का है। दोष कन्दराओं का निर्माण उत्तरी बेईवंश डाप सुई और ताङ कालों तक में हुआ था।

गुन-हुआङ युन-काङ और मुङ-मेन की कन्दराओं में कला और वस्तुकला के विचार से कई बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम बौद्धधर्म के प्रसार के साथ चीन में प्रचलित सम्भारक्षत्री का परम्परागत भीषी सीमा पर प्रभाव। अत्यन्त सम्भारक्षत्री पूर्णतः उत्तरी बेईवंसी में मिला गई। द्वितीय गुप्तवंशी का प्रभाव जो उत्तरी बेईवंसादृष्टियों में बहुत कम या मुईवंश में अधिक हुआ और ताङ-काल में तो यूँव स्पष्ट हो गया। 'द सेट्रेड ओएक्सिड' में मिला जाई० बी० बिरोष्ट ने लिखा है "ऐसा समझा है कि चट्टानों को काटकर बनाए गए बौद्धमन्दिरों की एक शृङ्खला भारत से मध्य-एशिया होकर कम से कम कांगु प्रांत में काग्याङ के दक्षिणस्थित पर्वतों तक चली गई है। इनके अलावा कन्दरा-मन्दिर चीन के मध्य भागों में भी पाए गए हैं।" गुन हुआङ और युन-काङ कन्दराओं के निर्माण

और सम्राट के लिए उत्तरदायी भारतीय विधुधर्म-सो-स्मृति और मान-यापो-को वास्तु
कला तथा सुविधता का बहुवृत्त मान व्यवस्था रहा होगा। इसी युग के कुछ भारतीय विचारकों
के नाम हमें सामने हुए हैं। ये हैं छात्रयकुल कुलकीर्ति और कुमारबोधि। काश्मीर, गुजरा
और कुच के कारको-मार्गों द्वारा सम्राट मेघाद और तिब्बत तथा समुद्री मार्ग द्वारा
सम्राज्य और तिब्बत को गुप्तकालीन भारतीय कला और पशुधर्म ब्रह्मा की मिट्टी में
जम गई।

विश्वशांति की प्राप्ति बौद्धधर्म

बौद्धधर्म के निरालीनता के कारण उपयोग योग्य-आध्यात्म में किया। योग्य
साधनात्मक उस समय का सबसे बड़ा साधनात्मक या धर्म या सुदूरपूर्व तथा सुदूर पश्चिम को
मिलानेवाला प्रभावशाली स्रोत। पान्थ टारटारिक की स्थापना में चीन सम्राट और साधकों
मानवों का विनाश हुआ था किन्तु धार्मिक की बात है कि उसीके द्वारा एक बौद्ध विश्व
शांति की प्राप्ति होगी। किन्तु ऐश्वर्य की सत्ता की क क्षमता में युद्धात्मा (१२१४-१२१४
ईस्वी) की मृत्यु हो जाने पर योग्य-आध्यात्म धर्म धर्म हो गया और उससे साव ही
हुए गए उसका द्वारा एशिया और यूरोप के बीच स्थापित धार्मिक धार्मिक राजनीतिक
और वैज्ञानिक सम्बन्ध। इस प्रकार, जब यही धर्म में विश्व-शांति का विकास प्रारंभ
ही हुआ था और जब चीन पूर्वी एशियामुह भारत में और भूमध्यसागरीय देश सभी
एक ही धार्मिक व्यवस्था के सम्बन्ध में थे तभी बौद्धधर्म द्वारा विश्वशांति-स्थापना
की शक्ति प्राप्ति होगी।

ऐश्वर्य की सत्ता के बाद एशिया के भूभाग पर बौद्धधर्म सक्रिय धार्मिक वस
गई रह गया। इसके कारण सांस्कृतिक नहीं राजनीतिक के। दक्षिणी सुदूरपूर्व के देश
पान्थियों (११२७-१२०६ ईस्वी) के शासनकाल में जब सम्राटों के शासनको के कारण
साधनात्मक की राजधानी हुआ है तब ही बौद्धधर्म पर मिलनेवाले चीनी लेखकों की
संख्या तो बड़ी किन्तु एक भी भारतीय भिक्षु चीन नहीं गया। उत्तरी चीन में मुगल
धर्म या योग्यधर्म (१०८-१३६८ ईस्वी) के शासन में साधना बौद्धधर्म प्रसारित।
चीन में किसी भारतीय भिक्षु द्वारा चीनी भाषा का अन्तिम संस्करण या सा-सो-या कुल
बौद्ध धर्म और साधना का संस्करण। दक्षिणी चीन में संस्कृतधर्मों के धर्मियों द्वारा किए
गए अनुवादों का प्रथम किया जाने लगा (१३१४)। गुप्तकालीन संस्कृत धर्मिकता में
बौद्धधर्म ध्यात है और उसमें विश्व की मुक्ति और रहस्यात्मकता तथा मानवजीवन की
निरंतरता और अनास्तित्वता की भावना स्पष्ट है। तथा मुक्तकालीन कविता में बौद्ध
धर्मिता और सम्युक्त प्राकृतिक जीवन की अथमयुक्त प्रकृति के साग का समावेश है।

समसामयिकों द्वारा भारतीय भिक्षुओं का चीन जाना विस्तृत रूप में हो गया था
फिर भी बृहत्तर चीन में बौद्धधर्म धर्म भी प्रभावशाली था। संतोसिया ने बौद्धधर्म स्वीकार
कर लिया तथा अविवाहित रहने की प्रथा शुरू प्रभावित हो गई। उस बहू हुआ कि
कुत्सार, जयहू जयहू मठधर्माली जाति एक स्थान पर जमकर बड़ी-बड़ी करने ऊँट
होने और पशु चरानेवाली धार्मिक जाति बन गई। इससे चीन को धार्मिक धार्मिक

और राजनीतिक लाभ हुआ। १५७० ईस्वी में चीनी कूटनीतिज्ञ वान-चुन-तू ने चीन की सरकार को लिखा 'बौद्धधर्म में एकतावाद का विरोध पुनः-पुनः पाप स्वीकारोक्ति पर जोर है तथा सांख्यिक जीवन बिताने का अनुरोध है। यही कारण है कि हमें साम्राजवादियों को बौद्धधर्म में बीसित करने का महासंभव प्रयत्न करना चाहिए।' मिस्त्रबंघ (१९६८-१९४४ ईस्वी) ने जानबूझकर तुकिस्तान और मंगोलिया के अस्तित्वमान और लड़ाकू साम्राजवादियों को बौद्ध बनाया और वे आतिथ्यप्रिय पड़ोसियों में बल्लभ गए। चीन सम्मता के सीमावर्ती आसन्नदेशों तक पहुँचनेवाला बौद्धधर्म भारतीय नहीं चीनी था। इसका कारण यह था कि कुम्भाका की मृत्यु के पश्चात् मध्य-एशिया की वासियों के आपसी संबंधों के कारण पूर्वी-पश्चिमी कारवां-मार्ग एकदम बन्द हो गए और भारत के साथ प्राचीन स्वसीम सम्पर्क भी समाप्त हो गया। बृहत्तर भारत तथा पूर्वी द्वीपसमूह में एशिया को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य बौद्धधर्म आगामी दो और शताब्दियों तक करता रहा। तब इस्लाम के आगमन से बौद्धधर्म के पाँच उल्लङ्घन हुए।

अध्याय १२ ओपनिवेशिक संस्कृति और कला हीमाक्षर भारत

दक्षिणी उपनिवेशीकरण का आरम्भ

गुलकाय में समुद्रपार दक्षिणी-पूर्वी एशिया में उपनिवेश स्थापित करने के भारतीय प्रयत्नों ने बृहत् प्रोत्साहन मिला। इनके कारण से पूर्वी बन्दरगाह साम्राज्य का नियंत्रण एवं राय बन्दरगाहों सहित बैजयन्ती और कम्पाणी पर पुष्ट-साम्राज्य का नियंत्रण एवं एक अधिक संस्कृत सम्पत्ता ने लिए व्यापक विनाश-वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए इटाली के साथ व्यापार का आरम्भ हो गया था जब राजा विजयसिंह ने श्रीलंका पर अधिकार किया और अपने नाम पर उसका नाम सिद्ध रखता। यह तथा कन्नानियों में बर्णित तथा अजन्ता के एक भित्तिचित्र में चित्रित है। फिर तीसरी शताब्दी ईसापूर्व में अशोक द्वारा जब यह साहसी मनु-समप्रचारकों ने सिन्धु द्वीप तथा सुबर्णभूमि (शायद इटालीया) की यात्रा की। महेश्वर और सन्निभा ने सिन्धु द्वीप में बौद्धधर्म का प्रचार किया तथा सोन और उत्तर सुबर्णभूमि पहुँचे थे। किन्तु पूर्वी द्वीप में सिद्ध गमनागमन का विकास सब प्रथम पाठबाह्य-साम्राज्य (२१८-७३ ईसापूर्व) में हुआ। कारण यह था कि पाठबाह्य साम्राज्य (गोधा) और कम्पाणी तथा ब्यास की खाड़ी पर बलकटक मनुनिपतनम् और बैजयन्ती (गोधा) और कम्पाणी तथा ब्यास की खाड़ी पर बलकटक मनुनिपतनम् और कोनारक बन्दरगाह उसके अधिकार में थे। प्रतिष्ठान (टासेमी) ने जिसे 'पैठान' कहा था के निवासी पुनाइस की साहसिक समुद्री यात्राओं की कथाओं से यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। समुद्र के साहसिक यात्रियों को समुद्रागुर' कहा गया था और कटाह कर्पूर सुबर्ण और सिन्धु जैसे पूर्वी द्वीपों के नाम भी सूच्य हैं। बौद्धधर्म 'मिन्हेस' में जिसकी रचना ब्रह्मरी शताब्दी ईस्वी के बाद नहीं हुई, सुबर्णभूमि में सुबर्ण की खोज का चित्र है। समुद्र पार करके सुबर्णभूमि पहुँचने के बाद लोग 'अता-पय' 'बाध-पय' और 'अकरी-पय' की कठिनायक यात्राएं करते हैं और आखिरकार एक नदी तक पहुँचते हैं जिसके तटों की बाधु सुनहरी है। बैजयन्ती और कम्पाणी के व्यापारी-कुमारों के साथ भी हुआ साक्षात् होता है, जिन्होंने व्यापार से प्राप्त धन को कार्ती और कच्छी की मुद्राओं को खजाने में सजा दिया था। व्यापार के बाद क्रमशः उपनिवेशीकरण होने लगा।

दक्षिण-पूर्वी सागरों पर भारतीय प्रसार का इतिहास कम से कम दो हजार सालों—
१८२

पाँचवीं सताब्दी ईसापूर्व से चौदहवीं सताब्दी ईस्वी तक—जा है। धार० सी० मनुमन्त्र ने १३९५ के एक आचार्य ग्रन्थ 'नगर वृत्तधर्म' का एक चित्र किया है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि भारत के नवटिक गोकुलादि प्रदेशों से लोग जावा की राजधानी (सम्राट् कृतरत्न द्वारा १२६२ ईस्वी में स्थापित) मजपहित 'ग्रन्थिक सभ्या' में आते थे। वे मास सादक जहाजों पर आते थे। इन्हीं देशों से भिन्न और विद्वान् ब्राह्मण भी आते थे और उनका सरका किया जाता था। चौदहवीं सताब्दी के अन्त में भी मजपहित-साम्राज्य के प्रमुख शासनकर्त्ता (१३१०—१३८६ ईस्वी) ने पनवरन के सुन्दर मन्दिर में उत्कीर्ण शिलालेख (रिस्कीफो) का निर्माण करवाया जिसमें 'रामायण' और कृष्णायन के दुस्त्य प्रकृत हैं। अणुसर्वोत्कृष्ट काम में मजपहित-साम्राज्य (१२६४—१४७८ ईस्वी) ने दीर्घायु और भारतीय द्वीप समूह के सभी द्वीपों तथा मलय प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया।

द्वीपान्तर का भौगोलिक अर्थ

भारतीय उपनिवेशों और राज्यों से परिपूर्ण समस्त क्षेत्र को 'द्वीपान्तर भारत' कहा जाता था। पाणिनि के अनुसार 'द्वीप' का अर्थ है दो धोरण पानी से घिरा भू-भाग। अतः मलय प्रायद्वीप भी द्वीप ही माना जाता था। 'बामनपुराण' में भारतवर्ष के अन्तर्गत समुद्रान्तरित नव भेदों को 'द्वीपान्तर भारत' कहा गया है। "न भेदो वे नाम है इन्द्र द्वीप (बर्मा) कसेरुमत ठाण्णपर्ष (ताम्रपर्णी) गमस्तिमत नागद्वीप (नीकोबार) कटाह (केडह) सिंहल (श्रीलंका) वदण धववा बहिन्य (बोर्नियो) और कुमार। इतिहासकार सभी द्वीपों को पहचानने में सफल नहीं हो सके हैं। इसी प्रकार 'ब्रह्मांडपुराण' में प्राचीन जम्बूद्वीप में ही अनेक द्वीप (अर्थात् द्वीपों और प्रायद्वीपों) को सम्मिलित किया गया है। इनका जीवोत्पत्ति सम्बन्ध भारत के साथ है। इसमें लिखा है "ये सभी प्रायद्वीप बहिन्य द्वीप ध्वन (जिसे वरुण और बोर्नियो समझा जा सकता है) नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार के सैकड़ों द्वीप और प्रायद्वीप भारत में हैं। उन्हें ध्वं व द्वीप (जिसे कम्बुज और अम्बा समझा जा सकता है) यवद्वीप (जावा) मलयद्वीप (मलय प्रायद्वीप) गुजद्वीप ध्वं द्वीप (ध्वं द्वीप) बराहद्वीप (बरह द्वीप) कहा जाता है। जम्बूद्वीप में छः द्वीप ऐसे हैं जो अद्वाना तथा अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों से परिपूर्ण हैं।

'कथासरित्सागर' की २३वीं और २६वीं कहानियों में भी द्वीपान्तर का चित्रण है। शक्तिदेव कनकपुरी नामक एक नगर को जाने का इच्छुक है और सीर्षतपस एक संन्यासी से उसका पता पृच्छता है। संन्यासी उत्तर देता है "मेरे भेटे में इतना बड़ा हो गया हूँ फिर भी मैंने कनकपुरी का नाम आज तक नहीं सुना। बिबेदों के अनेक घामियों से मेरा परिचय है लेकिन किसीने भी आज तक इसका नाम नहीं लिया फिर भला मैं उसे कैसे बेल पाता। किन्तु मुझे विश्वास है कि वह द्वीपान्तर में ही होगा।" कनकपुरी मुन्नर्णभूमि (मलय द्वीप) भी हो सकती है और मुन्नर्णद्वीप (मलय प्रायद्वीप) भी। दूसरी जगह में जलपुर गारिकेस द्वीप कटाहद्वीप कर्पूरद्वीप मुन्नर्णद्वीप और सिंहल का भ्रमण-मार्ग वर्णित है। इसीसे अनुमान स्पष्ट और जस दोनों मार्गों से मुन्नर्णद्वीप पहुँचा जा सकता है। अतः इसे मलय प्रायद्वीप समझना चाहिए, सम्राज्ञा द्वीप नहीं। यद्यपि सम्राज्ञा में भी सोना खूब पाया जाता है।

बलाहावाद स्तंभ पर अंकित समुद्रगुप्त की सुप्रसिद्ध प्रशस्ति में सिद्धम के साथ 'सर्वेक्षीया' शिला है, जिसका स्पष्ट अर्थ द्वीपान्तर ही है। बलिषी सागरीय तथा बृहत्तर भारत के हिन्दू उपनिवेशों ने गुप्तसम्राट् को अनेक मेटे दी थीर अपने स्वतंत्र राज्या की स्वीकृतिस्वरूप राजकीय आभापना की मार्ग की तथा अन्त में सम्राट् व प्रति बड़ादायी प्रशंसित की। एष० राय चौधरी का कथन है कि अभिलेख में अमर बन्धनाम्नक-मम' विशेषण से पता चलता है कि पाम के समुद्री द्वीपों पर गुप्त-सम्राट् का नियमन था। कामिदासकृत 'रघुवच' (६ १७) में सींग के पुन व सद्यम म (जो मूलतः पूर्वी द्वीपों में पाया जाता था) द्वीपान्तर का उल्लेख है।

अनेक सार्व विहसम्भुतावेस्वीरेणु ताभीवनममरेणु ।
द्वीपान्तराभीतसवगपुष्परताहुतस्वेवमवा मरुज्जि ॥
द्वीपान्तर के अनेक आरम्भिक उपनिवेशीकरण मरुज्जिगराज का प्रमुख भाग था। चीनी इतिहास के अनुसार पुनकमिय जाबा या जाबा के एक बन्दरगाह का नाम है। अतः कमिगराज के साथ द्वीपान्तर का उल्लेख करना कवि की विशिष्टता का परिचायक है। इसी प्रकार कामिदास द्वारा अंकित धनुषदेव अथवा मर्मदा की भूमि (नर्बरा घाटी जिसकी राजधानी माहिप्पली थी) के राजा द्वारा 'बृहत्तर' द्वीप म ध्रुवों की स्थापना का प्रसंग धरपुञ्जित है। चौबीसताब्दी ईस्वी में कथाओं में उल्लिखित हिन्दू उपनिवेश निर्माता कौटिल्य के चौथे राजा मूलवर्मन द्वारा बोनियो में ध्रुवों की स्थापना वास्तव में हुई थी। सम्य है कि बोनियो में भारतीय वस्तियाँ भारत के भारतसागरीय तट पर बनीं हो।

१७३ ईस्वी में चीन से भारत आते समय ई लिङ्ग सञ्चय व्याकरण के अध्ययन से लिए गए माह तक मुमात्रा में उद्धृत था। उसने उस नाम के इस से अधिक उपनिषदों का उल्लेख किया है जहाँ सञ्चय-आम भारतीय आचार-विचार और वाचिक आचारा का प्रचलन था। इन उपनिषदों में मुमात्रा में भीमोग (भीविजय) जाबा म कमि (पुन कमि) बोनियो में महसिन और वेम्बुषा तथा कुमसुन बानी धीर मोमसुन द्वीप की शामिल है। उसने यह भी लिखा है कि बलिषी सागर के सभी द्वीपों को चीन में कुन-सुन कहा जाता था क्योंकि कु-सुन (अथवा कुन-सुन) के निवासियों ने सर्वप्रथम कोचीन धीर क्वाङ्गटोङ की यात्रा की थी तथा कुन-सुन की भाषा भीविजय में प्रचलित थी। इन द्वीपों में जाने वाले धीर उपनिवेश स्थापित करनेवाले भारतीयों को भी भीनियों ने यही नाम प्रदान कर दिया। साठवीं शताब्दी ईस्वी के एक संस्कृत-चीनी शब्दकोष का सम्पादन करते हुए पी सी० बागची ने कुन-सुन का संस्कृत समानार्थी 'जि-पात-म' दिया है और सिन्धु मेकी के अनुसार निपतन अथवा निपतम वास्तव में द्वीपान्तर ही है। बागची का सुझाव है कि कुन-सुन अथवा पोमोकेम्बोर (एक छोटा-सा द्वीप-समूह जिसे ताकाकसु ने अपने ई-लिङ्ग के संस्करण में कुन-सुन माना है) वास्तव में संस्कृत का 'जगद्वीप' है जो पहले प्राकृत अथवा मलम में बन्दर बना था। दो बातें द्रष्टव्य हैं। प्रथम मलय धीर प्राचीन कम्बोडिया में राजाओं अथवा नरेशों सामन्तों धीर अधिकारियों के नामों में 'कुन-सुन' अथवा 'मम' पदवी लगी रहती थी। द्वितीय इंडोनेशिया धीर बृहत्तर भारत के अनेक द्वीपों धीर लोगों के लिए कुन-सुन नाम — होता था। दोनों ही भारतीय प्राचीन

करण के स्पष्ट प्रमाण है। संस्कृत की द्वीपान्तर और चीनी के कुम-मुन का समाना-
सम्य आबाई भाषा में 'मुम्भन्तर' अथवा 'नुम्भन्तर' (अर्थात् भारत और चीन के बीच
भूमि) है। मध्य-एशिया के समान दक्षिण-पूर्वी एशिया के हिन्दू उपनिवेशों और राज्यों
नाम संस्कृत में थे।

सुदण-परिमोहन

घातवाहन-काल में भी औपनिवेशिक व्यापार और वाणिज्य में भाग लेनेवा-
ले कम दक्षिणभारतीय ही न थे। बृहत्कथा आतकों और मित्रिन्धपञ्च से पता चलता
है कि ईसा के जन्म से पहले और बाद की दो घटनाओं में भारतीयों को समुद्री व्यापार
और प्रत्येक में अत्यन्त धाने सगा था। भारत के विभिन्न भागों की अनेक कहानियाँ
और किंवदन्तियों में व्यापारियों सीधाराँ और 'सुवर्ण-प्रत्येपियों' के समुद्र-पार के दूर
रक्षा में रोमांचकारी कार्यों तथा उनके द्वारा शुरू देखों से जाई गई सम्पत्ति का वर्णन है।
इस सबसे स्पष्ट है कि सुवर्ण-परिमोहन ने द्वीपान्तर भारत के उपनिवेशीकरण को बढ़ावा
दिया। एक चीनी सातक अनुसार, तीसरी शताब्दी ईस्वी में भारत से कु-नान (कम्बोडिया)
की बापरी समुद्र-यात्रा में तीन या चार वर्ष का समय लगता था। किन्तु फ्राङ्कान (३६६-
४१४ ईस्वी) को जाड़े के अन्त्य मौसम में तापस्थिति से सिद्ध पटुचने में केवल पन्द्रह दिन
समय और तूफानी मौसम से सिद्ध से जाया पटुचने में समसम तीन मास जबकि उसे
बहाव का एक क्षेत्र करने के लिए एक द्वीप पर यात्रा भंग भी करनी पड़ी थी। सातवीं
शताब्दी में चीनियों से नागपट्टम् पटुचने में ई-सिंह को केवल दो मास लगे थे। पूर्वी
सागरों की यात्राएँ कम कठिनता से होती गईं तथा उनमें समय कम लगने लगा तो भार-
तीय व्यापारी मलय और पूर्वी द्वीपसमूह के बाजारों में बड़ी सख्या में पटुचने लगे।

ई-सिंह ने लिखा है 'चीनियों में सोना बहुत है। उसने निम्नलिखित द्वि-
उत्पादनों के नाम भी दिए हैं सुपारी (संस्कृत में पुष्पी) चायफल सबर और बैरस
कपूर। मुत्त-साम्राज्य का सम्पत्ति केवल और कसा-कीधन तथा व्यापार की समृद्धिवाची
परिस्थिति के कारण (और फ्राङ्कान का विवरण इसका स्पष्ट प्रमाण है) पश्चिमी और
पूर्वी दोनों वाणिज्यों का उत्पत्ति हुई। वास्तव में मुत्त-साम्राज्य का प्रसार गुजरात तथा
कर्नाटक से कांची तक पूर्वी तटवर्ती प्रदेश में हो गया जहाँ प्रसिद्ध बन्दरगाह और मंडिया
थी। इस प्रसार के कारण भारत और चीन के बीच छोटे चादी मसाने और सुपारी के
व्यापार में बृहत् उत्पत्ति हुई तथा द्वीपान्तर भारत में उपनिवेशीकरण तथा बस्तिया बनाने
को प्रोत्साहन मिला।

उपनिवेशीकरण व राजनीतिक कारण

उपनिवेशीकरण का कारण
और उपनिवेशीकरण का कारण
और उपनिवेशीकरण का कारण
और उपनिवेशीकरण का कारण

उत्पत्ति एक राजनीतिक कारण थी था मुत्त-साम्राज्यों
पूर्वों पूर्वों एवं क्षेत्र हूणों की पराजय के फल
राजनीतिक उन्नयन गुजरात और अस्तव्यस्तता और
तथा प्रजाकरण और हर्ष की कुछ बाद की

विशेष। पत-बी। (पट्टासाल) शरणीकोट (भेमुष्टक) किल्ला नदी के मुहाने पर
 घोड़ने के इरादे में के अनुसार मैसोमिया) समराजनी काशीपुरम् मामसपुरम्
 बाबाई-ति पर गृहर घषवा काशीपुरम्। पूर्वगामी घषगावृ घषिक
 प्रथम जाका में उपनिषदोंरा (प्राचीन दन्तपुर) से वर्मा का दक्षिणी इटा समरावती
 राम में निर्देश है कि पूर्व-पुनरुम् घीर कावेरीपट्टिनम् से मलय प्रायद्वीप तथा मलक्का
 ग्रन्थ के राजा राजिघ घाई की घीर पालेमनग घीर धीविजय घषका वीरियो घीर
 ग्रन्थ का पुनान नामक हिन्दू नर। कथासहित्यार्त् की एक कथा में एक व्यापारी
 गववा कुनान नामक हिन्दू नर। कथासहित्यार्त् की एक कथा में एक व्यापारी
 घ) की स्थापना का धारित्य-मन्त्रमन्त्र निम्न द्वीपों में जाता है नारिकेलद्वीप
 बिबात्र किया धीर वहाँ मोमवरा के शीघ्र घषका बदनक (मुमाभा के उत्तर में बाल्य)
 (देन) का ममार्षी दण्ड पानी भापा में पुन- (योमका)। यह पुनसागर का वही समुद्री
 माम न बिक्रान था। घष वर्मा घषका बाल्यका के घाटालिया में निहपुर (घाघुतिन
 (पत्नी घाटाली स द्वादी घाटाली के धारम्भ तक) के। व्यापारी घषनामा करते थे।
 घनेपण से पता चलना है कि भारतीय प्रभावों का प्रागमन के उत्तर में बदनते रहते थे।
 म हुआ। चीन के हानयुग तक की वस्तुएँ मिली हैं। हीम लेम्ब-ममावती (बाटान)
 प्रमाण पट्टे होने जा रहे हैं कि भारत घीर दक्षिण-पूर्वी एशिया के राजधानी)
 धार्मिक सम्प्रदाय की स्थापना सामान्यतः स्वीकृत समय से पहले हा चुकी थी। न-
 में सेलेने की योजने से नियन्त्रित प्रमाणित हो गया है कि दूसरी घाटाली ईस्वी में दक्षिणी
 हिन्दुओं ने भारतीय मस्तिष्क किन्ती मुकुट स्वागित हा चुकी थी।
 ईसा के पश्चात् गहरी घाटाली में घको घीर पट्टियों ने विषुवादी घीर पश्चिमी
 भारत में दूर तक प्रारम्भ किए घीर घाटाली-माप्राग्य के सङ्ग्रहों से घषने निर्गत्य
 घषन कर लिए। राजनीतिक घीर सामाजिक उत्पन्न-पुषल के कारण जिसका धारम्भ
 निष्ठु क मुहाम काठियावाड़ घीर पश्चिमी भारत में हुआ था घीर जो एक हजार वर्ष
 तक बायम रही मुद्रपूर्व में व्यापार घीर उपनिवेशीकरण को प्रोत्साहन मिला। राज
 नीतिक घीर धार्मिक स्थितियों के अनुसार यह प्रोत्साहन घटना-बदला रहा। दक्षिणभारत
 में पल्लव राज्य काय घीर कर (घाटों के पास जहाजी घटिक धार्मिक घी) के बार-बार
 होनेवाले घाघनी सघषों तथा वाकाटक मन्त्राटों घीर उत्तर में उनके उत्तराधिकारियों के
 बनाव के कारण मलय कम्बोडिया मुमाभा घीर जाका में गहरी घाटाली ईस्वी घीर दूसरी
 घाटाली ईस्वी के बीच सवप्रथम पल्लव उपनिषदों की स्थापना हुई।
 भारतीय उपनिषदीकरण के प्रमुक्त दौर

इस प्रकार दक्षिण-पूर्वी एशियाई व्यापार घीर उपनिवेशीकरण के विषय में
 भारतीय राजघरों के इतिहास का बड़ा मन्त्र था। कारण व्यापार घीर उपनिषदी
 करण दोनों या व्यापार या नौगल की काफ़ी परजहाजी प्रमुक्त घीर यह प्रमुक्त एक घटिक
 से दूसरी घटिक के पास पहुँचना रहा तथा घट्य में भारत से हटकर मुमाभा के हाव पहुँच
 गया जहाँ घाटाली घाटाली ईस्वी में रीसत्रों के महान श्रीविजय-माप्राग्य की स्थापना
 हुई इस साम्राज्य की जहाजी घटिक बहुत धार्मिक थी। ए० जी० कथारिष बल्म ने

करण के स्पष्ट प्रमाण है। संस्कृत की द्वीपान्तर घोर भीनी के कृत भारतीय कथा के शब्द जाबाई बापा में भूम्यन्तर' अथवा 'नुसन्तर' (अर्थात् भारत की) भूत (पाँचवीं से भूमि) है। मध्य-एशिया के समान दक्षिण-पूर्वी एशिया के हिन्दू ७५ - ६० ईस्वी) नाम संस्कृत में थे।

मुसल-परिभोहन

दुर्गरी में पाचवीं शताब्दी
। यह हम आसानी से पता
प्राचीन पुत्रान जाबा घोर

घातबाहन-काल में भी औपनिवेशिक व्यापार, के पश्चात् मलय घोर जाबा में केवल दक्षिणभारतीय ही न थे। बृहत्कथा जातकों की ताई भूतिक्ता स्यादह्वी घोर है कि ईसा के जन्म से पहले घोर बाद की दो ५० भित्तिचित्रकला घोर घन्ट में बारहवीं घोर प्रक्षेपण में घानन्द आने लगा था। एकता घोर उखावट पर पाल-साम्राज्य की घोर किंवदन्तियों में व्यापारियों की आम मलय प्रायद्वीप घोर मुमाबा में गुप्त पम्पय हसी में रोमाञ्चकारी कार्यों तथा संस्कृति का जन्म हुआ। बर्मा घोर स्याम में पाल प्रभाव इस सबसे स्पष्ट है कि मुद्र पश्चिमी क्षेत्र में बौद्धधर्म घोर वैष्णवधर्म प्रचली तरह स्थापित दिया। एक भीनी छोटी घोर कम्बोडिया में धनदय उपर्युक्त दोनों बर्मा का इतना बोर की बापसी ता तिम-पुत्रा करनेवाले तांचिक शात-वैचसम्प्रदाय का विकास हुआ। नहुमान घोर बध्यमान बौद्धधर्म तथा बंगाल घोर उड़ीसा से आगत वैचधर्म मुमाबा घोर जाबा में खूब फूले-फले तथा वीमेन्द्रबाह के शासकों ने उन्हें पूर्ण सहयोग दिया।

बौद्ध वीमेन्द्र-साम्राज्य का अपना प्रमुख क्रमशः मुमाबा के अतिरिक्त सम्पूर्ण मलयेशिया जाबा कम्बुज घोर चम्पा पर हो गया तथा आठवीं शताब्दी ईस्वी में वह बहुत उत्तिशाली साम्राज्य बन गया। अनेक अरब-व्यापारियों ने लिखा है कि भारत घोर भीन के शानक इस साम्राज्य का सम्मान करते थे। एक अरब-व्यापारी इब्न रोस्तेह (९ ईस्वी) ने लिखा है 'वह (अर्थात् वीमेन्द्र साम्राट्) द्वीपों का बासी है इसलिये उसे भारत के महान्तम साम्राज्य में से एक गही माना जाता। उससे अधिक उत्तिशाली घोर सम्पत्ति वाली कोई अन्य साम्राट् नहीं है घोर न किसीकी आभयनी इतनी है।' सी बर्मा तक वीमेन्द्र-साम्राज्य घोर जोष-साम्राज्य (जिसमें कभी-कभी मलय निजाबार द्वीपसमूह घोर चीसका भी सम्मिलित होते थे) के बीच ब्याप्त की छाडी पर प्रमुख के लिए पुत्र होता रहा जिसमें अन्ततः वीमेन्द्र-साम्राज्य की विजय हुई घोर पूर्वी सागर पर उसकी बहाबी स्पेण्डा सगमम शात शताब्दियों तक बायम रही।

पूर्वी प्रसार के प्रमुख मन्दरगाह घोर समुद्री-मार्ग

जिन प्रविद्ध भारतीय बन्दरगाहों से पूर्व की यात्राएं हुआ करती थी उनका नाम है बंगाल की खाड़ी पर स्थित ताग्रलिप्ति (जातककथाया घोर 'कजागरिस्माय' में इगका शिक है) उड़ीसा में जलिय की राजधानी वल्लपुर (दन्तोन) कोपाज अथवा कोपाज नगर (टालेर्मा क अनुसार कलगर) घोर बेलि-सस (ह्लनसाड द्वारा दमित एरम्ब पस्त) चंजम जिसे में पलीरा (पलुर) गोदावरी के मुहाने पर मुद्रु (कोरुडुर) काल

१८४

घोस (कोष्टकोशादृशा षष्ठ्यात्) धरणीकोट (धेनुकटक) हिन्दुता नदी के मुहाने पर
ममुनीपतम् (टालेगी के धनुषार मीथोभिया) धमरावनी काशीपुरम् मामन्सपुरम्
धौर कावेरी के मुहाने पर पुहर भयबा कावेरीपद्मिन्म् । पूर्वगाभी धपेसाहूत पक्षिक
प्रसिद्ध समुद्री-भाग मे पत्तोरा (प्राचीन दम्तपुर) से बर्मा का दक्षिणी टंटा धमरावती
ममुनीपतम् (भानकटक) काशीपुरम् धौर कावेरीपद्मिन्म् से समय प्रायद्वीप तथा ममक्का
जसदमकमध्य होकर दक्षिण की धौर पालेमवग धौर श्रीविजय भयबा बोनियो धौर
ताम्रमिषि तथा मङ्गोल से द्वीपाखर । 'कबासरिसागर' की एक कबा म एक व्यापारी
चन्द्रस्वामी धपमी पूर्व-यात्रा के दौरान कमरा निम्न द्वीपों में बाठा है मारिकन्द्वीप
(निबोबार) कटाहद्वीप (कट्टवह) कर्पूरद्वीप भयबा वदख (मुमाचा के उत्तर में बास्य)
मुनवद्वीप (मुमाचा) धौर धन्त म सिंहलद्वीप (थिसका) । यह पुनवसागर का बही समुद्री
मार्ग है जिसको ताम्रमिषि से धौर ईसा की प्रारम्भिक छताम्बियो म सिंहपुर (धामुनिव
सिपुर) धौर दम्तपुर (धामुनिक दम्तम) से रवाना होनेवाले व्यापारी धपनामा करते थे ।
पूर्वी बन्दरगाह जिनपर भारतीय व्यापारी उतरा करते थे वदमते रहते थे ।
मे मे थोलेन (श्रेय) मवबाम की बाड़ी के उत्तरी भाग पर मुबम्मावती (बाटोन)
तकुमप (टालेमी द्वारा निर्दिष्ट प्राचीन तकोल) गगानगर (मध्य-मलय की राजधानी)
ममय प्रायद्वीप में कटाहकदरम् भयबा कट्टवह (टालेमी के धनुषार कोवत भयबा कोर्वह,
तमिस संयम-साहित्य मे कसवम 'कबासरिसागर' में धम्मार निर्दिष्ट तथा ई-सिंह
द्वारा भी निर्दिष्ट) कमलांग (झेगसाह का जिया-मो-सं-किया धामुनिव मिमोर)
मुमाचा में श्रीविजय भयबा कोवे भयबा पलेमवग जावा में पूर्व कसिय कम्बोदिया
में टेलिकिम धौर चीन में कुरु-इ ।
सावनी छताम्बी म ई-सिंह के विवरण के धतमय नदी के
मे निम्नलिखित स्थानों पर कसता (कसता) का
कसता है) चीन के ई-सिंह के विवरण के धतमय नदी के

सावनी सतावनी मई-तिरहुँ का विवरण के अनुसार भीन से भारत की सागर-यात्रा में निम्नलिखित स्थानों पर रचना पड़ता था (१) धीमोज (जिसे धीविजय समझा जा सकता है) भीन से बीस दिन की यात्रा के पश्चात् (२) 'क-न' (जिसे कटाहचरम् समझा जा सकता है) से दस दिन की यात्रा के पश्चात् (३) निकोबार द्वीप (नकबरम्) से एक मास पश्चात् नामपतम् (नेपटम) (४) निकोबार द्वीप (नकबरम्) से एक मास की यात्रा के पश्चात् गंगा के मुहाने पर स्थित ताम्रसिन्धु । भारत से भीन की बापवी यात्रा के बारे में ई-तिरहुँ का विवरण इस प्रकार है (१) ताम्रसिन्धु से 'क-न' दो मास की यात्रा (२) वहाँ से एक मास की यात्रा के पश्चात् धीमोज प्रथमा धीविजय धीर (३) धीमोज से भीन में कटाह-नू तक लगभग एक मास की यात्रा । ताम्राट् हर्ष ने छोतराट् से पूसा कि वे किछ रास्ते में भीन बापस जायें धीर कहा बाप दलिणी सागर मार्ग से बामा चाहें तो राज्य-कर्मचारी बापके साथ जायें । ताम्रसिन्धु धीविजय धीर कैप्टन प्राचीन बन्दरगाह धनेक शताब्दियों तक निवास व्यापार-स्वस धीर ज्ञान केन्द्र बने रहे । वहाँ भारतीय धीर-भीनी व्यापारियों विद्वानों धीर यात्रियों की उपस्थिति सर्वत्र रही थी । इससे भारतीय धीर-भीनी दो बड़ी सम्प्रदायों के बीच बौद्धिक धीर साम्यात्मिक अन्तर्गम सम्पन्न स्थापित होने में धीर अधिक सहायता मिली ।

प्रशान्त महासागर का दूसरा भारत

पूर्वी सागर में भारत और चीन के बीच एक दूसरे भारत—द्वीपान्तर भारत—का उद्भव भौगोलिक और सांस्कृतिक दोनों प्रकार से हुआ। इसमें हिन्दू और बौद्ध ज्ञान तथा संस्कृति के सुप्रसिद्ध केंद्रों की स्थापना हुई। एक प्रकार से कहा जाए तो भारत प्रायेण रास्त पर चीन से मिलन पहुँच गया। द्वीपान्तर भारत में निम्नलिखित राज्य सम्मिलित थे—फुतान (प्राचीन शम्भु) हरिपुञ्जय धनवा सम्भु (उत्तरी स्याम) द्वाववती (मध्य-स्याम) कसिम (चीनी भाषा में हासिंग पूर्वी जावा) धीविजय (दक्षिण-पूर्वी सुमात्रा) पन-पन (बन्दन की काड़ी पर स्थित) सक्सुक (बंदर और पेरक) और तन्धसिंग (पूर्वी मलय)। सम्भु हरिपुञ्जय द्वाववती फुतान धीविजय कसिम और मिगोर (नगर धीमराज) में बौद्ध धर्मग्रन्थों का पठन-पाठन अत्यन्त कुशलतापूर्वक होता था इसलिये किसी चीनी भिक्षु का धीमराज राजमिष्टि मालवा घूमना बतानी जाने की आवश्यकता न रह गई थी। ई. सिद्ध पांच साल तक धीविजय (चीनी भाषा में गिहसी) कोहिह धनवा सक्सुक म फोरो) में ही रहा और वहाँ के बौद्ध वातावरण में भारत से अपने साथ साथ सम्भुधर्म का अनुवाद करता रहा। यहाँ 'एक हजारसंनधिक बौद्ध भिक्षु हैं जो अध्ययन और सत्कारों में लगे रहते हैं। बिम्बुम भारत के समान वे अत्यन्त समृद्ध विषय का विवेचन और उसपर विवाद करते हैं। नियमावली और धार्मिक कृत्य भी भारत के समान हैं। चीना नागरिकों अथवा यात्रियों को गंगा किनारे की बौद्धधर्म की भूमि पर ज्ञान की आवश्यकता भी न थी क्योंकि पश्चिम बौद्धों की स्थापना सातवादी में हो गई थी तथा जम्पा कम्बुज देश और ओरोहुदुर के मन्त्रियों और स्तूपों के बुद्ध और बोधि मत्वा से उन्नी प्रकार प्रेरणा मिल सकती थी जिस प्रकार सारनाथ मधुग और मज्झिमा के बुद्धों और धार्मिकता से। पहले की शताब्दियों में मध्यएशिया के तबसिस्तानी तमरों कुछ छोटे-छोटे और कामगर के मठा में बौद्धधर्म के प्रसार में जो प्रयास किया या उसी प्रकार जावा सुमात्रा और द्वाववती के मठा धर्म करने लगे। इतना धन्य है कि बर्मा मलय और चीनका ए सुमात्रा व जावा तक और फिर सुमात्रा व जावा से जम्पा और कम्बुज तक द्वितीय भारत के विकास में कई शताब्दियाँ लग गईं, जिनके दौरान भारतीय राजाओं ने बीरता का प्रदर्शन किया भारतीय व्यापारियों ने अद्भुत साहस का परिचय दिया तथा भारतीय भिक्षु-यात्रियों की धार्मिक धास्ती धारित रही।

दक्षिण सामन्त ब्राह्मण पुजारी बौद्ध भिक्षु और यिजुषी तथा वैश्य व्यापारी सगल्लार पूर्व की यात्रा करते रहे। उन्होंने ही सर्वप्रथम उपनिवेशों और बस्तियों की स्थापना की और उन्हें बढ़ाया। इसी उपनिवेशों से धीमरा, फुतान जम्पा पन-पन धीविजय और मज्झिमा जैसे विद्यालय साम्राज्यों का जन्म हुआ। स्थानीय विद्वानों अथवा चीनी इतिहास से हम अनेक प्रारम्भिक हिन्दू धर्मका के नाम मासूम हुए हैं। उनमें से कुछ हैं भाग्य प्रायद्वीप में पहलू के सगल्लु (हुमरी शताब्दी ईस्वी) उमका पुत्र यमवतो (भायवत्त) और धीवामवर्मा (धोववी शताब्दी ईस्वी) पश्चिमी जावा में दक्षवर्मन (हुमरी शताब्दी ईस्वी) कम्बुज (अथवा आधुनिक कम्बोडिया) में जोजिम्प (पहली

छताम्नी ईस्वी) चम्पा (पद्मका प्राधुनिक धम्म) में श्रीमार (हुसरी छताम्नी ईस्वी) ।

होमसाह के समुसार, कामरूप (धम्म) की सीमा से परे प्रथम महान हिन्दुगम्प
सीमार का पूरा राज्य था । प्राचीन प्रोम (याक्ता) के समीप ४०० वम सीस के क्षेत्र में
इस राज्य के राजदर हैं । यहाँ की खुदाई में अनेक ताबीज मिली है जिसपर छड़ और
उनके जीवन की घटनाओं के चित्र खुदे हैं । इनके प्रतिरिक्त सस्कृत पासी मिश्रित पासी
और सस्कृत तथा प्यु (एक निष्पत्ती-बर्मी जाति) की भाषा में कई अभिलेख मिले हैं ।
इनका समय पाँचवीं से सातवीं छताम्नी ईस्वी तक है । एक महत्त्वपूर्ण प्राप्ति मारमर में हुई
है । यह है एक प्रस्तर-स्तम्भ जिसपर कुछ और उनके दो चिह्नों को दिगमार्था गया है ।
प्यु और सस्कृत भाषाओं में इसपर लिखावट है किन्तु इसका समय निर्दिष्ट नहीं किया
जा सका है क्योंकि बर्मा में पुरस्तार विमान अभी धारमिक व्यवस्था में हो है । समय है
कि पाँचवीं छताम्नी ईस्वी से बहुत पहले चायल तीसरी छताम्नी ईस्वी में बौद्धधर्म और
ब्राह्मणधर्म का प्रसार बर्मा तक हो गया था । बर्मा में खुदाई में प्राप्त प्रस्तर लिखा पर अक्षित
पूजकों के समूहों के चित्र तथा साँची और भारहुत के रिभीकों में अद्भुत समानता है ।
मारवा और मरगुई तथा धराकान में अनेक ब्राह्मण-भूतियाँ मिली हैं जिनसे पता चलता
है कि ईसा पूर्व की धारमिक छताम्नियों में हीनयान बौद्धधर्म और ब्राह्मणधर्म साथ-साथ
पमये थे । छताम्न जयचन्द्रवसन के एक अभिलेख में जो सातवीं छताम्नी ईस्वी का माना जाता
है लिखा है कि उन्होंने अपने गुरु के आदेश पर कुछ की एक मूर्ति की स्थापना की की ताकि
अपने माई हरिविक्कम के साथ उनके अन्धे सम्बन्ध बने रहें । अभिलेख में यह भी लिखा
है कि छताम्न ने धम्म-बगल दो नगर भी बसाए थे । प्राचीन दीक्षक का एक भाग वीक
पनोम्पो धर्मवि बिष्णु का मन्दिर कहा जाता था ।

एक धम्म हिन्दुगम्प का नाम का रमञ्जवेध (वसिणी बर्मा) । चमदेवीवम
अथवा चमदेवी का इतिहास से पता चलता है कि रमञ्जवेध के राजा ने लखे अथवा ताप
गुनी की राजकुमारी चमदेवी के साथ विवाह किया था । ६९९ ईस्वी में एक धर्मप्रचार
धर्मिमान की नेत्री बनकर यही हरिपूज्य अथवा लघुत (मध्य-स्याम) पहुँची और वहाँ
उसने पाँच बौद्धमठ स्थापित किए । उसके दो बेटे स्याम के दो हिन्दुगम्पों हरिपूज्य और
सम्यं (केलन) के राजा बने । लखे की चमदेवी ने स्याम में एक और प्राचीन नगर
धम्मबंगलपुरी (सम्पांग भूभाग) की नींव रखी । बैकाल से अस्सी मील उत्तर स्थित लखे
अथवा सोपबुरी धर्मिक प्राचीन है । रेजिनाल्ड जी ने के समुसार सोपबुरी तथा धम्म-स्याम
के धम्म स्तानों में प्राप्त स्मैर-पूज दीसी की बौद्ध मूर्तियों में कुछ दीसी ने स्पष्ट दर्शन होते
हैं और वे धर्मिक से धर्मिक छड़ी और सातवीं छताम्नियों की हैं ।

होमसाह और ई-लिह में द्वीपाखर भारत में दीक्षक और ईशानपुर (स्मैर-बंग)
क बीच एक राज्य का नाम मिला है 'ओ-नो-यो-टी' अर्थात् ब्राह्मणों काठियावाड़
के प्रसिद्ध नगर डूल्हा का प्रीतिनिवेशिक समतुल्य । यहाँ की धर्मिकांश मूर्तियों का
सामान्यतः पाँचवीं और अस्सी छताम्नी ईस्वी क बीच स्थापित किया गया था । उनपर
मुष्टकालीन मूर्तियों का स्पष्ट प्रभाव है । यह प्रभाव चायल यहाँ से पुनान अथवा प्राचीन
कम्बोडिया पहुँचा ।

प्रत्येक स्थान पर ब्राह्मण-संस्कृति बौद्ध-संस्कृति से पहले पहुँची। हमें याद भी यही करनी चाहिए। इससे हमें यह भी मालूम होता है कि उपनिषदों का प्रारम्भ कैसे हुआ था। किन्तु मये भारतीय सामाजिक वातावरण में ब्राह्मणधर्म की सामाजिक प्रतिष्ठा और पुनर्करण की प्रवृत्ति समाप्त हो गई। मलय प्रायद्वीप से बोनियो और सुमात्रा से अन्ततः तक के सम्पूर्ण भू-भाग के विभिन्न निवासियों ने भारतीय संस्कृति को धारण सात् कर लिया। भारत की भाषा साहित्य और सामाजिक आचारों को अपना लिया तथा पुराणों के देवताओं की पूजा विधिपूर्वक करने प्रारम्भ कर दी। मध्य-एशिया के समान यहाँ भी पिछड़े लोगों को धान्तिपूर्ण ढंग से ही अपने में मिलाया गया। इस प्रकार भारतीय महासागर में एक बहुतरास भारत की स्थापना हो गई। किन्तु इसके पीछे कोई योजना न थी और न देशों को पराजित किया गया। कमसे कम विभिन्न जातियों और देशवासियों के सम्मिलन तथा भारतीय दर्शन व सरकार के कर्मों के प्रसार के कारण विभिन्न देशों के मूल निवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नतीकरण के अन्तस्वरूप यह सम्भव हो सका।

प्राचीन भारत के विश्वविख्यात क्षत्र वैश्वेदेव गंधार वसिष्ठ दशार्ध मानव यौक्षत्र और अश्वामेधा—समुद्र पार की भूमि पर पुनः स्थापित हो गए। नये भौगोलिक सर्वे में भारतीयता का नया विकास प्रारम्भ हुआ। कौशाम्बी मधुरा चम्पा वाराणसी और अमरावती जैसे प्राचीन नगर, महेन्द्रपर्वत जैसे पवित्र पर्वत और चन्द्रगंगा तथा गोमती जैसी पवित्र नदियाँ पूर्ब के उपनिषदों और नगरों में पुनः प्रकट हो गईं और उनके गाव-साव पुरानी स्मृतियों एवं परम्पराएँ आभरित हो उठी। कापिल और गंधार के उत्तर पश्चिमी भीमाश्र क्षत्र के समान मीकांग और मालवकी की उत्तरी भूमि में जहाँ भारत और चीन का मिश्रण प्रचलित महासागर के समीप होता है, बौद्धधर्म के पवित्र स्थलों की पुनः स्थापना हुई। ये पवित्र स्थल थे बोधिवृक्ष गुह्यकट पिण्डसमुष्ठा और उपवृक्ष का महल। इस प्रकार चीन के भ्रमण का अनन्त स्पर्श करते हुए बौद्धधर्म की तीव्र पवित्र भूमि की स्थापना हो गई, ताकि बौद्धधर्मानुयायी तीर्थयात्रा कर सकें।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय कला की उपलब्धियाँ

भारतीय कला और धर्म के स्पष्ट मानवतावाद और करुणा की पूर्ण अभिव्यक्ति भारत की सीमाओं के भीतर नहीं बरन् द्वीपान्तर भारत की उत्पन्न स्वस्थता प्रचुरता और उन्नतता में हो सकी। यौक्षत्र मन्त्राओं द्वारा निर्मित मध्य जावा में बोरोबुदुर का विशाल स्तूप (७७१-८०१ ईस्वी लगभग) कुमारवामी के राज्य में 'तीव्र महा नवविषय' जिसका विस्तार माली व रिनीकों प्रजापति के विषयों के समान किन्तु अधिक विस्तृत है। वास्तव में गुप्तकालीन कला का आवर्ष यही परिणामों को प्राप्त करता है। महा के समय २० उत्कीर्ण विमापट्टा में यह का जीवनपरिचित अंकित है जो 'समिन्विस्तर' 'विम्यावदान' 'कर्मविषय' 'यण्डयूह' 'आतकमाना तथा अन्य विभिन्न दम्तृवाओं के आचार पर है। बातंबुदुर और गुप्तकालीन मूर्तिकला में उत्कृष्टता और स्पष्टता मीन्य और अतिमात्रा समग्र समान है किन्तु विचार की धारणा और विधान

की विनाशिता और लोमा में बोरोबुदुर कहीं खोष्ट है।^१ इस स्तूप की अनेकानेक गैलरियाँ में बोधिसत्व के जीवन के सुपरिचित दृश्य प्रकट हैं। यह स्तूप कमल के घाकार की चौकी पर एक-एक सीढ़ी एक-एक नलकी जटता हुआ सर्वोच्च दोबी तक पहुँचता है जहाँ बामी दार गुम्बदों के पीछे घटीत और भविष्य के युगों के बहतर बुद्ध प्रकट हैं—वे भक्ष्य संसार के निवामी हैं। वास्तुकला का यह नमूना जीवन के महायान दृष्टिकोण की सर्वप्रथम प्रतिष्ठा है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सभी पाणिज वस्तुएँ और मानवी जटनाएँ धर्मित विज्ञान व जीवन हो जाती हैं। स्तूप और प्रासाद के रूप में मन्दिरों के निर्माण की भारतीय कला का अन्तिम सुश्रुततम प्रयोग बोरोबुदुर की आवाचना में हुआ है। यह प्रशांत और उबकी व्यवस्था—बैरोचन का दृश्य रूपकार—के महायान चित्र का प्रतीक है। सगंगा एवं हजार पहल साँची-स्तूप की वास्तुकला में सर्वप्रथम प्रशांतीय चित्र के बौद्ध विचार को व्यक्त किया गया था। महायान ने ऐस की सीमाओं से बहुत दूर इसे पूर्वतक तक पहुँचाया। किसी सीमा तक बोरोबुदुर की विज्ञान जिनमें परिक्रमा के लिए कमल स्तर हैं, अंशों के पहाड़पुर-स्तूप पर आधारित हैं। 'सप्त बंगाल और बाबा के छेमेन्द्र-माध्याम्य के निकट सम्बन्धों का आभास होता है। इस सम्बन्ध का पता सुमात्रा और बाबा के शासक वासपुत्र के नामन्दा-प्रतिमेस (८९० ईस्वी) से भी चलता है। बोरोबुदुर की प्राकृतिकता का सीधे आसन्नता और स्थित छान्दस्य पात्र-वास्तुकला के स्वर्णयुग की बात दिनाता है। इसके रिमीछों की पट्टी को यदि फैलाया जाए तो उसकी सम्पाई तीन मील हो जाएगी। इसमें ४३२ घासे हैं जिनमें अनेक प्रकार की बुद्ध की मूर्तियाँ रकी हैं। और इसका बरिक्ता-यत्र संसार में सबसे जम्बा है। ज्यों-ज्यों गैलरियाँ ऊपर चट्टी जाती हैं, वास्तुकला की सीमा बढती जाती है। पहले सीमा पचासवादी और अक्षरकप्रधान होती है, फिर अष्टम और पुष्ट हो जाती है। यह ऊपर चढे हुए बुद्ध-सेनों के अनुसार ही होता है और अन्त में हम प्रशांत के केन्द्र पर स्थित बुद्ध बैरोचन तक पहुँच जाते हैं। प्राकार प्रकार कलात्मक विधिप्यता और कुल मिलाकर मध्य विज्ञान के विचार से यह स्तूप भारत के मन्दिर से कहीं खोष्ट है और सचाई यह है कि विश्व का एक आश्चर्य माना जाता है। स्मरणीय है कि जिस समय बाबा में इस स्तूप का निर्माण हो रहा था उसी समय भारत में मुसलमानों का आक्रमण हो रहे थे तथा सिंध और पश्चिमी पंजाब पर उनका अधिकार हो चुका था (७११-७१३ ईस्वी)।

एक और कलासंग्रह-कक्ष है प्रम्बनन का 'अद्वय मन्दिर' (घाठवीं से नवीं सताब्दी ईस्वी)। प्रम्बनन की कला बोरोबुदुर की कला से थोड़ा तो पछी किन्तु अपने समकाल भवत्स है, और इसमें रामायण महाभारत तथा कृष्णायन की सहजसिद्धा सत्यम और स्थान में परिपूर्ण कलाओं का प्रकट है। साँची धर्मता और बोरोबुदुर के पश्चात् यहाँ भारतीय कलाओं की जोबी लभित पाइलित है। कुछ पुरातत्त्वविदों का विचार है कि प्रम्बनन का लगभग १८० फुट ऊँचा यह निर्माण विजयनगर, जो २०० से अधिक छोटे मन्दिरों से घिरे प्रात प्रमुख मन्दिरों में से एक है मुसल बोरोबुदुर के विनाश स्तूप से अधिक प्रभावशाली रहा होगा। बीच के प्रमुग तीन मन्दिर निर्मित हैं। छोटे मन्दिर चार चौड़ी पवित्रियों में प्रमुख मन्दिरों को बेरे हुए हैं। और मन्दिरों का यह समूह अत्यधिक

प्रत्येक स्थान पर ब्राह्मण-संस्कृति बौद्ध-संस्कृति से पहले पहुँची। हमें याद दिलायी जाती है कि उपनिषदों का आरम्भ कैसे हुआ था। किन्तु नये भारतीय सामाजिक वातावरण में ब्राह्मणधर्म की सामाजिक प्रतिष्ठा और पूजनकरण की प्रवृत्ति समाप्त हो गई। मलय प्रायद्वीप से बौद्धों और कुमार ने धनम तक के सम्पूर्ण भू-भाग के विभिन्न निवासियों में भारतीय संस्कृति को घातक कर दिया। भारत की भाषा साहित्य और सामाजिक आचारों को घटना सिवा तम्रा पुराणा के देवताओं की पूजा विधिपूर्वक करनी आरम्भ कर दी। मध्य-एशिया के समान यहाँ भी पिछले लोगों को शान्तिपूर्ण ढंग से ही अपने में मिलाया गया। इस प्रकार भारतीय महासागर में एक बहुततर भारत की स्थापना हो गई। किन्तु इसके पीछे कोई योजना न की और न यहाँ का पराजित किया गया। समस्त विभिन्न जातियों और दस जातियों के सम्मिलन तथा भारतीय धर्म के सरकार के रूपों के प्रसार के कारण विभिन्न देशों के मूल निवासियों के सामाजिक और सांस्कृतिक उद्धारकरण के फलस्वरूप यह सम्भव हो सका।

प्राचीन भारत के विचित्रिवात क्षेत्र जैसे कम्बोज गंधार कश्मिर दक्षिण भारत आदि प्रांतों और घाटिया—समुद्र पार की भूमि पर पुनः स्थापित हो गए। नये भौगोलिक उद्घर्ष में भारतीयता का नया विकास आरम्भ हुआ। कौशाम्बी मथुरा जम्मा ठाकुरानी और घमरावती जहाँ प्राचीन नगर महोदयपर्वत जैसे पवित्र पर्वत और पन्द्रमाणा तथा गोमती जैसी पवित्र नदियाँ पूर्व के उपनिषदों और मयूरों में पुनः प्रकट हो गईं और उनके गाव-गाव पुष्पनी स्मृतियाँ एक परम्पराएँ जागृत हो उठीं। कापिल और संभार के उत्तर पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र में समान मीकान और जालनदी की उत्तरी भूमि में जहाँ भारत और चीन का मिश्रण प्रचलित महासागर के समीप होता है। बौद्धधर्म के पवित्र स्थलों की पुनः स्थापना हुई। ये पवित्र स्थल ने बौद्धधर्म गृहस्थ पिण्डमुका और उपगुप्त का महत्त्व। इस प्रकार चीन के भूभाग का समस्त स्पर्श करते हुए बौद्धधर्म की तीव्र पवित्र भूमि की स्थापना हो गई ताकि बौद्धधर्मानुयायी तीर्थयात्रा कर सकें।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय कला की उपलब्धियाँ

भारतीय कला और धर्म के स्पष्ट मानवतावाद और कला की पूर्ण अभिव्यक्ति भारत की सीमाओं के भीतर नहीं बल्कि द्वीपान्तर भारत की उत्पन्न स्वतंत्रता प्रकृति और उन्नतता में हो सकी। समस्त महाद्वीपों द्वारा निर्मित मध्य जावा में बोरोबुद्ध का विभाजित रूप (७५३-८०३ ईस्वी सन) कुमारम्बामी के राज्य में 'तीव्र महान गंधार का' जिन है जिसका विस्तार गोपी के रिमीषों घण्टा मज्जा के पिण्डों के समान किन्तु घटित बिन्दु है। भारत में गुप्तकालीन कला का आदर्श यही परिमार्जित को प्राप्त करता है। यहाँ के समस्त ७००० उन्नीस मिलापदों में ब्रह्म का जीवनपरिचय अंकित है जो 'मलिनकिन्नर' 'विष्णुवर्धन' 'कमलविर्मा' 'गण्डर्भ' 'जानकमाना' तथा अन्य विभिन्न दंतकथाओं के आधार पर है। बाराबुद्ध और गुप्तकालीन मूर्तिपूजा में समस्त और स्पष्टता गोप्य और भक्तिभावना समस्त गायन है किन्तु विचार की धारणा और विधान

वैभवपूर्ण और प्रभावशाली है—विष्णुस बोरोबुपुर के समतुल्य। प्रम्बतन की तरल कोमलता और मुन्दरता में गतिमय सय में अस्थिरता और प्रभावशालिता में वास्तव में गुप्त और पल्लव कला-सम्प्रदायों की वीक्षित और परम्परागत पूर्णत्व प्राप्त कर सकी है।

विदय की कला का एक प्राणवर्ध है धर्मकोर बोम (नगरबाम अथवा यशोधरपुर) जिसके मध्य में यशोधर्मन प्रथम (८८६-९१० ईस्वी) सूर्यवर्मन द्वितीय (लगभग ११२५ ईस्वी) और यशवर्मन सप्तम (११८१-१२०१ ईस्वी) द्वारा निर्मित बेयन का विद्यालय मन्दिर है। पी० ब्रिग ने ठीक कहा है कि 'धर्मकोर बोम की स्मर राजधानी की औद्योगिक स्थिति स्कूल योजना और मूर्ति-अंशकरण एक आदर्शकृत विमुक्त का सूत्र प्रतिरूप था। नगर का निर्माण 'सिबलोक' के रूप में हुआ था। पिरामिडाकार मन्दिर के कन्द्रीय स्तंभ में अनुरागम (अर्थात् चार मुखोंवाले सिब) की विद्यालय मूर्ति है, ध्यानशील— जो ध्यान चारों ओर के विस्तृत सभ्य बन को जिसके नीचे एक वैभवशाली सभ्यता की समाधि है देखकर मानो स्वप्न में अनासक्त मुस्काय बिखेरती है। यह गुप्तकालीन और गुप्तोत्तरकालीन भारत के सुपरिचित अनुरागम सिब का विद्यालय किन्तु उत्कृष्ट प्रतिरूप है। तथा इसमें जीवन और मृत्यु, संसार और सिबलोक दोनों के प्रति कोमलता और निर्मल अनासक्ति है। मन्दिर की दीवारों पर महाकाव्यों मायवत हरिवंश तथा अन्य हिन्दू कथाओं की एक हजार कहानियों का प्राणवर्धनक लयात्मक और सदास ध्वनित है तथा गदक और अक्षराएँ स्यात् चिन्तन की बुद्धि में बड़े हैं। इन्हें देखकर गुप्तकाल की उत्कृष्ट कला का स्मरण आता है। उत्कीर्ण शिलापट्टों की कुल लम्बाई घाटा मील है। सिब विष्णु और हरिहर के साथ-साथ बोधिसत्व अशोकितेश्वर की मूर्तियाँ भी हैं। स्मर का वास्तुशास्त्रीय अभिप्राय नाग है। इस मन्दिर की बेसिका का आकार नाग से ही बनाया गया है और उसका द्विगुणन कर दिया गया है। सार्ता प्ल कांड हुए, विष्णु के सारवत—अनाधि और अनान्त—आसन के रूप में यह नाग मानो मन्दिर के प्रवेशद्वार का रक्षक है। प्रवेशद्वार की उभारदार मूर्तियाँ और मूर्तियों के साथ व वनासिक सन्तुलन बोरोबुपुर की मूर्तियों के धोक और वनासिक सन्तुलन से अष्टतर है और बेयन का एक प्रस्तर-गीत है। सामाजी और वायव्य दिक्षु की समस्त वास्तुकला की वायव्य सर्वाधिक कल्पनाशील कृति। स्मरणीय है कि कम्बोडिया के मन्दिर-नगर का निर्माण जिस शताब्दी में हुआ उसी शताब्दी (१०२५ ईस्वी) में महामुल गजनिशी ने राजसी नगर कन्नोच अथवा महोदय पर आक्रमण करके उसे ध्वस्त कर दिया। मुसलमानों के आगमन का प्रतिपाद परिणाम यह हुआ कि भारत और बृहत्तर भारत एक-दूसरे से अलग हो गए।

भारतीय कला की एक और प्राणवर्धनक कृति है बर्मर्दि घासटा की राजधानी पगम (अदिरमनपुर) के 'पचास हजार पैगोडा'। कभी जो संसार का सबसे अधिक सुन्दर मन्दिर-नगर समझा जाता था (८५७-१२६८ ईस्वी) आज बड़ी बराबरी मरी के तट पर, भंडासे से ६२ मील दूर बधिज-मरिचम एक छोटा-सा गाँव-माग रह गया है। नत-हत्तीप-मयी की उभारदार मूर्तियों में विष्णु के अवतार प्रवर्णित हैं। इनमें गुप्तकालीन शैली का ही सुन्दरतम तथा आकषकतर रूप प्रस्तुत है। पगम की कला की धम्म विविष्टताएँ हैं बुद्ध की सुन्दर उभारदार मूर्तियाँ तथा अमरवतार पाणिब दिगहों पर अंकित आतर्कों के

पुनः । समारंभार मूर्तियों और इसकी चित्रों में धाम-कला का प्रभाव स्पष्ट है तथा पाव विन्यास पावनयोगीन बगाल के विद्यास पहाड़पुर मन्दिर के पाव-विन्यास का समान है । यही यह भी दृष्ट्य है कि वर्मा के सर्वाधिक प्रसिद्ध धामक राजा काश्मिर ने वगन के विख्यात भानन्द-मन्दिर के निर्माणार्थ भारतीय वास्तुकों को तैनात किया था (१ ८२-११०३ ईस्वी) तथा कुछ विधिष्ठ व्यक्ति बोधमया भेजे थे ताकि वर्मा के प्रख्यात प्राचीन मन्दिर के समूह पर दूसरा मन्दिर बनाया जा सके । धामन्दमन्दिर वास्तव में मया महाबोधि मन्दिर के समूह पर ही निर्मित हुआ ।

बोरोबुदुर, धनकोर, बोम और पवन की वास्तुकला परस्पर अत्यधिक भिन्न है किन्तु उनके सौदर्य और शैल्य का खूब भारतीय कला और धर्म का प्रभाव ही है । इमारत कला के लिए कोइस ने कहा था (यों यहाँ समीको दुहराया जा रहा है) कि इतिहास-पूर्वी एशिया की भारतीयतावासी कला और वास्तुकला वास्तव में भारतीय बोज से उत्पन्न एक मजबूत ढाँचा है जिसने विदेशी भूमि पर गहरी जड़ें बना ली ।

धनय-भनग कलाकृतियों की गणना की जाय तो धीपमिवेधिक मूर्तिकला की कुछ अपूर्व कृतियाँ भारतीय कला की कृतियों से कहीं अधिक धृष्ट हैं । कुछ उदाहरण हैं बाबा में बग्दी मेन्डोट की कुछ की मूर्ति और प्रजापारमिता की मूर्ति (जो अब लीडन संग्रहालय में है) दोनों कंड़ा और समुद्र के गुप्ताकालीन भाषण का अनुसार ही है किन्तु उनमें शैलिकता और निकटता अधिक है । शैलिकताविषय की अनुपम काव्य-मूर्ति जिसकी मुद्रा और धामकला रोडिन की कृतियों के समान है । बाबा में उर्वरता और समृद्धि की देवी श्री की दासकला काव्य-मूर्ति जिसकी मुद्रा में सविभेद शैल्य और कामकला है । बंकाक संग्रहालय में उपस्थित मुद्राश्री से प्राप्त चलने की मुद्रा में बृद्ध की काव्य-मूर्ति जिसमें निर्मलता और कोमलता का अद्भुत मिश्रण है तथा जो बर्तमान संग्रहालय की सुप्रसिद्ध मूर्ति की कहीं पीछे छोड़ देती है । कम्बोडिया और सुमेट्रा के मुस्कण्टे हंग बोधिसत्व जिनकी पारलौकिकता और कदवा मधुरा की विख्यात भारतीय मूर्ति से कहीं भेद है । बन्धियाई सई (धनकोर) में तिसोत्तमा और दो प्रतिस्पर्धी राजा तथा कैलाश की हिमाते हुए उषण की मूर्तियों की संज्ञाक केलना और संप्रजन की सम प्रतिभेष्ट हैं जिनका प्रभाव पुष्टभूमि के कुलों से—जिनकी सुकम वाली की मकलापी और धनकरण । कलात्मकता से किसी ईरानी चित्र का भान होता है—और बड़ मया है, और बंकाक संग्रहालय में न्याम की भूदेवी प्रशान्त महासागर की वीनस जिसकी सजावट और सौन्दर्य शक की राजपुत्र मूर्तियों और चित्रों की याद दायी है ।

पनिवेष्टों में सामरीय सम्प्रदायों का उदय

भारतीयों के समग्र-वार क साहित्यिक कार्यों ने कुछ महत्वपूर्ण सामरीय सम्प्रदायों पर अपादकों को जन्म दिया । ये बौद्ध और शैक्षण दोनों के । इनमें सर्वाधिक महत्व-पूर्ण है धन-मुद्र एवं नाविकों और उपनिवेश-संस्थापकों के सरलक के रूप में हीनास्तर रत में धनस्थ की पूजा, भारतीय महासागर पर जमकनेवाले और बहालों का मार्गदर्शन देनेवाले तारे कैलापम (बाबाई भाषा में 'बीसेईम') को धनस्थ मानकर पूजा जाता है ।

पुराणों में लिखा है कि भगवत्पुत्र ने दक्षिणभारत से वरुणद्वीप शंखद्वीप मलयद्वीप और मयद्वीप की यात्रा की थी। कुछ जावाई मूर्तियों में शिव-बुद्ध ध्वजा भट्टारकगुरु भगवत्पुत्र को एक अन्य ऋषि परशुराम के पुत्र तुषबिन्दु के साथ संयुक्त पाते हैं। जावा में तुषबिन्दु की मूर्ति भी मौजूद है। धात्र भी संसार के इस भाग में भगवत्पुत्र के नाम पर ही कर्मों काई जाती है। दूसरा सागरीय सम्प्रदाय है दीपकर बुद्ध का। यह जावा सुमात्रा सेसिबीन स्थान और दमन में पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवत्पुत्री कला-सम्प्रदाय ने पांचवीं शताब्दी ईस्वी तक बुद्ध की दीपकर मूर्तियों को ब्रह्म प्रभावित किया था। अतः हम यह कह सकते हैं कि उद्भव समस्त योवावरी की घाटी में हुआ था। तीसरा है मणिमेखला सम्प्रदाय। इसका उद्भव जोरोमंडम तट पर कावेरीपत्तिनम् में हुआ था। मणिमेखला तमिळनाडु के नादिको की सरसाक देवी है और कम्बोडियाई व त्थामी रामायण में उसे गम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ।

धार्मिक सम्मिश्रण और मानवतावाद

सागर-वार के भारतीय उपनिवेशों और राज्यों में सागरीय सम्प्रदायों का विकास एक नवीनता थी। किन्तु इनसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि हम में कुछ ऐसे समझौते और सन्धेयन हुए जो भारत की भूमि पर कभी भी सम्भव न थे। सम्मिश्रण की प्रकृति का उदाहरण है धर्मगारीस्वर शिव-बुद्ध शंकर-नारायण हरि-हर और विष्णु-ब्रह्मर विग तथा शिव को समर्पित ब्रह्मा-विष्णु-बुद्ध की त्रिमूर्ति की सम्मिश्रित पूजा। बंगाल और उड़ीसा से प्राप्त लोकेश्वर की पूजा भी शिव और बुद्ध के सम्मिश्रण का एक उदाहरण है। जावाई नवि तनुकर का कथन है बुद्ध त्रिमूर्ति में सम्मिश्रित है। यह सून वास्तव में धार्मिक सम्मिश्रण की एक दीर्घकालीन प्रक्रिया की सम्पूर्ण की अभिव्यक्ति है जो अना श्रियों पूर्व भारतीय भूमि पर धारण हो गया था। अन्त में महाकास की धर्म-ब्राह्मण धर्म-बौद्ध पूजा का धारण भी हो गया। धार्मिक सम्मिश्रण को अन्य कारणों से भी प्रोत्साहन मिला। एक कारण था महाकास बौद्धधर्म का विकास जिसमें अनेक स्त्री और पुद्गल देवता थे। दूसरा कारण था शासकों की अपने पुत्रों का शिव बुद्ध और प्रसापार मिता के मुख्य मानने की प्रकृति। तीसरे कारण शाक्त तथा हीनयान और महायान बौद्ध प्रभावों के सहित सम्मिश्रण की अभिव्यक्ति भारतभूमि से अधिक पूर्ण और कल्पनी भारतीय उप निवेशों और राज्यों में हुई। इसके साथ-साथ बीमारों और धर्मों की रक्षा करने के एक दक्षिणासी मानवतावादी आन्दोलन का भी भूतपात इस क्षेत्र में हुआ। अंगकोर धाम का एक अभिनव में लिखा है कि राजा यशोवर्मन (८००-८५९ ईस्वी) ने एक विष्णु-शिव की स्थापना की जिसका उद्देश्य था शैवधर्म का अतिविमोचन तथा शिवों के लिए प्रीति और भोजन का प्रबन्ध करना। ११८६ ईस्वी में जयवर्मन ने कम्बोडिया में १२ अस्पतालों का निर्माण कराया। जयवर्मन का राज्य में तीन अस्पतालों में ८२,००० पुरुष और नमें काम करते थे। उनका उद्देश्य था जो विमोचन प्रत्यक्ष संरक्षण में प्रोत्साहितों का चिह्न तथा बीमारियों का निवृत्त इलाज करना। अस्पतालों में रहनेवाले बीमारों को मन्दिरवातियों (गुरुक प्रति) तक ही जाती थी। भारतीय संस्कृति के प्रसार के माध्यम

मया वा ऐसा ही एकधिकार बाद की शताब्दियों में पुर्तगालियों का हुआ। इतिहास स्वयं को बहुराता है। जोस-साम्राज्य ने निकोबार, बर्मा के कुछ भागों मलय स्याम सुमात्रा (राजधानी क्वेरम सहित) और श्रीलंका पर अधिकार कर लिया किन्तु अन्त में समुद्र साम्राज्य ने जोस-साम्राज्य को पराजित कर दिया। तेरहवीं शताब्दी के मध्य में चीनका भी श्रीलंका-साम्राज्य में सम्मिलित था।

✓ चौमेन्द्र-साम्राज्य अनेक शताब्दियों तक बंगाल से बम्बयवर्ष और बौद्धतांत्रिक धर्म के दक्षिण-पूर्वी एशिया में पहुँचने तथा भारतीयकरण आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र रहा। चौमेन्द्र-बरा से पुत्र कुमारवोप था। वे गौड़ के निवासी थे (गौड़ीक्षीपमुत्त)। उन्होंने ७८२ ईस्वी में श्रीलंका में ब्राह्मिस्तव गणपुत्री की एक मूर्ति स्थापित की जिससे बौद्ध-त्रिलोक शास्त्राण त्रिमूर्ति एवं अन्य सभी देवताओं का एकीकरण था। कलमन म प्राप्त ७८८ ईस्वी के एक अभिलेख में लिखा है कि कुमारवोप के अनुरोध पर कलमन में देवी तारा के सुप्रसिद्ध मन्दिर और विनय महायान म पारयत्त मिश्रणा के लिए एक आवास का निर्माण कराया। चौमेन्द्र और पाल बरा से एक विवाह-सम्बन्ध स्थापित हुआ। वसपुत्रदेव बरा से शैवपातदेव के भतीजे थे। पाल कला और संस्कृति का चौमेन्द्र-साम्राज्य पर बड़ा प्रभाव था। कलमन के समीप ही अभी सर्वोच्च बरा 'सहस्र मन्दिर' है। यह बरात और बिहार के पाल-साम्राज्य से प्राप्त बौद्धतांत्रिकवाद का केन्द्र था। पम्बमन भी अधिक दूर नहीं है और (कोमक अनुमात्र) शैवधर्म का केन्द्र है जिस प्रकार बोरुबुपुर (जिनके पारार और मीनर का प्रतिरूपी प्रमाणन है) महायान बौद्धधर्म का गढ़ है। भारतीय आबाई उमारवार मूर्तिकला की अधिकतम शक्ति मय और शैवस्वित्ता यही है।

चौथ एक तांत्रिक धर्मों में जल्दी ही बम्पा व कम्बुज म बड़ जमा ली। एक संस्कृत अभिलेख में (यह अभिलेख सरम क्पाभिकल खोजी म है जिस दक्षिण-पूर्वी एशिया के आसका ने भारत से ग्रहण किया था) वर्णित है कि सम्राट् भद्रवर्मान ने चौबी शताब्दी के अन्त में बम्पा में एक लिंग की स्थापना की और यह लिंग एक तरह सराष्ट्रीय सांस्कृतिक देवता बन गया। पित्तममातातंत्र म लिंग का 'आदि मार या प्रतीक' कहा है जहाँ ममस्त सृष्टि और विनाश उद्भूत होते हैं। ७९९ ईस्वी के इन्धवम प्रथम के एक अभिलेख में शिवमुक्त-सिम की स्थापना की बात लिखी है। बाद में यह 'मन्त्रब्रह्मर नाम से प्रसिद्ध हुआ। आबा से आकर कम्बुज पर आसन करनेवाले जयवर्मान द्वितीय (८२-८९९ ईस्वी) ने कम्बोडिया में देवराज नामक रहस्यात्मक मन्त्रवाद्य का आरम्भ किया। शिव लिंग की पूजा व साथ इसका निकट सम्पर्क था। जयवर्मान के राजपुत्र धिक्कवर्ष थे। जयवर्ष (भारत में) निवासी हिन्दुधर्म म उन्हें शिरच्छेद विनिमित्त सम्मोह और मयो तर नामक चार शास्त्र भेंट किए थे। ये तांत्रिक ग्रन्थ तुम्बर ध्यवा धिक्क-रुद्र के अनुमूर्त कहे जाते हैं और उन्हींमें उद्भूत मान जाते हैं। ये सब कामसोत्तगत हैं और उनका उद्भव उत्तरभारत में हुआ था जहाँ खड़ी म सागरी शताब्दी ईस्वी तक चार मित्त 'आम्पाय' प्रचलित थे। उपर्युक्त चार शास्त्रों में खड़ी आम्पायो का समावेश है। कम्बुज के अभिलेखा में शिव को बहुधा अनुमान या अनुमूर्त कहा जाता है। पंमकोर पाम के चारों बिद्यासमुक्त धायव तुम्बर ध्यवा धिक्क-रुद्र क हैं और देवराज ने मित्राश्वी ध्यवा

समर्पण द्वारा प्रविष्ट अनुसूचि विध के सम्बोधित राष्ट्रीय सम्प्रदाय के प्रतिनिधि हैं। राजधानी के परिवर्तन के साथ-साथ बबराज के देवता भी महाम्पवन (फ्लोम कुमेन) में हरिद्वार में घोर घन में यजोभरपुर (बंगलोर घोम) पहुँच गए। स्मरणाय है कि सम्बुद्ध सं धनक धाराविद्या तक तांत्रिक दीक्षम घोर महापान बीडधम का निवास एक ही मन्त्रि में रहा।

सम्पूर्ण अभिषेक-पुत्री लक्ष्म्या में कामून सरकार का संबालन परविद्या घोर धर्म कारियों के पत्र के माय हिन्दू हो गए। कुछ राज्यों में धात्र भी लेवा ही है। धारा ७० गाँ ने घनी कुछ समय पूर्व कहा है कि प्रभाववापी साक्ष्य घोर बीड मित्रालों ने सम्पूर्ण धर्म में एक धर्मिजनधर्मि विचारधारा को जन्म दिया। यह विचारधारा निम्न प्रकार से व्यक्त होनी या प्राकृतिक घोर सामाजिक व्यवस्थाओं में पारम्परिक सम्प्रदाय की स्थापना अधिकारी पक्षी की प्राप्ति तथा धार्मिक उत्पत्ता की सम्पुर्ण—य वामी स्वाम सम्बोधित घोर बाबा म राजाघा घोर अधिकारिया के 'रवरीय' कर्मका हात में। साक्ष्य घोर बीड विद्वानों द्वारा इनका निर्देशन हुआ था तथा दरबार के सम्प्रकार घोर अधिक उत्पन्न इनके प्रतीक थे। सम्बोधित में देवराज-सम्प्रदाय में सम्बद्ध ईश्वरीय राजत्व की परम्परा को मूलधर्म डिमीय (१०११-१०४ ईस्वी) में विष्णुराज के रूप में कामय राग हिन्दू व्यवसनमम (११८१ से लगभग १ ५१ ईस्वी) ने इसे महापान के बडराज-सम्प्रदाय का रूप दिया। घटारुषी धनाधीन एक सामाजिक धार्मिक घोर साम्या तिमक विचारों का हेतु बनाकर धनक राजा धामन करने रहे। हीनपान सम्प्रदाय एक तनीय विचारधारा घोर कानधर्मा की पक्ष में है किन्तु वामी म हीनपान अनुयायी ज्ञानि के राजा धर्मानम (१७५८-१० ईस्वी) ने महापान बीडधर्म के बोधिमन्त्र निश्चालन का हेतु बनाकर बोधवा की कि यह कुछ का धनधार था।

महापान घोर वेदाल ने त्रिम प्रकार भक्ति का साधार प्रस्तुत किया था तनी प्रकार कर्म-निश्चालन ने नैतिकता का साधार प्रस्तुत किया। 'सुहृन्नु' से पारिवारिक धार्मिकविधियाँ घोर धार्मिक मस्कार तथा ज्ञान-दान के नियम मिल। संस्कृत की भारतीय संस्कृति तथा भारतीय कला घोर बाल्नुकला की सम्पूर्ण विरासत वहाँ के निवासियों की होगी। संस्कृत का सम्प्रकाश धर्मार्थ 'धर्मकोष' धर्म में पूर्ण या धार्मिक रूप में तीन संकुरिया वामी घोर बासी जैसे दूर-दूर स्थित भूभागों में उपलब्ध है। प्राचीन साहित्य में हिन्दू पौराणिक कथाओं किंवदन्तियों घोर बोधकथाओं का बाहुल्य है। बाबा के प्राचीन विद्याम कवि-साहित्य में बहुत कुछ प्राचीन भारतीय सामग्री है। टॉमस का कथन है "इस साहित्य के तथाकथित धार्मिक धर्म में ब्रह्मपुराण दीक्षित धर्म-कोष कमविषयात्मिक बह्मपति-राज घोर मूल-सेवन धर्मिणि हैं तथा मन्त्रों से सम्बन्धित कृतियाँ भी हैं। इससे प्रतिष्ठित नीति-साहित्य (कामधर्म धार्मिक) विष-वाचन (वेद-वेद धार्मिक) व्याकरण बोधसाधन बोधविद्यालय बोधोक्त घोर इतिहास महापान रामायण तथा धर्म काव्यों का प्रतिनिधित्व करनेवाले धनक धर्म कुमारमनन के कथानक पर स्मर-वह्न कृष्णधर्म काव्य-वचनान्तर धर्मरस्य तब बाबा घोर बासी की लोचनार्थ घोर साहित्यिक कथाएँ, तथा पंचतंत्र के समान (घोर जमीपर धार्मिक) तब साहित्य भी है।

बासी की सामाजिक रचना की विशेषता है एक नरम जातिप्रथा। भारत के समान वहाँ भी चार वर्ग हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। किन्तु वहाँ मनु के अनुसार अनुलोम विवाह को प्रभय दिया जाता है तथा प्रतिशोम विवाह को अस्वीकृत किया जाता है। इसमें भोग आपस में मिल-जुल गए हैं और वर्णभेद की ऐसी चढ़ाई वहाँ नहीं रह गई है। बासी निवासी बेहो और मयबन्मीता का सम्मान करते हैं। वे परम-शिव भक्त ब्रह्म के उपासक हैं। दैतता और साँध्य की प्रकृति को मानते हैं। सूर्य को सदाशिव का मूर्तरूप मानकर तथा विष्णु, उनकी प्रिया श्री शिव की पत्नी रमबा और ब्रह्मा की पूजा करते हैं। हिन्दू देवी देवताओं की पूजा करने का काम पुजारिया (पव-वण्डो) का है और उपयुक्त भारतीय मुद्राओं में पुराणों के मन्त्रों का पाठ करते हुए (जिन्हें बेन् कहा जाता है) पुजारी अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। बासी की भाषा में संस्कृत-शब्दों का बाहुल्य है। यह उच्च भी कम रोचक नहीं कि स्वयंवर की भारतीय प्रथा बासी में अभी तक छप है तथा ब्राह्मणों और क्षत्रियों को अपनी जातियों पर गर्व है।

बासा में भारतीय महाकाव्यों का प्रभाव अभी भी काफी है। महाभारत के आदि बिराट और भीष्म पर्वों का—जिनकी रचना सम्राट् अशोक (१०३३-१४६ ईस्वी) के समय में हुई थी—अभ्ययन अब भी होता है। गीता का सार-संक्षेप भी है। बासा में स्यायानाटक बहुत प्रचलित हैं जिनमें कृष्ण अर्जुन भीम अन्तर्कष और सुभद्रा की कहानियों तथा राम राजन युद्ध को आधार बनाया जाता है। रामायण का आबाई संस्करण जिसका रचनाकाल राजा सिङ्गो के शासनकाल (१२६-१४७ ईस्वी) में माना जाता है, अद्यत भारतीय महाकाव्य का अनुबाव है और अंशतः मट्टिकाव्य का रूपान्तर। राम हनुमान सुभीन कृष्ण कर्ण अर्जुन और भीम महान बीर के रूप में सम्मान पाते हैं। प्राचीन आबाई अभी में पंचतन भी है और इसकी बोककपाओं को चिन्नों में प्रदर्शित किया जाता है।

समस्त इंडोनेशिया में संस्कृत-शब्दों के अनुसार अक्षिप्त नहीं पाए जाते। उनके सार-संक्षेप रूपान्तर और तत्त्व अर्थस्य मौजूब हैं जिनमें भारत के साहित्य की आत्मा की गूँज मौजूब है। पुस्तकों के नाम भारत-युद्ध ब्रह्माव्यपूरण शिव-साधन ब्रह्मविधि आदि हैं। बार्नेल्ड और हिन्दुवीम में पालि-साहित्य सुरक्षित है। भारत से प्राप्त धार्मिक ग्रन्थ और उनकी टीकाओं के अतिरिक्त धार्मिक दार्शनिक और अन्य विषयों पर विलुप्त क्षेत्रीय पालि-साहित्य भी है। बार्नेल्ड की आधुनिक लिपि पामी है और आधुनिक शब्द-भंडार में अनेक संस्कृत शब्द हैं। रामायणिक तथा उपनयन संस्कार भारतीय परम्परा के अनुसार होते हैं। स्वाम में भर्मेगुरु (संगवर्त) का धाम भी राजा नियुक्त करता है तथा धर्मगुरु को बहुत अधिकार—कानून बनाने का अधिकार तक—प्राप्त है। और तो और, पिछले हुए समय देश तक में धर्मक संस्कृत शब्द धाम के शब्द भंडार में हैं तथा भारतीय कथाएँ और बोककपाएँ सुपरिचित हैं। रामायण महा 'हिन्दुव्-ऐरिरेम' नाम से विख्यात है और उसकी समानता इतिहास-कृत रामायण के बंगला रूपान्तर के साथ अधिक है। जोहोर के मुन्ताओं के नाम के धामे 'वी' मयामा जाता है। साधोस में हीनयान बौद्धधर्म धाम भी राजधर्म है। जनशासन के कार्य और सम्पत्ति-सीमा का निर्धारण

१८। के कल्पसता मोटिफ की कोमल बालीदार नक्काशी तथा भजस्ता मितिचित्रों बहुरंगी सज्जन बनों पुष्पित नृशों राजसी हाथियों के झुगड़ों और फुवकते हिरनों के खेष्ट घटक में भी उपस्थित है। अश्वमेध कालिदास और भारवि के बीरादास नायक नायिकाओं की सखसाधों और विविध कल्पनाओं में स्थाकारों की वाक्यात्मिक मम्यता और विविधता गुप्तकालीन मन्दिरों की बेबी-देवताओं की मूर्तियों में भी मौजूद है। गुप्त काल की एक विशिष्टता यह भी है कि परिष्कृत और प्रमूर्त प्रकार के नायकों नायिकाओं और उनके अंतरंग सहचरों के सुषन में काव्य और चित्रकला परस्पर प्रेरणा ग्रहण करते थे—ये सभी चरित्र मानो किसी परी-देव की पुष्पमालाओं एलों और धामूपनों से अलंकृत होते थे। एक और साहित्य में चित्रकला के बुझों तथा नायक-नायिकाओं की प्रतिष्ठितियों को स्थान दिया गया तो दूसरी ओर चित्रकला में मानवीय दुर्गों के चित्रण में क्लासिकल काव्य के सौंदर्य-सम्बन्धी मापदण्डों को अपनाया गया तथा पृथ्वी की घनकापुटी के अखेप प्रेम सुख और प्रशान्ति का अंकन किया गया। इस प्रकार, गुप्तकालीन भारतीय क्लासिक-प्रवृत्ति के कारण काव्य नाटक चित्रकला और मूर्तिकला में समान रूप से औद्यम सन्तुलन और समिति का प्रवेश हुआ। नाट्यशास्त्र में और राजमदन भागोद-बृह एव देवास्य के भित्तिचित्रों में तथा प्रेम और बैराग्य की वाक्यात्मिकाओं में सर्वत्र क्लासिकल काव्य की नायवी घनकापुटी तथा क्लासिकल दर्शन के पारलौकिक निर्वाच की मूर्तकी हुमें मिलती है। अलका अलका निर्वाच के असीम ज्ञान सौख्य और प्रीदाय में संचार के समस्त दोष और अवयुग गायक हो जाते हैं। समस्त मानवीय सम्बन्धों—‘आवि’ के सम्पूर्ण क्षेत्र तथा समित कलाओं की विषय-वस्तु—को व्यक्त करनेवाले प्रिय क्लासिक रूपों में भी ‘अस्ति’ सर्वत्र विद्यमान है। पश्चिम में रोमक साम्राज्य और चीन में हान-साम्राज्य (२० ईस्वी) के विनाश के पक्षस्वरूप भारत का सम्बन्ध किसी सीमा तक दोष संचार से दूट गया और धायक इसी कारण भारतीय परिनिष्ठा में निर्दोष प्राजसता आ सकी।

भारतीय कला में क्लासिक प्रवृत्ति

भारतीय मूर्तिकला में पहले के लोकप्रिय यज्ञ तथा नृश पुषक सम्प्रदायों और बीड़ बनों तथा ब्राह्मण-पुनरुत्थान के समन्वय की स्पष्ट प्रतिबिम्बित क्लासिक प्रवृत्ति के कारण हुई। इन विभिन्न बनों का समन्वय भागवतधर्म के उत्थान तथा युग की महीन साहित्यिक एवं शास्त्रीय कथियों और परम्पराओं के बल पर संभव हो सका था। मयूरा के वेदिकास्तंभों की पलियों की मांसस कामुकता को गुप्त-मूर्तिकला—छारा पंगा और यमुना बेजियों मार की विमोहक कल्पाओं तथा चामरधारिणी कुमारिकाओं की निर्मल मुद्राओं—में पुन प्रस्तुत किया गया अन्तर यही था कि गुप्तकालीन मूर्तिया अधिक परिष्कृत थीं तथा उनमें बाह्याकार और आकारमातृका का अधिक निग्रह था। कमल के प्रनामचक्र (कालिदास के सन्दर्भ में—‘पद्मातपत्रच्छया मण्डल’) का उत्कृष्ट अलंकरण प्रिय के पारवर्षी वस्त्र की निपुण बनावट तथा नारी-सरीर (स्तनों और नितम्बों का समार तथा धामूपनों का बाहुस्य जिसकी विविधता है) का सुखम यथार्थवादी निरूपण

सभी वास्तुशास्त्रों में भारतीय और यवनशिल्प की उदात्त सीसी के रूपों में समानता और प्रत्यक्ष सादृश्य के समकक्ष है। गुप्तकालीन साहित्य के समान गुप्तकला में भी मानव के शारीरिक नहीं बरन् धार्मिक सौन्दर्य के प्रतिमान स्थापित किए गए हैं। यवनशिल्प मुद्राकृति कामदेव के यन्त्र की भाँति बल योंही कमल के समान मयम परिपक्व बिम्ब फल-से घन, सुषुप्त कव्य और बाँहें सिंह की भाँति बल विभंग मुद्रा में शरीर-शरीर सत्ता के समान हिमता है तथा परिपक्व स्तन फूलों के मुकुटों का प्रमाण देते हैं। तथा 'मोक्षर' के सगणों में घनेक शरीर प्रमदित और समित कलात्मक रूपों का समन्वय है।

गुप्तकला के प्रारम्भिक काल है मानव-शरीर की कामुक मदन किन्तु प्रतीकों और मोटियों की एक समूह साहित्यिक परम्परा के कारण यह कामुकता कभी भी शरीरों में प्रकाश नहीं हो पाती। गुप्तकला में मानव-शरीर की चेतना तथा मानव-आत्मा की गरिमा और निर्मलता का विमल समन्वय है। गुप्तकला द्वारा व्यापार प्रमदित और प्रमदित के बारे में प्रतिमाविद्या-सम्बन्धी नई परम्पराएँ स्थापित हुईं जिन्हें प्रागामी घनेक प्रतीकों तक भारत और विदेशों में मान्यता प्राप्त रही। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह प्रतिमाविद्या प्रकाश की सीपत विच्छिन्नता कला की सप्रगता और प्रकाश पर हावी हो गई। बल्कि भारतीय कला में प्रतिमाविद्या की नियमावधियाँ तथा शरीर की परम्पराएँ ऊपर से सारी गई अनिवार्यताएँ नहीं हैं बरन् भारतीय जनता के हृदय और मस्तिष्क से उत्पन्न हैं। नाट्यिक तथा मूर्तिकला-सम्बन्धी आकारों और मोटियों का जो भीतर से सन्धे से ही प्रेरणा ग्रहण करते हैं तथा उनकी प्रमदित करते हैं नियम समाज-स्वीकृत कलाओं और प्रतीकों द्वारा होता है। निस्सन्देह प्रतीकालम्बता के कारण शरीर के अंगों और अंगों का प्रतिरक्षण है किन्तु साग आसानी से कला की वास्तविक भाषा को पकड़ लेते हैं फिर चाहे वह कला किसी भी रूप में प्रकाश संप्रदाय की क्यों न हो। इष्टदेव प्रकाश देवी के विशेष मनोभाव प्रकाश पुन के संदर्भ में उनकी प्रत्येक चेष्टा प्रमदित और प्रमदित-मयिमा स्पष्ट समझ में आ जाती है। इसी तरह उपकरण प्रकाश मुकुट और प्रमदित के प्रकारों का अर्थ समझना भी आसान है। बौद्ध जैन एवं ब्राह्मण धर्मों और मोक्षमार्गों के देवी-देवता योंही शरीर-पानी की आत्माएँ, नाम अलगाव और निज परस्पर-विरोधी प्रकाश पुन नहीं हैं बरन् पुन की धार्मिक वेचारिकता संवृतिवादी कला और धर्म द्वारा एकाकार कर दिए गए थे। इसके बावजूद प्रत्येक देवी देवता को उसकी शारीरिक विच्छिन्नता प्रकाश प्रमदित के जो प्रतिमाविद्या के नियमों के अनुसार होते हैं आधार पर पहचाना जा सकता है कि वह किस धर्म प्रकाश मय का है। इसके बाव में यदि संशय रह जाए कि इस कला का संकेत मात्र वास्तविक है तो किसी भी धर्म के इष्ट की मूर्ति (बुद्ध की मूर्ति भी) के नीचे नीची पर—जहाँ सके हुए सर्वप्रथम पौराणिक राज्यों और बड़े हुए क्षेत्रों की कौशाल्य काव्यिक जन्तु-मुक्त के रूप में प्रकट किया गया है—प्रकाश कलापूर्ण रंग से आभासी लोरी गई परस्पर पुच्छित उपरिचित जगहों पर—जिगमगी विपुल प्रतीका फलकाली है तथा मन्दिर के सिद्धांत के सामान्य प्रमदित में मूर्ति ही करती है—इष्टिपात कर सेवा ही काफ़ी होगा।

कला में लोकोत्तरस्वरूप का मानकीकरण

मुत्तकामीन मूर्तिकला में बुद्ध दिव्य और दिव्य की मूर्तियों के रूप और आदर्शों का अन्तिम मानकीकरण हुआ। लोकोत्तर स्वरूप के मानकीकरण का सर्वोत्तम उदाहरण इस काम की बुद्ध, दिव्य और दिव्य की प्रतिमाएँ ही हैं। बुद्ध के मिलन की विशेषताएँ हैं मुद्रा और परिष्कृति अथवा की बनाम में महीन जाली की नक़्काही बुद्धों से बात ऊर्ध्व की समुपस्थिति और पर कलाकार रेखाएँ, कलापूर्ण मुद्राएँ धार्मिक प्रमान्त मुक्तता पीछे एक विद्याम आचंकारिक प्रमाणित—सम्पूर्ण आदृति में अद्भुत ऐक्य निर्मलता और शोच। यहाँ पर सारनाथ और मथुरा की सुविख्यात प्रतिमाओं का द्विक समीचीन है। सारनाथ की प्रतिमा मुग़लाव में बुद्ध के प्रथम उपदेश की स्मारक है और इसमें बुद्ध की प्रथम की मुद्रा में अंकित किया गया है। धर्मचक्र बुद्ध के पाँच सबसे पहले सिद्धों तथा प्रतिमा की दाहिनी ओर उसके बच्चे को बाँधी पर समुचित रूप से कोण तथा है। संसार में मुग़लाव प्रवचन-दृश्यों को संकेतने में बुद्ध और उनके सिद्धों की आकृतियों को इन्हीं पैमाने पर बनाया गया है। फिर भी सारनाथ में बुद्ध और बर्षवक्रप्रवर्तन छावित धार्मिक हैं और यही कारण है कि महाभारत सिद्धान्तों के अनुसार बुद्ध की आदृति प्रमेयादृति बहुत अधिक बड़ी ठरती गई है। सम्पूर्ण अत्यन्त सुलभ है समस्त धार्मिक और माधुर्य का सम्पूर्ण की विशेषताएँ हैं जिन्हें अतिव रेखाओं विमुखों आँधों और बुद्ध द्वारा उभारा गया है। इस स्थायी विमुक्तकार आदर्श (वैदर्शनिक) के ऊपर एक अत्यन्त कलात्मक रूप से अत्यन्त कलाकार प्रमाणित है। प्रमाणित में पर्वत आकृतियों का एक वैदर्शनिक है जिसकी पर्वतरेखा मोतियों की है। हाथों में फूल लिए हुए पश्यनेवाले देवदूत बड़े कौशलपूर्वक प्रमाणित में ही सम्मिलित हैं और एक स्वर्गीयता का वातावरण उत्पन्न करते हैं। सम्पूर्ण की मर्मज्ञता और सद्गता इस मूर्ति में एक स्वच्छ वैदिक सत्य के साथ का सामनाओं की परिणामति और विशेष विमुक्तता को सूचित करती है, सम्मिलित है। इस प्रकार, मानवीय संस्कृति में पहली बार, मुत्तकला ने मानवादृति को अत्यन्त नैतिक मूल्य प्रदान किया।

इसी प्रकार माय के वैदिक और बौद्धिक लेख के संसार के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीकों में से एक है यमरा की बुद्ध की विद्याम प्रतिमा। अथर्वी पलकों के पीछे सांसारिक किया-कलाओं के रहस्य की यह जगजगती सिद्धी है। साथ ही कृपाय और परिष्कृती मुक्तता (को अमेसादृति अधिक स्वात सारनाथ की प्रतिमा में ललित नहीं होती) में निर्वाण के अकृत कल्प तथा संसार के प्रति बुद्ध की अमाय करवा का समन्वय है। स्मरणीय है कि इस प्रतिमा का निर्माण उसी युग में हुआ था जब नागध्या में महाभारत आदर्शवाद की सीमा की बा एही की और हमारा विचार है कि यह प्रतिमा महाभारत के विमुक्ततम प्रतीकों में से एक है। यह भी स्मरणीय है कि महाभारत-कला पर शास्त्रदेव रचित उत्कृष्ट काव्य 'बोधिवर्षितम्' की रचना सातवीं शताब्दी ईस्वी के अन्तिम चरण में हुई थी।

महाभारत बुद्ध (बाहे धामनस्य हों बाहे रिगत) बोधिसत्त्व (को एक राजा है) से अधिक अनादी और अमर्त्य है। प्रतिमाविद्या की दृष्टि से धार्मिक प्रकार की मूर्ति

में बोधिसत्व विमुक्त रत्नजटित हार और कटिबन्ध पहनते हैं तथा संभार के दुर्नों के प्रति उनकी अधीम कहना पर्याप्त उल्लेख्य है। उनकी श्रम्य मुक्तान् अनुतिर्भों की प्रथम भगिना और बन्धी-कमी सिर के तलिक मुक्ता वा शरीर के सिरधेन (विशेष कारण मूर्ति में एक विशिष्ट कोमलता और भमनशीलता या आली है) में उजागर होती है। शास्त्रीय दृष्टि से यह मुद्रा भारतीय नृत्य की अभिग मुद्रा के समान है किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह दुर्बियों के प्रति बोधिसत्व की कल्याण को व्यक्त करती है जो महामान बलि की विशेषता है। भारत और चीनका से चीन कोरिया और जापान तथा गंधार और तारिम काठ से बर्मा स्वाम बाबा और कम्बोडिया तक बड़ और बोधिसत्व की प्रनेका नेक प्रकार की मूर्तियाँ सताधियों के बोधम निमित्त हुई। इनमें मुद्राकृति का निर्माण तो परस्पर-नित्य भारतीय साथ दक्षिण बुनानबासी मंगोल और स्वर जातियों की मुद्राकृतियों के आधार पर हुआ है किन्तु मूर्तियों में अव्यक्तिक सूक्ष्मानुभूत निर्मलता और कल्याण—जो एशिया की महामान की देन है—के पूर्ण उत्पादन के लिए सभी विभिन्न देशों में पुष्टकाल की कला से ही प्रेरणा ग्रहण की है। उभाई तो यह है कि एशिया के प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक जाति ने बौद्ध धर्मियों (जिन्हें मुष्टकासीन मूर्तिकला में इतनी स्वाधी और इतनी कौटुम्बी प्रमिष्यक्ति मिली) के आधार पर अपनी मूर्तिकला में एक लोकोत्तर स्वयं का विकास किया है।

नारी-सौन्दर्य का एशियाई धार्मिक गुप्तकालीन निरावरण मूर्ति

मधुरा छापी सारनाथ और बोधगया में उत्पन्नित बुद्ध और बोधिसत्व के गुप्त कालीन धार्मिक समस्त एशिया की बौद्ध मूर्तिकला के धार्मिक और भावने हैं। इसी प्रकार, अपना राजसी मुद्रा और वैजयन्ती नामा वारण किए हुए विष्णु तथा सर्व से परे ब्रह्मा-बुद्ध समेत छिन्न प्रथम लोकेस्वर (जिसे कामिवास ने 'कुमारसंभव १ ४६ में 'मुक्तमोमज्जटा कलापम्' कहा है) का एक मधुरीन रूप है तथा कला के ऐसे विषय हैं जिनका प्रसार भारत की सीमाओं के पार दूर-दूर तक हुआ। इसके अतिरिक्त, नारी की निरावरण मूर्तियों का प्रकट में भी गुप्तकालीन कला ने अविकीर्य मानदंड स्थापित किए। भारत से छापी तक की प्राग्भिक कला में यशिका सबसता है या धर्मलभ है तथा कटिबन्ध पहने हैं जिनके और कलात्मक तर्कों में लटके हैं। पूर्ववर्ती कुषाणयुग में भारतीय कला में पहली बार लभ्य धाकृतियों का धुनन हुआ जो पारदर्शी रेधम या मलमल पहने हैं। उसी समय से भारतीय कला में पारदर्शी बस्तु की एक परम्परा चल पड़ी जिनका उद्देश्य या रेधियों धर्मराष्ट्रों ननरेधियों धार्मिक के नारी-सौन्दर्य का वर्णन करना। किन्तु जैसा हम पहले भी दरा चुके हैं कुषाणकाल के नारी-सौन्दर्य के उत्तम प्रदर्शन का स्थान गुप्तकालीन कला में एक उत्कृष्ट (क्यामिबस) समुत्पन्न ने के निजा तथा प्रमुक्त बीसी प्रांसम और धार्मिक होने का साथ साथ धर्मशील और अर्थाधिक भी हो गई। गुप्तकाल में निर्मित नारी की प्रनेकमय मूर्तियाँ लयात्मक वैदिक सौन्दर्य से कम्पित किन्तु फिर भी निर्मल और सयत हैं। इस प्रकार की सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ हैं बंजा (प्रम बास्टन संग्रहालय में) पति की अनुपामिनी ग्यामिपर की अम्परा ऐरोल की शिवानुरक्त पार्वती (प्रम बम्बई संग्रहालय में) तथा प्रमदा-भित्तिधियों

के विभिन्न श्रृंगारी युगल और शासन्मूर्तु रचनियों। साहित्य और कला दोनों में प्रसुत नारी-सीर्ष के ये प्रतिमान (कालिदासद्वारा विख्यात पार्वती के सीर्षदे-वर्णन से तुलना कीजिए) ही बोरौकुदुर स्वाम और कम्बोहिया की मूर्तिकला के साक्ष्य बने। पश्चिमी कला इतिहासकारों का विचार है कि सार्वजनिक प्रसाहों और धोत्सविक खेलों में मननता की सुस्थापित परम्परा का प्रचार्यवादी कला और सामान्य आमनीयता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा तथा १५४५ में यूरोप की दृष्टि काउंसिल द्वारा धार्मिक कला में मन्मूर्तियों प्रचारा नव्यविशों के प्रचलन के निषेध का कुरजमान हुआ। इसी प्रकार भारत में मानव और विक्षेप कर सेमारी के सीर्ष के मन्म निरूपण का आधार है पारवर्ती बर्तों की सर्वसम्मत परम्परा। भारतीय कला के इतिहास में इस परम्परा का प्रभाव प्रत्यक्ष युग और व्यापक है।

कला और काव्य दोनों में नारी-सीर्ष की विशेषताएँ हैं 'झूले हुए कमल और लसकर रमन हुए स्वर्ण-कलशों जैसे पुष्ट स्तन' 'केले के तने जैसी मुहीम और उबरी हुई जंघायें' तथा 'बेसी के मध्यभाग जैसी पतली कमर'। कमर के पतलेपन के विपरीत सुपुष्ट स्तनों के उभार से एक लक्ष्मीकी उद्देय यह भी पुरा होता है कि 'विष्णुधर्मोत्तरम्' के अनुसार, नारीपूति 'बाराह केटी-सी' मासूम पड़ती है। इसके प्रतिक्रिस्त मानि गहरी और स्पष्ट होनी चाहिए। पार्वती के सीर्ष का वर्णन कालिदास ने इस प्रकार किया है

तत्त्वा प्रविष्टा नतनामिरण्य रराज तन्वी मल्लोमराजि ।

नीवीयतिकम्प्य सितेतरस्य तन्मेखनामध्यमधेरिवारि ॥

(कुमारसंभव १ १५)

मारदुत तथा उसके बाद की समस्त भारतीय प्रतिमाओं में नाभि का सदा सुस्पष्ट चिह्नताया गया है। सर्वों की प्रजा के समान मुष्टकासीन कला में नारी-सीर्ष को भी कलात्मक लक्ष्यों युगाओं और रीतिमाओं द्वारा व्यक्त किया जाता है। मुष्टकासीन नारी की मन्म मूर्तियों की—फिर चाहे वे लसदेवी प्रचारा रंजनों की हों चाहे प्रसन्न प्रचारा बोधिसत्व की रानी ताण की—प्रायः कान्ति और विमुदता द्वारा उन मानवों की स्थापना हुई जो समस्त एशियाई कला में नारी के प्रार्थन गुणों के प्रचलन का आधार बने। देवताओं प्रचारा बोधियों की पारमौनिक प्रजा तथा नारी की नैतिक और प्राध्यात्मिक सहृता के निरूपण में मुष्टकासीन कला समान रूप से निष्ठा थी। यह निस्संदेह उस सप्त और समृद्ध युग में प्राध्यात्मिकता और नीतिकता के व्यापक मानवतावाद और समुत्पन्न का प्रतिकल था।

भारतीय कला के 'धन'

भारतीय सीर्षशास्त्र के सिद्धांतों और परम्पराओं का प्रतिपादन और सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण 'विष्णुधर्मोत्तरम्' और 'हित्तरत्नम्' में हुआ जिनकी रचना मुष्टकाल में हुई। 'विष्णुधर्मोत्तरम्' में चित्रकला का परीकरण 'प्रचार्यवादी' 'उत्तममक' और 'नामरम्' विधियों में किया गया है, तथा मन्मूर्तों प्रासाहों और निजी भाषाओं के

१. भारतीय चित्रविश्व काव्यार्थ प्रसन्न कलाया तत्त्वार्थरत्नम् ।

वर्णितः सप्तः प्रकाशः श्रीमद्भारतः समस्तः ॥

उपयुक्त चित्रकर्म बताए गए हैं। समुचित प्रवाह और 'चेतना' (जो वस्तुतः भारतीय कला का मुख्य स्वर है) द्वारा मग स्थितियों की अभिव्यक्ति तथा सौंदर्य के कुछ आदर्श मानदंडों के समनुवर्णन पर बहुत अधिक जोर दिया गया है। यथोक्त कामगुरु के भाष्य में चित्रकला के छ प्रंग बताए गए हैं (१) रूप भेद (२) प्रमाणम् (३) भाष ध्वजा रसामिव्यक्ति, (४) भावव्य-योजनम् (५) साहस्य तथा वर्णिका मग ध्वजा रंग-विधान। सिधेह हो (४७६-५१) द्वारा प्रस्तुत चीनी चित्रकला के छ प्रंग भारतीय चित्रकला के छ प्रंगों के अधिक समान हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि वर्णिकरण में उनका क्रम कुछ भिन्न है। चीनी चित्रकला के छ प्रंग हैं (१) मानसिक चिन्तन के फलस्वरूप चेतना का जन्म होना (२) तूभिका द्वारा सारीरिक संरचना को व्यक्त करना (३) प्रकृति के साहस्य की भावितियों बनाना (४) वस्तु की प्रकृति के अनुसार रंगविधान (५) रेशाओं का उपयुक्त स्थानों पर वितरण (६) चित्रों में प्रयोग करके वर्णों को प्रभावित बनाना।

'विद्युन्मूर्तारम् और विस्मरलम्' दोनों में चित्रकला के प्रंगों का सविस्तार विवेचन है। 'विद्युन्मूर्तारम्' में एक स्थान पर लिखा है कि नृत्यकला के आरम्भिक ज्ञान के बिना चित्रकला में मन-स्थिति की समुचित अभिव्यक्ति असंभव है। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि 'रूप' ही चित्रकला और मूर्तिकला का सार है। स्वयंनशील भविष्य और मुद्राएं ध्वजा और भाष के उत्कृष्ट चित्रकर्मों की विशेषताएं हैं। किन्तु इति यही नहीं। गुप्त तथा मुद्रोत्तरकालीन उमास्वार तथा अन्य मूर्तियों में भविष्य और चेतना का गत्वात्मक प्रवाह है जो उन मूर्तियों को सौन्दर्य और शोक प्रधान करता है—कला में इन दोनों गुणों की एकसाथ उपस्थिति अत्यन्त विरल है। मूर्तिकला और चित्रकला की ये मूल नृत्यकला से मिलने के नृत्यकला उस समय सारे देश में सत्ताधिकारों से भरपूर लोकप्रिय थी—उसे सामाजिक उपमति भी माना जाता था और मन्दिरों या सत्सवों में धार्मिक संस्कार भी। वस्तुतः भारत में नृत्य तथा धार्मिक मूर्तियों में अत्यधिक साम्य है। 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता भरत मुनि ने एक ही आठ नृत्यमुद्राओं का वर्णन किया है तथा शिव महाराज के प्रख्यात आसन विदम्बरम मन्दिर के गोपाभर्मों में इन मुद्राओं की मूर्तियाँ हैं—इस प्रकार, दोनों की आत्मा के ऐक्य को सुस्पष्टस्थित होना है प्रस्तुत किया गया है।

'प्रतिमासंज्ञकम्' में जिसे उसके तिब्बती अनुवाद में 'श्रुति आश्रय स्थित तथा एक बीजपत्र पर आधारित बताया गया है। मूर्तियों के शिर मुम और हाव-पीरों की विस्तृत मापें तथा मूर्तिकला के कुछ सामान्य धर्म दिए गए हैं। मान्यता है कि इनका सामान्य उपयोग हो सकता है। 'मूर्ति का शिर ध्वज के समान बनाना चाहिए। इससे धन-सम्पत्ति में वृद्धि, फलन अक्षी तथा समृद्धि होती है। मस्तक पर टीली भी है ध्वज सीमाय्य जाती है। प्रतिमा कलात्मक हो ता प्रजा सुखी होती है। प्रतिमा की शीर्षा ध्वज के समान हो तो वह सर्वत्र सफलतादायिनी होती है। ध्वज के समान शरीर प्राकृत्य और सविता की वृद्धि करता है, हाथों की धुंड बेसी बाहें सभी भागधारों और उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। मुपङ्क पेड़ वाली मूर्तियाँ समृद्धि और बहुसता पाती हैं। केस क नृस प्रीती

जाते बकरियों और भेड़ों के बक में वृद्धि करती हैं तथा शुभक टवन गाव की उन्नति करते हैं। लुबमुरती से गले गए पीरों वाली मूर्तियां सम्भवतः और ज्ञान का कारण बनती हैं। यह है प्रतिमाओं की उत्पत्ति की महत्ता।

प्रतिमाविद्या की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिपाटी है १२० मा १ ४ अंगुल की माप सम्झाई। इसे 'दशतल' अथवा उत्तमदशतल प्रमाणम् कहा गया है। एक ग्रन्थ में लिखा है कि 'विष्णु ब्रह्मा और शिव की मूर्तियों का उत्तमदशतल के अनुसार (१२४ अंगुल) तथा श्री भूमि उमा और सरस्वती की प्रतिमाओं की मध्यमदशतल के अनुसार (१२० अंगुल) बनाना चाहिए। श्रीकृष्ण प्रतिमासज्जम् की व्यवस्था है कि ब्रह्मा तथा देवी लक्ष्मी जैसे इष्टदेवों की मूर्तियों का आकार उत्तम दशतल की प्रतिमाएँ दशतल प्रमाण के अनुसार बनाना चाहिए तथा अन्य किसी भी मूर्ति इस प्रमाण के अनुसार कदापि न हो। सत्पुत्र प्रतिमा तब दश 'भाग' में विभाजित की जाती है जिनमें से प्रत्येक भाग 'गुह्य' के आकार के बराबर (एक 'तल' या दश अंगुल) होता है। भारतीय प्रतिमाविद्या की इस परम्परा के बारे में सांख्यिकी का मत ठीक है कि इसमें सांसारिक प्राप्ति के चरों के समाना भी कुछ निहित है। प्रमाण के मानदंड पर मिलने वाले मूलानी पर्सिकलीटॉन तथा रोमक कपूनियस दोनों ने अपनी प्रमाण प्रणाली के आचारम्भक अष्टमूक नियम—आमास्य मानवीय स्तर—स्वीकार किया है किन्तु भारतीय मूर्तिकारों ने अपनी मूर्तियों के लिए दशतल (अथवा 'दशगुल') माप अपनाई है क्योंकि भारतीय शिल्पियों ने अपनी प्रतिमाओं के लिए ऐसे परिमाण निर्धारित किए हैं जो सामान्य मानवीय स्तर से परे हैं।

प्रतिमा के निर्माण में 'ध्यान' को अनिवार्य माना गया है। 'शुक्लीतिवार' (चतुर्थ १०४ ७०-७१) में लिखा है 'प्रतिमाकार को चाहिए कि मंदिर में जिन देवताओं की मूर्तियां बनायी हों उनके उपयुक्त ध्यान करके ही मूर्तियां बनाए। ज्ञान योग के मत पर ही प्रतिमाओं की लक्षणार्थ संमेल हो पाती है। अतः मन्दिर प्रतिमाकार का ध्यान मग नहीं होना चाहिए। कारण केवल इसी विधि द्वारा वह अपना काम पूरा कर सकता है—अपने सामने प्रत्यक्ष रखकर तो वह प्रतिमा का निर्माण कर ही नहीं सकता।"

मूर्ति के निर्माण से सम्बन्धित छोटे से छोटा काम भी किसी एकान्त और मुनिव्रत स्थान में सहायक तथा इन्द्रियों को बंध में रखते हुए करना चाहिए। अपना काम सम्पादित करते हुए प्रतिमाकार को उसी देवता का ध्यान में लेना चाहिए जिसकी प्रतिमा वह बना रहा है। देवता का रूप (अथवा प्रतिमा) निश्चय ही इन्द्रियादीत परमात्मन का एक स्वरूप अथवा है। शिल्पकारों में बसित प्रतिमाकारों के अनिवार्य गुण हैं। अविच्छिन्न मनोयोग और शास्त्रानुसार जिनके मत पर पूर्व कार्यरुचय का प्रत्यक्ष होता है। ठीक योग के समान। वैदिकदेव समाधि में मुझे ज्ञान दीजिए कि मैं अपने सोचे हुए काम पूरे कर सकूँ।" "ध्यान के बरवाना मूर्तिकार कार्यरत हो जाय। मिला धारण प्रतिमाविद्या का जन्म देते हैं किन्तु कला का जन्म तब ही कलाकार की समाधि के देवता अथवा इन्द्रियों के बीच होता है।

स्थापत्य देवता' के प्रति स्तव 'व्यास' और 'प्रज्ञा' के पश्चात् प्रतिमाविद्या-सम्बन्धी गुणों के प्रथम द्वारा ही कला का वर्णन होता है। वस्तुतः व्यास सत्कार और प्रतिमा-निर्माण एक ही क्रिया-मानवात्मा की सुखनात्मक प्रक्रिया-के पक्ष हैं।

गुप्त-कला की धार्मिकताहीन प्रवृत्ति

योषी के 'धनुस्तराज' के उद्घाटन के लिए प्रयत्नशील मूर्तिकला की मनीष परम्पराएं इतनी सक्षम हैं कि कुछ बोधिसत्त्व चित्र और बिम्बु सभीकी प्रतिमाएं एक ही मनुष्य की हैं। कुछ बाह्य लक्षणों प्रथमा प्रत्यक्ष-मुद्रितों द्वारा उन्हें धर्म-अधर्म पहचाना जा सकता है। जैनवाद की तीक्ष्ण धारों से इसे पहचाना। जैन तीर्थंकर की प्रतिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है 'अपने गुह्य की प्रतिमा को उन्होंने तबानठ की प्रतिमा के समान बनाया है केवल वस्त्र भिन्न हैं' शीर्ष-रत्न नहीं हैं। मधुर संप्रदाय की जैन तीर्थंकर, यक्षुरा के अनेक बिम्बुओं की मूर्तियों तथा देवगढ़ की नर-नायक की प्रतिमाओं के नये वर्णों में प्रमाओं की पुंजीयता और नर-नायक की स्तिमता समान रूप से विद्यमान हैं। ये एक प्रति चैतन्य मयता की भावना तथा समुत्पन्न और बोध की धनुमति को जन्म देती हैं जो सभी प्रकार की गुप्तकालीन मूर्तिकला की विशिष्टता है। कालिदास के 'कुमारसंभव' में योगम्यामसीन चित्र के चित्र और बौद्ध कला में बुद्ध की धामनस्य प्रतिमा में साम्य है। इसी प्रकार, महायान बौद्धधर्म के बोधि चर्यों की निर्मलता और कदवा हमें गुप्तकालीन बिम्बु की प्रतिमाओं तथा चित्र-मुद्रितियों की प्रभाव धान्ति और मधुरता में पुनः प्राप्त होती हैं। गुप्तकालीन अमिषकला का सर्वोत्कृष्ट गुण बुद्ध और बोधिसत्त्वों की प्रतिमाओं तथा एकमुखी व अनुमुखी चित्र चित्रों और बिम्बु की स्वतः प्रतिमाओं में एक नयी शैलियों और प्रत्यक्षों तथा द्वार स्तंभों पर प्रभुर पुष्प-असक्तियों में भी समान उपस्थित है।

बौद्धकला मानवीय और भीक्षु है। शास्त्रकला अधिकारिक मानवीय और लाकोत्तर है। किन्तु गुप्तकाल में नैर्निस्पृहता और मानवभाव को इतना अधिक महत्त्व प्राप्त था कि पृथ्वी के रक्षार्थ बरहृ समस्तार सेप-अम्मा पर ध्यान करते बिम्बु तथा विराट् बिम्बु (अनन्तगीता के विरचक) जिनके कृताकार प्रमाणों में प्रहों का प्रदर्शन है सभी को मानवीय परिवेश में ही धकित किया गया। इसके विपरीत मध्ययुग की प्रतिमाएं प्रति मानवीय हैं। इनका एक कारण गुप्तकालीन प्रगाढ़ कृष्णमयि भी था। मधुर और ऐहिक में बिम्बु तथा देवगढ़ द्वारा मन्त्र-मुद्रित रामचन्द्राष्टक ग्रहणोद्धार और नर-नायक की प्रतिमाओं में ब्रह्म के अक्षर्य अक्षर और जीव ('जिनका सातों लोकों में कोई और सहाय नहीं') के प्रति बिम्बु को प्रगाढ़ कदवा का समन्वय है। ये प्रतिमाएं साध्वारिक सिद्धांतों की नही बरन् धार्मिक भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्तियां हैं और यही इनका महत्त्व है। बोधिसत्त्व और बिम्बु की कुछ मूर्तियों में व्यक्त ईश्वर की प्रगाढ़ कदवा में कपान्तर है जो गौतम और रोमक कला में है। महायान और पाँचराज के भक्ति-साहित्य में हम पाते हैं कि धार्मिक चेतना में भी नही भावनात्मक कपान्तर है।

धम्मन्ता की विभक्तता में धारीरिक और धारिमिक का एक्य

भारतीय धर्मकला का चरमोत्कर्ष मृत्पुष्पात्म में धम्मन्ता और बाघ में हुआ और मृत्पुष्पासीन वज्रासिद्धता का यम्भीर प्रभाव उसपर भी पड़ा। धम्मन्ता के विभक्त मानवीय भी हैं और देवी भी। उनमें उपसम्भवादि और धारिमिक का सम्मुख महायान योगाचार और नई कला-परम्पराओं के सन्निर्माण एवं स्वीकरण से सम्भव हो सका तथा वही सम्मुख प्रहितीय व्युत्पत्ता का कारण है।

मानवीय कान्ति और धम्मन्ता सम्प्रदायी कान्तिदास की धारणाओं को नियंत्रित करनेवाले धर्मों सर्वोच्च के साहित्यिक प्रतिपादन ही धम्मन्ता के विभक्तों में उपस्थित 'प्राविशता और ऐन्द्रियता के मुक्तों का निर्धारण भी करते हैं। नाटकीय अभिव्यञ्जकता द्वारा स्वयं और गमिमाओं का निर्देश होता है तथा जीवन के मरिचक प्रवाह पर यह धारणा हावी रहती है कि जीवन की प्रत्येक घटना मानवीय और ईश्वरी साध-साध है। मानवीय ज्ञानसा और दुःख को तथा अपनी सहृदयता कला और सविश्लेष द्वारा मानवीय व्युत्पत्ताओं को विजित करनेवाले बोधिसत्त्व की कठिनतम परीक्षाओं के द्वारा महायान-दर्शन में संसार की प्रकृति और प्रवर्तमानादिता के—जिनसे मुक्ति पाने का मार्ग है बोधिसत्त्व की असीम प्रज्ञा और कला—प्रतीक है। इस प्रकार 'संसार' और 'निष्कार' एक है तथा धम्मन्ता की कला के सारस्व काश्च्य और सम्मोहन की उपसम्भवा महायान में निहित मानवार्थता की संयम मानना के कारण हुई है।

धम्मन्ता के महान विभक्तों में से सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है अंधे साधु पति पत्नी तथा उनका बच्चा जो एक कोमल काश्च्य की अद्भुत भावना से बंधे हैं सुकुमार मनमोहक राजकुमारी की मृत्यु का एक क्षण जिसमें आसन्न मृत्यु का भय उसे आर्तव्य नहीं कर पा रहा है तथा उसकी मुक्ती परिचारिकाएं स्थब्ध खड़ी हैं (शायद पदव्युत्पन्न ज्ञान कला की रानी है दूसरी और तीसरी अताम्बी ईश्वरी में समरपत्नी और मोक्षी में विवर्ती प्रतिमा बनाई गईं) ब्रह्म की ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् यक्षोत्तर और राहुल की उनके पैर जो ब्रह्म की धाम्मार्थिक उन्मादस्था के प्रति उत्सुक और जागृक दोनों हैं तथा राजा द्वारा एक सुन्दर स्त्री को दंड दिया जाना जो कांपती हुई बैठी उनके पांव छू रही है। बने बनों और शूरे शूरे पास के मैदानों राजदरबारों और नैऋत्य प्रकोष्ठों साधुओं के धाम्मनों और गृहस्थों के घरों सभी स्थानों पर प्रकृति और मानव जीवन के समस्त प्रवाह में एक अति चेतन जगत् की दीप्ति व्याप्त है, जिसके कारण संसार के कार्यों और उत्तेजनाओं मुक्तों और दुःखों में पारलौकिक भूतों की व्यवस्था और स्थायित्व का समावेश होता है। भित्ति चित्रों में शिल्पकर्म से विभिन्न सांसारिक सौख्य और सुख पर यक्षों द्वारा प्रस्थापित महायान योगाचार वर्धन का स्पष्ट प्रभाव है। प्रथमवर्षा दृष्टव्य है कि अर्धवृत्त कुछ समय तक धम्मन्ता के संसार्य में रहे थे और उन्होंने बोधना की भी कि संसार स्वयं के स्वयं के प्रतिविम्ब कुछ नहीं है। केवल संसार ही नहीं किन्तु विचार भी क्षणिक है, सबों की एक निरन्तर शृङ्खला है। इतना ही नहीं एक कुछ का सार्वभौम समन्वय धारण धाम्म-विज्ञान भी निरन्तर परिवर्तनशील है जनकता और मरणा है धम्मन्ता के अर्थों और

कार्यों को स्वयं में निहित रखता है। और सचेतम प्राणियों को अस्तित्वहीन होने से बचाता है। सर्वज्ञानकर्ता है बोधिसत्त्व जो हाथ में एक मीलकमल लिए हैं तथा (क्यारमक और साधनिक दोनों प्रकार से) संपूजन के क्षेत्र में अवस्थित हैं। सिर वातनिक भस्म भुक्ता गति के लिए दैनिक स्पन्धित शान्तमुद्रा तथा हाथ की उत्कृष्ट मंगिमा (जो हाथ के कमल की लपौली नाम के समान है) संसार के प्रति बोधिसत्त्व की प्रशङ्क करणा के प्रतीक है। महायान धारम्य की सर्वव्यापी कला और कोमलता ही समस्त सृष्टि को बोधिसत्त्व के पास बापस ला देती है। ठीक उसी प्रकार जैसे भित्तिचित्र में मानव पशु और वनस्पति संसार के अनेकानेक रूपों को देखने के बाद धर्मक की धार्मिक विचार प्रमुख पाठ्य पट ठहर जाती है। किन्तु यहूरी सुफा के स्पन्धित प्रकाशान्धकार में मानव की दृष्टि संसार बोधिसत्त्व और उनकी क्यामा परती प्रशङ्क 'अस्ति' (यह बौद्ध तान्त्रिकवाद के विकास का सूचक है) सभी प्रयत्नार्थ है ठीक उसी प्रकार जैसे धारम्य विज्ञान के वर्म में समय के स्पन्धन के साथ स्पन्धित प्रयुक्तनीम और मरणनीम अनेकानेक रूप भी प्रयत्नार्थ है। बोधिसत्त्व पञ्चपाणि में अजन्ता को कला अपने उत्तमम चिह्न पर है। संसार की कला के इतिहास में इसकी तुलना केवल स्यूरेम्बर्ग की मैनोना से—बौद्धिक मूर्तिकला की अष्ट कृति विश्वमें मानवाकृति को ऐच्छिक संपूजन में प्रतिपादित किया गया है तथा प्रतिपादन में अद्वैत मनुष्य और संगति है—की जा सकती है। योगाचार विज्ञानवाद में बौद्ध और बोधिसत्त्व भी आयायी है। पञ्चपाणि मानव के शारीरिक सौंदर्य का नहीं बरन् आध्यात्मिक और अगूठ नीरव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें महायान के समस्त वर्चन तथा गुणकामीन कला की समस्त कलाधिकता का भार उपरिष्ठ है। तथा यही वह प्रेरणास्त्र प्रत्यक्ष है जिसके आधार पर चीन जावा त्याम और बम्बोडिया म कुद्ध महानतम कलाकृतियाँ प्रस्तुत की गईं। चीनी और पाँचवी अताधियों की मत्तकामीन कला के सन्तुलन और कलाधिकता से प्रेरित एशियाई कला ऐशिया और कमनीय होते हुए भी सन्तुलित और स्वच्छ है।

गुप्त दाय

गुप्त-साम्राज्य ने जिस विशिष्ट सांस्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात किया था वह गुप्त-साम्राज्य के विषयम प्रशङ्क हूणों के आक्रमणों के बावजूद न तो समाप्त हुआ और न रका। वस्तुतः अनेक स्वाधीन राज्यों का उदय हुआ। ये राज्य स्वयं संस्कृति के क्षेत्र बन गए। अन्तर इतना हुआ कि संस्कृति बीड़ न रहकर बाह्य हो गई। आनेवर के वर्मनों कमनीय के पुर्न प्रतिहारों और गह्वनाओं बला के पालों तथा दक्षिण के चामुक्यों राष्ट्रदुर्गों और पत्तनों ने गुप्तकामीन संस्कृति और कला की उपलब्धियों को धाम बढ़ाया। मन्दौर के धामक (२३३ ई०) तथा मिहिरकुस के विजेता यमोवर्मन ने भारत में हूणों की शक्ति का अन्तिम रूप से विनाश कर दिया तथा म्यारहवीं शताब्दी के धारम्य में महमूद गजनवी के आक्रमण हुए। लोगों बटमाओं के बीच की अताधियों में भारत पर विजेती आक्रमण नहीं हुए। सिंध पर अरबों ने अवश्य अधिकार कर लिया किन्तु यह एक स्वाधीन महार की घटना थी और देश के लिए इसका राजनीतिक महत्व नगण्य था।

यद्यपि गुप्तोत्तरकाल में एशिया में भारत की बौद्धिक और वास्तविक प्रभुता कायम रही। संसार के व्यापार और वाणिज्य में भी भारत भागे रहा। इस व्यापार के फलस्वरूप पश्चिम में रोमक साम्राज्य और पूर्व में मोस्कोन केसेरीज से सेना और वाणी भारत भागे रहे। हूण और यवोनियन की धमनीता में महोदयभी मल्लिकार्जुन और विजयार्जुन के शासनकाल में काश्मीर तथा धर्मपात के शासनकाल में पाटलिपुत्र एवं सहिष्णु एवं समृद्धि वाली कला और संस्कृति ने विख्यात केन्द्र बने। गुप्तोत्तरकाल की महान कलात्मक उपलब्धियाँ मूर्तिकला और एकाग्र-मन्दिर निर्माण पर आधारित थीं। सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियाँ धम्मला और एसोरा (दक्षिण में) बादायी ऐहोम और पट्टद्वज (पुर दक्षिण में) तथा मानस्मपुरम् (बंगाल की पार्श्व) में हैं। ये सब सभी उत्तमों की स्वीकृति की भारतीय पूर्व मध्यकालीन कला के समूह हैं। सम्युक्त युग की विशेषताएँ हैं देश के भीतर के संसार जातों द्वारा कला में क्षत्रीय उपक्रम तथा विनाश पश्चिम में विश्व कला होने के कारण प्रभावकारी रोमक प्रभावों का पूर्ण बहिष्कार तथा भारत भूमि से सागर-पार के हिन्दू उपाधिधर्मों और राज्यों की ओर प्रवाहित संस्कृति और कला की एक विनाश प्रवाही साध।

सम्ययुगीन साहाय्य कला मानवोपरि एवं विलक्षण

गुप्तकला में बौद्ध संस्कृति का बरमोक्त्य परिलक्षित है तो सम्ययुगीन कला में पौराणिक और वास्तविक हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान। धम्मला की कलात्मक बौद्धकला और एसोरा की सम्ययुगीन साहाय्यकला के पारस्परिक सुस्पष्ट विपर्यय में यह धम्मला साध पता चलता है। धम्मला की कला महापान बौद्धधर्म के वर्णन की भाँति लौकिक सुस्पष्ट उदात्त और निम्न है। इसमें महापान-वर्णन की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है। एसोरा की कला पौराणिक और वास्तविक हिन्दूधर्म के वर्णन की भाँति मानवोपरि उदात्ततापूर्वक विनाश एवं क्लेश है। इसमें इस वर्णन की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। एसोरा की मायाविता और कल्पनात्मकता वास्तविकता की देन है। वास्तविक वर्णन में 'महाभाषा' को एकलक्ष समझान और ज्ञान का प्रतीक माना गया है तथा 'महाभाषा' को एकलक्ष समझान और ज्ञान प्राप्ति का मार्ग भी प्रकाश करती है। इन दोनों कारणों से ही पार-मानवीय एवं मानवोपरि दृष्टियों के युक्त की पुष्टभूमि में वैदिकता और विश्व रहस्य मानवीय साक्षात् और अपाक्षित उद्यम का उत्कृष्ट समन्वय है। धम्मला में बौद्ध भारत सक्तिमान मानव तथा उसकी निर्वाण की नियति को पूजता है, जो ब्रह्मा की सुषुप्तता और संयति से कहीं अधिक मध्य है। एसोरा (सातवीं-आठवीं शताब्दी) में साहाय्य भारत ईश्वर और सक्ति समता और उद्योग रहस्य और मानवोपरि का उपासक है किन्तु फिर भी जो कुछ मायावी पारलौकिक और धम्म है वह मानव की ओजस्विता और महत्ता का सा में उजागर होता है। मानव का कल्पनामय भावनात्मक सम्ययुगीन प्रथमता और नियति का ही एक धर्म बन जाता है।

बौद्धकला मानवतावादी और सुस्पष्ट है तथा साहाय्यकला उग्रपूर्व और रहस्यमय। धम्म बौद्धकला को साहाय्यकला की अपेक्षा अधिक साक्षी से समझाती

सकता है। ब्राह्मणकला में विश्व की संयोजना में मानव की प्रमुखता की बीज बारणा को प्रस्थीकार करके समित तथा काव्यात्मक प्रतीकों द्वारा विश्ववर्गीय मानवोपरि मनो-भावों और मूल्यों को व्यक्त किया गया है। सृजन और संहार आवेष्ट और मुक्ति के अपाधिब पक्ष ही मध्ययुगीन ब्राह्मणकला के मुख्य विषय हैं। प्रेम और कष्टता की असीम कोमलता (जो सर्वत्र जीवन की सृष्टि करती है) तथा संहार की अबाधित उग्रता (जो सर्वत्र जीवन का पुनर्निर्माण और अपान्तरण करती है) दोनों की सुखद अभिव्यक्ति ब्राह्मण-कला में है। मध्ययुगीन मूर्तिकला में सिद्ध गत्यात्मक उद्वेग अथवा परिवर्तन के तथा विष्णु व्यवस्था और स्वायत्त के प्रतीक हैं। विश्व की मध्य मय के अनुकूल मानवात्मा में दोनों का ऐक्य अथवा समन्वय होता है। इसके साथ ही पार्वती कासी और लक्ष्मी के रूपों में प्रकट होनेवाली माया देवताओं और मानवों दोनों में ज्ञान और प्रवचना की अपाधिब स्थिति है। इस विष्णु अपाधिब सर्वभर्ते बुवाई पर अन्धकार, अव्यवस्था और विष्णु अस्तित्व पर ऐक्य और स्वायत्त तथा सृजन और सुख पर मौन और व्यवस्था की विषय का समावेश पुराण और तन्त्र की कल्पना और काव्य ने किया है।

मूस स्वाराध्य देवों की दिव्य क्रिया

एसोरा के दशावतार मन्दिर में देवों के विरुद्ध अर्धकरध्वज में रत विद्यासकाय शिव भैरव की—छात्र में लक्ष्मी दोनों पतिव्या अयोत्पादक व धातवकारी कासी तथा सोमामयी पार्वती भी है—प्रतिमा भारतीय मूर्तिकला के अमलकारों में से एक है। ईश्वर के परिभाषक काव्य और प्रेम की ज्योति का दूसरा पक्ष है। दुष्टता के संहार की अबाधित उग्रता जो प्रतिमा में व्यापक एवं अल्प विकर्ण आसन द्वारा अभिव्यक्त है। विभिन्न हाथों के विसर्पों तथा दया की भीक मांगते हुए देव रत्नामुर को बेचनेवाले विष्णु के भरपूर कर्मवत् प्रहार ने इस उग्रता में वृद्धि की है। आकृतियों का पूरा समूह जिसमें कासी और पार्वती भी सम्मिलित हैं और मुष्ण-मन्दिर के भीतर जिन्हें देखा-भर या सकता है एक अपाधिब उद्वेग और ललित से प्रकल्पित है। इसी प्रकार, शिव-नटराज (जिनकी महिमा का वर्णन कामिबास ने 'मैत्रकृत' में किया है) चामुंडा अथवा कासी के तांडव नृत्य (अवभुतिरुत 'मासलीमावव' में वर्णित) राजन द्वारा कलाश को अमगाना तथा शिव द्वारा उसका मान-अर्पण (जै प्रकार से वर्णित) मूर्ति व्यवहार में विष्णु द्वारा हरिष्णुसिपु के बच तथा अनेकबाहु बुवाई द्वारा महिषासुर का वध के प्रतिपादन विनयन हैं। हम सभी प्रतिमाओं में मानवीय गरिमा अभिमान आक्रोश और धारमा की वंशसे—जो सृजन की आयोजना में एक सुख्यवस्थित एवता की रथापना के समय अभिवार्यत उत्पन्न हो जाते हैं—अधिक कुछ और है। कलाध पर्वत को अगमयाते हुन राजन की (वाल्मीकि से कामिबास तक कवियों ने इस विषय पर लिखा है) प्रतिमा में हम देखते हैं, मानवोपरि ललित के बीसाहल का प्रतीक शिव नहीं बरन् राजन है। उसके पैरों हुए अनेक हाथों की प्रसम्मिति ईश्वर के आसन के समक्ष राक्षसी स्थिति की प्रसमर्पता की प्रतीक है क्योंकि कल अर्पण वर के अगुठ के बस शिव बड़ी सरलता और अम्यता से उसे रोक देते हैं। किन्तु कलाध पर्वत के आम्बोजन से अमभीत होकर पावती अवस्थ

यह पति की बाह पकड़ सेती हैं। पार्वती की परिचारिका मुष्ठा के भीतर भाग जाती है किन्तु बाईं ओर चित्र का परिवारक सर्वक धीर शान्त बैठा रहता है। भारतीय मूर्तिकला में शायद ही कोई दूसरा उदाहरण हो जिसमें वास्तु की सुधितियों तथा मुष्ठा के भीतर प्रकाश व ध्वकार के प्रभाव द्वारा देवताओं ईश्वरों धीर मानवा की विरोधी प्रवृत्तियों को इतनी कुशलतापूर्वक धीर स्पष्टतः चित्रित किया गया हो। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण कथाओं और प्रविष्टियों में धार्मिक प्रारम्भों धीर पारलौकिक मनोभावों को अस्माप्रकाश से व्यक्त किया गया है। मूल स्मारक्य क्षेत्रों की प्रपानिष्ठ किया (विष्णुप्रतिमा) में मानवात्मा की परस्पर-विरोधी वर्णगत प्रवृत्तियों धीर भावनाओं का निवार है तथा (नौतों की रीति के अनुसार) मध्ययुगीन भारत द्वारा सावधानी उद्देश्य धीर पीड़ा चित्रित धीर प्रकट पिट की स्वीकृति निहित है।

एक ओर बावामी एकोरा धीर एसीकैष्टा तथा दूसरी ओर धामस्तपुरम् में—जहाँ 'मंगलतरन' की महान प्रतिमा है—आकृतियों के प्रतिपादन में बहुत अन्तर है। दक्षिणी धीर दक्षिणभारतीय दोनों मूर्तिकलाओं में प्रतिपाद्य विषय समान है, किन्तु तत्त्वों में तथा विभिन्न पुराणों धीर तन्त्रों से—अथवा यथोक्त सत्यार्थी ईश्वरी के बाव श्रितका मान भारतीय दर्शन अत्यधिक रहा है—अत्यन्त है। इसके बावजूद दोनों मूर्तिकलाओं में अन्तर है। दक्षिणी मूर्तिकला में धीर धीर उसके अंग अवन धीर कुशलप्रदाित है तथा कहीं-कहीं पर मुकुट अर्धों धीर अर्धों को अत्यन्त समपुष्क अलङ्कृत किया गया है। इसके विपरीत दक्षिणभारतीय मूर्तिकला में शैलामय (फिर भी अनुवाचित) तरंगीयता तथा एक कुल-कुल पीताम्बक रङ्गों का मधुर रेखांकन है जो अमरावती कला-परम्परा की याद दिलाता है। अवन की मध्ययुगीन कला की विशेषताएँ हैं वास्तव्य अथवा में समन्वित पिङ की अत्यन्तक सत्य धीर सुपटित रूपों की यनीसूत्र शोचस्मिता। इन विशेषताओं ने पुनः-मूर्तिकला में प्रकाशान्वार की सम्भावनाओं का पूरा लाभ उठाया है, ये विश्वजनीन अथवा पीरालिक विषय-वस्तुओं की शान्त प्रकृति के प्रति अत्यन्त भी हैं। किन्तु विषय वस्तु की अम्यता तथा प्रतिमाविद्या की परम्पराओं के बावजूद एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एकोरा धीर एसीकैष्टा की शिला-मूर्तिकला में मानवत्त्वों के प्रतिपादन में शिल्पण शोचस्मिता है। यह शोचस्मिता साँची अमरावती धीर अमरावती में निरन्तर विकासशील जीवन की दैनिक पूर्णता से अत्यन्त है। कलाध धीर एसीकैष्टा में अनेक मुद्राओं में चित्र धीर पार्वती की जीवनमय आकृतियों की श्रुति के कारण हैं—मुनम्य वक्रताओं तथा मानवता धीर पुष्ठा का अनुसृत सम्मिश्रण अन्तर की शान्तिमयता धीर शैलीन शिला से उत्पन्न अति का प्रवाह तथा कलात्मक अंग से प्रसृत प्रकाश धीर अन्तःकार की स्पन्द

एसीकैष्टा की महेश्वर प्रतिमा

पुष्पोत्तर शाङ्ख-गुणध्वजान में अनेक तरंगों पर धामनिर्त धीर दक्षिणायन की संस्कृति के सम्मिलन को ग्रहण किया गया है। इसमें लिप्यु धीर मोहि पशुपतिध्व धीर माता शैवी के प्राचीन सिन्धीय मठों तथा योग की पवित्रता व अनुशासन धीर शैलान्त के

मईतबार का परिपाक है। इसमें बरखी माता और मानव-शरीर की दक्षिणी प्रज्ञा तथा उत्तरभारत की धारणा की विषयता व परिष्कृति का ऐक्य है। एसीकैम्पा की उत्कृष्ट प्रतिमाएं विशेष रूप से भार्यावर्त और बलिभाषण की धार्मिक व कलात्मक परम्पराओं के समन्वय की प्रतीक हैं। इनमें वधिनी कर्णों की विद्यामता धारीपन और सतत सदानता (जिन्हें चट्टानों में काटी गई मुफाओं में वास्तुगत संपुंजन के अनुकरण द्वारा किया गया है) के साथ भार्यावर्त के मन्त्रियों की प्रतिमाओं के मार्ग उद्घाटीकरण और मूढम बनावट को समन्वित किया गया है।

ऐसा मान्य होता है कि धर्मसूत्र जातिओं विवेचियों और भारतीय धार्मिकताओं के धार्मिक ज्यों आचरताओं और सिद्धिओं तथा उनके मूर्धन्य-और सम्बन्धी धर्मों के बार हवार वप महेश्वर की विमलता संपुक्त प्रतिमा में व्यक्त है। यह प्रतिमा परमारमन् के तीन कर्णों को प्रस्तुत करती है। बीच में धार्य त्रिभ-महेश्वर दाईं ओर कोपड़ी का मुकुट पहने नीचे निकोड़े घघोर और तथा दाईं ओर मोड़क धार्यवपुक्त उमा। इन प्रतिमा का धार्मिक कलात्मक निर्माण उस युग में हुआ था जब भारत की मनुष्य मुक्तिता अपने अन्तर्गत पर पहुँची थी। जिस प्रकार भारतीय दर्शन में सम्पूर्ण जीवन को सनातनता की पीठिका पर आधारित समझा जाता है उसी प्रकार इस प्रतिमा में सभी बटनाओं को आधारित समझा गया है तथा प्राचीन गुफा का अतीति और पुंयता अन्तर्गत इसका प्रतीक है। इन आधारिता की तात्कालिक प्रभावशीलता को गुफा के भीतर प्रकाश व छाया का विपर्यय और प्रतिक्रिया बता देता है। गुफाकालीन मुक्तिता में अन्तर्गततात्मक अभिव्यक्ति दोनों द्वारा प्राप्त मानव-मलिनता को प्रभावित करती है। इस विपरीत वचनकी मुक्तिता को अन्तर्गत जीवन और निमित्त य—अर्थात् विषय तथा प्राकृतिक दोनों प्रकार की रहस्यमय अतिमा सतत नतिशील है—प्रतिक से प्रतिक बहराई व बहुवक्त्र कोष्य और प्राकृतता को प्राप्त करती है। वक्त्र की अन्तिक अन्त्य और गुह्य प्रतिमाओं में मानव का संपुंजन ब्रह्मांड की अन्तर्गतता और सन्तुलन का प्रतीक है तथा उनका उद्गम किसी ब्रह्मांडीय दुर्घटना की मर्यादित उद्गता का। कलाविधान के मूल्यों की दृष्टि से वक्त्र की मुक्तिता की विवेकता है। बेटील सिता के गर्भ से प्रसूत कलात्मक पिंड में अन्तर्गतता सन्तुलन सतत मन और उद्गम का अन्तर्गतता गुह्य के धारिता और एकत्र अति तथा विवेक की अन्तर्गतता और आधारिता को गुह्यों के भीतर प्रकाश और छाया के साथ स्थित होती है।

प्रतिमाविद्या बनाम आध्यात्मिक मूल्य

मध्ययुग में 'सिद्धि-शास्त्रों' में प्रतिमाविद्या के प्रतिमान निरूपित किए गए। जैन साह और ई-सिद्ध दोनों ने लिखा है कि भारत में सामान्य विद्या और अस्तुति के आधार स्वल्प 'प्राय विद्याओं' के महान् शास्त्रों में से दूसरा शास्त्र 'सिद्धिशास्त्र' है। किन्तु मामूली दृष्टि के अतिरिक्त कहीं पर भी ये प्रतिमान मुक्तिता की निरूपण-स्वभावता में बाधक न थे, बल्कि पुण्य देवताओं के ध्यान में सहायक मान थे। दूसरी ओर, सामान्यता का इनका पूर्ण मान था तथा इनके द्वारा एक सुसंस्कृत न्याय के कला ध्यान और धार्मिक संस्कारों के बीच एक गहन अन्तर्गतता स्थापित होती थी। इनके अतिरिक्त प्रतिमा

विद्या के इन प्रतिभागों पर वैष्णवधर्म और शैवधर्म के—जिन्हें एमोरा और एसीकैष्टा में धमरुद्व प्रदान किया गया है—पौराणिक समन्वय का अत्यधिक प्रभाव था। एमोरा में कृपाजन्य के बीजा के साथ प्राचीन यक्षियों के प्रतिरिक्त गुप्तकालीन मध्यमरेख की मरी देवियों तथा शैव मूर्तिया के साथ वैष्णव मूर्तिया भी हैं। य पक्षपातरहित दृश्य से निर्मित है और इनमें समन्वयपूर्ण धर्मस्थिति एवं मध्यमता है। इसी प्रकार एसीकैष्टाम विष्णु-महेश्वर की विद्याम त्रिमूर्ति के बाई ओर विष्णु का सम्पूर्ण वैकुण्ठ है। मध्यमगीन भारतीय मूर्ति कला में दार्मिक प्रतिमाविद्या पर कालमक मूर्तिकला-सम्बन्धी मूल्य हावी हैं। यह पौराणिक हिन्दूधर्म की समन्वयारमक प्रकृति के कारण—जिसमें ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की अविभाग्य त्रिमूर्ति की पूजा की जाती है और कालिदास के काव्योंमें जिसका उत्कृष्ट वर्णन है—संभव हो सका है। मध्यकालीन मूर्तिकला की बिलसम स्तुति और धर्मस्थिति का रहस्य पौराणिक हिन्दूधर्म की यही समन्वयारमक प्रकृति है।

तृतीय सुधार-युग

शंकर बेदास्त का उत्थान

शंकर की दिग्विजय और आध्यात्मिक वाय

महीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश के अन्तिम चरण में एक प्रतिभावान् मुक्त ब्राह्मण-मिश्र विद्वान्बरम् से काश्मीर और काशी से केदारनाथ तक वार्षनिक दिग्विजय में सफल था “बहु घाटा था देखता था और विजय कर नेता था। भारत में शास्त्रार्थों के इतिहास में शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि इतनी कम आयु होने पर भी इतने विद्वान किसी व्यक्ति ने अनेक धर्मशास्त्रों पुराणों और वास्तविक सिद्धांतों के प्रकांड पण्डितों को इतनी सरसता से पराजित कर दिया हो। इस प्रकार तीसरे सुधार-युग का सूत्रपात हुआ। इसका उत्थान था केवल-मंडित का प्रतिपादन और प्रचार करना। वह पुरुषार्थी विद्वान वार्षनिक थे शंकर (७८८-८२८ ईस्वी) जिन्होंने उपनिषदों द्वारा उद्भूत व्यापक आध्यात्मिक परम्परा के अनुकूल ही बेदान्त को विभिन्न प्रवृत्ति वार्षनिक सम्प्रदायों के समन्वय और सम्मिश्रण का आधार प्रदान किया।

शंकर का अद्वैत बेदान्त महाभारत तथा महीं और स्नेहास्वतः उपनिषदों के बेदान्त से सर्वथा भिन्न है। इसका मूलभूत विचार है माया की वारणा। यह वारणा ऋग्वेद में घाटी है। इन्द्र को अपनी माया के बल पर अनेक रूप धारण करते हुए दिखाया गया है। उपनिषदों में इस वारणा का भाग विकास हुआ। स्नेहास्वतः उपनिषद् में संसार की नायिक प्रकृति का वर्णन है और सभी जीवों के स्वामी को ‘मायावी’ कहा गया है। शंकर ने अपनी माया की वारणा का पूर्ण विकास बीजपाद की कारिका और अविद्या की बीजवारणा के आधार पर किया है। शंकर के अनुसार, संसार की उपस्थिति न केवल माया के कारण है बल्कि वह स्वयं भी माया है। शंकर में किसी महान् धर्मशास्त्री का तीव्र मनस्विक सत्त्व शास्त्रिक भीसी सहिष्णुता और बौद्धिक व्यापिता तथा सत्त्व बलि नैसी कल्पना-अवस्था का समन्वय था। शास्त्रार्थों में विशिष्टतम विषय प्राप्त करने के पश्चात् उन्हें समस्त स्यापनाचार्यों की पदवी मिली।

शंकर का जन्म महाभार के कसादि नामक गांव में एक नम्बूड़ी ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। अपनी अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् महान् संन्यासी गुरु गोविन्दपाद से बीता लेकर उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। योगी के रूप में उन्हें इनकी न्याति मिली कि उनके गिरं अनेक जगधृतियां चल पड़ी। कहा जाने लगा कि सिध के घाटीवर्तस्वरूप

उन्होंने धर्मधारण किया था तथा बचपन में ही वे सारी विद्याओं में पारंगत हो गए थे। कहा जाता है कि समझी माँ को धाचमन के लिए काफी दूर चलकर वेपवती नामक एक नदी तक जाना पड़ता था इसलिए उन्होंने नदी को ही धाच्य कर दिया कि वह माँ के घर के पास से बहा करे। गोविन्दाचार्य साठवीं शताब्दी के गौडपाद के—जिन्होंने बौद्ध विज्ञानवाद और माध्यमिक सम्प्रदायों द्वारा विकसित कुछ मध्यम श्रद्धावादी विचारों को बर्मपादों प्रभाव से ही सम्बोधन का सहारा लिए बिना श्रद्धावाद में सम्मिलित किया था—सिद्ध थे। गौडपाद सायद बंगाल (गौड) के निवासी थे। बंगाल के बौद्ध शासक मंत्री बौद्धधर्म का धर्मिक प्रभाव था यही कारण है कि गौडपाद ने अपने बौद्ध रूपका तर्कों और शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ विद्वान तो यहाँ तक सोचते हैं कि वे स्वयं बौद्ध थे। किन्तु कुछ मिलाकर धार्मिक विद्वानों की सम्मति यही है कि एक बंगाल में जनमे वेवासी ने बौद्धधर्म से स्वतन्त्र रहकर अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि यहाँ की धार्मिक परम्परा जिसके धार्मिक गौडपाद थे तर्क एवं अपरोक्षानुसृति के सम्बन्ध पर प्राप्त है।

दुर्लभताकासीन युग की विशेषता थी कि विभिन्न पुराणों और तर्कों का प्रभाव धार्मिक व्यापक और गंभीर हो गया तथा धार्मिक भक्तियों को मजबूत करने के लिए समुक्त होने की प्रवृत्ति इनमें उत्पन्न हुई। फिर भी ये प्रवृत्ति इनमें धर्म सम्प्रदाय विशेष के धार्मिकों की महत्ता को जनसाधारण के सम्मुख प्रतिरक्षित किया जाना था धर्म समाहित ही रह गए। प्राचीन ब्राह्मणधर्म के धर्मगत धर्म वेदों तथा उनपर धर्ममन्त्रित धर्मों में निहित ज्ञान का सागर जन-सामान्य के लिए बहुत गहरा और पतुल से बाहर था। धार्मिक बौद्ध विद्वान अनेकानेक पीढ़ियों से प्राचीन धर्मधर्मों की धर्मता करते आ रहे थे। ब्राह्मण-ज्ञान का नवीन नववर्गीय है किन्तु वह भी जनसामान्य की दृष्टि से प्रवेष्टा धर्मिक गहन और प्रमत्तित्व में प्रतिनिधित्व है। धर्मता उस काल में जन प्रवृत्ति धर्म (बौद्ध सहज धर्म) ने उपमना की अनेकानेक विभिन्न धर्मियों को समाज में प्रवृत्त किया, फलस्वरूप विशुद्धता और धर्मिक हो गई।

हिन्दूधर्म का धर्मिकीकरण

संस्कृतधर्म को एक महान् काम—ब्राह्मणधर्म का नवीन एकीकरण एवं सम्मेलन—करना था। उनके 'सूत्रमार्ग' (२२ २७) में लिखा है कि बौद्ध समस्त समार को धर्मोन्मिलित कर रहे हैं (प्राकृतिकीयते)। धर्मिकीकरण संस्कार के ही प्रयत्नों का परिणाम था कि हिन्दूधर्म का धर्मिकीकरण इस सीमा तक समय हो सका कि वह लोक-प्रवृत्त बौद्ध धर्म और जीवन प्रणाली पर भी हावी हो गया। साठवीं शताब्दी ईस्वी में ज्ञान साह माया धार्मिक धर्म तभी जगने पाया था कि भारत में बौद्धधर्म ह्रासोन्मुख है। ब्रह्मण्य के धर्मसंस्कारों तथा बौद्धविहारों और निवृत्ति-मठों की धर्मिता के कारण बौद्धधर्म लोगों की दृष्टि में गिर गया। अतएव है कि बौद्धधर्म की श्रद्धा को धर्मिकीकरण के ब्रह्मण्य से जगाने ने इच्छाओं मधु-मिथुनियों को निष्कासित कर

दिया था। बुद्ध और अश्वमेधवाद के बीच सिद्धान्त जनसामान्य के उपयुक्त न थे और साथ ही उनमें जीवन के सामाजिक पक्ष की अवहेलना भी थी। संकर ने गौड़पाद के विख्यात कारिका सिद्धान्तों को और विस्तृत करके ब्रह्म की अद्वैतता का प्रतिपादन किया। संकर का यह विचार महायान के विज्ञानवाद के समानान्तर था। संकर के आध्यात्मिक पितामह महायान बुद्धवाद के अत्यधिक निकट थे। गौड़पाद अनुभवबन्धु वस्तुओं तथा कारकत्व और परिवर्तन की यथार्थता को अस्वीकार करते हैं। मायिक संसार मस्तिष्क के तीव्र स्पन्दनों से निर्मित है। वह धम्मिक जगत् (भगवत्कृत) के समान है जो किसी जगती हुई मछली को लगातार गोलाई में घुमाने पर बन जाता है। आनुभविक संसार की सत्ता केवल अविद्या के कारण है।

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च साधकः ।

न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

(न किसीका नाश है, न उत्पत्ति है, न बन्धन है और न कोई साधक है। न कोई मुमुक्षु है और न कोई मुक्त। यही परमार्थ है।) बेदान्त को बीच विज्ञानवाद की विधुख आत्मनिष्ठता से मुक्त करने का तथा ब्रह्म एवं जगत् (जो उनके अनुसार प्रत्यक्षदर्शी पर निर्भर नहीं है) दोनों को अविच्छिन्न करने का श्रेय संकर की नीनियस को है। अपनी 'उपदेश-साहस्री' में संकर ने लिखा है

यो वेदानुष्ठानद्वित्वमात्मनोऽर्क्यता तथा ।

ब्रह्मवित्त्वं तथा मुक्त्वा स आत्मज्ञो न वेतत् ॥

(जो ब्रह्मज्ञता के प्रमाण को छोड़कर आत्मा के अनुष्ठानवैतन्यत्व तथा अर्कत्व को जानता है वही आत्मज्ञ है। अन्य कोई नहीं।) उपाह्वयन के अनुसार संकर का आध्यात्मवाद तार्किक है प्रमाणवादी नहीं। 'जो किसी वस्तु के सारतत्त्व तथा हमारे द्वारा उसकी प्रतीति को समानार्थी माननेवाले सिद्धान्त को अस्वीकार करते हैं। आत्मतत्त्व आचारमूढ सत्ता है ऐसा कहने का अर्थ यह नहीं है कि हमें उसकी प्रतीति होने पर ही वस्तु की सत्ता है। पश्चिमी विचारक संकर अद्वैत बेदान्त को निराध्यात्मिक समानबीय और निस्सार समझ लेते हैं पर वे बाहरायण और संकर के बुद्धिनासक व तर्क-विनाशी विरोधाभासों के माध्यम से प्राप्त निर्मल मन में निहित आत्मब्रह्म की महिमा को समझ नहीं पते। और ब्रह्मवादी आध्यात्मिक धर्म के चरमोत्कर्ष 'ब्रह्म की सम्पूर्ण शिवा के सार' (बेदान्त) का अर्थ तो यही है।

आधुनिक-संस्कृति के सामने एक नया खतरा था उठा हुआ था। मुसलमान मोन उदयस्त्री हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे थे। संकर को इस खतरा से भी सोचा सेना था। मसाबार-उ' के धनक शिष्टपुत्र कस्बों जैसे कीलम में मुसलमान व्यापारियों को बसे हुए लगभग छौ साल हो चुके थे और वे मजिस्स नाम से जाने जाते थे और कोरमायस्मूर के अन्तिम मसाबारी शासक राजा वैरामन पेदमल ने इस्लाममयी स्वीकार कर लिया था। इस्लाम धर्म परिवर्तन लगातार जारी था। मस्जिदें धड़की की जा रही थी। दक्षिणभारत में मंजियों सेनानायकों और कर उगाहनेवाले किसानों के पक्षों पर नियुक्त मुसलमान नेता मस्जिद-निर्माण-कार्य में सहायक थे। इस प्रकार इस्लाम की शक्ति

बढ़ती जा रही थी और इसकी जड़ें कमती जा रही थीं। शहर ने प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया होगा कि यह हिन्दू-संस्कृति के लिए कितना मातृक है। मसालार के रामा का धर्म परिवर्तन एक रोमांचक और अप्रत्याशित घटना रही होगी।

✓ हठवादी मीमांसादर्शन का विध्वंस

✓ शंकर का प्रथम बौद्धिक समर्पण बीड़ों प्रवक्ता जैनों के साथ नहीं बल्कि मीमांसा दर्शन के प्रतिपादकों के साथ हुआ। इसकी संस्थापना जैमिनि ने की थी और गुप्तराज्य के प्रभाव में इसका विकास हुआ। सातवीं व कुमारि (सातवीं और आठवीं शताब्दी) के प्रभाव में इसका विकास हुआ। सातवीं और आठवीं शताब्दियों में इस दर्शन का प्रभुत्व था। मीमांसादर्शन विमुक्त कर्मकाण्ड है और इस विश्वास पर आधारित है कि बाह्यकार्यों द्वारा व्यवस्थित कृत्या—जैसे यज्ञ हवन मानव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। बुद्ध की शक्ति महावीर शबरस्वामी और कुमारि भी ईश्वर के विषय में यों ही हैं। जीवन के प्रति मीमांसकों का दृष्टिकोण हठवादी और कुमारि मानव के शक्तियों पर बहुत जोर देते हैं। वैदिक संस्कारों के अनुसार मानवीय शक्तियों की दृष्टि से मानव का सम्पूर्ण विश्वव्यापी जीवन विज्ञान के साथ है। यह दर्शन सामाजिक दृष्टि से न्यायसंगत तो सिद्ध किया जा सकता था किन्तु गुप्तकालीन प्राचीनतर न गवत धर्म तथा गुप्तोत्तरकालीन पौराणिक ईश्वरवाद (जिसे तत्कालीन धार्मिक धार्मिक से नया बन प्राप्त हुआ था) के लिए एक बड़ा अंतर था। मीमांसादर्शन के तत्कालीन प्रतिपादक मंडन मिय के साथ शंकर का अविस्मरणीय शास्त्रार्थ हुआ इसी शास्त्रार्थ पर एक मूलभूत प्रश्न का निम्न निर्णय था। धार्मादिहीन कर्मकाण्ड स्वयंप्रणय धर्म प्रवक्ता धर्म के रूप में स्वीकार करेगा? शंकर की निम्न हुई और गीता के अनुसार निम्नाधार (जो सातवीं और आठवीं शताब्दियों में भारत में ब्रह्म प्रचलित था) तथा मन्दिर-पूजा से भारत की रक्षा हो गई। किन्तु इससे इतनी कटुता उत्पन्न हो गई कि मीमांसक शंकर को 'छपबेरी बीड़' करने लगे।

शंकर ने वैदिक कर्तव्य-व्यवस्था और विमुक्त ज्ञान की धर्मधर्मों का समन्वय स्थापित किया है जिसका आधार यही मूलिक एवं धार्मिक विकास (अधिकारमेव) है। केवल कर्म ही मुक्ति का साधन नहीं है यह तो धार्मिकधर्म और धार्मिकधर्म का सहायक है और इसलिए धर्मधर्म एवं परीक्षा साधन (उपकारिका) है। मीमांसा के अनुसार केवल कम मुक्ति का साधन है और धर्म उसका महत्व धर्मिकाण्ड उसके विवेचना एवं व्याख्या के तत्संगत विज्ञान और मानवदृष्टि—धर्मार्थ बौद्धिक अनुशासन की विधि—के कारण है। सातवीं शताब्दी तक भारत के ग्यामानवों में मीमांसकों का समानेव धार्मिक समन्वय जाता था। शंकर द्वारा ध्वस्त पूर्व मीमांसा का धारण 'धर्मविषय' से होता है किन्तु इसके विपरीत शंकर के दर्शन का धारण 'धर्मविषय' से।

केदरस भट्टस का गम्भीर दार्शनिक समन्वय

✓ संकर के अनुसार उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता वेदान्त के त्रिगुण आधार हैं। अपने 'प्रस्थानत्रय' व सुविख्यात भाष्यों में संकर ने भारत के समस्त उत्कामीन दार्शनिक सम्प्रदायों—सांख्य व्यास बछेपिण् पूर्व-मीमांसा पांचरात्र पाशुपत बौद्ध और जैन—के विचारों का विवेचन करके उन्हें समझाया और प्रकाशित किया। उन्होंने बौद्धों के माध्यम से बौद्ध और जैन दोनों से महायान के विज्ञानबोध और ध्यानबोध एवं पाशुपत के सन्यस्यवाद को अपने अनुसार समझकर सम्मिलित कर लिया। संकर के कई सिद्धान्त ही और भी प्राचीन हैं। इंग्लिश का कथन है 'बौद्धों ने व्याख्या के बहुरूप मानव—पारमार्थिक धर्म एवं सृष्टि धर्म—का उपयोग किया था तथा उनका धर्मशास्त्र का सिद्धान्त भी संकर के सिद्धान्त से अधिक मिला नहीं है। मनु हरिने जगत् को ब्रह्म का परिणाम न मानकर विवर्त माना था। अध्यास का सिद्धान्त—अथवा आत्मतत्त्व परमात्मतत्त्व का मिथ्या आरोपण—सांख्य दर्शन की रीति है। इन विभिन्न सिद्धान्तों का समन्वय ही संकर का सिद्धान्त है जो भारतीय दर्शन के इतिहास में सर्वथा नवीन है। संकर की प्राक्कर्मजनक सत्यता का कारण है उनकी व्यापक बौद्धिकता प्रतिभा और उदारता। बौद्ध और जैन दोनों की अनेक बातों को समझाया मानकर भी उन्होंने उनके मुख्य सिद्धान्तों को सम्मिलित कर लिया फिर भी उनकी भट्टस की धारणा सीधे उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों की सिद्धान्तिक परम्परा में थी। पञ्चपुराण में लिखा है कि माया का सिद्धान्त असत्य और प्रचलन बौद्धिक मान है। किन्तु यहाँ माया के गलत अर्थ लगाए गए हैं। वेदान्त के अनुसार अधिष्ठा के कारण यथार्थ पर मिथ्या का आवरण ही माया है।

विवेकचूडामणि संकर का एक गम्भीर दार्शनिक ग्रन्थ है। उसमें इसी बात को इस प्रकार व्यक्त किया गया है

यावत् भ्रान्तिस्तान्देवास्य सत्ता

मिथ्याज्ञानोऽभ्रान्तितस्य प्रमाद्यात्।

रज्ज्वा सर्पो भ्रान्तिकासीति एव

भ्रान्तेर्नाशे नैव सर्पोऽपि तद्वत् ॥

(जिस प्रकार भ्रम की स्थितिपर्यन्त ही रस्ती में सर्प की प्रतीति होती है और भ्रम का नाश होने पर फिर सर्प प्रतीत नहीं होता उसी प्रकार जब तक भ्रम है तभी तक प्रमादबल मिथ्या ज्ञान से प्रकट हुए इस—जीव भाव—की सत्ता है।) सीमा निर्धारक उपाधियों रहित आत्मा अधिवेक अथवा भ्रम से परे है। नाम रूप कर्म बर्ग मूल और विमान ये सभी उपाधियाँ हैं। एक अर्थ विख्यात ग्रंथ 'आत्मबोध' में संकर का मत है

निपिप्य मिलिसापाधीमेति नेतीति वाक्यम्।

विचारैक्यं महाबाह्यैर्जीवात्मपरमात्मनो ॥

तुम्ही आत्मब्रह्म हो यद्यपि स्वयं इस तथ्य को नहीं जानते। विख्यात वाक्य 'नेति नेति' बृहदारण्यक उपनिषद् (२, १, १) से लिया गया है। कुछ महान् वैदिक श्रुतियाँ हैं

[१] 'तत्त्वमसि' (सामवेद छान्दोग्य उपनिषद् ६ १० ३) [२] 'अयम् आत्मा ब्रह्म' (अथर्ववेद मांडूक्य उपनिषद् बृहदारण्यक उपनिषद् २ ३ १३) [३] 'विज्ञानं ब्रह्म' (ऋग्वेद एतरेय उपनिषद् ३, ३) और [४] 'ब्रह्म ब्रह्मास्मि' (अथर्ववेद बृहदारण्यक उपनिषद् १, ४ २०)।

आत्मब्रह्म के ध्यान के लिए विभिन्न महावाक्यों और मंत्रों का अयन होकर ने वेदों और उपनिषदों से किया है। तब से वेद के सामु और जनसामान्य सभी इन्हींका पालन करते आ रहे हैं। नवराष्ट्रवादी के नेता होकर ने वैदिक सत्य के विज्ञान सागर में जिसकी पहचान को आपना सामान्य बुद्धि के व्यक्ति के लिए असम्भव है, उबकर वेदान्ती ज्ञान के महावाक्यों को ब्रह्म निकाला है।

ब्रह्म और जीव का ऐक्य

एक तथ्य इष्ट है। होकर ने अपने केवल-ग्रहीत सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में बौद्धदर्शन का प्रबल अपेक्षा कम किया है। अन्य प्रचलित दर्शनों का अधिक। वस्तुतः अपने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य में उन्होंने सांप्रदर्शन की आत्यधिक सीढ़ी और विस्तृत प्रतीति बना ली है। ग्रहीत वेदान्त के अनुसार, सभी सांसारिक विषय एक ग्रहीत विस्वासीत किन्तु फिर धर्मशास्त्री नियम (वृत्त) की अभिव्यक्ति है। इसीसे नाम और रूप का संसार उद्भूत है, तथा यही संसार में अस्तित्व है और इसे ज्ञाता है। इस प्रकार ग्रहीत वेदान्त पुरुष और प्रकृति के सांख्य द्वैतवाद को पीछे छोड़ देता है। सांख्य की दोनों आधारभूत धारणाओं—जीव इन्द्रियों की अनेकता और प्रकृति (अथवा संसार) की इष्टवादिता—को वेदान्त में पुरुष अस्वीकार कर दिया गया है। वेदान्त के अनुसार, आत्मा एक ऐकान्तिक अरु निर्गुण और अनिर्वचनीय सत्य है। वह 'ईश्वर' से भी जो सबसे बड़ा और सबसे सूक्ष्म अंश है, उत्पन्न है। जहां पर होकर और कायक का मत समान है। आत्मा ही एकमात्र सत्य है। अतः उपाधिबद्ध परिमाणबद्ध, निर्गुण और असीम—अरु अनात्म—है। बृहदारण्यक उपनिषद् के 'विज्ञानम् आत्मम् ब्रह्म' पर उनका विस्वात भाष्य अत्यन्त विस्तृत है। इसके अन्त में पाद्य है कि ब्रह्म ज्ञाता अथवा ज्ञेय को नहीं जानता वह तो स्वयं विभूत ज्ञान है। ब्रह्म किसी वस्तु में आत्म प्राप्त नहीं करता वह तो स्वयं विभूत आत्म है।

किन्तु अनेक परिचित विचारकों के मतानुसार, उपनिषदों के अध्यात्म द्वारा प्रसूत इस प्रकार की अष्ट धारणा वास्तविक दर्शन नहीं है। मांडूक्य उपनिषद् तथा मौन्यपाकृत कारिका पर अपने भाष्य में होकर ने दर्शन के उद्देश्य का अष्ट निरूपण किया है। मानव की तीन अवस्थाओं—आद्यत् स्वप्न और सुषुप्त—के सम्मुख पर आद्यत् समस्त ज्ञान का निरूपण दर्शन में होता है। केवल आद्यवस्था पर आधारित दर्शन-अभ्यासिया बहुमुखी और अन्तर्निरोधी हो जाती है। आद्यत् स्वप्न और सुषुप्त अवस्थाओं से परे एक चौथी, अथवा तृतीय विस्वासीत अवस्था भी है, जो सर्वोपरि, अमर और अपरिवर्तनीय—अममर—है। होकर ने इस चौथी अवस्था का आध्यात्म निम्न अर्थों में किया है

तृतीय (माया के माध्यम से) समस्त ब्रह्म के साथ एकाकार होकर (आद्य अवस्था में) अविद्या और मोह के बल पर भुक्त की स्थूल वस्तुओं का अनुभव करता है

स्वप्नावस्था में स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित सुष की सूक्ष्म वस्तुओं का जो उसके आंतरिक अंगों द्वारा सत्ता प्राप्त करती है, अनुभव करता है। सुषुप्तावस्था में (स्पृत एवं सूक्ष्म) सभी वस्तुओं को अपने भीतर समेट लेता है और इस प्रकार सभी मनों और अन्तरों से परे हो जाता है। यही निर्बुध तुरीय हमारी रक्षा करे।

चैतन्य की चार अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त और बीबी अथवा विज्ञातीत—के विज्ञात का सर्वोत्कृष्ट प्रतिपादन गौडपादकृत 'कारिका' में है। वेदान्त में इसे यह 'सीढ़ी' माना गया है जिसके द्वारा आत्मतत्त्व प्रमोत्यादक विचारों भावनाओं और अनुभूतियों से ऊपर पहुँचकर अन्ततः महिमा-अंशित हो उठता है। तभी—'बीज आनन्द मयहो उठता है जो सत्ता के आरम्भ और अन्त का एकमात्र कारण है।' (संस्कृत 'निर्वासमंभरी')। चार अवस्थाओं का स्तरीकरण वास्तव में वेदान्तयोग की प्रारम्भ परीक्षाभारमक मनोवैज्ञानिकता का सार है।

वेदान्तीय समाधि में मानव योगी के आनन्द का भी अनुभव नहीं करता क्योंकि मरितम् आत्मब्रह्म से अलग नहीं होता और आनन्द आनन्द है। अपने सत्यस्वल्प को सुषुप्तावस्था की प्रकृत्यता अथवा विस्मृति या जाग्रदवस्था के बाह्य वस्तुओं के प्रति आकर्षण या यौक्तिक आनन्द के प्रति लगाव से पहचानना मस्तिष्क का कार्य नहीं है। उस को पूर्ण मौन में अनायास ऐसा करना चाहिए, जब वह किसी भी बाह्य वस्तु या क्रिया में नहीं उपस्थित रहता बल्कि उसी प्रकार हृदय संसार के सभी गुणा और नामों में भ्रष्ट ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। मरितम् तब वायुरहित स्वान में रखे प्रकाश के समान हो जाता है (गौडपाद 'कारिका' ३।४४-४६ पर शंकर की टीका)। यह अनुभूति अनिवार्य और गहन आध्यात्मिक है। शंकर वेदान्त का अन्तिम सत्य यह है कि केवल एक इकाई है जिसका नाम है बीज या ब्रह्म। उनमें कोई भेद नहीं है।

आत्मतिरस्कार और आत्मोत्कर्ष का विरोधाभास

शंकर दर्शन में शंकर की वैयक्तिक अद्वैतवादिता के अतिरिक्त एकगहन आध्यात्मिक धारा भी प्रवाहित है जिसका उद्गम अद्वार और अस्वार नामक प्रभावधारी ब्रह्मिणभारतीय भक्तिमार्गी आम्बोसर्गों में है। पाँचवीं शताब्दी के बाद इन आम्बोसर्गों की शक्ति लगातार बढ़ती गई थी और इनमें पाप, आत्मभ्रान्ति वैयक्तिक उत्तरवाचित्व तथा सबसे अधिक ईश्वर के सर्वभ्यापकत्व एवं तुल्य ब्रह्म जीवों के प्रति उद्धारक प्रेम पर अधिक जोर दिया गया है। बिष्णु की स्तुति शंकराचार्य इस प्रकार करते हैं

“हे प्रभु जब कभी मैं द्वैत के अधीन नहीं भी होता तब भी
सत्य यह है कि मैं तुम्हारा हूँ यह नहीं कि तुम मेरे हो
सहरे सागर में निहित होती है,
किन्तु सागर कभी सहरे में निहित नहीं होता।

दुर्गा देवी की स्तुति में प्रस्तुत अपने वैष्णवराज्यमापनस्तोत्र में वे कहते हैं —
कृपुणो जायेत नमभिर्दधि कुमाता न भवति।

मत्स्य-पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।

एवं ज्ञात्वा महादेवी यथायोग्यं तथा कुरु ॥

हिन्दु संकर मानववधारी आराध्यदेव के पूजक नहीं हैं वे तो विद्वान्मित्र, धर्म परब्रह्म के उपायक हैं । उसीसे विद्वत् तथा ईश्वर दोनों का उद्भव होता है । अन्त-पूर्वा की स्तुति संकर इस प्रकार करते हैं

वृष्यावृष्यविभूतिबाह्वनकरी ब्रह्माब्जभाण्डोदरी
 सीमालाटकसूत्रसेवनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी ।
 श्रीविरवेद्यमन्त्रसाधनकरी काशीपुराधीश्वरी
 मिसां देहि कृपाबलम्बनकरी माताम्नपूर्वस्वरी ॥
 आविद्यान्तसमस्तवर्गनिकरी सम्पुत्रिया पाङ्कुरी
 कादमीरविपुरोस्वरी जिनयनी विश्वेश्वरी सर्वरी ।
 स्वर्गद्वारकमाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
 मिसां देहि कृपाबलम्बनकरी माताम्नपूर्वस्वरी ॥
 सर्वोसर्वजनेश्वरी जयकरी माता कृपासागरी
 नारीनीलसमानकुलतपरी निस्त्रात्मदानेश्वरी ।
 साक्षात्मोलकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
 मिसां देहि कृपाबलम्बनकरी माताम्नपूर्वस्वरी ॥
 देवी सर्वविभ्रतरत्नरचिता साक्षायनी सुन्दरी
 नामा स्वादुपयोगरा प्रियकरी श्रीभाम्यमाहेश्वरी ।
 मत्स्यमीष्टकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
 मिसां देहि कृपाबलम्बनकरी माताम्नपूर्वस्वरी ॥

संकर ने तांत्रिकवाद के यहिद कर्तों और असंयम का परिष्कार किया तथा औरों वाच-
 पत्नों कापात्रिकों और पाण्डुपत्नों के वाचाचार भास्त्रवर्ग के विरुद्ध समवाचार का समर्थन
 किया । आस्तवर्ग के एक आधिकारिक ग्रन्थ 'अपञ्चसारतत्त्व' की रचना संकर ने की थी ।
 यही पर भास्त्र सक्ति की कल्पना भी प्रस्तुतित परब्रह्म की कल्पना के समान महत्त्वपूर्ण है ।
 संकर की 'भास्त्रतत्त्वहरी' का रचयिता श्री भामा जाता है । इसमें सक्ति की प्रत्यक्ष प्रभाव
 और सद्भाव भावना से पुरित जगन्माता-स्तुति है । उन्मृष्टि कर्मकाण्ड और मूर्तिपूजा दोनों
 का वर्णन किया । अपनी कवि 'अपरोक्षानुमूर्ति' में उन्मृष्टि योग के प्रतिरक्षित शक्तों को
 स्तुतिया । 'सत्रीपञ्चाशो' के प्रति तटस्थ भावही सर्वोत्तम योगस्थिति है । संसार के मिथ्यात्व
 का चिन्तन ही सर्वोत्तम प्राणायाम है । इन्द्रियाओं से तादात्म्य की स्थापना ही सर्वोत्तम
 इन्द्रिय-निग्रह है । पूर्ण निरपेक्ष सत्ता धारणा परब्रह्म की अनुमूर्ति ही सर्वोत्तम ध्यानस्थिति
 है । सब प्रकार की मानसिक क्रियाओं का पूर्ण निग्रह ही सर्वोत्तम सदाधि प्रवस्था है ।
 संकर परात्परक धर्मतत्त्व के परम समर्थक थे । अपने विरोधाभासी प्रतिष्ठावितापी
 भूषों द्वारा के धास्त्यतत्त्व की इन्द्रियाणीत तर्कातीत व वर्णनाधीत महिमा एवं महत्ता की
 स्थापना करने में सफल हुए । विद्वत् के जनों के इतिहास में यह एक अद्वितीय जवाहर है ।

न मृत्पुनं शब्दा न मे वातिशेदः
 पिता नैव मे नैव माता न जन्म ।
 न बन्धुनं मित्रं नुतर्नैव शिष्य
 शिष्यदागन्तव्यं शिष्योऽहं शिष्योऽहम् ॥
 अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
 विमुक्तश्च सर्वत्र सर्वश्रियाणाम् ।
 न चास्यते नैव मुक्तिर्न मृत्यु
 शिष्यदानन्दस्य शिष्योऽहं शिष्योऽहम् ॥ (निर्वाणपटकम्)

शंकर की बहुमुखी प्रतिमा

शंकर में तत्त्वज्ञानी और रहस्यवादी धार्मिक ठाकुर और कवि तथा नेता और समाज-सुधारक के गुणों का विरल समन्वय था। इसी कारण वे ब्राह्मण-संस्कृति की पुनः स्थापना जैसा धर्मोत्थान कार्य करने में सफल हुए। 'भारग्यसंहरी' 'दक्षिणामूर्ति' 'सिद्ध भगवत्प्रसादन' 'हस्तामलक' और 'अजगोविन्दम्' जैसी कुछ स्तुतियों में धार्मिक पीठिका के बावजूद अत्यधिक सौन्दर्य कोमलता और प्रवाहपूर्ण लय है। उनकी 'मोहमुग्ध' जिसके ध्वज पर प्रपन्न स काव्य का स्पष्ट प्रभाव है। संस्कृत-साहित्य की सर्वोत्तम कविताओं में से एक है। नीचे इसका एक अंश प्रस्तुत है। भारत के हजारों व्यक्ति इसे मानते हैं।

नतिनीदलपतञ्जलमतितरंगं

तद्वज्रीवितमतिधमपपत्नम् ।

विजयति सञ्जलसंमतिरेका

भवति प्रबालं वतरने लीला ॥

धार्मिक भारत के अधिकांश सुप्रसिद्धी प्राप्त वेदान्त के अनुयायी हैं। वे शंकरजन्त ब्रह्मसूत्रमय को मानते हैं तथा ब्रह्मसूत्रों की बारबाधों और विरोधामाओं की पुष्टि धार्मिक भौतिकी यनित और धर्मशास्त्रियों के परिणामों से करने को चतुष्क है।

पुनः भिक्षु-विद्वान् शंकर में व्यावहारिक ज्ञान और प्रशासनिक क्षमता भी थी। भारतीय धार्मिक इतिहास में पहली बार बीड़ों और जैनों के ही नमूने पर, शंकर ने ब्राह्मण मठवाद की नींव रखी। भारत के विभिन्न भागों में—पश्चिम में मुंबई, पूर्व में गोवर्धन, पश्चिम में इंदौर और उत्तर में बड़ीगाँव—चार मठों की स्थापना की और सारे अधिकार इन्हींको सौंप दिए। उन्होंने सन्यासियों की वच धनियाँ (बसनामी) बनाई और व्यवस्था की कि इनके अन्तर्गत उपयुक्त चार मठों द्वारा समस्त भारतीय हिन्दू समाज पर बमोन्मुषासन किया जाए। सन्यासियों का वर्गीकरण भी उनकी स्थापना की मोटि के अनुसार चार वर्गों में किया गया—ब्रह्मचारी दण्डी परिब्राजक और परमहंस। साम हो बीड़ मिथुओं जैसा वातिशे— कमकाण्ड प्रवृत्ति पुरोहितवाद उनमें न था। यह व्यवस्था आज भी देश में प्रचलित है। शंकर ने स्त्रियों को सन्यास का अधिकार न प्रदान करके ब्रह्म की बुद्धि का परिमार्जन किया। जन-सामान्य के लिए शंकर ने उपदेश दिया कि सर्वकर्मफल-त्याग की भावना ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति की दिशा में धारमबिन्दु है।

निस्संदेह ज्ञानमिष्ट विद्वानों तथा भक्तानियों दोनों के लिए सर्वकर्मफल-स्वांग ही एक मान प्रचलित भाग है (धीमन्मगवद्गीता संकर भाष्य १२ १२)। 'उपदेशसाहस्री' में संकर ने बोर दिया है कि ब्रह्मज्ञान होने से पूर्व सभी कर्तव्य तथा कार्य निरवयव करने चाहिए। मगवद्गीता पर उनके भाष्य में सर्वकर्मफल-स्वांग और साधुत्व को प्रथम सत्यास से स्पष्टतर बताया गया है। प्रत्येक अधिक शीघ्र प्रयासी के धर्मिण्य भाग है—
कठोर नैतिक अनुशासन तथा आत्मनिर्भरता के कर्तव्यशासन। सत्य है मोक्ष ज्ञान विज्ञान व्यर्थ है। जो मुझे सभी गोपास की धारणा कर समझाने पर जब मृत्यु से घबराते सभी होनी तक पाणिनि के नियमों का उच्चारण तो सहायक न हो सकेगा। यदि बलीयस बर्ष की वरुण धामु म संकर की प्रकाशमृत्यु न हो गई होती तो उनके रचनामा सत्यासियों के प्रयत्नों द्वारा उपलब्ध भारत की धार्मिक एकता भागे बनकर देश की राजनीतिक सामूहिक चेतना में बदल जाती और भारत मुसलमानों के आक्रमणों को विफल करने में सफल हो जाता।

मगिनी निवेदिता का कथन है 'पश्चिमी संसारवासी संकराचार्य जैसे व्यक्ति का कल्पना नहीं कर सकते। उन्होंने केवल कुछ वर्षों के दौरान इस महान धार्मिक सम्प्रदायों की स्थापना की जिनमें से चार धाम भी अपनी महिमा को प्रमुख रखते हैं संस्कृत का इतना विस्तार ज्ञान प्रवर्धित किया कि एक पूरक वर्णन की नींव डाली और भारत के ज्ञानमंडल पर इतने उज्ज्वल नक्षत्र बनकर बमके कि भारत ही वर्षों की प्रवृत्ति बीतने पर भी उनकी उच्चस्थिति प्रसन्न है ऐसी कविताओं की रचना की जो अपने साहित्य के कारण विश्वी और धनमयता दोनों की भी समझ में आ जाती हैं इसके अतिरिक्त अपने विषयों के साथ सत्त्वों के समान निर्मल कान्ति और सहजता के साथ जीवन बिताया—इस महानता की स्तुति करते हुए भी हम इसे समझने में प्रसन्न हैं। हमने प्रचीनी के फासिस की वनित अवेलाई की बुद्धि भाटिन कुबेर की प्रवृत्ति और स्वाधीनता भावना तथा इन्धुविषय लोपोत्ता की राजनीतिक बुद्धिमत्ता पर आश्चर्य मिश्रित मुक्त होता है किन्तु इन सभी प्रतिमाओं को एक ही व्यक्ति में पाने की कल्पना नहीं कर सकता था। बहुमुखी प्रतिभा के अतिरिक्त उनमें जीवनमय भोज और प्रचीन उत्साह भी था यही कारण है कि उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करके पश्चिम धर्म प्रचारक और सचनकर्ता दोनों के कार्य किए, धारणाएँ किए, सिद्धान्त प्रतिपादन किया आलोचनाएँ की तथा अपनी रचना प्रकाशी की सम्मिता एवं एक सचरित धार्मिक भारत की कल्पना से उनकी सम्प्रेषित किया।

वेदान्त का प्रभाव

महत्त्वपूर्ण भारत समाज रूप से सत्यासियों और गुरुओं राजनिकों और संघर्षी व्यक्तियों तथा ब्राह्मणों धूर्तों और स्त्रियों के लिए था। बुद्ध की धनक सत्ताधियों का संकर ने बोर दिया कि ब्रह्मज्ञान का अधिकार धूर्तों और स्त्रियों को भी है उनके अनुसार धर्म और आधम के कर्तव्य ब्रह्मज्ञान में बाधक नहीं हैं। पुण्योत्तरकाल में महाभारत और पुराणों को, जिन्हें अक्सर पाषाण वैद कहा जाता है धूर्तों और स्त्रियों

तान्त्रिक समन्वय और उसकी विजय

वस्त्र से सहज और योग से कवचा तक

नारी-पूजा की प्राचीनता

योन पूजा का भारत में अत्यन्त प्राचीन और अस्पष्ट इतिहास है। मूमध्यसागरीय क्षेत्र के समान सिन्धु-नाभी में भी सिन्धुपूजा तथा मातृकापूजा सम्प्रदाय थे। हड़प्पा की एक देवी के यम से निकले हुए कमल का पौधा तथा सिन्धु संस्कृति में सर्वत्र प्राप्य पुरुष और स्त्री के शर्गों के प्रतीक के साथ साथ ही परम्पराएँ हैं जो आज भी तांत्रिक शर्मों में जीवित हैं। योन पूजा के अतिरिक्त जाडू-टोना भी जिन्होंने प्रबर्बवेद में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पाठ दिया है जिनमें से प्रमुख हैं अग्नि पृथ्वी और सरस्वती तथा सरस्वती की रूपान्तर इडा और भारती से भारतीय शक्तियों की महान मातृकाएँ हैं। ऋग्वेद की एक ऋचा में सरस्वती को माताओं और देवियों में सर्वोपरि माना गया है। ऋग्वेद का ब्रह्मायत देवीसूक्त जो पौराणिक शक्ति-उपासना का उद्गम है देवी मा के प्रति एक ऋचा है जिसमें देवी मा को ब्रह्म और वाक कहा गया है। उपनिषदों और ब्राह्मणों के युग में उमा (कैबीलोनिमाई उम्मा) तथा शक्ति मन्त्री मन्त्री मन्त्री और कुम्भी के नाम बताए हैं। उमा-हैमवती ने ही शत्रु को ब्रह्मज्ञान दिया था। महाभाष्य में उमा-हैमवती को सरस्वती और शक्ति के समान महादेवी शक्तियाँ महेश्वरी देवों की माता तथा समस्त ज्ञान की स्रोतस्त्रिणी कहा गया है।

बहुत प्राचीन समय से ही योन पूजा को वीर और शक्ति करके धन-धन देखा गया है। इसका प्रमाण हमें मुत्ताय में मिलता है। उसने समय-समय पर ही उतावली ईसापूर्व में उज्जयिनी में तांत्रिक कर्मकाण्ड के अनुसार हुई महाकाल की पूजा का वर्णन किया है। इस समय तक शक्ति और अनुचित उपासनाओं में स्पष्ट अन्तर स्थापित हो चुका था। प्राचीन शास्त्रग्रन्थों में वीर शक्तिपंथी तांत्रिकवाद के विज्ञान निहित थे इन्हींके आधार पर समय-समय १० ईस्वी में अग्नि-वसुदेव ने अपनी कृति 'तन्त्रालोक' की रचना की। महायान बौद्धधर्म पर शुरू से ही शक्ति की उपासना का प्रमाण था। 'सहस्रपुण्डरीक' में शक्तिपंथों पर एक सम्पूर्ण अध्याय है जिसमें एक नारी देवी शक्ति का पाठान्त है। शूर्पों तथा उनके पाठकों की शक्तियों के रूप में शक्तिपंथों का भी जिक्र है। शक्तिपंथों के शक्ति-मापानुवाद का कार्य भी शक्तिपंथी ईस्वी में आरम्भ हुआ। इस प्रकार, ब्राह्मणधर्म और

बौद्धधर्म दोनों को ही समान रूप से इस बीचकालीन पूजा-परम्परा में समाहित किया। अनुमान है कि इस पूजा को व्यवस्थित और सुसंगठित रूप पहली बार बौद्ध मुसकम्प और गुह्य-समाजतन्त्रों में मिला, ये तांत्रिक धर्म के प्राचीनतम धर्म थे और इनकी रचना विजयतोष मट्टाचार्य के अनुसार दूसरी और तीसरी शताब्दी ईस्वी में हुई थी। महान महायान पर्याप्त्यग्र असग (चौथी शताब्दी ईस्वी) ने अपनी 'अज्ञापरमिता' में अश्विनी की उपासनाओं की सूचनारूपों को ही ब्रह्मराजा है कहा है कि उपसृक्त तांत्रिक धर्म में दिए गए सिद्धांतों के अनुसार शक्ति की उपासना करके प्रज्ञा विद्या अपना सून्यता प्राप्त की जा सकती है। उनके 'महायान-सूत्रार्थकार' में कई योग-धार्मिक कुर्रों का विवरण है। पृथक् बौद्ध-परम्पराओं के अनुसार असग अथवा नागार्जुन में से कोई एक पर्याप्त्यग्र बौद्ध तांत्रिकवाद का प्रथम व्याख्याता था उन्होंने कमला कुपित हीनेन के मैत्रेय अथवा बुद्ध वैरोचन से प्रेरणा पाई थी।

गुप्तकाल में शक्ति-उपासना की लोकप्रियता

तांत्रिकवाद के विकास पर गुप्तकाल का जिसमें स्वप्तीकरण और समन्वय की प्रक्रियाएँ उत्कर्ष पर थी प्रभावप्रभाव पड़ा। पुराणों से स्पष्ट है कि ब्राह्मणधर्म के अन्तर्गत देवताओं के अतिरिक्त देवियों की संख्या में भी अतिरिक्त वृद्धि हुई इसका व्यापार वा निर्मूलक ब्रह्म का नियंत्रण में अस्तित्वैकानिक विभाजन—पुरुष और प्रकृति ब्रह्म और माया शक्ति। गुप्तकाल में सात्व्यदर्शन की पुरुष और प्रकृति तथा वेदान्तदर्शन की ब्रह्म और माया सम्बन्धी विविध डिब्-रचना को तांत्रिकवाद का व्यापार बनाकर पुराणों और तन्त्रों का समन्वय स्थापित हुआ शिव ध्यौ शक्ति का कार्य पुरुष और प्रकृति के कार्य के समान है।

प्राचीन ब्राह्मणदर्शन में प्रकृति अथवा माया धारि है—ब्रह्म अथवा पुरुष की शक्ति। इसलिए सभी ससारी देवता ध्याय मारी-शक्ति अथवा देवी के समत नत हैं। कामिका पुराण में शिव तक को ब्रह्मा की यही समझ है कि विश्व-मोक्षार्थ उन्हें विवाह कर लेना चाहिए। ऋग्वेद के मंत्रसाधारण में तांत्रिक संस्कृति की मूल धारणा—ब्रह्मांड के सर्वका शिव और पार्वती तथा ईश्वरता में एकता की अस्तित्वता—अभिप्रेक्षित है ब्रह्म की तरह शक्ति भी विरोधी गुणों का समन्वय स्थापित करने में समर्थ है। भगवद्गीता में परब्रह्म को बीजकारी तथा शक्ति का विश्व अमित्री कहा गया है।

गुप्तकाल में दुर्गा की पूजा अनेक नामों के अस्तित्व की जाती थी—सम्बिका महिषासुरमर्दिनी कायामयी पार्वती योगी अम्बानी अगवती अथवा मात्र देवी। एक गुप्तकालीन शिलालेख (संख्या १७) में मातृपूजा के लिए एक मन्दिर के निर्माण की बात लिखी है 'यह एक अत्यन्त अमानक स्थान है जहाँ कारिणियों का आवास है ये लुपी में पट्टाहाम करती हैं तथा तांत्रिक दर्शनकाण्डों के फलस्वरूप उन्मेषासी ठेठ ह्वाओं से समृद्ध तक को दिखा देसती हैं। लुनसाह् अथवा शक्ति और बाध के उत्पत्तियों से स्पष्ट है कि चौथी शताब्दी ईस्वी के बाद तांत्रिक उपासना—तथा ताज-माज विकसित भैरव और भैरवी सम्प्रदायों—का प्रचलन उत्तरभारत में लूब हो गया फिर भी कला और भक्ति

कला के क्षेत्र में पुरानी परम्पराओं का ही प्राधान्य रहा। धर्म-उपासना के भाविस्वान बंगाल तक में कला धीर भूतिकला पर ताम्रिकवाद का प्रभाव उत्तरगुप्त तथा पाण धीर सेन कालों में पड़ गया। इसी संदर्भ में एक बंगला का स्मरण होता है। गया के मंदिर में अपनी पाषाणों के दौरान एक बार ह्वेनसाह दुर्गा की प्रतिमा क सम्मुख बनि होवे-हावे बधा पा।

देवीपुराण—विष्णुकी रचना धार० सी० हाउरा के अनुसार 'साठवीं सताभी ई० के प्रथ में सा साठवीं सताभी के धुक में हुई थी'—आज्ञापनास्तवर्ग का प्रधान ग्रन्थ है। इसका दुर्गा सप्तधनी दबबा बन्धी बंद तो देवी के भक्तों के लिए अत्यन्त पवित्र है। देवी पुराण में अक्सर तन्नों धीर धामनों का तथा अपने हंग से मातृपूजा करनेवाले पापण्ड (धर्मात् ताम्रिक) दुर्गा का जिक्र आता है। इसमें वसिष्ठपंथी धीर रामपंथी धनुर्मायियों में अक्सर बताया गया है। धामपंथियों के अथ राह धीर बरेन्द्र (बयास) कामरूप धीर कामाख्या (धरम) मोहुरेस (विष्णु) आदि हैं। देवी पुराण में उल्लिखित कुछ स्थाना के नामों से पता चलता है कि उत्तरी रचना बंगाल में हुई थी। स्पष्ट है कि इस पुराण में पुरुषों कांक्षाओं तथा अम्य अस्वयं जातिओं को देवी की पूजा का अधिकार प्रदान किया गया है तथा धर्मनिष्ठ धूड को सर्वोत्तर जातियों के अकमल सौगों से थोछतर माता है। इसमें महाभारत के परिशिष्ट हरिबंध के कवन की पुष्टि होती है कि दुर्गा की उपासना मांस मदिरा की अम्यस्त खबर, बर्हं व वृनिष्ठ वीसी अम्य जातियां करती थीं। कादम्बरी में भी लिखा है कि दुर्गा की उपासना खबर करते थे। साठवीं सताभी ईस्वी के प्राकृत धर्म 'गौडबहो' में विष्णुपूजा की खबर जाति द्वारा पूजित देवी पर्व-सबरी का उल्लेख है। मुद्रात में मुत्तोत्तरकामीन प्रतिमाएं मिली हैं जिनमें पार्वती को खबर-कन्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है—खिर पर पतियों का मुकुट है धीर कमर के पिह सिंहासन। देवी पुराण में अनेक धर्मवर्गों के लिए विवाहिता स्त्रियों अथवा कन्याओं के देवोत्प में पूजन तथा मान-मदिरा के सेवन की व्यवस्था है।

उपासना की ताम्रिक विधि बन्धी ही हिन्दुधर्म के विभिन्न मतों द्वारा स्वीकार कर ली गई। इस प्रकार कम से कम पांच हिन्दु मतों का ताम्रिकवाद मौजूद है—यैव ताम्रिकवाद, शाक्त ताम्रिकवाद, वैष्णव ताम्रिकवाद, धीर ताम्रिकवाद तथा पाणपत्न ताम्रिकवाद। इन सभी पर धीर केराग्य (जिसमें धीर को सच्चिदानन्दस्वरूप माना गया है) तथा ताम्रिक मनोवैज्ञानिक-प्राणीरिक अनुशासन सूत्रों धीर विधियों का समान प्रभाव है। मन्त्र मन्त्र चक्र भास भूषा बीसा जूतभूषि धीर भूतियों की प्राणप्रतिष्ठा वीसी ताम्रिक विधियां कमल विभिन्न ब्राह्मण धार्मिक मतों में भी—जिनमें पाणराज वैष्णव मत धीर धागम चौब मत भी सम्मिलित थे—प्रसिद्ध हो गईं।

बौद्ध महायान धीर नयनान में अवित्या

बौद्धधर्म के अन्तर्गत धार्मिक की उपासना का विविध धारम्य महायान के विकास के साथ हुआ। सारागम्य से स्पष्ट रूप से लिखा है कि ताम्रिक धीर ताम्रिक रहस्य वाली धीर मुक्त थे विन्दु के महायान बौद्ध धर्माध्ययन मार्गार्थन के समय से बने आ रहे

ने। जैनसाह ने नागम्दा-बिहार में तारा और हारीति जैसी महायान देवियों की उपासना की बात लिखी है। उसी युग की अन्य महायान देवियों—जैसे प्रज्ञापारमिता वसुभारा और वागीश्वरी—की मूर्तियाँ भी नागम्दा में प्राप्त हुई हैं। साथ ही तारा, मारीची वसुभारा और सरस्वती की धार्मिक प्रतिमाएँ भी मिली हैं—तारा की प्रतिमाएं प्रासनरूप और खड़ी हुई दोनों हैं। चतुर्भुजी तारा की एक प्रतिमा (जिसमें ग्राम्भूषणों को अभ्यस्त मारीची से उकेरा गया है) तो अतिशय सुन्दर है। तारा और प्रज्ञापारमिता की उपासना का धारम्भ महायान बौद्धधर्म के अन्तर्गत एक नये मत बज्रयान के उदय के साथ हुआ। बज्रयान का उदय निम्न ढंग से हुआ। गुप्त सम्राट् तत्र (कुसरी-सीसरी एतावती ईस्वी) के धनुमार, बुद्ध ने स्वयं को पांच ध्यानी बुद्धों में परिवर्तित कर लिया जिनमें से प्रत्येक की अपनी छवि, प्रज्ञा अवस्था बिद्या थी। इस प्रकार अज्ञेय और लोचना वैरोचन और तारा रत्नकेतु और मामकी अभिताम और पांडरा तथा अमोभवज्र और धार्यताय हैं। इस बौद्धतन्त्र में प्रत्येक ध्यानी बुद्ध-सक्ति की उपासना के लिए विशिष्ट मन्त्र-मुद्रा-मंडप आदि दिए गए हैं ताकि मानव धूम्य की उपलब्धि कर सके—जहाँ मानिक संसार, समस्त सुख-साधन तथा सुख स्वयं पूर्णतः अस्तित्वहीन हो जाते हैं। धूम्य को ही 'बज्र' कहा गया है क्योंकि वह बज्र की भांति दुर्ग, अघेय अभिमाय और अमर है। इसीलिए नई व्यवस्था का नाम बज्रयान पड़ गया। धूम्य और कल्पा के सम्मिलन से बोधिविज्ञान बनता है। उनके मन्त्र का प्रतीक हेक्क और प्रज्ञा नामक बज्रयान इष्टदेवों का यह-मुम प्रासन अवस्था सुमनस का परस्पर आतिथन है।

बज्रयान के धूम्य और माध्यमिक अवस्था योगाचार-सम्प्रदायों के धूम्य में अन्तर है। बज्रयान के धूम्य में धूम्य विज्ञान और महासुख नामक तीन उत्पत्ति निहित हैं। यही कारण है कि हिन्दूधर्म के साथ पुनर्मिलन अब अधिक सरल हो गया क्योंकि पुष्ट और पुष्टोत्तर ११-१२ के मानिक धीर्धर्म और समन्वय के फलस्वरूप इस प्रकार के पुनर्मिलन की नींव पड़े मन्त्राचार हो चुकी थी।

यासवंश के अन्तर्गत तांत्रिक पुनरुत्थान

सातवीं और आठवीं शताब्दियों के दौरान चर्मपाल (७७०-८१०) और देवपाल (८१-८२०) के बीच शासनकालों में पूर्वी भारत में संस्कृति और कला का बौद्ध पुनरुत्थान हुआ। इन्हीं शताब्दियों में नागम्दा में निम्न नवीन इष्टदेवियों की पूजा शुरू हुई अपराजिता बज्र-धारवा नर्तास्त्री बहाली बरासी बराहमुची तारा व पर्यवर्ती। उसी काल के तांत्रिक इष्टदेव व बज्रयान मञ्जुवर भवना मञ्जुधी यमास्तक भैरोचन विज्ञान हेक्क बज्रमस और मारीची। इन्हीं शताब्दियों के दौरान बौद्ध मठों तथा अन्य विद्वानों में उद्भूत बज्रयान तांत्रिकवाद ने तिब्बत को भी प्रभावित किया और तिब्बती संस्कृति और धर्म को एकदम बदल दिया। इस विद्या में सबसे प्रथम प्रभाव चान्तरसिंह (७०६-७६२ ईस्वी) का पड़ा। वे बंगाल के एक प्रकाण्ड विद्वान और नागम्दा बिहार के प्रधानाचार्य थे। उन्होंने 'तत्त्वसंग्रह' की रचना की। यह पुस्तक संस्कृत और तिब्बती दोनों भाषाओं में उपलब्ध है तथा इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने हिन्दू और बौद्ध दोनों

प्रणामियों का गहन अध्ययन किया था और उनमें अद्भुत विवेक था। वे कई ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण बख्शान-ग्रन्थों के रचयिता भी थे। राजा श्री लोंग-रु-रुतम के धामन्त्रण पर वे तिब्बत गए और तेरह वर्ष तक वहीं रहे। इन धर्मविद्वान् उन्होंने विख्यात भोक्तापुरी बिहार के नमूने पर प्रथम तिब्बती बिहार का निर्माण स्वाम-या कामकस्याम पर करवाया। उन्होंने तथा उनके दो शिष्यों—कमलसील और पद्मसमय—ने अनेक बौद्ध धर्मग्रन्थों को तिब्बती भाषा में अनुदित किया। आन्तरिक रूप से पीछे धार्मिकता के मुद्दों और शिष्यों की एक धर्मी परम्परा छोड़ गए, कोईमर की लाम्पुर नामावली में उनके नाम हैं। पद्मसमय धर्मवा पद्मसमय धर्मगुरु इन्द्रमूर्ति लक्ष्मीकरा सीताबख्श, दारिक सहज योगिनी चित्ता और शोम्बी हेरक। तिब्बत में बौद्ध धार्मिकता का स्थापना करने वाले पञ्च और सहज के अनेक आचार्य बंगाल निवासी थे, वे साठवीं शताब्दी के उत्तराख और आठवीं शताब्दी में जीवित थे। इसी धर्मविद्वान् बंगाल अथवा नेपाल और तिब्बत के बीच प्रयाग धार्मिकता और सांस्कृतिक अन्तरंगता का सूत्रपात हुआ यह अन्तरंगता बादलों की छाया के अन्त तक कायम रही।

इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में जब पूर्वी बंगाल में चन्द्रवर्मा का शासन था तथा बादलों की और बादलों की छायाओं में बख्शान परोजित महायान पर हावी हो गया तथा लोकाय धर्मवा सिद्धान्त लोकाय के अनेक वर्षों हेरक और जम्भस और ठाण (शामा भववा बहिरवमी बख और नृकुटी) एकत्रता मारीवी (मसोककाम्वा), प्रजा पारमिता वापीवरी बुद्धा उप्पीवर्षिकवा महाप्रतिपारा वर्षसवरी हापिदि तथा अन्य धार्मिकों की पूजा की जाने लगी। बंगाल के महान् बौद्ध बिहारों—धोदन्तपुरी सोमपुर और विक्रमसील—में जिनका सम्बन्ध नेपाल और तिब्बत के साथ था धार्मिक धर्मों का प्रथम किया जाने लगा और विस्तार किया जाने लगा तथा धार्मिक इष्टियों की पूजा होने लगी। इन साठों का स्पष्ट संकेत बाकि संस्कारित धर्म-सम्प्रदाय का समय था पड़ा है।

बौद्धधर्म का ह्रास और सहज का उदय

जब हम धार्मिक विकास की ऐसी अवस्था में—जिसमें बख्शान और सहजमान का समन्वय हुआ—प्रवेश करते हैं तो धर्मवर्षिक और धर्मवर्षिक होते हुए भी धर्मवर्षिक पौनिक है। इस अवस्था के धर्मवर्षिक के बिना भारत से बौद्धधर्म के विनोय को समझ ही नहीं जा सकता। बौद्धधर्म के उत्पत्ति में, बख्शान के विकास का धर्म था महायान सर्वाधि धार्मिक, योगाचार, धार्मिक तथा धर्म सम्प्रदायों के धार्मिक सिद्धान्तों की तुलना में अपरोक्ष ज्ञानवाद और रहस्यवाद की प्राथमिकता एवं विभिन्न धार्मिक धर्मवर्षिकों का समन्वय। विकास की धर्मवर्षिक अवस्था में धर्म परिवर्तन हुए। बख्शान की इष्टपूजा और धर्मवर्षिक के स्थान पर सहज धार्मिक ध्यान का महत्त्व स्थापित हुआ तथा धार्मिक धार्मिक धर्मवर्षिक के इष्टिकोष से बख्शान की पुष्टा मन अल तथा धर्म के धर्म बाह्य रूपों की स्थापना की जाने लगी। यह धार्मिकता की पूर्ण विवय थी और धर्मवर्षिकता से इसे हिनू धर्मवा बौद्ध धार्मिकता कहा गया तथा इसका धर्मवर्षिक नाम 'सहज धर्म' पड़ गया धर्मवर्षिक धर्म धर्म (नैराम) और महायान के धर्म-स्तर पर बौद्ध महायान धर्मवा बख्शान तथा

ये। जैनसाहू ने नासम्या-विहार में तारा और हारीति बीसी महायान देवियों की उपासना की बात लिखी है। उसी युग की अन्य महायान देवियों—बीसे प्रज्ञापारमिता वसुधारा और वागीश्वरी—की मूर्तियाँ भी नासम्या में प्राप्त हुई हैं। साथ ही तारा मारीची वसुधारा और सरस्वती की धारमिक प्रतिमाएँ भी मिली हैं—तारा की प्रतिमाएँ प्राप्त रूप और लड़ी हुई दोनों हैं। चतुर्भुजी तारा की एक प्रतिमा (जिसमें धामूपणों को धारण करने वाली से उकेरा गया है) तो प्रतिष्ठित सुन्दर है। तारा और प्रज्ञापारमिता की उपासना का धारम्य महायान बोद्धधर्म के अन्तर्गत एक नये मत ब्रह्मचर्य के उदय के साथ हुआ। ब्रह्मचर्य का उदय निम्न द्वय से हुआ। गुह्य धर्माग्र तन्त्र (द्वितीय-तीसरी शताब्दी ईस्वी) के अनुसार, बुद्ध ने स्वयं को पाँच ध्यानी बुद्धों में परिवर्तित कर लिया जिसमें से प्रत्येक की अपनी शक्ति प्रज्ञा धारण करती थी। इस प्रकार असंख्य और मोक्षदा शैरोक्ष और तारा रत्नकेतु और मासकी अमिताभ और पांडुरा तथा समोक्षर और धार्यराह हैं। इस बोद्धधर्म में प्रत्येक ध्यानीबुद्ध-शक्ति की उपासना के लिए विशिष्ट मन्त्र मुद्रा संज्ञा आदि दिए गए हैं ताकि मानव धर्म की उपलब्धि कर सके—जहाँ मानिक धर्माग्र, समस्त सुख-साधन तथा सुख स्वयं पूर्णतः अतिरिक्त हो जाते हैं। धर्म को ही ब्रह्म कहा गया है, क्योंकि वह ब्रह्म की भाँति बुद्ध अनेक अविनाश और धर्म है। इसीलिए कई व्यवस्था का नाम ब्रह्मचर्य पड़ गया। धर्म और कला के सम्मिलन से बोधिविज्ञान बनता है। उनके अन्तर्गत एक ही और प्रज्ञा नामक ब्रह्मचर्य इष्टदेवों का एक-दूसरे धारण धारण धर्मचर्य का परस्पर धारण है।

ब्रह्मचर्य के धर्म और मानविक धर्मका योगाचार-सम्प्रदायों के धर्म में अन्तर है। ब्रह्मचर्य के धर्म में धर्म विज्ञान और महामुक्त नामक तीन तत्त्व निहित हैं। यही कारण है कि हिन्दूधर्म के साथ पुनर्मिलन का अधिक खतरा हो गया क्योंकि धर्म और गुणोत्तर ने के धार्मिक धर्मों और समन्वय के फलस्वरूप इस प्रकार के पुनर्मिलन की नींव पड़ी। संसार हो चुकी थी।

वासुदेव के अन्तर्गत तांत्रिक पुनरुत्थान

सातवीं और आठवीं शताब्दियों के बीच धर्मवास (७७०-८१०) और देववास (८१-८५) के बीच धारणकर्तों में पूर्वी भारत में संस्कृति और कला का बौद्ध पुनरुत्थान हुआ। इसी शताब्दियों में नासम्या में निम्न मनीन इष्टदेवियों की पूजा शुरू हुई अपराजिता ब्रह्म-धारण ब्रह्मिणी ब्रह्मली ब्रह्महनुमती तारा व पर्णधारी। इसी काल के तांत्रिक इष्टदेव थे ब्रह्मचर्य मंडुकर धारण मंडुपी यमाग्रह श्रीलोक विजय हनुक जन्मल और मारीची। इन शताब्दियों के बीच बौद्ध मठों तथा धर्म विद्यापीठों में उद्भूत ब्रह्मचर्य तांत्रिकवाद ने तिब्बत को भी प्रभावित किया और तिब्बती संस्कृति और धर्म को एक नया रूप दिया। इन दिशा में सप्रथम प्रभाव धार्मिक (७०६-७९२ ईस्वी) का पड़ा। वे बंगाल के एक प्रकाण्ड विद्वान और नासम्या विहार के प्रधानाचार्य थे। उन्होंने 'तत्त्वसंग्रह' की रचना की। यह पुस्तक संस्कृत और तिब्बती दोनों भाषाओं में उपलब्ध है तथा इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने हिन्दू और बौद्ध धर्म

हमनी धनाढ्यी के उत्तरार्ध में जब पूर्वी बंगाल में अन्धबध का शासन था तथा
मार्वाही और बाङ्गाली पठाणियों में बयपान परेशान महापान पर हावी हो गया तथा
सामान्य जनता गिरिजकी बय और मृदुली) एकत्रता मारीकी (अधोक्रान्ता) प्रता
पतिता बाणीसदी बुडा उन्मीपविजया, महाप्रतिपाद्य पर्यवर्ती हारीति तथा मग
किन्हीं की पूजा की जाने लयी । बंगाल के महान बौद्ध विहारों-धोदन्वपुरी सोमपुर
पर विक्रमशीत-में बिनका सम्मन्य नेपाल और विम्बत के साथ बा धार्मिक श्रमों का
यन किया जाने लगा और धिमेय दिया जाने लगा तथा धार्मिक दृष्टिकोणों की पूजा हो
। इनकी बावों का स्वयं स्रष्टे बाकि संस्कारित धर्म-सम्प्रदाय का समय था था है ।
जम का ह्रास और सहज का उदय
मह हन धार्मिक विकास की ने
नम्य हन

बीजबम का हास और सहज का उदय
मन हम धार्मिक विकास की ऐसी अवस्था में—जिसमें ब्रह्मान और सहजमान का समन्वय हुआ—प्रवेश करते हैं जो अव्यवस्थित और अव्यवस्थित हुए भी अत्यधिक रोचक है। इस अवस्था के अनुशीलन के बिना भारत से बीजबम के विसर्प को समझा ही नहीं जा सकता। बीजबम के सर्वत्र में ब्रह्मान के विक्रम का धर्म या महायान अवस्थिति बार, बोधवार, माध्यमिक तथा अन्य सम्प्रदायों के धार्मिक सिद्धांतों की तुलना में अपरोक्ष ज्ञानवार और रहस्यवार की प्राथमिकता एवं विभिन्न तांत्रिक बोधविधियों का समन्वय। विकास की प्रथम अवस्था में और परिपूर्ण हुए। ब्रह्मान की इष्टपूजा और कर्मकांड के स्थान पर सहज मौनिक ध्यान का महत्त्व स्थापित हुआ तथा धार्मिक यौनिक अनुभूति के हृष्टिकोष से ब्रह्मान की मुद्रा में महत्त्व तथा धर्म के धर्म बाह्य रूपों की व्यक्तता की जाने लगी। यह तांत्रिकवाद की पूर्ण विजय थी और मुनिमानुसार इसे हिन्दू धर्मना बीज तांत्रिकवाद कहा गया तथा इसका वर्णन नाम सहज सिद्धि पत्र नाम कारण, परम धर्म्य (नैरतम) और महाभुक्त के बोध-स्तोत्र पर बीज महायान प्रथम ब्रह्मान तथा

से मिली थी जिन्होंने उसे महाज्ञान के रहस्यवाह की बीसा दी थी'। इसी उपास्यान के हिन्दी रूप में उसे बारानसरी के गम्हर्बसेन की बेटी कहा गया है। बंगाल में यह देवी मानी जाती है और उसकी मन्दिरों में विशेषकर उत्तर कश्मिर में पूजा होती है। तिब्बत में उसे तांत्रिक दान्तिनी या धक्देवी माना जाता है।

गोरखनाथ ने कुछ ही तरह मध्यममार्ग चुना। उन्होंने हिन्दू और बौद्ध तांत्रिक-वाद की पराकाष्ठाओं और धर्मविरताओं का हिन्दू और बौद्ध परम प्राबल्यवाद के आध्यात्मिक सूक्ष्मीकरण का सभी सम्प्रदायों में प्रचलित मानसिक-नादिक यागक्रियाओं के प्रतिरक्षित दावों का एकसाथ विरोध किया। उनका सिद्धान्त था परम साना मृत्यु है। बिन्दुसूत्र नाम का भी मृत्यु है। दिन-रात ब्रह्माग्नि का ध्यान करो। कठोर पारिरीक साधनाओं और धामस्य दोनों से बचा। गोरख कहते हैं बेटा केवल संयम ही तुम्हें सार के पार करा सकेगा। या फिर वह इसपर और लेने है कि ब्रह्म पटना बेकार है। उस पार पहुँचने के लिए छात्र के सारस्वत का भी मनन करना चाहिए। परमज्ञान को गोरख एक ऐसा ब्रह्म बताते हैं जिसमें ब्रह्म है न पत है और न वृत्त है, पर फिर भी वह कम देता है। वह ब्रह्म स्त्री की सन्तान है। वह बिना गान का बाध और बिना संसार का सुख है। गोरख के अनुसार, सहज अर्थात् स्वाभाविक और स्वतः स्फूर्त जीवन-प्रवाही ही सर्वोत्तम है। उनके मत से इस सहज की उत्पत्ति महज धूम्र से हुई है और वह दुःख और कोमल दोनों है। उसकी व्याप्य गहरी हो सकती। मोम में परम निष्ठात गोरखनाथ जीवनमात्र पर दया का उपदेश देने के और जीव को धिक्कप मानते थे। उन्होंने याँस मज्जन और हृद प्रकार की जीव-हिंसा की निन्दा की है, क्योंकि वह (जीव) हमारे ही बन्धु-बान्धव है (इत-पोतन पोतन)। एक सुन्दर रूपक में गोरखनाथ सच्चा महस्वी उसे बताते हैं जो कुरम जल को स्वेच्छा से जब चाहे छोड़ सक और जब चाहे उसमें घा सके समस्त माया को गच्छ कर सक और आत्मज्ञान अनुभव कर सक। उसका अतीर निर्वचन का मन्दिर बन जाता है। साथ ही वे बराबर इसपर और देने हैं कि आत्म प्रकाश का आसन और प्राणायाम की योगक्रियाओं की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्व है। "ध्यात्मिक प्रेरणा के बिना प्राणायाम और आसन अभ्यास की राह में रोक बन जाते हैं और प्रार्थी पहुँची अवस्था से धामे नहीं बढ़ सकता।"

इस रहस्यवादी आन्दोलन के अनेक कवियों में सबसे प्राचीन सरह(-या) सिद्धाचार्य जिनका समय दली कभी ७२० ई० से पूर्व बताया जाता है और जो बंगाल के धर्मपाम के उपकासीन माने जाते हैं। उन्हें आदिस्थि या सिद्धनाथ पंथ का संस्थापक ठका कहा जाता है। तिब्बती तन्त्र (वस्तुतः तन्त्र) उन्हें पश्चीस तांत्रिक धर्मों का रचयिता मानता है जिनमें से छः के अधिकवाताकोपवीति और वर्णवोति से सम्बन्ध है। अनुसूति के अनुसार उनका जन्म पूर्वभारत के राज्ञी नामक स्थान पर हुआ था। जड़िया के एक राजा ने उन्हें तांत्रिक बौद्धधर्म की दीक्षा दी। वे नामन्त्रा विरहविद्यालय के प्राचार्य थे और कहाँ उन्होंने नागार्जुन को एक रहस्यवादी दर्शन और आत्मनिष्ठा की दीक्षा दी थी। ६२० और १२०० ई० के बीच बंगाल कायस्थ नेपाल तिब्बत और उड़ीसान में कवि रहस्यवाधियों की एक पूरी गलनमाला जगमगाई थी। वे औरही सिद्धों के दंतर्पण हैं जो नेपाल

से मिमी भी जिन्होंने उसे महाज्ञान के रहस्यबाद की सीखा दी थी'। इसी उपास्याम के हिन्दी रूप में उसे बाधमगरी के गणपर्वसेन की बेटी कहा गया है। बंगाल में यह देवी मानी जाती है और उसकी मन्दिरों में विशेषकर उत्तर के जिलों में पूजा होती है। तिब्बत में उसे तांत्रिक डाकिनी या अर्चदेवी माना जाता है।

गोरखनाथ ने बुद्ध की तरह मध्यममार्ग चुना। उन्होंने हिन्दू और बौद्ध तांत्रिक-बाद की पराकाष्ठाओं और धार्मिकताओं का हिन्दू और बौद्ध धर्म आदर्शवाद के आध्यात्मिक सूक्ष्मीकरण का सभी सम्प्रदायों में प्रचलित भासिक-कामिक भोगिकताओं के प्रतिरक्षित शक्तों का एकसाथ विरोध किया। उनका सिद्धांत का पेट भर खाना मृत्यु है। बिनाभुन न खाना भी मृत्यु है। बिना-वात ब्रह्माग्नि का ध्यान करो। कठोर शारीरिक साधनाओं और आत्मस्थ दोनों से बचो। मोरछ कहते हैं बेटा बचन संयम ही तुम्हें सागर के पार लगा सकेगा। या फिर वे इसपर जोर देते हैं कि बड़ा बचन संयम बेकार है। उस पार पहुंचने के लिए आत्म के सारतत्त्व का भी मनन करना चाहिए। परमज्ञान को गोरख एक ऐसा वस्तु बताते हैं जिसमें न बीज है न पत है और न फूल है, पर फिर भी यह फल देता है। यह बांध मंत्री की छतान है। यह बिना गगन का बाद और बिना संसार का सुख है। मोरछ के अनुसार सहज अर्थात् स्वामाधिक और स्वतः स्फूर्त जीवन-महात्मा ही सर्वोत्तम है। उनके मत से इस सहज की उत्पत्ति सहज शून्य से हुई है और यह बुद्ध और क्रोमल दोनों है। उसकी व्याप्य नहीं हो सकती। योग में परम निष्पत्ति मोरखनाम जीवनमात्र पर दया का उपदेश देते हैं और जीवन का विचक्षण मानते हैं। उन्होंने मांस मत्स्य और हार प्रकार की जीव-हिंसा की निन्दा की है, क्योंकि वे (जीव) हमारे ही बन्धु-बान्धव हैं (हृद-भक्षण पोतन)। एक सुन्दर रूपक में गोरखनाथ सच्चा ब्रह्मदेवी उसे बताते हैं जो सुख अपत को खण्डा से जब चाहे छोड़ सके और जब चाहे उसमें या सके समस्त माया को नष्ट कर सके और आत्मज्ञान अनुभव कर सके। उसका शरीर निर्बल का मन्दिर बन जाता है। साथ ही वे बराबर इसपर जोर देते हैं कि आत्म प्रकाश का आसन और प्राणायाम की योगिकताओं की अपेक्षा बहुत अधिक महत्व है।

आन्तरिक प्रेरणा के बिना प्राणायाम और आसन अभ्यास की राह में रोक बन जात है और प्रार्थना प्रवृत्ति से भ्राम्ये नहीं बढ़ सकता।

इस रहस्यबादी आगबोझन के दमक कवियों में सबसे प्राचीन सट्ट-पा) सिद्धाचार्य के जिनका समय कभी कभी ७२ ई० से पूर्व बताया जाता है और जो बंगाल के समपास के समकालीन माने जाते हैं। उन्हें धारिसिद्ध या सिद्धमात्र पंच का संस्थापक कहा जाता है। तिब्बती उमकुर (मस्तन हंशूर) उन्हें पञ्चीस तांत्रिक ग्रंथों का रचयिता मानता है जिनमें से छ से अधिक बाह्योपपत्ति और अर्थात्पत्ति सम्बन्ध है। अनुपति व अनुसार उनका जन्म पूर्वभारत के राजा नामक स्वाम पर हुआ था। उड़ीसा के एक राजा ने उन्हें तांत्रिक बौद्धधर्म की सीखा दी। वे नाममात्र विरविद्यालय के आचार्य थे और बहुतों उन्हें नागार्जुन को एक रहस्यबादी एतन और रसायनविद्या की सीखा दी थी। १५० और १२०० ई० के बीच बंगाल नामक नेपाल तिब्बत और उड़ीसान में कवि रहस्य कवियों की एक पूरी मत्स्यमाता जन्मवादी थी। वे जोरदा सिद्धों के अंतर्गत हैं जो नेपाल

और तिब्बत में महायान के आचार्य और भारत में चौथे संत मानकर पूजे जाते हैं। उनकी रचनाएं जर्मपद् या शुद्ध मंत्र बंगला साहित्य का भूत-स्रोत हैं और वे अधिकतर तिब्बती अनुवादों और बंगला शोधों में सुरक्षित हैं। वे जिस मध्यकालीन दोसी में रहे गए हैं उसे भाषाशास्त्रियों ने निमिन्नक्य हैं 'प्राचीन बंगला धरती (कामरूपी) उड़िया और मैथिली की संज्ञा दी है। परन्तु उसे गौड़ीय कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि प्यारहवीं शताब्दी में अस-मेरुनी पूर्वरेख में प्रचलित पूर्वी सिंधि की गौड़ बर्णमासा कहता है।

महान सहज-आचार्यों में से एक इन्द्रभूति (लगभग ९८७-७१७ ई०) ने जो उड़ीसी भाषा के राजा से और ज्ञानसिद्धि तथा सहजयान के उत्थान से सम्बन्धित कई ग्रन्थ संस्कृत शब्दों के रचयिता थे। उनकी जन्मी-कुरा बैबी नाम की अत्यन्त प्रसिद्ध पुत्री की जिसने अपने 'मन्त्रसिद्धि' ग्रंथ में एक बहुत ही अनोखे मत की स्थापना की। उसने उपस्था करने काष्ठ और पूजा का नियोजन करते हुए मानव-शरीर पर ध्यान लगाने पर जोर दिया, जिसमें सभी देवताओं को प्राप्त किया जाना है। इससे बंगाल में सहजीय सम्प्रदाय का जन्म हुआ, जो आज भी जीवित है। सहजयोगिनी भिन्ता का भी जो एक प्रमुख संतसेविका हुई है, बंगाल में सहजीय सम्प्रदाय के उत्थान से सम्बन्ध हो सकता है।

बौद्ध सहजयान उत्तरभारत के रहस्यवादी संप्रदायों और वर्षों की सामान्य बोधी बन जाने से ब्राह्मण तांत्रिकवाद में जो जनसाधारण का मत था, जिसका दुर्लभ मिला गया 'सहजयान बौद्ध और हिन्दू तांत्रिकवाद से बनकर प्रारम्भिक वैष्णवमत और बंगाल के सहजीय साहित्य में पहुँचा। यह परम्परा यद्यपि मध्ययुग के रहस्यवादिनों और उत्तरभारत के संत कवियों को उत्तराधिकार में मिली पर बीच-बीच में प्रास्तिक स्वर और पकड़ मेठा का और वह सहज के अज्ञेय स्वरूप को स्वामी राम या कृष्ण से मिला दिया जाता था। इस समय विस्तृत बौद्ध सहजयान के सिद्ध प्रती भी सनातन हिन्दू धर्म के बारे से बाहर जाइयों जायों कनकटों (दीनों) अकबूतों और बंगाल के सहजीयों के जीवन और प्रारम्भिक में मिलते हैं।

परम सहज की प्राप्ति

सहजयान के अनुसार मनुष्य का लक्ष्य आस्तिक तथा पारिवर्त जीवन में शांति और स्वतः स्फूर्ति प्राप्त करना है। इन्द्रियों के विषयों का उसे बिना आवास और निरोध के पूर्ण पवित्रता और स्वतन्त्रता के साथ उन्हें प्रकृति में सहज मानते हुए, उपयोग करना है। भवसागर में बहते जहाज का मस्तूल सहज ही है, जिसपर मन को हल-उल-उल करने के बाद फिर मोटवा पड़ता है। बाबू कहते हैं "मस्तूल पर बैठे काग सागर की यात्रा कर रहा है। वह पारों और जलकर काटता है और जलकर जहाज के मस्तूल पर शांति से बैठ जाता है।" बाबू की यह बातों सरलता के पक्ष की याद दिलाती है जिसमें कहा गया है "जो व्यक्ति एन्द्रिय जगत् की पवित्रता में ध्यान नहीं लेता और केवल धर्म की चिन्ता करता है वह जहाज के काग की तरह है। वह आकाश में जाहे किन्ता ही ऊँचा पर्यो न उड़ जाए, पर घात में उसे जहाज पर ही बापस आना पड़ता है।

सांख्यिक योग प्रतीकवाद और कमकाष्ठ की सामान्य पृष्ठभूमि के कारण, साधारण इन्द्रिय-मुख आस्तिक सम्प्रदायों में भी एक उष्ण व गहन आरिमक संताप में परिवर्तित हो गया। हिन्दू कुलधर्मवर्तन में इन्द्रियों और इच्छाओं के पवित्रीकरण पर निम्नलिखित पद मिश्रता है। परमेश्वर का शिष्यत्व में यह आदेश है कि आरिमक उन्नति उन्हीं उपायों से प्राप्त करनी चाहिए जो मनुष्य के पतन का कारण हैं। जो इन्द्रियों को अपने विषयों से हटाकर आत्मा से जोड़ता है वही वस्तुतः भोजन करता है और तो केवल पशुधर्म का बंधन करता है। पशु (प्राथमिक मनुष्य) की शक्ति क्षुब्ध होती है और शक्ति (विषय मनुष्य) की शक्ति क्षयित होती है। इस शक्ति का उपयोग करनेवाला ही शक्ति का भोक्ता है। पशुशक्ति और आत्मा के संयोग से उत्पन्न आत्मिक का उपयोग करनेवाला ही उच्चतम सम्मोय प्रेम पाता है, और तो केवल शिवों के भोक्ता है। जो पाँच प्रकार के इन्द्रिय विषयों में ललका यवार्थ अधिग्रहण चाहते हुए, भाग लेता है वही मुक्त है।

मध्ययुग के सुप्रसिद्ध रहस्यवादी बाबू सुनि-सहज का वर्णन जिसमें शून्य या शून्य सहज सहज और अमरत्व से जुड़ा हुआ है इस प्रकार करते हैं "सहज है वह रहित है वहाँ सुख और दुःख एक हो जाते हैं वह सहज न तो मरता है और न जीता है वह पूर्वनिर्माण की अवस्था है समस्त है के बीच अपने मन को सहज शून्य में निश्चल रखो और निग्रह की अन्तिम अवस्था प्राप्त कर अमृतपान करो तो काल का कोई भय नहीं है। रहस्यवादी बताते हैं 'और इस प्रकार निरंजन से मुक्त हो रहे हैं, काल संगीत से, तानु आरचनजनक रूप से भूमों से मुक्त है। और हमें मरता है कि वह आत्मा के लिए साक्षात्कृत है, आत्मा वह के लिए फूल सुगन्ध के लिए साक्षात्कृत है सुगन्ध फूल के लिए शब्द शब्द के लिए साक्षात्कृत है, शब्द शब्दों के लिए रूप भाव के लिए साक्षात्कृत है भाव रूप के लिए और यह सब परस्पर आराधना उस अवर्चनीय अन्तर्निहित शब्द की ही आराधना है जिसकी उपस्थिति से प्रत्येक कीर्तिमान है। बाबू संवर्ष नहीं करता वह तो शून्य की इस वर्ण में अपने हृदय को बस सुना रखता है, और इस प्रकार सदा बसन्त का आनन्द लेता है।"

कबीर ने भी सहज-समाधि की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है

छापो, सहज समाधि मसी

बह-बह डोलो छो परिकरमा जो बसू करी सो सेवा
बन सोचो तब करी दण्डवत प्रीति और न सेवा।
कहीं छो नाम सुनी छो सुमिरन, जायो-पिनी छो पूजा
गिरा-उमाङ्ग एक सग लेखो भाग मिटावो पूजा।
मोक्ष न मूर्खो काल न रंखो तमिक कष्ट नहिं भारो
कुले नैन पहिचानी हँसि-हँसि सुखर रूप मिहारो।
सब निरन्तर से मन सामा मलिन बासना त्यागी
उमठ-बैठा कबहुं नहिं छूटे, ऐसी तारी सामी।
कह कबीर यह जनमनि रहनी छो परगट करि माई,
दुख-मुख से कोइ परे परमपद तेहि पद रहा समी।

मध्यकालीन बंगला काव्य में सहज प्रेम रहस्यवाद

सहजपन में कामवासना पर व्यावहारिक संयम और नियंत्रण की तथा नारी की वास्तविक धाराधना की एक विधि भी जिसका मूल मानवीय धनुराय के विष्मीकरण में था। इस प्रेम का विवाह से मेल नहीं बैठता क्योंकि विवाह के सामाजिक दायित्व स्त्री पुरुष की कामुक और सौम्यमम अंतरंगता अनुभूतियों और सत्पत्ति के सहज और स्वतः-स्फूर्त प्रवाह में बाधक होते हैं। इसी प्रकार यह प्रेम कुष्ठित भावों के बसाव और तज्ज्वल पारिरीक तनाव और कसाव से भी मुक्त है। सहज की दात और निरुपेय अंतरंगता भौतिक अनुभव से परे की चीज है—वसवीं शताब्दी में कमलमट्ट ने बंगाल में सहज प्रेम का ऐसे ही मोल पाए थे। परन्तु सहज-प्रेम के सबसे कुशल गायक बघीबास थे जो बंगाल काव्य के संस्थापकों में से हैं और जिनका समय बीहड़ों की शताब्दी था। जातिभूत धोखेपट्टी के लिए उनका प्रेम (जो सहज-धाराधना में अनन्त सुन्दरी राजकी का प्रतिनिधित्व करती है) उसी प्रकार का था बीसाकि बीट्टिस के लिए बाँटे जा था। बघीबास पाठे हैं

मिमे मिने तुम्हारे घरों में सरण की है। जब तुम नहीं दिखती हो तो मन व्याकुल रहता है। एक प्रसह्य बालक के लिए माँ-बाप का जो स्वाग है वही तुम्हारा मेरे लिए है। तुम साक्षात् देखो हो—मेरे गले की माला हो—मेरा संसार हो। तुम्हारे बिना सब कुछ धाँस-कार है तुम मेरी प्रार्थनाओं का भाव हो। तुम्हारा सौम्य तुम्हारा सावध्य मैं भुल नहीं सकता—फिर भी मेरे हृदय में कोई आह नहीं है। इस प्रेम के निरान्त मानवीय वासना और समर्पण में प्रथम पल पर भी ध्यान दिया गया है। सहज जितना धारिमक रूपक से दूर है उतना ही भौतिक रूपक से भी है। कवि कहते हैं “मेरी बात सुनो! नारी के प्रेम द्वारा यदि मुक्ति प्राप्त करनी है तो अपनी काया को सूखी लकड़ी जैसा बना लो क्योंकि विरबध्मापी वह ध्वज केवल लकी को भिल सकता है जो प्रेम का रहस्य जानता है।

पुरुष या स्त्री किसीको भी वासना के बघीपूत नहीं होना चाहिए और न वासना का दमन ही करना चाहिए, जिससे कि अनिच्छित अंतरंगता के क्षणों में एक सहज और अनुस्यू शक्ति सर्वोच्च धारमानुभूति के लिए द्वार खोल सके। इसके लिए प्रवसर चुकना नहीं चाहिए, पुरुष और स्त्री प्रेम की सबसे ऊँची उड़ान तभी लगा सकते हैं जबकि वे समान रूप से इच्छा और कुच्छ दोनों से मुक्त हों। यह धारमक है कि वे दोनों एक-दूसरे धारिमक धरातल पर हों। ‘स्त्री को चाहिए कि वह अपने-आपको बचनामी के सागर में डुबा दे और फिर भी बस्तुतः निपिठ जल का पाग न करे। सच्चा प्रेम उसे उस पीपी पीपी मुग मती धाम में लाजना चाहिए जो ध्यान्य और पीड़ा दोनों को बलाकर राख कर देती है। सुमेरु जिनके को माला म गुंमये या हाथी को मकड़ी के जासे से बांधन के लिए, पुरुष म साँप के मंड में मेंदक की तरह नाचने की दमता होगी चाहिए। रहस्यवादी प्रेम की वा मानवीय सम्बन्धों और पारिवारिक कर्तव्यों की सीमा से परे है और निरप है यही निपति है। ‘यह उन समय से जला जा रहा है जब न तो परती थी और न दिन और रात ही प्रकट हुए न।”

मध्ययुगीन मूर्तिशिल्प में सहस्र-शृंगारिक प्रतीकवाद

रहस्यवाधियों और बर्मागुणधियों की सहस्र प्रणामी वा भारत में समम प्रेम और विवाह के आदर्श पर बहुरा घसर पड़ा। भारतीय चिन्तन म रति-किम्बा अनुष्ठान है काम काम की मुक्ति की ओर से जाता है। वस्तुतः जितने आसम योग ध्यान के हैं उतने ही कामरूपा के हैं। वात्स्यायन के कामसूत्र में इनकी व्याख्या की गई है और इनमें से प्रत्येक सजुराहो कोणाक और भुवनेश्वर में उत्कीर्ण किए गए हैं। शृंगारिक मूर्तियों या मन्त्रों की रचना मध्ययुगीन शास्त्रकला और बर्माकाष्ठ पर बन्ध और सहस्र प्रतीकवाद के प्रभाव के कारण हुई। तांत्रिक मूर्तियों में न तो प्रेम में विपदासक्ति है और न काम को लेकर नाक भी ही बहाई गई है। उनमें गर-जारी घसक्य प्रचार के आसिपना में दिखाए गए हैं जो ईश्वर में लीन हो रही आत्मा के परमानन्द के प्रतीक हैं। कामोत्त की सरसता के साथ टांगों के झकपन का विरोध दिखाकर भी गई है या धर्मों और भोगियों की कोमलता और धार्मिक मुकुमारता के साथ जुड़े और धामपनों की मुस्ता का विरोध दिखाकर भी गई है। कोमल में ऐसा लगता है कि बन्ध और सहस्र पर्वों के साथ पूर्ण की वासना भी जुड़ गई थी और उसे सार्वभौम उर्वरा शक्ति माना जाता था। बहा को नागा प्रकार के भिन्न बनाए गए हैं उनमें धर्मों और शृंगारिक भाव के लालित्य की पून एकलपता मिलती है। सजुराहो और कोमल का प्रत्येक भिन्न एक अत्युत्कृष्ट कला कृति है जिसमें मानवीय प्रेम के एक पूरक प्रसंग या स्वर को मूर्तकप दिया गया है और युवक अपने तरंगित धनु बिलोप और शरीर के उत्तेजक प्रसंग के वाक्य एक तात्त्विक पूर्णता में बस जाते हैं। बन्ध और सहस्र विचारवाचनों के अनुसार श्रियोय नहीं बल्कि यह पूर्णता ही जीवन का अग्रिमात्र है। भिन्न का धार्मिक महत्त्व मन्दिर की निर्माणाधीन में भी स्पष्ट है। जहाँ इसके समान मूर्ति-भस्मकरण अभिवायंरूप से मिलन की ओर संकेत करते हैं वहाँ स्वयं मन्दिर मुख्यपर्वत मेरु की तरह बनाया जाता है, जो स्वयं और पृथ्वी को विभाजित करता है या आतिथिबन्धुपुत्र के शरीर की तरह बनाया जाता है जो अपने को माया और यन्त्र के भूषों में विभाजित करता है।

समस्त उपासना का ध्येय आसपूणता की पुन स्थापना है जिसका महान प्रति रूप और प्रतीक भारत में भिन्न है। बहुवारम्भक उपनिषद् में कितनी ही शताब्दियों पहले यह कहा गया था "अधितमा के आसिपम में बन्ध मनुष्य को भीतर या बाहर की पक्ष सुप्त नहीं रहती। यहाँ भिन्न आत्मा और बन्ध के तात्त्विक का प्रतीक है। इस पद की प्रसंग के महापातसुनामभार के एक पक्ष से तुलना की जा सकती है जिसकी व्याख्या सिल्वेन लेवी और बिष्टरमिड् ने प्रसंग-प्रसंग की है सम्मेलन की गद्यशक्ति में सर्वोपरि महानता अर्थात् बुद्धिमान की प्राप्ति होती है और पुरष अपनी पत्नी की ओर बिना किसी मन्त्र विचार के देखता है।

बन्ध और सहस्र धार्मिक भवने नाभिक रूपों में तांत्रिकवाद के साथ बृहत्तर भारत और भारतीय जीवनसूत्र में भी फैले। परन्तु दक्षिण-पूर्वी कला में छिन्न-दाहित के

जिरोमी तर्कों की पड़ोसीलता उपाधिगतों और मित्रों की मूर्तियों द्वारा नहीं बल्कि धीमे-धीमे के प्रतीकों द्वारा व्यक्त हुई। फोर्ब्सहैमर ने ऊपरसे बर्मा के पवन पिन्या और घमा स्वर्णों से जो धमिले एकत्र किए हैं उनमें से पन्नाहवीं शताब्दी (१४६२ ई०) के एक धमिले में एक राज्यपाल और उसकी धर्मपत्नी द्वारा बुद्धसंघ को २६५ ग्रंथ एक बिहार भूमि और सास वाग में दिए जाने का संकेत है। इन ग्रंथों में न केवल त्याग धर्मधार धर्मित और धर्मित धर्मोत्तिप और बुद्धनसा के संस्कृतग्रंथों के अनुवाद शामिल थे बल्कि मृत्युदण्डना महाकाव्यमिका और महाकाव्यमिका जैसे बख्शान और सिद्धनाथ ग्रंथों के ग्रंथ भी शामिल थे। इनमें से पहला ग्रंथ मत्स्येन्द्रनाथ की शिक्षा से सम्बन्धित है। वे हठयोग और नाथपंथ के संस्थापक थे जिसने धर्म में बौद्धधर्म के परवर्ती रूपों और धार्मिकों को देख के प्राचीनतर धर्म में पूरी तरह पला गया। सिद्ध देह द्वारा महाकाव्य पर विजय या इस देह में ही मुक्ति को सिद्धनाथ पक्ष में हठयोग की परकाष्ठा माना गया है।

रहस्यवाद के क्रमिक विकास का चक्र

भारत में धर्म जिन मुख्य अवस्थाओं या चक्रों में से गुजरते हैं उन्हें यहाँ निर्दिष्ट करना उपयुक्त होगा। पहले एक नया धार्मिक परिवर्तन धार्मिक परिवर्तन के आधार पर स्थापित किया जाता है। धर्मार्थ भारत में केवल ज्ञान का ही प्रतिनिधि नहीं है बल्कि और सर्वाधिक मुक्ति मोक्ष और निर्वाण का भी एक मार्ग है। दूसरे, जैसे ही वह अपनी स्पष्ट प्राकृति धारण करता है, धर्मार्थ से वह एक मठ में धर्मार्थीय रहस्यवादी अनुभव में पूजा और कर्मकाण्ड से योग में स्वान्तरित हो जाता है। योग ही वह द्वार है जिसमें से भारतीय विराट् पूर्णता में प्रवेश करता है। तृतीय में प्राकृति देवताओं की जो व्यावहारिक और उपयोगी पूजा की जिसके साथ एक मुक्तिपथ और बलि का कर्मकाण्ड जुड़ा था उसका स्थान उपनिषदों के रहस्यवाद और परमार्थ या ब्रह्म के साथ धर्मार्थ के तादात्म्य ने ले लिया। बुद्ध और महावीर की शिक्षा एक मठ और कर्मकाण्ड के विरुद्ध उपनिषदों के उन विरोध का ही सिमसिमा था जो एक प्रकृत रहस्यवादी चेतना और जीवनार्थ की समष्टि पर जोर देता था। हीनयान बौद्धधर्म के छह-साढ़े सिद्धान्त न धर्म-धर्मों के अधिकतर धर्मार्थार्थ और कर्म के नियमों और धर्म के कुछ बाह्य पहलुओं तक ही सीमित रहा। उसने धार्मिक अनुभूति की उन ऊँचाइयों में उड़ान नहीं लगाई जो साधारण मनुष्य के लिए धर्मार्थ हैं। महायान ने जो हिंस्रधर्म के परम्परा मठ रहस्यवाद और तादात्म्य मठ दोनों से प्रभावित था हीनयान से एक विशुद्ध पृथक् मार्ग अपनाया। उसकी जड़ें एक धर्म जहाँ धर्म के परमानन्द और भक्ति में ही बड़ी दूसरी और जीवनार्थ में ईश्वर की विद्यमानता की धर्मार्थानुभूति में ही महायान में पूजा और रहस्यवाद का जो स्वर था उससे बौद्धधर्म विद्वत्विषय के योग्य हो गया। बोधिसत्व का भारत में माकुराट, लोकराज या धर्म से और भीम से धर्मोन्मत्तधर्म की प्रतिभूति देता धर्मार्थ-धर्म से तादात्म्य हो जाता और महायान के भीतर ही धर्मपूजा का उद्गम परम्परागत कर्ममठ से रहस्यवादी प्रेरणा के प्रतीकों में एक और स्थापना

का बोधक था।

महाभारत में न केवल ऐतिहासिक की जगह धार्मिक-बुद्ध की स्थापना की बल्कि बुद्ध और बौद्धमत के विभिन्न कर्षों के लिए उचितताओं की कल्पना कर उनके आधार पर अपने वर्मछादन और ध्यान की रहस्यवादी पद्धतियों की भी रचना की। इससे बख्शान के बिकास के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। बख्शान में परमवत्त्व के बोध को केवल धूमता ही नहीं बल्कि कल्याण भी कहा गया है। महाभारत एवं मित्य-मयीम धनुभूति है जिससे मनुष्य में अर्पणमिष प्रज्ञा और क्रियाशीलता आती है। इन प्रकार करना मति दीप्त हो जाती है। जीवमात्र के प्रति अर्पणमिष कल्याण से युक्त बोध ही बख है अर्पण पूर्ण की अग्रगण्यता और निर्विकल्पता बख की तरफ है। धूमता की यह रहस्यवादी धनुभूति को धूमता ही है, अर्पणमिषी संज्ञाओं में आबुत है। पुरुषरूप उपाय अर्पणमिषी कल्याण है और स्त्रीरूप प्रज्ञा धूमता है। "बख धूमता और कल्याण के बोध के साम एककार बित की उपलब्धि होती है ता बख बर्मे और संघ की शिक्षा की उपलब्धि होती है।

अपने दौर में बखमान और नाचपंच एक-दूसरे में मिस आते हैं और इनके सांनिहिक को सामाजिक सम्बन्ध के अनुसार, हिन्दू या बौद्ध धर्म या बख या धूम विजयी हो जाता है। परन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि जहाँ धर्म सांनिहिकवाद धुड़ वैतन्य या धूम्य (धन) की पुरुषरूप में और यथार्थ की यतिशीलता (अर्थ) की स्त्रीरूप में व्याख्या करता है, वहाँ बौद्ध सांनिहिकवाद धूमता की स्त्रीरूप में और यतिशीलता की धूम्य रूप में कल्पना करता है। यह अन्तर सम्भवतः व्याकरण के भिन्न के कारण आया है।

धूमता और योग से सहृदय और कल्याण तक

इस प्रकार, बौद्धधर्म की परवर्ती अवस्थाओं में तांत्रिक धूमता और योग का प्रारम्भ करना और बख या प्रज्ञा और उपाय के स्त्री और धूम्य तत्त्वों के संयोग में बौद्धचित्त या बखरूप की उपलब्धि द्वारा होता है। जीवमात्र पर कल्याण प्रज्ञा की अत्यावश्यक स्थिति बन जाती है। उपाय बख है जिसके द्वारा बौद्धचित्त या बखरूप को प्राप्त करता है। प्रज्ञा धूमता और कल्याण ये सब मही सत्य का स्त्री स्वरूप और उपाय धूम्यस्वरूप माना गया है। "बख कोई यह जान लेता है कि समस्त माया धूमता का प्रतीक है ता वह प्रज्ञा के द्वार पर पहुँच जाता है। क्योंकि वह विभिन्न हेतुओं से बंध रहे धूम के द्वार से पीड़ित सभी जीवों को प्रभावित करती है इसलिये कल्याण को धनुराय (धन) कहा गया है।"

यहाँ महत्त्व की बात यह है कि सहृदय धूमता जिसमें न धर्म है और न धर्मत् न द्वैत है और न अद्वैत सार्वभौम कल्याण की ओर ले जाता है। वैराग्य या अद्वैत समभाव और समरस या चेतना और धनुभूति के तात्पर्य की ओर ले जाता है। महाभारत का चरम धार्मिकवाद भी निर्माण का सावनीय एकता और बख के साम तात्पर्य स्थापित करता है। बौद्ध सांनिहिकवाद के आस्थीय प्रत्यक्ष भित्ति प्रारम्भ धीमे-धीमे-समावर्तन से होता है, धूमता और कल्याण और उपाय और प्रज्ञा के संयोग को बौद्धचित्त का स्वरूप बताते हैं और उनकी व्याख्या वैतन्य और संघ के धूम्य और स्त्री तरंगों के रूप में करते हैं। इसी

प्रकार सहज भी शून्यता स्वतःस्फुटि या सत्य के परम स्वरूप का करुणा क साध पूर्ण तादात्म्य स्थापित करता है। अद्ययवस्थ कहते हैं धूम्यता और कृपा की एकाता कोई बौद्धिक समस्या नहीं है (बसिक एक अनुभूति को सांख्यिक रूप देना है)। शून्यता और समकी अभिव्यक्ति स्वभावतः एक-दूसरे से जुड़े हुए (युगल) है। शून्यता और करुणा की अभिन्नता बोधिविज्ञ है। कर्मसाम्प्रदाय (कामलि) करुणा की अपनी भाव को शून्यता के स्वरूप में भरते हैं। काहुपाय सहज सिद्धि की व्याख्या घटतंत्र के रूप में करते हैं जिसमें करुणा को घटतंत्र की बिसाल बताया गया है। योग की परिस्थिति एकसाथ महामुख और सभी प्राणियों की मुक्ति के लिए रुक-करना मेहोती है। महज का अभ्यास यह है कि महामुख निष्क्रिय तटस्थ है, और माया की सीलाकरणा उपाय के विविधता तत्त्व द्वारा होती है जो वस्तुओं को व्यक्तरूप में रखता है जिस प्रकार कि वह बोधि सत्य को निर्वाण से और सिद्ध को इन्द्रियातीत समाधि या परमानन्द से रोकता है। अतः विश्व प्रक्रिया करुणा है जो शून्यता और सहज-शून्यता करना भी कहलाती है।

अन्तिम अवस्था में इस प्रकार बौद्ध महायान या वज्रयान और हिन्दू तान्त्रिक वेवता शून्यता महामुख और करुणा के घटतंत्र पर निर्भर और सुप्त हो जाते हैं। और उसपर सहज के सरस और स्वतःस्फुट योग का उदय होता है जिसमें इन्द्रियों का उप भाग करते हुए व्यापकता की प्रज्ञा और अन्तर्बुद्धि प्राप्त की जा सकती है और चारी रिक्त प्रेम और अन्तर्गतता के अत्यन्त उन्मादपूर्ण सन्तों तक में करुणा की परम उपलब्धि हो सकती है। बर-बर में पवित्रता की चर्चा है पर कोई यह नहीं जानता कि महामुख का नाम वहाँ है। सरह कहते हैं अगत् चित्त के पास मे बकड़ा है, और कोई भी अचित्त की स्थिति अनुभव नहीं कर रहा है।

तान्त्रिक कला में रोमांटिक अभिव्यञ्जना

रहस्यकारी अनुभूति प्रकण्ड और अवर्चनीय है जिसमें नीरवता और क्रियाशीलता विराम और उपभोग दोनों हैं। यह एक ऐसा विषय है जिसका सम्बन्ध एकसाथ वैयक्तिक विकास सांस्कृतिक शिक्षा और जातीय स्वभाव से है। इससे कामवासना का चिन्तन आचारमक और प्रतीकामक रूप से दिव्य के पृथ्वी पर पतन और पार्थिव के दिव्य की और उत्थान के एक प्रसंग के रूप में किया जा सकता है। ईसाईधर्मो पश्चिम में प्रथम पाप के सिद्धान्त और मानव-शरीर के प्रति पादरीकर्त की भूषा के कारण पैदा कला और काम का पूर्ण समन्वय नहीं हो सका। तान्त्रिक पूर्व में काम और विवाह के प्रति एक स्वस्थ और हितकर रव्य था जिससे कला मिथ्या विषय और कामलोभुपता दोषा ॥ मुक्त रही और मानव-शरीर को एक सुदम अगत् मानते हुए उमक लोग्दय और रहस्य के लिए एक गहरी भावना पैदा हो गई। तान्त्रिक परम्परा विशेषकर उसने सहज-रूप का भारतीय कला पर जो प्रभाव पड़ा उसका सबसेष्ठ रूप उत्तर-मध्ययुग (अगलग म्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी ई०) की पूर्वी भारत की चित्र और समा की संयुक्त प्रतिमाओं (उमा विगम मूर्तियों) में मिलता है। उनमें सामित्य और अचित्त का मानवीय संवेदनशीलता और आरिक्त भावमग्नता का चारीरिक कामलता और कमनीयता तथा आचारमानु

का और रूप क कड़े समय का घट्भुज संयोजन हुआ है ।

इससे बहुत पहले हमें जमा-सहित प्रतिमाएँ गुप्तकालीन देवयङ्गमन्दिर क द्वार
माय पर और मुद्रा इहोनेदिया में समयम छगे घटावही क समय की मिमती हैं जिनपर
अम्बरकमा का प्रभाव है । यह मोटिक सांख्यवाद की प्रधानता के काम म दसवीं स
सत्राहो बंध और कसिग की मध्ययुगीन मूर्तियाँ एसोरा काशमी और एमिफेंटा की
मूर्तियों में अधिक कामुद्ध हैं और फिर भी वे अपने संतुलन और भाव में कम भीती लगती
हैं । फिर और पावनी के विवाह की पूष-मध्ययुगीन मूर्तियाँ हमें एसोरा और एमिफेंटा
में दिन्ती हैं और विभिन्न विष जया जगल तथा उनक धातियन और मान की मूर्तियाँ
एसोरा के ईनाय पर हैं । हिन्दु सांख्य और बाद में सहज-पूषा की भोजनिका रहस्य
वालिता और मानवीयता ने पाल और सेन बंधवासीन और फिर हमकी से बारहवीं
तका का एंजोलिको की सी प्रकृतता और पवित्रता का ऐसा संयोजन प्रदान किया जैसा कि
मार्गोव मूर्तिकला में और कड़ी मुश्किल से ही मिलेगा । फिर की बायीं जंवा पर बैठी
देशी इनका एक सुन्दर उदाहरण है । उसके बायें हाथ में बर्षण है जिसमें उसके अपने रूप
का संवार प्रतिबिम्बित है, दायाँ हाथ प्रसातियन म धिब के दायें कये पर पड़ा है । फिर
की दबी का प्रातियन कर रहे हैं या उसके कपोल को ब्रेन से छु रहे हैं । उनक एक हाथ
में भीनकमल है जो जमीनित बिन्दु का प्रतीक है । संक्राचार्य की धानन्दनहरी में
जिब क धंक में बैठी त्रिपुष सुन्दरी का सुप्रसिद्ध चित्रण है । दास्त दबी के इस रूप का
योग-समाधि के लिए ध्यान करते हैं । इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि
उत्तर मध्ययुग में पूरे उत्तर और पूर्व भारत में पूषा और ध्यान क लिए ध्यातियन प्रति
माओं की बड़ी मांभ की ।

सांख्यवाद की प्रबल कल्पना और उसक उत्पन्नान ने पूरे देश में एक रोमांटिक
नियमकमावादी कला को जन्म दिया जो सवाभारण साहित्य भोज और कल्पना प्रद
मिन्न करती है । इसके अर्थ साधनमाता और विष्णुबमोत्तरम् में दिए गए हैं जिनमें
प्यान पूषा और कलात्मक सुजन क लिए सी दक्षिणी और देवताओं के रूपों गुणों और
मुद्राओं की व्यवस्था की गई है । सांख्यवाद की मूर्ति और विवाध जीवन और मरण
-मुन्दर और रीद की सहकारी सक्तिओं की ऊँचस्वी कल्पना से और मोटिक बिपवी
जीवन में विष्य उत्पन्न की व्यापकता की उसकी बारणा से भोग और बिपण सुन्दर और
जीवन क बीच की बाईं फिर से पट गई । यह जीवन सांख्य कला में मुद्रासुन्दरी अप्पछ
का मायिका की मूर्ति के प्रतीक द्वारा धार्मिक हंय से व्यक्त हुई है । मध्ययुगीन मन्दिरों
मय कहीं बहु वेद सेन रही है, कहीं अपने स्तन को छु रही है कहीं शृंगार कर रही है
कहीं बाँय में अपना मुँह देख रही है, और अपने निकट उपस्थित देवताओं या अपने
जगतकों की धार से बिसकुल बेचुन है । पुनर्जियों का प्राय प्रभाव उसकी प्रतर्मुक्तता
और गुणमायता का प्रतीक है । यह सर्वव्यापी सक्ति है, महामाया है, बिन्दुमोहिनी है ।

राजपूत पुनरुत्थान का शौर्य और आकर्षण

राजपूत और मुसलमान इतिहासों में संघर्ष

पहले की सलाहियों के मुगलानी व्यापारियों के समान सातवीं सताब्दी और उसके बाद फारसी तथा अरब व्यापारियों ने मलाबार और काठियावाड़ के समुद्रतटों तथा लका में अपनी बस्तियाँ बसाईं। हिन्दू राजाओं और सामन्तों के संरक्षण में इस प्रकार की बस्तियाँ फूली-फली। किन्तु जिस समय मुहम्मद साहब मक्का से भागकर मदीना पहुँचे उसके ही वर्षों के भीतर भीतर इस्लाम का उदय हुआ और पूर्व में चीन की सीमा से लेकर पश्चिम में स्पेन तक अरबी साम्राज्य का विस्तार हो गया। इससे सम्पूर्ण एशिया की राजनीतिक स्थिति ही बदल गई। ६७० ईस्वी में सीरिया और फारस को पराजित करने के पश्चात् अरबों ने फारस की साड़ी पर अधिकार कर लिया तथा वे फारस के समुद्री व्यापार पर कर बसूत करने लगे। ईरान की साड़ी और पश्चिमी तट के समुद्र बन्दरगाहों पर कब्जा करने के उद्देश्य से वे अरबसागर पर भी आक्रमण करने लगे। यही उद्देश्य लेकर पुर्तगाली साँडे घाट सलाहियों बाद भारत आए।

लंका के शासक ने इराक के शासक को कुछ मुसलमान सहायकों भेजीं। कश्मीर के समुद्री डाकूओं ने लंका पर हमला कर लिया। सिन्ध के शासक लड़कियों को वापस न कर सके। केवल इसी कारण ७१२ ईस्वी में कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण कर दिया। कासिम ने सिन्ध के साथ-साथ काठियावाड़ मुस्तान भड़ौच और गुजरात व मानवा के कुछ भागों पर भी अधिकार कर लिया। आठवीं सताब्दी के मध्य में सिन्ध के अरब सूबेदारों ने गुजरात और मानवा में प्रवेश करने का बेहूब प्रयत्न किया किन्तु उन्हें सफलता न मिली। दक्षिण के पुनर्देशित सामुय तथा अफगानि के नामगट्ट ने भीरतापूर्वक भारत की रक्षा की। इन्हीं दो शासकों के कारण भारत लमीक की सेनाओं को हरा रहा। इससे पूर्व पश्चिमी और मध्य एशिया अफगानि के अफगान स्पेन में कोई छोटी अरब सेनाओं को पराजित करने में सफल न हो सकी थी। यदि हम ध्यान दें कि अरबसागर में अरबों का मजबूत जहाजी बेडा का और आक्रमण के लिए तैय एक विशाल तथा सुविधाजनक घाटा था तो पुनर्देशित और नामगट्ट की यह विजय और अधिक महत्वपूर्ण मान्य पड़ती है। अफगानि के अफगानों में 'देवताओं' जैसे कार्य करनेवाले धनुषों' पर्वान् मैनगट्टों की अफगानि सेना पर गुजर प्रतिहार शासक नामगट्ट की विजय के फलस्वरूप विष पर छिड़ हिन्दू अधिकार तथा आगामी हाई सलाहियों के लिए भारत में शान्ति की

स्थापना हो गई—यह धार्मिक महामुव गजनी के आक्रमण से ही टूटी। गजी सत्ताधीन के प्रारम्भ में आज प्रथम के शासनकाल में प्रतिहार-साम्राज्य की राजधानी महोदयधी की धीर उसका विस्तार बंगाल में गहाकपुर, धार्मिक पञ्चाय के करगाल में गहोपा प्रमवा प्रुपक धीर बलिग में निम्न्याप्त तक था।

गजनी के समुचितगनी (९७७-९९७ ईस्वी) धीर उसके मेरे महामुव (९९८-१०३० ईस्वी) ने गुरासान प्रफगानिस्तान धीर मध्य एशिया के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। गहा स पञ्चाय के मैदानों तक पहुँचना बड़ा आसान था। इसके प्रतिरिक्त हिन्दू राज्यों की सीमाओं से छटे हुए सिंध धीर मुल्तान पर प्ररर्वा का प्राविपत्य था। इन दोनों कारणों से विदेशियों को विधेय सैनिक सुविधाएँ मिलीं धीर उत्तर-पश्चिम की सुरक्षा किमकुल में रही जा सकी। इन्हींके बल पर महामुव ने पानेदर मधुप धीर कलौज नगरों तथा मुजराठ के सोमनाथ मंदिर को लूटा तथा लूट से प्राप्त वन से उसने अपनी राजधानी गजनी में अस्त्रिबे ब बांध बनवाए धीर पुस्तकालयों की स्थापना की। गजनी की धानदार मसजिद ने द्वार पर सोमनाथ के शिवलिंग के स्तंभों के साथ गहरे से ताकि मुसलमान उन्हें अपने पैरों से रौब सकें। १०३० ई० में महामुव की मृत्यु के पश्चात् सपथ बड़ घातकियों तक भारत पर (यदि हम पञ्चाय की गिनती न करें) मुसलमानों के आक्रमण नहीं हुए। इसी काल में गहमाग बंध ने रामपूताना धीर पूर्वी पञ्चाय (उनकी राजधानी घाकमरी प्रमवा धीर मजनेर भी) तथा गहबाल बंध ने मध्यप्रदेश पर अधिकार कर लिया (उनकी राजधानी कलौज धीर बनारस भी)। विस्ती के एक स्तंभ पर ११६४ ईस्वी के एक अभिलेख में लिखा है कि विजहराज चतुर्वं प्रमवा विशालदेव (११११-११६४ ईस्वी) ने समस्त उत्तरी भारत पर अपनी प्राविपत्यस्थापित करके तथा स्लेष्मों प्रमवा मुसलमानों का विनाश करके उत्तरी भारत को धार्यों का वास्तविक देश बना दिया है। इसी बीच गोर के प्रफगानों के प्रथम के फलस्वरूप गजनी-साम्राज्य क्षिप्त हो गया। मुहम्मद गोरी ने गजनी के मुस्लानों को प्रपक्ष्य कर दिया धीर उन्होंने पञ्चाय के साहौर में धरण ली। ११९२ ईस्वी में मुहम्मद गोरी ने सिंध धीर पञ्चाय को भी पराजित किया। भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रवेश-द्वार की पराजय के कारण उत्तरी भारत पर पूर्ण-प्रफगानों का प्राविपत्य होता सरा हो गया। ११९४ ईस्वी में गोरी के सबसे अधिक विश्वासपात्र प्ररवर कुतुबउद्दीन ऐबक ने जयप्रग को पराजित करके मार डाला तथा कलौज पर अधिकार कर लिया। ११९७ धीर ११९९ ईस्वी के बीच बकिदपार जिसकी ने एक छोटी-सी सेना लेकर बंगाल धीर बिहार को अधिकृत किया। गालम्बा विक्रमधीन धीर प्रोदन्तपुरी के बौद्ध विपक्षविद्यालयों के विनाश तथा नदिया की लूट ने हिन्दू संस्कृति तथा ज्ञान को बड़ा प्रफा पहुँचाया। १२१ ईस्वी में कुतुबउद्दीन की मृत्यु के समय उसके साम्राज्य का विस्तार पञ्चाय से बंगाल तक था। केवल रामपूताना, मासवा धीर मुजराठ का एक भाग प्रपराज्य रहे।

कुतुबउद्दीन के निहासमारोहण में १२२५ ईस्वी में बाबर के आक्रमण तथा विस्ती पर अधिकार तक की तीन सत्ताधियों का शिम्मी सत्तगत का इतिहास नामक में धागी बाबर के धनीरों धीर सरदारों के पर्यर्चों इत्याधों तथा उत्तराधिकार के लिए युद्धों

कुल राजपूतों—पारमार बघवा पवार, प्रतिहार बघवा परिहार, चौहान और सोनकी—को बाहू परैठ पर उतार दिया। किन्तु राजपूत-कला कल्पनामात्र न थी। इस कला ने एक महत्वपूर्ण काम किया। पहले क गुप्त-माझगम न पन्न के काम समय १६ विभिन्न विदेशी जातियों भारत बाहू और उह स्वीकार करके समाज म सम्मिलित कर लिया गया। अब राजपूतों ने ही प्राचीन क्षत्रियों का स्थान म लिया। महपूज यजनवी क उवह साकमयों में मृत् राजपूतों की जगह मने के लिए नई राजपूत-जाति का उवन हुआ। दिल्ली की सोनर, कन्नौज और बनारस की गहरदार तथा धारमर की चौहान इनी प्रकार की जातियाँ थीं। धार्मिक की धनेक विधवा हुँ स्वदेशी जाति का सामाजिक स्तर उंचा उठने तथा वाद्यन न बँटव बनों के साथ राजपूतों के बिबाह क सम्बन्धन भी राज कुलों की संख्या बढ़ी। इसकी और धारकी अनाधियों म राजपूत समस्त धार्मिक म बीच गए तथा मय राजपूत-क्षत्रियों और उच्चवर्णों म बड़ी संख्या में बिबाह होन लगे। इसी समय में धर्बर बिबाह की भी साम्प्रदायिक थी। सोमदेवहन 'कथामरिचमावर' म जिसका रचनाकाल १०९३-१०८१ ईस्वी माना जाता है ऐस समय का विषय है जिसम जातियों और वर्णों का जब अन्तमिलन हो रहा था तथा गर्भव-बिबाह का प्रचलन था।

राजपूत-व्यवसाय

राजपूतों में प्रथा थी कि बिचोराबन्धा प्राप्त करते ही दासक की 'नङ्ग-बन्धन' करवा लिया जाता था। इसी समय से उचकी महत्वाकांक्षा हो जाती थी—मुठ। चिकार और बाज की मदद से चिकार उमके मगोरजन म। भारतीय महाकाव्यों के मायक उनके धारण के। वह बला का साहसी और विलर तथा धम्सर कोभी बिही और मनमानी करनेवाला होता था। किन्तु पराजित का प्राणदान देना स्त्रियों का सम्मान करना उचका नियम था तथा वह अपने क्षत्रियों और धर्मियों के प्रति भी सहृदय होता था। सबन बढ़ी बात यह थी कि मुठ और प्रेम क्रिया में भी वह दृढ़ नहीं करता था। अपने धर्मधार में राजपूत योद्धाओं और यूरोप के मध्ययुगीन 'नाइट्स' में धार्मिकधर्मक समाकला थी। राजपूतों के इतिहासकार टॉड का कथन है 'राजपूतों नाम्ना म परिचया बाङ्गाओं के सभी मुख तो मीरु ही म थाव ही उनकी मानसिक उपलब्धियों परिक्रमो दाङ्गाया की उपलब्धियों म अष्टतर थीं। मध्ययुगीन यूरोपीय योद्धाओं क सबका बिपरीत धनेक राजपूत धानक कृतज्ञ कवि और वैज्ञानिक भी म। कम से कम तीन सत्त्व राजपूत राजा थे पारा के विजयत राजा भोज (गारही पठाणी ईस्वी) बिहूनि बगल पञ्चनीति कायद्यात्म आतिष और बाभुगाम्न जैसे धर्मधर्ममय बिषयों पर अपने गृह्य ज्ञान के बस पर प्रबलिते कमहुरि मयुरराज (मयनग ८ ईस्वी) और धारमर क बिपुलक बहुध बिज्ञान (मयनग ११२९ ईस्वी)। इन्होंने समुद्रगुप्त क विराज तथा कन्नौज क महान धासक हर्ष की परम्पराओं का पनर्जीवित किया।

राजपूत स्त्री औरकपालिनी स्वतन्त्र और सती होडी थी और स्वयंवर क प्राचीन क्षत्रिय-मधिकार का उपयोग करती थी। वह मुठ और चिकार म अपने पति की सहृदयी थी तथा अपमान सवीत्यहृथ एवं दासता की अपेक्षा बिता पर जीवित बल जाना धर्मिक

पसन्द करती थी। 'रक्षाबन्धन' एक धार्मिक प्रथा थी। कलाई पर बंधनेवाला यह रेशमी धागा विभिन्न व्यक्तियों धर्मका परिवारों के बीच एक घट्ट मंत्री का प्रतीक या ऐसी मंत्री जो समृद्धि प्रथमा निर्धनता से परे थी। सहामताधी प्रथमा घरवासी को कभी निराश नहीं छोड़ा जाता था फिर चाहे जितना बड़ा कष्ट उठाना पड़े। स्वयंसे प्रथमा संस्कृति की रक्षा के लिए वीरतापूर्ण युद्ध करने की प्रकृति में इस भावना को जन्म दिया 'जीवन एक पुराना कपड़ा है' इसे फेंक दिया जाए तो क्या बिगड़ जाता है? वीरतापूर्ण गुरु धर्म जीवन है। राजपूताना के मात प्रथमा कारण पुराने प्रसस्तिगान माया करत व जिनमें राजपूत योद्धाओं की अपनी प्रति धर्मका राजा के प्रति भक्ति वीरता और साहस तथा उनकी रानियों के सतीत्व सहमसीसता और अभिमान का वर्णन होता था। नीचे एक सुप्रसिद्ध प्राचीन राजपूत-कथा दी जाती है। यह टॉल्स्टॉय 'राजस्थान में मौजूद है तथा इसमें बिलोड की रानी के धारमसिंहान की कथा है। राजा युद्ध में वीरमति प्राप्त कर चुके हैं। रानी राजा के एक अनुचर से पूछती है

युद्ध में प्रस्थान करने से पहले मुझे बताओ कि मेरे स्वामी ने किस प्रकार युद्ध किया?

'युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के सिर उतार दिए उन्होंने। मैं तो उनके पीछे-पं के बस रहा था। सम्मान के रक्षारहित पक्ष पर उन्होंने युद्धों का विस्तार बिछा दिया। एक स्नेह राजा को मारकर ठकिया बनाया और सब अपने मृत शत्रुओं के बीच से रहे हैं।

युद्ध एक बार और बताओ कि मेरे स्वामी ने क्या युद्ध किया?

'हे माँ! उनके युद्धों का कणन नोन कर सकता है? उन्होंने एक भी शत्रु जीवित नहीं छोड़ा जो उनसे डरे या उनका धावर करे।

रानी ने मुस्कराकर युद्ध से बिदा ली कहा 'देर कहीं तो मेरे स्वामी माराज होंगे। और धाव की सपना में कूद पड़ी।

मात घातस्थियों तक बिलोड के निवासियों और योद्धाओं ने वीरतापूर्ण कार्य किए तथा हृदय-विचारक संन्यास नहीं और इन स्मृतिमा का मबाड़ के कारणों ने जीवित रखा। राजस्थान व बिलोडयुद्ध से धार्मिक किमी प्रथमा गढ़ के योग्य और बलिदान ने भारतीय योद्धाओं का उत्साहित नहीं किया। बिलोड सदैव राजपूतों के विद्रोह का केन्द्र रहा। ठेरहकी सतायी व प्रथम व रतमसिंह बिलोड के राजा थे और उनकी अनुचर मुन्दरी रानी का नाम था पधिनी। १२२७ ईस्वी में सताउलीन प्रिन्सों ने बिलोड पर घेरा डाल दिया तथा पधिनी को अपनी सभिका बनाने की इच्छा प्रकट की। पधिनी व बिलोड की समस्त राजपूतानियों के साथ जीवित किया। और १२९० ईस्वी में राजा जयमल और राजा पता न शत्रु की सेनाओं से बिलोड की रक्षा की। किन्तु बिलोड का पतन प्रकट होकर ही रहा जिसमें १०००० निवासी निश्चयापूर्वक मार डाले गए। इनके बावजूद, प्रतापसिंह न अपने-अपने धार्मिकियों को इकट्ठा करके 'पथीस साल तक मुगल साम्राज्य के सम्मिलित प्रयत्नों का मुकाबला किया। कभी न भद्रानी इलाकों पर छापा मारा तो कभी पहाड़ों के बीच अपनी जान बचाते फिरते। पहाड़ियों पर उल्लेखी

जगन्नी कर्तों से उनके परिवार का पेट भरता था। इस प्रकार, जगन्नी जगन्नों और समयम वतनी ही जगन्नी जातियों के बीच राजपूतों के उत्तराधिकारी मानक समरसिद्ध का पालन-पोषण हुआ—और समरसिद्ध ने स्वयं को अपने पिता के साहस और प्रतिधोम भावना का योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध किया। (टीका)।

राजपूतों की जातीयता और सामन्तवाद के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई राष्ट्रीय दुर्बलता

राजपूत स्वयं को सर्वाधिक कुलीन 'रघुजगन्नी', मानते थे। अतः हीम ही इनमें अपने बंशानुसार स्वामीय श्रेष्ठमण्डित और संकुचित जातीयता की भावनाएं घर कर गईं। फलस्वरूप किसी रणायी संगठन प्रवर्धन के संघ का निर्माण न हो सका ताकि मुसलमान आक्रमकों और विद्रोहों का सफल विरोध किया जा सके। सामाजिक रूप से राजपूत मोक्षार्थी ने धर्मवैधी बर्णों पर विचार करके स्वयं को अपने समान से भय कर दिया। इस प्रकार एक एक बर्ण और धर्मिक अभिजात-वर्ग का निर्माण हुआ। वे बायकों और बायसुओं से सर्वत्र घिरे रहने लगे जिन्होंने राजपूतों की पृथक्त्व और अपने को बड़ा मनमाने की भावना को दृढ़ कर के और बढ़ाया।

परस्पर पृथक् और विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि वाले धर्मिकानेक जातीय समुदाय आसानी से उस प्रकार का राष्ट्रीय दृष्टिकोण नहीं अपना सकते थे जो विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध युद्धकाशीन संघर्ष की विक्रमादित्य-परम्परा में होता। कुछ राजपूत राजाधों—जैसे, वेदिक के गणेशदेव कलचुरि, मातवा के सिधुचन और कल्याण के त्रिभुवनमल्ल—ने 'विक्रमादित्य' शब्द 'नव-साहसिक' की पदवी प्राप्त की किन्तु वे नव आक्रमणकारियों के आक्रमणों को रोकने में सर्वथा असमर्थ रहे। इन्हीं-महाराष्ट्र' में प्रवर्धित हिन्दू-युगवर्षा किसी सीमा तक परिलक्षित था, किन्तु उसका स्वर बहुत भीना था और मेवाड़ के चारों ओर की पहाड़ियों से बाहर नहीं पहुंच सका। मुष्ट कास में बिदेसी आक्रमणों के समय सभी राजा और जातियाँ एक हो जाते थे किन्तु मुसलमान आक्रमणों के समय में इस प्रकार की राष्ट्रीयता भाव्य न थी। राजपूतों की धर्मिक जाति ने संस्थापिका में भाव्य का साथ न दिया। या यों कहना चाहिए कि आक्रमण-संस्कृति ने ही इन नवीन राजवर्षियों को, जिनके बाटों, विद्वानों व कविओं द्वारा प्रोत्साहित राजपूतों के धर्मिक भाव और मध्यममण्डित के कारण एक व्यापक राष्ट्रीय प्रयत्न संभव न हो सका, सहारा न दिया। समय से समय तक विस्तृत साम्राज्य (मल्लमण्डित) का प्राचीन हिन्दू विद्वान् इस समय की नवीन व्यवस्था में खो गया। उत्कालीन व्यवस्था में अनेक जातियों और गोत्रों के छोटे-छोटे राजाधों के समय-समय राज्य थे। गुर्जर, गज्जक, कन्देल कलचुरि, पच्छिम, पञ्चाल सोमकी सोमर और गहरवार इसी प्रकार की जातियाँ थीं। इन्होंने उत्तरभारत में अपने प्रयत्न-प्रयत्न साम्राज्य स्थापित कर लिए थे और इनमें प्राप्त में पूरा लड़ाईवाँ हुआ करती थीं। परम्परावादी हिन्दू साम्राज्यवाद एक सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता की स्थापना और मुसलमान आक्रमणकारियों से भाव्य की रक्षा कर सकता था किन्तु राजपूतों की जातीयता और राजपूत सामन्तवाद

पसन्द करती थी। 'रत्नाबन्धन' एक भावपूर्ण प्रेक्षणी घागा विभिन्न व्यक्तियों घषभा परिवारों के ऐसी मन्त्री जो समृद्धि घषभा निर्धनता से परे थी। र निराश नहीं सौटाया जाता था फिर चाहे जितना ब-संस्कृति की रक्षा के लिए वीरतापूर्ण युद्ध करने की प्रय-
 'भीषन एक पुराना कण्डा है' इसे फेंक दिया जाए तो व घमर धीबन है। राजपूताना के भाट घषभा पारण जिनमें राजपूत योद्धाओं की घषनी जाति घबदा राज तथा उनकी राजिया के सतीत्व सहनशीलता और व एक सुप्रसिद्ध प्राचीन राजपूत-कथा वी जाती है। य तथा इसमें बिलोडू जी रानी के प्रारम्भबन्धन की क कर चुके हैं। रानी राजा क एक अनुसर से प्रवर्णी है

बूत मेरे प्रस्थान करने से पहले, मुझे ब-
 दिया ?

'युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के सिर उतार दि-
 रहा था। सम्मान के रक्तरेखित पत्रों पर सन्त।
 म्नेच्छ राजाको मारकर ठकिया बनाया और व
 'दूत एक बार और बताओ कि म
 है मा। उनके कुरबों का वर्णन
 बीबित नहीं छोड़ा जो उनसे डरे या उनका
 रानी ने मुस्कटाकर बूत स-
 माराज हंसि। और घाग की सपटों में

घाठ घताणिया तक बिलो-
 किए तथा हृदय-विदारक यंत्रणाएं म
 रक्षा। राजस्थान के बिलोडूयद्ध से
 मारणीय योद्धाओं को उत्साहित नह
 रहा। तेरहवीं घताणवी क घण्ट म
 मुल्तरी रानी का नाम था पधिनी।
 घेरा डाल दिया तथा पधिनी को घा
 बिलोडू की समस्त राजपूतानियों
 जयमग और राजा पत्ता ने घकबर व
 का पतन घस्तत होकर ही रहा जिन
 इनमें बाबजूद, घतापसिंह ने बघ-कुचेघा
 माम्राज्य के सम्मिलित प्रयत्नों का मुका
 मारते तो कभी पहाड़ों के बीच घषनी ज

ये पटे पड़े हैं। पठित ब्राह्मण और बौद्धधर्मों काव्य और लोककथा के तत्त्वा ने मिस्रर समस्त जनता में सामान्य-बुद्धि के स्वाम पर भारवर्ष रोमांच और उत्तमता की प्रवृत्ति बाधित की कभी धर्मग्रन्थ प्रवर्धित प्राचीन धार्मिकानुवाचन भावना तथा ब्रह्म और धार्मिक के धर्मोपपन्न के सबसे विवेकपूर्णता और तार्किकता के प्रति सामान्य को बढ़ावा दिया। स्वयं कल्पीय धर्मवा मशहूरधर्म की दरबारी कवि राजसेसर म अपनी 'कपूरमञ्जरी' में जो नहीं छताष्टी के धर्म में प्राकृत में मिली गई थी वैदिकधर्म की निम्ना तथा तात्त्विक गीताधार की प्रशंसा की है। ऐन्द्रात्मिक औरवानन्द अपने नाटिक जादू के मन पर राजा और कब में पड़ी सुन्दरी कपूरमञ्जरी का प्रथम मिस्रर और विवाह सम्भव कर देता है। मन्म और तब के प्रति उसमें धधका है उसके गुरु उस ज्ञान एवं ध्यान के प्राचीन भारतीय अनुवाचन से मुक्त कर देते हैं। धनेक ब्राह्मण और बौद्ध तात्त्विकधर्मों में जादू वाचना और दीन रूपात्मकता का प्रति नयानक मिथ्यण उपस्थित है। इन धर्मों में परती को धीतने या मुक्तने गुप्त बन पाने और शत्रु को पागल बनाने या मारने के उपाय बताए गए हैं। और इन सबका प्रवेश विद्याप्रद कथाओं तथा लोककथाओं में भी हो गया।

मुक्ति सराव और वाचना के धर्मिक संयोग के कीलक में प्रसन्न के प्रतिरिक्त देवी (पीठी या लक्ष्मी) का सार्वजनिक भूला-स्पोद्धार (जो एक मास तक चलता था और बसनों से तरहूँ छताष्टी तक जुन प्रवर्धित था) प्रेम-स्वीकृति और विनाश का प्रवसर नी प्रेमियों के स्वीकृति-स्वत बन गए। प्रेमीजन देवी की मूर्ति के सामान अपनी-अपनी प्रेम काओं को भूला भूलते ऊपर-नीचे घाते जाते देखते थे। प्रेमिकाओं की लहराती चोरियाँ ऊपर उठ-उठ जाती थीं छफेद कमनवार रुकियाँ रीखती थीं और बंधक बनते थे।

सामाजिक जीवन—विशेषतः नवयों और कस्बों के सामाजिक जीवन—की सम्पूर्ण प्रवृत्ति में ही गिरावट आ गई। गुप्तकालीन प्रेम विवाह और परिवार की विनियम पर बर्बतों की जीवन-सहिता से उत्पन्न धर्मात्मक अवस्था और मोप-विनाश हावी हो गए। वामोदरगुप्तकृत 'कुटनीमठम्' (नहीं छताष्टी) और लमेन्द्रकृत 'समयमातृका' (प्यारहूँ छताष्टी) जैसे संस्कृत-काव्यों में वह प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित है। इनमें वैश्यामा के कारनामों का बचन है और 'कामसूत्र' के पहल सम्मयन पर धारित ये काव्य स्पष्ट परलीन हैं। इसी प्रकार, धर्मिक लोकप्रिय 'शुकसप्तति' में वर्णित है कि क्षिमात्रितियों से प्रपन सीधे-साध पधियों की धाओं में धूल भोंकती हैं जकमा देती हैं। ये कहानियाँ मनोरञ्जक हैं, और साथ ही युग की सामान्य विचित्रता और पारिवारिक सचाई के समाज को भी व्यक्त करती हैं।

राजपूतों में एकता और रणनीति का प्रभाव

गुरु-प्रकृतामा से मुक्त करने का वाधित्व जिन सत्ताधारियों ने सरला था उन्होंने अपने प्रहंकार के कारण स्वयं को रोप समाज से एकदम अलग कर लिया तथा धापस में लड़ना धारम्भ कर दिया। तरहूँ छताष्टी के मारत में पाटन के भीमदेव अजमेर के पृष्णीय और कल्पीय के जयचन्द्र ने कुछ समय तक धलग-धलग मुसलमान आक्रमण-

के सामाजिक संगठन ने इसकी संभावना न रखने दी।

जातिप्रथा और पदों की रूढ़ियाँ

राजपूत जातियों के वर्ग और पृथक्त्व भावना की प्रतिक्रिया सीधे ही संपूर्ण भारतीय समाज पर हुई। भारतीय संस्कृति की प्रवृत्ति की ओर से जानेवासी दो भयंकर सामाजिक कुरीतियाँ मुख्य-शुद्धास राजपूतों की रेल हैं। ये कुरीतियाँ हैं जन्म के आधार पर वर्ण-विभाजन तथा जीवन के उच्चतर क्षेत्र से स्त्रियों को निकास देना। धर्महीन और समाज से अलग राजपूत साम्राज्य स्वयं को उच्च सामाजिक स्थिति और विशेषाधिकारों के दावे प्रस्तुत करते थे। इस प्रतिरिक्त मुसलमान हिन्दुओं को मुसलमान बनाते तथा इस प्रकार हिन्दू विधियों को उच्चपद देने को तैयार थे और यह समाज के लिए एक बड़ा खतरा था। समाज के सभी स्तरों पर वर्णों की कड़ि वास्तव में उपर्युक्त दो कारणों के प्रतिक्रियास्वरूप जन्मी। मुसलमान आक्रमणकारियों के विरुद्ध राजपूतों के संघर्ष के सम्बन्ध में समय में राजपूतों के जातिगत अभिमान और मुसलमानों की सकीर्णता ने ही भारत के जातीय वर्णों के आलपान-निषेध प्रथा-प्रथा और उच्च वर्णों की स्त्रियों की पद की बहारदीवारी के भीतर रखने की कट्टरता की नींव रखी। सड़कों और सड़कियों का कम उन्नत में विवाह सती प्रथा तथा घर के भीतर ही स्त्रियों को रखने की प्रथा के कारण हैं राजपूत साम्राज्यों के एक प्रमुख वर्ग की स्थापना तथा उत्तरी भारत में सामूहिक वर्ण परिवर्तन और मुसलमानों की सामाजिक विषय के प्रसंगी खतरे। इस युग में मुसलमान आक्रमणकारियों ने जनसामान्य में अशुद्धता की भावना पैदा कर दी थी तथा स्त्रियों की पितृ और सामाजिक स्थिति में बहुत प्रवृत्ति हुई। हाँ इसी युग की सुन्दर और गुणवती पद्यिनी कमलती और पद्मावती प्रबल प्रभाव थी।

समाज की परम्परावादी पारिवर्णिक-व्यवस्था जिसकी व्याख्या मुद्रकास में महा भारत मात्रवत्स्वस्मृति और मनुस्मृति में की गई थी मध्ययुग में एकदम टूट गई। इसके दो कारण थे। दूसरी घताम्बी ईस्वी में बहरा के राजा जातीय सम्मिलन का प्रारम्भ हुआ तथा छठी से म्याहवीं घताम्बी तक क्रम से ही हो रहा था। दूसरे इस प्रकार बनी मिथित जातियाँ विभिन्न राजपूत शासक जातियों में संगठित हो गईं तथा राजपूतों के देवर्णवीर होने के दावों का प्रचार करना ब्राह्मणों के लिए केवल वर्णशास्त्रों का इस्तेमाल लेकर कर पाना सम्भव न था।

ब्राह्मणधर्म और बौद्धधर्म की प्रवृत्ति

उत्तर-मध्ययुग में धार्मिकता में प्रवृत्ति स्पष्ट सीख रही थी। ब्राह्मण-व्यवस्था प्रबल हो गई। गुप्तकाल के सुहृद् विष्णुप्रधान धर्म का स्थान मध्ययुग में रामपदी शक्ति धर्म ने ले लिया जिसमें वासना जादू-टोने और मानव-बलि का प्राबल्य था। धर्मभूतिष्ठ 'मातृतीमावर्ण' (समय ७३३ ईस्वी) और सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर' (१०१३-१०८१ ईस्वी) में इसका भयंकर वर्णन है। अमेरकृत 'कलाविमल' (म्याहवीं घताम्बी) तथा सोमदेवकृत 'वैताल पंचविधिका' रोमांच धर्मविश्वास व जातजातियों

से पड़े पड़े हैं। पठित ब्राह्मण और वीरधर्मों का मेल और लोककथा के तत्वों ने मिलकर समस्त जनता में सामान्य-बुद्धि के स्थापन पर आश्चर्य रोमांच और जलोजना की प्रवृत्ति जागरित की; कभी धर्मग्रन्थ प्रचलित प्राचीन धार्माभ्यासों से मानना तथा ब्रह्म और धर्म के सम्बन्ध के बहने विवेकसम्पन्नता और तात्कालिकता के प्रति आलस्य को बढ़ावा दिया। स्वयं कर्मीय धर्मवा महोत्सवों के दरजारी कवि राजदोहर ने अपनी अर्धमंजरी में जो नवीं छठारदी के छन्द में प्राकृत में लिखी गई थी वैदिकधर्म की निम्ना तथा तांत्रिक कोलाचार की प्रशंसा की है। ऐन्द्रजातिन औरपानन्द अपने तांत्रिक बापू के वन पर राजा और कंद में पड़ी सुगरी कर्पूरमंजरी का प्रथम भिन्न और विवाह सम्पन्न कर देता है। मंत्र और तन्त्र के प्रति उसमें व्यक्त है। उसके गुरु उसे ज्ञान एवं ध्यान के प्राचीन भारतीय अनुशासन से मुक्त कर देते हैं। अनेक ब्राह्मण और वीर तांत्रिकग्रन्थों में जादू बासना और वीर रहस्यमयता का प्रति भवानक मिश्रण उपस्थित है। इन ग्रन्थों में पत्नी को पीतने या फुकाने युक्त वन पाने और शत्रु को पागल बनाने या मारने के उपाय बताए गए हैं। और इन सबका प्रवेश शिक्षाप्रद कथाया तथा बोधकथाओं में भी हो गया।

सुक्ति, संधान और बासना के अपवित्र संयोग के कालधर्म में प्रवेश के प्रतिरिक्त देवी (गौरी या सरस्वती) का सार्वजनिक झूला-रथोद्धार (जो एक मास तक चलता था और इसकी से ठेरहवीं सतासी तक लुभ प्रचलित था) प्रेम-स्वीकारों और बिसास का प्रसरण बन गया। मकानों की धनकृत छतों और धिन्न-भित्तिनिक्षेपों के समान सार्वजनिक उद्यान भी प्रेमियों के झिड़ा-नक्कल बन गए। प्रेमीजन देवी की मूर्ति के सामने अपनी-अपनी प्रेम काशों का झूला झूलते ऊपर-नीचे घाते-जाते देखते थे। प्रेमिकाओं की सहृदयी शीशियां ऊपर उठ-उठ जाती थीं उन्हें बमबहार ऋजियां दीकती थीं और बुंभक बजते थे।

सामाजिक जीवन—विशेषतः पदों और कस्बों के सामाजिक जीवन—की सम्पूर्ण प्रवृत्ति में ही विचलित था। युक्तकालीन प्रेम विवाह और परिवार की पवित्रता पर बर्बरों की जीवन-संहिता से उत्पन्न अमान्य व्यवस्था और भोजन-विनाश हावी हो गए। दामोदरगुप्तकृत कुट्टनीमठम् (नवीं सतासी) और लमेन्द्रकृत 'समयमाचूक' (भारतवी सतासी) जैसे संस्कृत-काव्यों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित है। इनमें वेस्मात्रा के कारणों का वर्णन है और 'जानसूत्र' के गहन अध्ययन पर आधारित ये ग्रन्थ स्पष्टतः धर्मग्रन्थ हैं। इसी प्रकार, आत्मिक लोकप्रिय 'भुक्तपठति' में बयित है कि क्षिप्रतत्त्वों जैसे अपने ही-साव पतियों की धारों में धूल भोंकती हैं, अकमा देती हैं। ये कहानियां मनोरंजक हैं और साथ ही युव की सामान्य क्षमिकता और पारिवारिक सचाई के प्रभाव को भी व्यक्त करती हैं।

राजपूतों में एकता और रणनीति का प्रभाव

तुर्क-अकालों से युद्ध करने का सामित्व जिन सत्ताधारियों ने से रखा था उन्होंने अपने पहलुकार के कारण स्वयं का छेप समान से एकदम प्रसंग कर लिया तथा आपस में लड़ना प्रारम्भ कर दिया। ठेरहवीं सतासी के भारत में पाटन के भीमदेव अग्रमैर के पृथ्वीराज और कर्मीय के जयचन्द्र ने कुछ समय तक अलग-अलग युद्धसमान प्रक्रमण-

कारी से संभर्य किया। लेकिन जब धनु बूनी सैनिक शक्ति के साथ वापस आया तो तीनों शासक एक न हो सके। जब तक कन्नौज की राज्य परम्परा (१२०-१२०० ईस्वी) नष्ट हो चुकी थी। प्रतिरक्षा के अलग-अलग क्षेत्र थे—गुजरात मारवाड़ सपादमक्ष अथवा मेरपेत—किन्तु विभिन्न राजपूत-जातियों ने जिसके बीच देश उस समय बटा हुआ था, आपस में एकता नहीं स्थापित की। अनुविभाह और सामन्तशाही के कारण राजवंशों के बिनाश के फलस्वरूप राजपूतों की एकताहीनता और अधिक तीव्र हो गई। इसके विपरीत तुर्क अफगान आक्रमणकारियों की सेनाओं में अधिकोद्य सैनिक कुम्भलग और बूट-पाट के लोभी ने तथा जानते थे कि उनके लिए पराजय का दर्शन या पूर्ण विनाश। इसलिए अमाव और अनुदेश में बूटमार के उद्देश्य से आयोजित अभियानों की बहुरों से उत्पन्न उद्दृष्टता और हड़ निश्चय से वे लड़ते थे। खुले मैदानों में सुसज्जमान सेनाओं के सामने राजपूतों के पाँव आसानी से उलझ गए। इसके कारण वे प्राचीन धर्मों पर आधारित पुरानी हिन्दू राजनीति पैदा और बुद्धिबहार लोगों सेनाओं में प्रशिक्षण का अभाव तथा तेजी से काम करनेवासी सुप्रशिक्षित तुर्क-अफगान बुद्धिबहार-सेना के सामने युद्ध के हानियों की अकर्म व्युत्पत्ता। भारत में प्रशिक्षित छोटे या लक्ष्यर न थे इनके लिए अजीब धरत या फारस पर निर्भर रहना पड़ता था। इसके अतिरिक्त तुर्क-अफगान अनुविद्या में पारंगत थे जिसके अन्तर्गत राजपूतों की उत्तमराज्य की किसी काम न आ सकती थी क्योंकि उसवार का उपयोग केवल हनुमुद्ध में समर्थ था। सुसज्जमानों के बुद्धिबहार अनुविद्या सैनिक अचानक हमला कर देते थे तथा सिद्धान्तहीन उपायों का भी प्रयोग करते थे। इस प्रकार की एक तरीक की हिन्दू सेना के पीने के पानी को अशुद्धि कर देना चाकि समस्त सेना में निराशा और दुःख का वातावरण भर जाए। उनका सिद्धान्त था युद्ध में सब उचित है। इसके विपरीत हिन्दू राजा अपने युद्ध के नियमों का सख्ती से पालन करते थे उन्हें सैनिक आसबाधियों अथवा सिद्धान्तहीन उपायों से बचना भी और कभी-कभी तो वे विजय प्राप्त करने के पक्षार्थ भी उनका पूरा लाभ नहीं उठाते थे। मध्यमयीन भारतीय इतिहास की एक दुःखदटना है तराइन का प्रथम युद्ध (११९१ ईस्वी) जिसमें याह्वुहीन को परास्त करने के बाद भी पृथ्वीराज उसका पूरा लाभ नहीं उठा सके। याह्वुहीन की सेनाएं धारात से बिना किसी कठिनाई के अकानिस्तात वापस चली गई। फिर याह्वुहीन ने पहले से नहीं बड़ी सेना लेकर दुबारा आक्रमण किया और तराइन के द्वितीय युद्ध (११९२ ईस्वी) में अपने पहला युद्ध के विजय को परास्त किया।

सुसज्जमान गणिका में बीरोचित युगों का सर्वथा अभाव था फलस्वरूप निर्देशना अधिक थी। उनमें 'अविज जेहाद' का जोर था और वे अर्थात् बौद्ध पुरी शक्ति से लड़ते थे और किसीके साथ—स्त्रिया और बच्चों के साथ भी—व्यापार का व्यवहार नहीं करते थे। भारत के नगर और शहर लूटे गए विनष्ट और अशुद्धि कर दिए गए गुरबीर राजा और समाजिक एकदम निराश हो गए तथा स्त्री-पुरुषों में भिन्नकर सामूहिक अल्पमहत्वा की। इसका प्रभाव जनसाधारण पर यह पड़ा कि उनमें उदात्तता साहस भी जाता रहा। इसके अतिरिक्त हिन्दू सामाजिक व्यवस्था भी ऐसी न थी कि जनता के तह योग से आक्रमणकारियों का बर्णन, अन्तर्गत समय तक मुकामिला किया जा सकता।

हूँ आक्रमणकारियों ने पुनः अनुभव के पश्चात् हिन्दुस्तान की सीमागत जातियों का सामना पहली बार अपने सिद्धान्तहीन कपटी और निन्द्य राज के साथ हुआ था। हिन्दू योद्धाओं ने अपना रक्त पानी की तरह बहाया किन्तु वे युद्ध के प्रत्येक नियम का उल्लंघन करनेवाले राज को घाये करने से रोकन सके। मध्ययुग के हिन्दू योद्धाओं के दुर्भाग्य के बारे में हिन्दुस्तान के अद्भुत और प्रख्यात विवेका बाबर ने कहा था कि भारतवासी 'मरना जानते थे लड़ना नहीं'।

स्वाधीन राज्या में साहित्यिक सक्रियता

तुर्क-अफगान आक्रमणों की विधिगता यह थी कि अलग-अलग तुर्क-अफगान सरदारों ने समय-समय पर सफल अभियान चलाये किन्तु एक समन्वित शक्ति से दिल्ली सल्तनत पर विजय प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया गया। हाँ दिल्ली सल्तनत ने आक्रामकों के अन्तर्गत बोल धीर आक्रमणों का पूरा साम अक्षय प्राप्त किया। सच तो यह है कि दूर के क्षेत्रों पर दिल्ली सल्तनत का नियंत्रण प्रारम्भ से ही संदिग्ध था। अतः राजपूतों। मूलराज मानवा और सबसे बढ़कर विजयनगर नामक स्वाधीन राज्यों में साहित्यिक सांस्कृतिक और न्यायिक गतिविधियाँ यहाँ तक चलती रहीं। मुहम्मद में कालिम्जर और बिहार में मिर्जिसा जैसे छोटे राज्यों में भी अनेक विद्वानों और कवियों ने आश्रय ग्रहण किया अतः इन राज्यों ने भी हिन्दू सांस्कृतिक पुनर्रमान में भाग लिया। राजपूताना में 'हम्मीरविजय' में रणबन्सीर के हम्मीरदेव की उज्ज्वल राष्ट्रभक्ति और वीरता का गुणमान किया गया है। राजपूत ग्राह अक्षरा चारण अपने आश्रयदाताओं के साहित्यिक कृत्यों का गुणमान हिन्दी वीरगाथाओं में करने लगे थे। इन वीरगाथाओं के कारण जनसाधारण में युद्ध के प्रति उत्साह ब्रजने लगा। तुर्क अफगान आक्रमण के विरुद्ध बरती और संस्कृति के लिए भीषण संघर्ष के दौरान जनजाया में साहित्य रचना का प्रारम्भ हुआ।

सर्वाधिक प्रसिद्ध राजपूत ग्राह बा अम्बरदाई, जिसने 'पृथ्वीराजरासो' की रचना की। इसमें दिल्ली और अजमेर के पृथ्वीराज जहामान के जीवन का गुणमान किया गया है। पृथ्वीराज सर्वाधिक वीर और साहसी राजपूत नायकों में से एक था तथा वह भारतीय इतिहास का एक आकर्षक अद्भुत और रोचक व्यक्तित्व था। मुन्दरी पद्यावली और पृथ्वीराज (बाब में पृथ्वीराज परमावती की अपनी पत्नी बनाने के लिए अग्रदूत कर से गया) के जीवन का अम्बरदाई का जीवन प्रख्यात है।

पञ्चरी (पञ्चरी)

सोहन बार मोतिन मराम। मजहम करत दीपक मजाम ॥
 सनह सपिह निय सहस बाल। एकमिनिय जेम सज्जत मराम ॥
 पूजियद गवरि सकर मजाम। पञ्चमनई ग्रंथ करि लनिय पाय ॥
 छिर रैपि रैपि पृथ्वीराज राज। ईस मुख मुख कर पट्ट लाय ॥
 कर पकरि पीठ हय पर जहाय। लै जल्पी निपति दिल्ली गुणय ॥
 अह पकरि गगर बाहिर मुनाय। पदमावतीय हरिजीय जाय ॥

बाजी धुसक हुय गय पसान। दौरे सुसज्ज बिस्सह दिखान ॥
 गुम्ह सेहु-सेहु भूप जयि जोष। हलाह सूर सब पहिरि कोष ॥
 भगो पु राज प्रथिराज भूप। पण्ठे गु भयो सब सेन रूप ॥
 पहुष गुजाम तत्त गुरंग। मुख भिरम भूप धुरि जोष जंग ॥
 उसठी जु राज प्रथिराज बाव। बकि भूरगपन पर बसठ माग ॥
 मामंत सूर सब कास रूप। गहि सोह सोह बाई सुभूप ॥
 कम्मन बनि छुटहि अपार। लागत सोह इमि छार बार ॥
 बमवान बनि सब वीर पव। बन सोन धर रकठ रेत ॥
 मारे बराठ के बोष जोह। परि कंड मूड धरि पव सोह ॥

परे रदत रिग पव धरि करि दिस्सिय भूप क्य्य।
 नीति बम्पौ प्रथिराज रिग सकस सूर भय मुय्य ॥

कादंबरदाई के समकालीन जनमाधव ने अपने 'धातुहाजड' में महोबा के धातुहा और ऊदम के दौस और प्रेम का वर्णन किया है। एक अन्य कवि छारङ्गवर ने रत्नकम्मौर के राय हम्मीर के बीरतापूर्वक कार्यों को अपनी कृतियों 'हम्मीर राखी' तथा 'हम्मीर काव्य' का आधार बनाया।

राजपूताना में संस्कृत साहित्य की वृद्धि में भी सक्रिय भाग लिया। जयनिहू सूरी ने एक महत्त्वपूर्ण नाटक 'हम्मीर-मह मर्दन' की रचना की (१२१६-१२२६ ईस्वी)। मेवाड़ के राजा कुम्भा स्वयं कवि थे। उन्होंने संघीतशास्त्र पर एक पुस्तक 'संघीतराज' तथा अवदेवकृत 'गीतगोविन्द' की टीका लिखी। 'गीतगोविन्द' की रचना वंशाम के राजा सक्कमण्डेन के दरबार में—जिसके पञ्जरल से अवदेव समापतिबर, घोई, चरम और मोरघन नामक कवि—हुई थी। इन कवियों में सर्वाधिक भिख्याति विस्तारदेह अवदेव से जिन्हें मरहूत-साहित्य में अंतिम महाकवि माना जाता है।

गीत-गोविन्द में प्रतीक विधान और रचना-शैली की परिपूर्णता

बारहवीं शताब्दी के अन्त में अवदेव द्वारा रचित 'गीतगोविन्दकाव्यम्' बिना साहित्य में एक अद्भुत और धार्मिक-रसमय रूप से मौलिक काव्य है। इसमें वीर-नाट्य संघीत लोक प्रदर्शनों और नृत्य के तत्त्वों का गम्भीर अध्ययन है। इसका रचना-विधान ब्रित देश मनेदनात्मक एक बर्तन है जिसमें शीता चारुभाषा बिकरबा और वर्णना को मनोवैज्ञानिक स्थिति के उद्घाटन के साथ-साथ सामान्य है और मनोवैज्ञानिक स्थिति मानव धारणा में धार्मिक भावनाओं की परिपक्वता की प्रतीक है। कारण स्पष्ट है। 'गीत गोविन्द' में राजा तथा अन्य व्यक्तियों की सामान्य और धार्मिक निराशा और पीड़ा की मानवीय भावनाओं का धार्मिक-रसमय अन्तिम और धार्मिक-रसमय की भावनाओं से अलग नहीं माना जा सकता। काव्य का अष्ट सन्देह भी यही धार्मिक-रसमय अन्तिम और धार्मिक

पीनपयोधरधारधरेण हरि परिभ्रम्य सरायं
 गोपबभूवमुवायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम् ।
 हरिरिह मुग्धबभूविकरे विनासिनि विनसति कैसिपरे ।
 काचि विनासविभोक्तविभोचनकेसमननितमनोजम्
 भ्यायति मुग्धबभूवयिक्तं मधुसूदनमवतनरोजम्
 हरिरिह मुग्धबभूविकरे विनासिनि विनसति कैसिपरे ।^१

राजपूत-वास्तुकला की समृद्धि और गीतात्मकता

हीनो के अश्रम के विचार से 'गीतयोगिन्य काव्य' का संस्कृत काव्य में वही स्थान है जो विमलादा तमुराहो उदयपुर, मुनेस्वर और कोणार्क के मन्दिरों का भारतीय वास्तुकला में। राजपूत श्रेष्ठ और होने के साथ-साथ श्रेष्ठ वास्तुकला भी थे। विस्तृत राजस्थान और जोधपुर भाग आसिमर, जन्देरी, इतिया और धोरछा के आसिमर किले राजपूतों के बीरतापूर्ण संघर्ष के विभिन्न बड़े तथा कलात्मक सुन्दर आकर्षक समूह हैं। नागरिक वास्तुकला के श्रेष्ठतम उदाहरण अम्बर उदयपुर जोधपुर और आसिमर के राजमहल हैं। श्रेष्ठ वास्तुकला और इंजीनियरिंग की छल के बल पर यहाँ की पहाड़ियों और भूमिों का उपयोग इस प्रकार किया गया है कि छतुमों से सुरक्षा रख सकें और शत्रुओं से भी बूढ़ हो। अम्बर के राजमहल को 'समय की मायी उल्लास की तरङ्ग लाल नगर' कहा गया है। राजपूत किलों के बारे में सच्चाई बाहर से कहा या 'बे बेहद सुन्दर' है। सुन्दर ठाँके के पत्तों से ढके हैं। चारों ओर की दीवारों पर रंगीन बीकों से किले के बस बनाए गए हैं।^२ राजपूत शासकों ने अनेक कृषि भूमिों कलात्मकों स्थापना की और छतरियों का भी निर्माण कराया था। इनके निर्माण में प्रशस्ततम वास्तुकला और इंजीनियरिंग की छल तथा था। ये सभी मात्र ही राजपूताना की बीजित परम्पराएं हैं।

किर भी राजपूत-संस्कृति का सर्वोत्कृष्ट आकर्षण है सुन्दरतम हैं उड़ीसा और मध्यभारत से पंजाब हिमालय तक फैले हिन्दू, बौद्ध और जैन मन्दिरों का वास्तु। वहीं वहीं पर मन्दिरों की मीनारों बसों पर भित्तिचित्र आन भी देखे हैं। तथा महीना तमुराहो उदयपुर मुनेस्वर और कोणार्क की मूर्तियों की मूर्तता सुन्दरता और की छल श्रेष्ठता भारतीय कला में अत्यन्त प्रशस्त है। अनेक कला-समीक्षाओं और इतिहासकारों की सम्मति में तमुराहो का कहरिया बहादेक का मन्दिर मुनेस्वर का निमराज मन्दिर कोणार्क का मन्दिर तथा आसिमर का लेही का मन्दिर भारतीय मन्दिर वास्तु की सर्वोत्तम उपसम्पत्तियाँ हैं। उदयप्रस्थ परमार द्वारा उदयपुर (आसिमर) में १०४६ और १०८० ईस्वी के मीनार निर्मित मीनकंठ अथवा उदयपुर मन्दिर एक अथवा उदयपुर प्रसिद्ध मध्ययुगीन मन्दिर है किन्तु यह भारत के सुन्दरतम मन्दिरों में से एक है। अतः कला-इतिहासकारों को इसपर अधिक ध्यान देना चाहिए। अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक पर

१. बृज नरहरि राज निर्देशकन ब्रजवाचक कवच-न द्वारा प्रकाशित 'नवाग्रिमरोरसिनि पीन पयोधरधरेण' (नवंबर १९५६) से उद्धृत है।

स्वर सम्मन्वित प्रवेशमण्डपों छोटे मन्दिरों, समामन्त्रण घोर घरहूरा-मुनस बेबी के कारण यह मन्दिर वास्तव में एक धार्मिक प्रस्तरपीठ है। अतिज ऊँच घोर कृत्ताकार रखाया गया सतहों घोर घामतनों में घाम्म कसारमक डंप से तराया हुआ डीरा है। इस प्रकार एक बर-सरम रेखाकार विरामिड बन गया है जो समस्त आकार को समुत्तम घोर अग्रिम सौंदर्य प्रदान करता है। मन्दिर के सौंदर्य में बुद्धि के लिए पतली-पतली समतल पट्टियाँ मन्दिर के चारों ओर तक जाती हैं तथा मुख्य मन्दिरों की चारों ओर। पर मुख्य घट्टामक के छोटे-छोटे प्रतिक्रम घणियों में ऊपर उठते चले गए हैं घोर सारता एवं धार्मिक ऊँचाई का घामास देते हैं। दूर से मन्दिर ऐसा प्रतीत होता है मानो अघना सुन्दर एक विद्यालय मुकुट धारण किए चिह्न स्वयं विराजमान हैं। मन्दिर के मध्य की सर्वप्रथम सम्मन्वित एवं दृष्टा के साथ-साथ उसकी सतह पर, तथा बेदिनामों स्तम्भों की चारों ओर उठते पर मूर्तियों की संख्या तथा अंशकरण वास्तव में अविश्वसनीय है।

कुवेतखान में सज्जुराहो के मन्दिर चारों राजपूतों ने ११० और १०१ ईस्वी के बीच बनाए थे। ये भी भारत के सुन्दरतम मन्दिरों में से हैं। मुक्नेवर कोबाक घोर सवपुर के समान यहाँ भी वास्तुक 'सरहों' का ऐसा समन्वय है जो किसी अन्य युग अथवा भारत के किसी क्षेत्र में नहीं पाया जाता। मध्ययुगीन भारतीय मन्दिर का आकार मुँगा हुआ घोर स्पष्ट है। इसके विभिन्न अंग अर्धमण्डप मण्डप अन्तराल और गर्भगृह घापस में संयुक्त होकर एक सम्पूर्ण वास्तुक इकाई का निर्माण करते हैं। धार्मिक गिरजाघरों के समान इसके बाहरी द्वारों के अर्धक उभार और गहराई अर्धक की आँक को ऊँचे स्तर पर ले जाते प्रतीत होते हैं। ऊपर उठने का यह घामास केन्द्रीय अष्टासक के चारों ओर कई एकसमान चित्रों अथवा गुंनों तथा कलशों से घेर बड़ जाता है। दूर से यह मन्दिर अनेक चोटियों (गुंनों) वाला कैलाश पर्वत अथवा जटामुकुट धारण किए स्वयं चिह्न-सा मान्य पड़ता है।

मध्ययुगीन मन्दिर-वास्तु सर्वेव गीतात्मक है। मूर्तियों और गुप्तासङ्गति से इन मन्दिरों को लुब्ध सजा दिया गया है। ये अलङ्कृतियाँ भारतीय पूजा के केन्द्रीय विचार—धार्मिक मानवीय और स्वर्गिक सुन्दर और असुन्दर आचर्यक और अथ मक सभी रूपों और आकारों में देवता की उपस्थिति—की प्रतीक हैं। राजपूत-मुनस्त्रान के समय में आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक राजपूताना मानवा गुजरात काटियावाड़ और बच्छ के मैदानों में अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ और इन सभी की विधायता है—पीठामकता और प्रकृति के प्रति ऐन्द्रिय प्रेम (जो गुप्त-मुनस्त्रान की विशेषताओं का स्मरण दिलाते हैं) तथा कोमलता एवं विद्यामता। राजाधों व्यापारियों और सामन्तों की दानमीमता तथा नारीयों और विद्वानों के धार्मिक उत्साह के लक्षण छ' शताब्दियों के प्रवाह में इन मन्दिरों का निर्माण हुआ किन्तु यह है कि समय प्रवाह तथा मुसलमानों की हमलों को नष्ट करने की प्रकृति के कारण अधिकांश मन्दिर अब खरबूर मान हैं। वास्तव में मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा आक्रमण और विनाश के मय में ही इतनी तीव्र मक्ति आचना को प्रोत्साहन दिया और मन्दिरों की मूर्तिकला की समृद्धि एवं बहुलता का मुख्य कारण यही मक्ति आचना थी। अर्ममिष्ठा और सौन्दर्य-आवनात्म्य अंशकरण

भारत की संस्कृति और कला की इस अद्वितीय सोमा और कलनता ने वास्तु और मूर्तिकला सम्बंधी कुछ ऐसी कृतियों को जन्म दिया है जो संसार भर में अप्रतिम हैं।

मूर्तिकला के प्रमुख प्रकार

उत्तर मध्ययुगीन मूर्तिकला को चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। सबसे प्रथम है इन्द्र के दरबार की मूर्तें—सुरमुखरी नामिका धक्का भस्मरा। माछी से ठेरहू को घाटाही के पास तीनों से अधिक समय तक भारतीय मूर्तिकला को नहीं कपाटार प्रवास करने का भय ताकि अस्वात्मविद्या और कल्पनाशीलता को है। अनेक पवित्रता स्वाभाविकता और जीवन की परिध्याप्ति की भावना। इन विशेषताओं का मूलाधार है ब्रह्मांड में देवता की कपाटार-बारवा (पवित्र)। पृथ्वी की नामिका प्रकृति स्वयं की अंधरा का घर और परिवार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता और मार तीव्र संस्कृति में मारी के प्रियवन्ता और सीवर्ग की प्रतीक है। गाँ-सीवर्ग के प्रति मानव की दारुण प्रसन्नता को अभिव्यक्ति देनेवाले मध्ययुगीन मूर्तिकारों को मारी को अनेकानेक उन्नतक मुद्राओं में प्रकट करने में रस मिलता था। भारतीय मूर्ति की प्रकृति स्वाभाविकता से उत्पन्न और ताकि पीपयिकता द्वारा विकसित मारी का भारतीय कला में बड़ी स्थान है जो यूरोपीय कला में जीवन और प्राज्ञता कीप का उत्तमक सीवर्ग से सीप से देव-भारेया अनेक मोहक भावमयियों (जो निरवय ही मानवीय मानवों से प्राप्त नहीं हुई) में प्रकट हैं। अपने ही सीवर्ग में जीवन (उनके हाथों में पकड़े भाइयों में प्रतिबिम्ब इसीक प्रतीक है) के अपने में ही कृते तथा उत्तम से परे हैं—और ब्रह्मा का भी तो यही निरोध और भावना है। ध्यान देने की बात है कि पवरा मिश्रता को व्यक्त करने के उद्देश्य से अक्षर भावों की पुनर्निर्माण बनाई ही नहीं गई। प्रत्येक भावे प्रत्येक स्वप्न तथा महिरो की सभी चीवारों पर से स्वयिक सुन्दरिया प्रकट है। यह पुनरावृत्ति स्वयं प्रसन्नता तथा आराध्य देवता की सर्वव्यापकता की आह्लाद भावना की प्रतीक है। आखिर यह सुरमुखरी धक्का नामिका अज्ञात मानवीय आत्मा के प्रतिरिक्त और क्या है जो अपनी प्रकृति एवं मति में ईश्वर के समान है। दूसरे प्रत्येक मन्दिर में और विद्यपत सीवर्ग मन्दिरों में हमें रतिमय पुष्प मिलते हैं, जिन्हें अद्भुत गुच्छा कोमलता और मनोवैज्ञानिक प्रतीकार्थकता के साथ उत्पन्न गया है। इसका कारण है ताकि साधनमाना जो उन्नततरन आदर्श अनुभूतियों तथा इन्द्रियगत व सर्वकारक जीवन के अन्तर को इस प्रकार पाठनी है कि वह परिचयी देशवासियों को कुछ विविध मामूम पड़ सकता है। विद्व-कला के इतिहास में कहीं पर भी असाधारणता तथा इन्द्रियमुख अमृत तथा सीवर्ग का ऐसा संयोग प्राप्त नहीं है ताकि कहना एवं हम द्वारा उपलब्ध तरास हुए पुष्पा हैं। इस संयोग का रहस्य है ताकि कहना एवं हम द्वारा उपलब्ध इन्द्रियों का कपाटार तथा जीवन के प्रति पूर्णविकसित एवं यन्त्रीय जानकता। विपुन शरत्क में वाय्वात्मक सत्य है तथा ये एकता अस्ति और भावि (जो प्रकृति और पुष्प में और मारी की विरोधी सत्त्वों को व्यक्त करते हैं) की अभिप्रायता के प्रतीक हैं।

ठीसरे बुर्जी को छोड़कर मन्दिर के सभी भागों पर सेना की दृकक्रियों प्रदर्शनों लोहारों खेल-कूद और युद्ध नृत्य मुरापाय तथा ऐश्वर्यशाली बरबारी जीवन के शौकिक वस्तुओं का संग्रह है। ये वृद्ध इस युग की दान-शोक और जोश के प्रमाण हैं जब युद्ध एक सामाजिक बात थी तथा शान्ति का अर्थ था—युद्ध की जोरदार तैयारी।

अन्तिम विशेषता यह भी कि मध्ययुगीन मन्दिरों में शिव नटराज की तांडवनृत्य की मुद्रा में कुछ सुन्दरतम मूर्तियाँ हैं। नटराज की प्राचीनतम मूर्तियाँ छठी और सातवीं शताब्दी ईस्वी की हैं तथा बावामी ऐहोल तथा एलोरा में मौजूद हैं। एक अन्य सम्प्रदाय के रूप में नटराज की पूजा का प्रचलन किसी समय समस्त भारत में था। इसी कारण नटराज की अप्रतिम मूर्तियाँ बनीं। विभिन्न क्षेत्रों की मूर्तियों का अन्तर ध्यानमग्नियों के अन्तर पर आधारित था। उज्जैन में शिव नटराज की एक सुन्दर मूर्ति है जिसका समय आठवीं-नवीं शताब्दी ईस्वी है। शिव नटराज की ही एक अन्य प्रतिमा नीलकण्ठ उदयेश्वर मन्दिर के मुख्य गिर्जर के फुल्ले के केन्द्र पर है। इसका समय म्यांमार्की शताब्दी ईस्वी है। इसके दोनों ओर नृत्यशील काली प्रबला योगिनी तथा उड़ती हुई अप्सराओं की मूर्तियाँ हैं प्रत्येक की नृत्यगति पूर्णतः बुनावार है तथा सबसे ऊपर सर्पकेशी स्त्री प्रतिमा है। इनसे नटराज की मूर्ति के नृत्य में और बढ़ि होती मासूम पड़ती है। फुल्ले पर खुदे हुए अनेक छोटे मन्दिर प्रसरणशील नृत्यगति को और अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। प्रकृति जीवन और विचार सम्बन्धी हिन्दू सिद्धान्त में नटराज यति के शास्त्र समतुलन का प्रतीक है। मृत्यु और जीवन बुद्ध और सुख शान्ति और युद्ध के अविनाशी चक्र का निरीक्षण स्वयं शिव नटराज करते हैं जिसके तांडवनृत्य का एक-एक पर-संचालन प्रत्येक क्षण में और प्रत्येक युग में होनेवासी गति और गति बुद्ध और संहार के अनन्त क्रम का एक-एक मन्त्र है। आकाश और मामस्तपुरम् की भारतीय कला में कई घटावियों का अन्तर है, फिर भी दोनों में जीवन और मृत्यु, अवतरण और विसृष्टि को मायावी माना गया है, तथा एक सदावतक अस्तित्व एवं वादवत तनाव के रूप में जीवन का सर्वाधिक उत्कृष्टतम और सुन्दर प्रतीक नटराज है। मध्ययुगीन विष्णुकला और कला में सर्वराज पर विजय प्राप्त करने की प्रसन्नता में नृत्यशील कालिय हृत्प का चित्र भी है। यह भी मध्य युगीन मन्दिर-कला की सुपरिचित विशेषता है।

राजपूत-मूर्तिकला में सुख और दुःख के प्रतीक

राजपूत-संस्कृति में उपस्थित जीवन और मृत्यु, सुख और दुःख की पारस्परिक प्रक्रिया की समस्त अभिव्यक्ति शिव काली प्रबला चामुंडा, कृष्ण और गणेश की इन कोस्मिक रूप-मूर्तियों में हुई है। ये केवल मंदिरों में ही नहीं बल्कि प्रकृति की कठोर और निर्दय शक्तियों में—जो नैराश्वर्य संतर्पण पराजय और विनाश के उस युग में और अधिक स्पष्ट थीं—सदैव नृत्यशील रहते हैं। मध्ययुगीन मूर्तिकला की इन मूर्तियों में सर्वव्यापी बुद्ध सुख और बल का (नीलो कङ्कण) भारत में स्वीकार किया है। शिव नटराज की—अनील प्रतिमानवीय सुख और सीम्ह से परिपूरित मूर्ति विद्वत्प्रापी सय की प्राध्यात्मिक कला तथा प्रकृति और मानव जीवन के अस्साह की प्रतीक है,

तथा बंधीबादन करते हुए गृह्यसीम कृष्ण की मानवीय सुन्दरता तथा शुद्धभारता से परिपूर्ण मूर्ति में भी उसी 'कामिनी' यति की अभिव्यक्ति है। ये दोनों 'मोटिफ' जीवन के प्रति जो विरोधी दृष्टिकोणों—कामस और कठोर, वीरतापूर्ण और निधय—के प्रतीक हैं। इन्हीं विरोधी दृष्टिकोणों का विविध समावेश राजपूतों के व्यवहार में था तथा राजपूतों के बटिल व्यक्तित्व के निर्माता भी ये ही थे। राजपूत-समाज के अनुशासन के धर्म यों—आध्यात्मिक शांति तथा सैनिक उत्साह—के पारस्परिक विरोध के फलस्वरूप ही क्षेम और क्रोध सहृदयता और निर्वयता जैसे पूरक वर्णों का निर्माण हुआ है।

राजपूत मुठों में बिजयी होते और अपने निर्धन सिखावहीन शत्रुओं को पराजित कर पाते तो साम्य राजपूत संस्कृति के सहृदय एवं प्रसन्नतापूर्ण पक्ष का विकास हो पाता। राजपूत संस्कृति के उग्र एवं संघकारमय पक्ष के वर्सन बिकट और प्रथा में होते हैं। (महामारत में यही वास्तुवृद्ध है जिसमें सभी पांडवों को पीड़ित बना देने का उपक्रम किया गया था।) और राजपूत आत्मा की मृत्यु और अपमान पर बिजय का प्रतीक भी है और उत्सव भी। राजपूत इतिहास में और के विविष्टतम उदाहरण हैं—महमूद गजनवी द्वारा पराजित होने पर उबयन के जयपाल असाह्य जिनगी द्वारा पराजित होने पर रणबन्नीर के हम्मीरदेव बिस्तीड़ के राजा रतनसिंह की रानी पद्मिनी मुहम्मद तुगलक द्वारा पराजित होने पर कपिल के राजा कमल खेरवाह और बाबर द्वारा पराजित होने पर बरेली के भीमा पुरनमल और मैदिनीराय तैमूर के हस्ताक्रांति के दौरान दिल्ली के सामान्य निवासियों तथा अकबर के आक्रमण के निर्वह हस्ताक्रांति के दौरान बिस्तीड़ के चारों ओर से बिछी हुई सेना के आत्मबलिवान। बिस्तीड़ के और का वर्णन टॉड ने इस प्रकार किया है

विशाल भूमिगत तहानों में ऐसे प्रकोष्ठों में जहाँ दिन का प्रकाश तक नहीं पहुँच सकता था बिता की अग्नि प्रज्वलित की गई। बिस्तीड़ के रक्तों की आँखों के सामने ही रानियाँ उनकी अपनी पलियाँ और बेदियाँ हजारों की संख्या में जुनूस बना कर बसीं। सबसे पीछे थी रानी पद्मिनी। तहानों तक शोक उनके साथ गए। सब भीतर प्रवेष्ट कर गईं तो बाहर से द्वार बन्द कर दिया गया। पवित्र अग्नि ने शत्रुओं के हाथों अपमान से उन सबकी रक्षा की।

सामूहिक आत्महत्या की मुक्त प्रार्थना स्वयं मुसलमानों ने की। असबबनी से लेकर बाह के मुसलमान इतिहासकार इस प्रथा के प्रशंसक थे। इस प्रथा को बर्णन देने का श्रेय भी मुसलमानों को है। वे बर्णन होकर निर्वयतापूर्वक बेहाब बोलते थे तथा उनके किसी प्रकार की सहृदयता की भाषा नहीं की जा सकती थी। मुसलमान आक्रमणकारियों की क्रूरता शीर्षहीनता और न्यायविहीनता की प्रतिक्रियास्वरूप इस प्रथा का उदय हुआ था।

पुरुषार्थ और वीर राजपूत जाति में बुद्धि और विपत्ति का सामना अतीव धर्म धर्म और निष्ठा के साथ किया। राजपूतों के मैगुण उस युग-कारतुः और निस्विक बाहुल्य में अभिव्यक्त हैं तथा प्रतीकरूप में उपस्थित हैं। वास्तव में उस युग की वास्तु कला एवं मूर्तिकला का आधार ही है सामाजिक धर्म संबंधात्मक जीवन। गुजरात के बन्दरगाह—ईश और मूरत—मध्ययुगीन समुद्री व्यापारियों पर स्थित थे और

आभा बिखेरते हैं। मानो ये किसी दूसरे संसार के आसार हों और सामान्य मानव के स्पर्श से दूर खूब ऊँचाई पर स्थित हों। प्रत्येक मन्दिर के अंदरे प्रकोष्ठ में अश्वि के आदि नाव अथवा कुछ तीर्थंकरों की एक या अधिक मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। मूर्तियों के प्रस्तरीय अंग-उपांग गिनमें परम शक्ति का भाव है। बाही के सँभवा की भीमी रोसनी में बुलबुल से घुलने लगे हैं। हवा में धूप की सुगंध भरी होती है तथा लाल व सुनहरे बस्त्र पहने हुए उपासिकाएँ बिकने फर्क पर गये पाँच गुपचाप परिक्रमा करती तथा अपरिवर्तित किन्तु मयूर स्वर में भजना का पाठ करती रहती हैं। सत्रुंजय को वास्तव में आसानी से पूर्वीय प्रणय आशाओं का एक रमणीय पत्थर माना जा सकता है। जहाँ के निवासी अजमाव में मगमरमर में परिवर्तित हो गए हैं किन्तु जहाँ अमानवीय हाव सदैव सक्रिय रहते हैं धूप बजाते हैं, सब कुछ साफ-सुथरा और चमकदार रहते हैं तथा अमानवीय स्वर बैरागी की प्रशंसा में भजन गाते हैं जो हवा में गुंजते रहते हैं।”

अध्याय १७

चतुर्थ सुधार-युग

हिन्दू और इस्लाम धर्म के मध्य सेषु समाप्त भवित और सूफी आन्दोलन

ब्राह्मि संस्कृति का बमब

म्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में जब उत्तरभारत पूर्ण अफगान आक्रमणकारियों के बार बार होनेवाले विनाशकारी आक्रमणों से त्रस्त था दक्षिणभारत में एक अत्यन्त बीरबहासी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का समय था। सुशक्तिगीत के प्रथम आक्रमण से केवल एक वर्ष पूर्व चोल शासक राजराज महान (११७५-११९५ ईस्वी) ने तबोर में घातक भार ग्रहण किया था। उनके शासनकाल में चोलवंश का उन्नत साम्राज्य सीपे पर पहुँच गया। चोल साम्राज्य भारत का महाद्वि बस्तुतः समुद्रीय साम्राज्य का तथा लंका निकोबार द्वीपसमूह, मलय प्रायद्वीप का एक भाग और पूर्वी द्वीप समूह इसके अंग थे। राजराज के सुयोग्य पुत्र राजेन्द्र चोल प्रथम (११९२-१२१७ ईस्वी) ने अपने मजबूत जहाजी बेड़े के बल पर बंगाल के शासक महीपाल प्रथम को पराजित करके वहाँ पर भी चोल-साम्राज्य का आधिपत्य स्थापित किया। दक्षिणभारत के विद्यालय और बीरबहासी शिव मंदिर को बर्बाद होते देखे तथा जिनमें एक ठाका भी सीमित था इसी युग में निर्मित हुए। इसी युग में प्रेम और बर्निष्टा में परिपूर्ण तमिलसाहित्य कोटीरंबम से लंका आता और कम्बुज तक प्रसारित हुआ। नवीं से म्यारहवीं शताब्दियों तक दक्षिण-पूर्वी एशिया में ब्राह्मि संस्कृति के प्रसार के उद्घोषक पणन बापेबुन्द और अंगकोर बत थे। इसी प्रकार दक्षिणभारत के जहाजी बेड़े की शक्ति का प्रमाण यह था कि राजेन्द्र चोल प्रथम ने सुमात्रा के सीमेग्रज के सम्पत्तिधारी समुद्रीय उपनिवेश को पराजित किया।

ब्राह्मि संस्कृति प्रबल और बामनमुक्त थी। उसमें आत्मिकता और बमनिरपभता, अमूर्तता और गीतात्मकता का अद्भुत समन्वय था। ब्राह्मि मूर्तिकला की आत्मा के दर्शन बाहामी, एलोरा और एलीकम्पा में शिव के धनीतिक बीमब और निमित्तता में होत हैं। ब्राह्मि मंदिरों के गोपुराओं में धर्मनिरपेक्ष और आत्मिक सूर्य परत पर परत रिलीफ में बने हैं, इनके पीछे यही पारना है कि ईश्वरता सर्वव्यापी है। मंदिरों के भीतर विमानों में विद्यालय लिपि अक्षरों कीरसापर में विद्यालय करते विष्णु की विद्यालय मूर्तियाँ हैं—य दो गो ही ईश्वर की पारसीकिकता के प्रतीक हैं। इनके अतिरिक्त शिव गटराज की कला एक मूर्तियाँ भी हैं। सुधारणम काश्य मूर्तियों को चोल-साम्राज्य के बीरबहासी समय में

सजा गया था। सातवीं से नवीं सताब्दियों तक भ्रमणशील भजनीकों अथवा भ्रातृचारों का अधिभारत में प्राधान्य था। इन्होंने एक प्रेममय एवं कोमल मानवीय तथा सभी भावनाभार को जन्म दिया। इस भार के कारण भी शिव और कृष्ण की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ बन सकीं। उदाहरणतः कला एवं साहित्य के संरक्षक बीनबायक शिव तथा सर्वनृत्य में शीन कामिय कृष्ण।

भ्रातृचार धर्म का अंशदान

भ्रातृचार ब्राह्मण में रामानुज रामानन्द परम्परा के अच्छे सम्प्रदायिक थे। वे ईश्वरीय कृपा और मानव की भक्ति को मुक्ति का महान मार्ग मानते थे। सर्वप्रसिद्ध भ्रातृचार वे नम्माचार। उन्होंने 'तिरविक्कम्' की रचना की जिसमें ईश्वर के प्रति प्रसीम प्रेम का समावेश है।

भ्रातृचार केवल एक सोरसाह ईमानदार धर्म के पक्षधर माने जाते हैं। उन्होंने ब्राह्मण धर्म पुजारीवाद और वर्णव्यवस्था तक को अस्वीकार कर दिया। वर्णव्यवस्था के विरोध में कपिल ने निम्न श्लोक प्रस्तुत किया : 'उडिया अयेण्डु, हुण छिह्छी पठली कमरवासे जानक यवन और बीनी सोनों के विभिन्न देशों में ब्राह्मण नहीं है। किन्तु आपने इस देश में चार्तुवर्ण विभाजन कर दिया मामो यह व्यवस्था स्वयं प्रकृति ने की है। अच्छ और निम्न श्रेणियों का अन्तर आधारित है होता है। गाय और भैंस अलग-अलग जातियों के होते हैं। क्या कभी किसीने देखा है कि इन जातियों के गाय और भैंस आपस में मिलकर सन्तान पैदा करते हैं? किन्तु हे मनुष्यो आप सब एकही जाति के हैं, फिर भी इतना नहीं समझते कि जिन जातियों को आप भजन भक्ति कोषित करते हैं उनके स्त्री-पुरुष के सम्पर्क से सन्तानोत्पत्ति हो सकती है। क्या किसी पुनर् स्त्री और ब्राह्मण के संयोग से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण-व्यपति से उत्पन्न पुत्र के समान नहीं होते? अपने भजनों में भ्रातृचारों ने सदैव इसीपर जोर दिया है कि परमात्मा की कृपा सभी जीवों पर समान रूप से होती है। फिर चाहे उनका जन्म जैसे भी हुआ हो और जीवन में उनकी कोई भी स्थिति हो। भ्रातृचार धर्म में सार्वभौम मुक्ति का स्वान भाव तथा ईश्वरीय दया और मानव की प्रवृत्ति को परस्पर सम्बन्धित माना गया है। यही भाव में भगवत धर्म का केन्द्रबिन्दु बना।

नव्वर प्राणियों के प्रति ईश्वरीय अनुकम्पा का जितना जितना और सदास बर्षों में भ्रातृचार धर्म के भजन में हुआ है वह अत्यन्त दुर्लभ है। भजन का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है।

तुमने उसे जब जीवन-शत्रु या नीच नहीं कहा बल्कि दया बिखलाई
तुम्हारी कृपा उसपर हुई और बोले 'वह भीत हिरणी के से सलज्ज नयनोंवासी
तुम्हारी सखी है—और बहुत तुम्हारी है
और हृदय से जब वह पागे वह पाया
तो तुमने कहा 'तुम मेरे सखा हो यही रहो।

ये धर्म मेरे हृदय में बस गए हैं
धीरे मैं तुम्हारे चरणों में पा गया हूँ
हे सागर समामन्त्रण
हे सुन्दर कुंज सुखोन्मिष श्री रंगम स्वामी।

पवन-पुत्र की तुमने जानर जागकर
धर्म जाति का मानकर धनहेमना नहीं की
बन्धन उससे प्रेम किया जिससे
ससकी प्रीति धीरे चाह समुद्र से भी बढ़ गई
धीरे बोले 'ओ कृष्ण मेरे लिए तुमने किया है
ससका कोई प्रतिदान नहीं हो सकता
ओ निर्मल सत्यवर्मी मैं तुम्हें गले लगाता हूँ।
ऐसा उज्ज्वल करवान मुझे मिले इस भाससा से
मैंने तुम्हारे चरणों की धारण की है,
हे सुन्दर कुंज सुखोन्मिष श्री रंगम स्वामी।

सुन्दर सरोवर में सुमन्वित सुपनों से घिरा
सनेत्र नमकों को छोड़ रहा था कि
एक भारी प्राह ने उसे पकड़ लिया
वह मरणासन्न हो चला तो उसने
तुम्हारे चरणों में शरण लेने की सोची
तुमने ऐसा प्रचण्ड क्रोध दिखाया कि
सस विकरालमुख पशु का प्राणान्त हो गया
तुम्हारे इस बात ने भी तुम्हारे चरणों की धारण की है
हे सुन्दर कुंज सुखोन्मिष श्री रंगम स्वामी।

विप-दपकावा कुंज भाग समीप हो
जब तुम्हारी धारण में आया
तो तुमने उसे धारण की और अपने सुन्दर सेवक
बन्धन की रक्षा में उसे छोड़ दिया।
तुम्हारी इस कृपा को जानकर ही मैं
कटुभाषी धीरे पूर समुद्रों के भय से
उन कष्टों के भय से जो वे मुझे लेंगे
तुम्हारे पास आया हूँ तुम्हारे सेवक ने
तुम्हारे चरणों की धारण की है,
हे सुन्दर कुंज सुखोन्मिष श्री रंगम स्वामी।

(श्रुत के अनुवाद से)

दक्षिणभारत के प्रसिद्ध ज्ञानपीठ कांची में 'धीमन्मायवतम्' की रचना घायस ६००-१००० ईस्वी के बीरान हुई। सम्पूर्ण भारत के भक्ति-ध्यात्मोत्थान पर इस ग्रन्थ का गम्भीर प्रभाव पड़ा। इसका सम्पूर्ण प्रभाव सम्भवतः भगवद्गीता के प्रभाव से भी अधिक था। मध्ययुग में इसे 'महाभाष्य' कहा जाने लगा। इसने ब्राह्मण-परम्परा को विकसित किया तथा ईश्वर की अज्ञेय पारमार्थिक प्रकृति पर जोर दिया। ग्यारहवीं शताब्दी के पहले दशक में जिस समय उत्तरभारत में महमूद गजनवी अथवा बृटपाट से मरे पुरे और बिनाशकारी अभियानों का प्रारम्भ कर, तथा उत्तर के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की बड़े तक हिंसाएं दे रहा था। उसी समय दक्षिण में सर्वोच्च और रहस्यवादीयों का युग समाप्त का चिह्न और वाद्यों का युग प्रारम्भ हो रहा था। अन्तिम रहस्यवादी थे नम्मान्यार जिसके शिष्य माधमुनि ने १० ईस्वी में सबनों (ग्रन्थों) का विरपात संग्रह किया। ये ग्रन्थ आज भी दक्षिणभारत के बड़े मन्दिरों में गाए जाते हैं।

माधमुनि के पीछे रामानुजाचार्य उनके धार्मिक धर्म भी थे तथा रामानुज के प्रपञ्च थे। इसी समय वैष्णवों और शैवों का ईश्वर की एकता और व्यक्तिगत देवता की उपासना-सम्बन्धी पारस्परिक अन्तर समाप्त हो गया। बौद्ध और जैन धर्मों का तीव्रता पूर्वक पतन हो रहा था। नियम-निष्ठता तथा वर्णव्यवस्था के विरुद्ध भावना दृढ़ होती जा रही थी। बौद्धिक स्तर पर 'युद्धमीमांसा' के विरुद्ध बिबि-विधान के विरुद्ध भावनाएँ दृढ़तर होती जा रही थी तथा शंकराचार्य का सामान्य-सिद्धान्त कमजोर पड़ रहा था।

रामानुज की नतिज निष्ठा और भक्ति

यही वह बौद्धिक वातावरण था जिसमें महान् वाचनिक रामानुज (१०१४-१११७ ईस्वी) ने—जिन्होंने कांची में शंकर के 'कैवल्य भूत' का सर्वप्रथम नाम प्राप्त किया था—मनने मुद्रित 'विशिष्टाद्वैत' के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। विशिष्टाद्वैत में विवेक और अन्तर्ज्ञान सर्वव्यापकता और पारमार्थिकता का समन्वय है। यही कारण है कि शंकर के कट्टर पारमार्थिक भूत की तुलना में विशिष्टाद्वैत समकालीनों को कई ढंगों से अधिक प्रभावित कर सका। इस सिद्धान्त के अनुसार, ब्रह्म की प्रकृति तथा ब्रह्म एक मयार्थ आत्मवेदित ब्रह्मवत् जीव के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट समझना ज्ञान नहीं प्रत्युत ज्ञान और ज्ञान के धार्मिक अन्तर्ज्ञान के ज्ञान पर ही सम्भव है। जीव ब्रह्म का एक रूप है—ब्रह्म के ही समान 'चित्' और 'चित्' दोनों हैं अर्थात् ब्रह्ममूक्त अपरिवर्तनीय और सर्वोपरि भी है तथा कर्म-बन्धनों में जकड़ा हुआ तथा पापिन बन्धनों से सम्बन्धित भी। अनेक बन्धनों और परिवर्तनीयता से मुक्ति पाने के बाद ही जीव ब्रह्म के साथ एकाकार हो सकता है जो उसका आत्मिक ब्रह्म है। जीव की यह मुक्ति 'विष्णु पुराण' के अनुसार, (शंकर के ठीक विपरीत रामानुज के विष्णुपुराण का अधिक उदाहरण दिया है) नम्मान्यार जैसे रहस्यवादीयों के समान (रामानुज नम्मान्यार के अनुगम्य मानते थे) तीव्र धार्मिक स्वरूप के परमात्मा ही सम्भव है। भक्ति या प्रपञ्च के रूप में परमेश्वर के सामने आने के उदाहरण ईश्वर मुक्तिदायक प्रेम है और जीव के साथ सम्बन्ध के लिए आसायित है। इस प्रकार, परिचित एवं अज्ञानी जीव

ऊपर उठकर अपनी प्रतिबन्ध प्रगल्भता एवं सर्वज्ञता में समाहित हो जाता है तथा मानव के प्रत्येक कार्य—श्रेय सहयोग और सेवा—में सत्य और धर्म का समावेश हो जाता है।

चंद्र का सिद्धान्त वा कि स्मृत यथार्थ एक मायावी खेल मात्र है। रामानुज का महत्त्व सिद्धान्त एक इतिहासिक मुद्दे के रूप में ही परिणाम है। रामानुज का मत था। नाबुद्धि और उनके बीच घसकावट में भी जिन्होंने बलिष्ठा की प्रामाणिक-परम्परा में पाश्चात्य का समावेश किया विशिष्टाईत को बहुत प्रभावित किया था। विशिष्टाईत वास्तव में उत्तरभारत के पुराने भावगत धर्म तथा दक्षिणभारतीय धामधारों के रहस्यमय भावोन्माद के सम्मिश्रण का सुफल है। इसमें वेदान्त के 'व्यापन तथा भक्ति' दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। जीव की अन्तःप्रज्ञा का नाम है बाहुबल और इसका रूप इस प्रकार है जो पावन परमेश्वर, मैं तू हूँ और तू मैं। चंद्र वेदान्त के परम पावन और निर्विकार ईश्वर विशिष्टाईत में घासक न रहकर मुक्तिदाता हो गए हैं और जननी हो पा कर्य से परे हैं। ब्रह्मपद और प्रेम (नारायण और श्री) के ईतक प्रह्वन करता है। वह सौंदर्य (नूतनसुन्दर) और शिव भी है। जो सांसारिकता से परे है। वह अपने ही जीव नरवर प्राणी (महारामन्) के साथ संयोग करना चाहता है और इसलिए मानवीय शरीर के भीतर प्रेम का रूप धारण कर घबरीला होता है। भगवद्गीता में लिखा है 'जो सब (धर्म का पावन करनेवाले चारों धर्म) खोले हैं किन्तु ज्ञानी पुरुष मैं स्वयं को ही समझता हूँ। भगवद्गीता की अपनी टीका में रामानुज प्रश्न करते हैं कि इस ज्ञान की प्रकृति क्या है और उत्तर देते हैं 'मेरा जीवन ही उसपर निर्भर है। यदि पूछा जाए कि यह कैसे तो इसका कारण यह है कि जिस प्रकार वह मेरे—अपने अन्तिम सदन—के बिना नहीं रह सकता उसी प्रकार मैं उसके बिना नहीं रह सकता। कुछ निष्पक्ष मानव अपने भक्ति और ज्ञान के बल पर ईश्वर को प्राप्त कर लेता है तथा मानवता को मुक्ति दिसाने के प्रयास में ईश्वर का सहयोगी बन जाता है। अन्ततः मानवता को वास्तविक सामूहिक ध्यान और सुख की प्राप्ति होती है। रामानुज की सेवा और प्रेम की यह भाँव चंद्र के पश्चात्तरता और माया-सिद्धान्तों से अधिक सुनिश्चित है।

वेदेष्वधर्म का प्रजातमीकरण

चंद्र वेदान्त में विश्व की दुर्बलताओं और दुर्गुणों पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। इसीलिए उसमें नैतिकता की प्रसमयता है। विश्व की दुर्बलताओं और दुर्गुणों को ऐसे ब्रह्म की धारमकता नहीं है जो संसार और मानव का मुख्य करने के पश्चात् उन्हें उनके भाग्य पर छोड़ दे। धर्म ऐसे ब्रह्म की धारमकता है जो धार दे, प्रोत्साहित करे और प्रसमय हो। रामानुज ने किसी अमूर्त कुछ निर्विकार और निराकार ब्रह्म के विचार पर नहीं बल्कि उसके असीम शिवम् और सुन्दरम् गुणों पर जोर दिया (धनुन ईश्वर)। चंद्र के माया-सिद्धान्त के अनुसार इस पापमय संसार में ईश्वर की सेवा तथा मन्त्रों के प्राधान्य धारम और सुख का कोई स्थान नहीं है। यद्यपि रामानुज ने इसका खंडन किया। विशिष्टाईत का नैतिक पहलू है। ईश्वर को अन्तर्द्विती मायागया तथा कम-

सिद्धांत को—जो सुखन और विनाश की विरुद्धापी प्रक्रियाओं के बीच भी महत्वपूर्ण है—ईश्वरेच्छा एवं ईश्वरोद्देश्य का प्रतिफल माना गया। दोनों ही बीच को धर्म की ओर प्रवृत्त करनेवाले हैं। भक्ति प्रथमा प्रपत्ति स्वयं धर्मानुसाहित जीवन का प्रतिफलन है और ईश्वर की कृपा उसका साधन सहारा और प्रेरणा है। धार्मिक दृष्टिकोण से वेदान्त के कुछ भिराकार और भिन्निकार ईश्वर के स्थान पर ऐसे ईश्वर को मायता व जिसकी 'सीता' का एक धर्म है मानव का सहयोगी बनना यह ईश्वर प्रेममय और निष्पक्षपाती है तथा मानव उसकी स्थिति की आकांक्षा कर तथा सदैव के लिए उस तक पहुंच सकता है। सामाजिक पक्ष भी है विशिष्टाद्वैत का। इसके अनुसार मानव के सभी अर्थों और आदर्श कार्यों में ईश्वर की उपस्थिति होती है फिर चाहे कार्य करनेवाला कोई भी हो। यह धारणा असौम सामाजिक सम्भावना और सहिष्णुता को जन्म देती है जो बण और सम्प्रदाय की विभिन्न सीमाओं को तोड़कर प्रेम सेवा और सहयोग की भावनाओं द्वारा आसित धार्मिक समाज का निर्माण करती है। अपने सीमाप्य में तथा मुक्त में मानव-मूर्तता और ईश्वर भक्ति के निम्नलिखित सात साधन मिलाए हैं विवेक विमोक्ष धर्म्यास क्रिया कल्याण धनवसाव और अनुकूल्य। इस प्रकार रामानुज-वेदांत प्रवक्ता ब्रह्मज्ञान का धर्म है अथवा प्रयास और सहयोग। विशिष्टाद्वैत नैतिक दृष्टि से ईमानदार, धार्मिक दृष्टि से स्तुतिमय और सामाजिक दृष्टि से समतावादी है।

रामानुज एक गम्भीर दार्शनिक मानव के वर्तमान अत्यधिक साहसी और उदार सामाजिक दृष्टिकोण वाले आध्यात्मिक नेता भी थे। संकर के समान उन्होंने भी उत्तर भारत की भाषा की तथा वे बनारस अयोध्या द्वारा जगन्नाथ और बरौरी भी गए। बनारस और जगन्नाथ में उन्होंने बौद्ध विचारकों के साथ वास्तवार्थ किया। और वन वापस पहुंचकर उन्होंने विशिष्टाद्वैत रहस्य के प्रसारार्थ सम्पूर्ण दक्षिणभारत को चौहतर इलाकों में विभाजित किया और प्रत्येक इलाके का आविर्भाव एक सामान्य आचार्य की रीति। जोन-सम्राट के अत्याचारों के कारण उन्हें सबभग बीच बप होवसम राज्य में बिताने पड़े। इस दौरान उन्होंने विचारों के लिए कई जालाओं मठों और मंदिरों का निर्माण कराया। और वन के उत्तर में मासीकोट (दक्षिण बरौरीकाश्रम) का मंदिर भी उन्होंने बनवाया हुआ है। पंथों की अभिचार दिया गया कि वर्ष में एक बार वे पत्रार्थ उसमें प्रवेश कर सकते थे। किन्तु नहीं है कि वे अपनी मुसलमान पत्नी के साथ-साथ रामप्रिय (कृष्ण) की एक मूर्ति दिल्ली से मासीकोट लाए थे और इसमें प्रार्थनों में उनकी सहायता की थी। उनकी स्थापन दृष्टि और सामाजिक भाव-भावना को देखते हुए यह किन्तु नहीं सत्य मान्य पड़ती है। उनके जीवन-सेवाओं का कथन है कि वे जात-पात से ऊपर थे और पिछे थे ग्राहण—जैसे पिछे ई और सर्वविस्मितास—य। वैष्णवधर्म सामाजिक प्रगति फैलाए बिना किसी सीमा तक दक्षिणभारत में जनता में फैल गया। इसके कारण व समित प्रवृत्तियों के अध्ययन और प्रसार, मंदिर-उत्सवों की प्रवा अज्ञानों को वैष्णव-धर्मावलम्बियों के जाति-विच्छेदों और जीवन-पद्धति को धनाने की आज्ञा तथा कम से कम ईश्वर के एक मंदिर में पंथों की प्रवेशाधिकार और इन सबपर रामानुज का स्थापन प्रभाव था।

रामानन्द के नेतृत्व में चौथा महान् धर्मसुधार

रामानुज जिस वार्षिक प्रादोशन के नेता थे उसमें संसार की यथावस्था एवं बीज की धारणतता पर जोर दिया गया था तथा उन्हें धार्मिक-धार्मा एवं ब्रह्म से धनम बताया गया था। रामानुज के पश्चात् उनसे परम्परागत समकालीन निम्बाक (जिसकी मृत्यु ११६२ ईस्वी के आसपास हुई) माधव (१२००-१२७५ ईस्वी) सोकाचार्य (१२१३ ईस्वी) और वेदान्तदेशिक (१२६८-१३६६ ईस्वी) ने मत को धामे बताया। सन् १३०० ईस्वी में मुसलमान अधिकार प्रसार दक्षिण की ओर होने लगा। साथ ही निम्बाक और सुटपाट का भी बोलावला रहा। मलिक काफूर के दक्षिण-अग्निमान का घण्ट १३११ ईस्वी में पड़ा। इसके परिणाम में दक्षिण के यादववंश तथा मैसूर के होयसम बंध की पराजय मलाबार और कोरमंडल तटों पर सुटपाट मंदिरों का विनाश एवं स्वर्ण तथा हरात व स्तंभों पर अधिकार। मुसलमानों के धर्माचारों और हस्त्याक्रांतों से धनती जान बचाने के लिए सोकाचार्य और वेदान्तदेशिक जैसे विचारकों तट को सामना पड़ा। सेतुबन्ध पर एक संसजित का निर्माण हुआ। तथा धीरमम् को जहाँ अनेक ब्रह्मण्ड रहते थे तथा रामानुज ने उत्तरेष्ट दिए थे १३२६ ईस्वी में ब्रह्म मुटा गया।

१३०० ईस्वी तक सम्पूर्ण भारत को मुसलमानों की विनाशनीला और धर्माचारों का धनम हो चुका था। किन्तु अभी बचे दक्षिण में रामानन्द (जन्म १२६६-१४१० ईस्वी) का जन्म हुआ। रामानन्द ने उत्तरभारत में एक सामाजिक-धार्मिक प्रादोशन का सूत्रपात किया जो अनेक दृष्टियों से बौद्धधर्म के समान था। इस प्रादोशन ने बाट-पाट के बन्धनों और धार्मिक कर्मकाण्डवाद की कसर तोड़ दी सभी जातियों और वर्गों के लोगों को बिना भेदभाव विम्वल प्रदान करने की व्यवस्था की तथा धर्म-अध्यायों को धनमाया का उपयोग किया। इसी संदर्भ में दक्षिण में धीर धर्ममत का उत्थान की बात आती है। इस धर्म की स्थापना एक जैन राजा के प्रधानमंत्री बसव ने की थी। बसव ने धर्ममत में धर्मस्मिता व्यावहारिक सहज ज्ञान तथा धर्मार्थवाद का समावेश करके उसे नया जीवन प्रदान किया। बसव ने धार्मिक धर्म की महत्ता और जीवन निर्वाह के लिए व्यवसाय धनमाये पर जोर दिया बाट-पाट के धर्मवाद को समाप्त किया तथा स्तंभों का समान सामाजिक स्थिति प्रदान की। बसव ने सन्मय ११६० ईस्वी में 'विबानुम मंडप' नामक एक संस्था स्थापित की। स्पष्ट है कि बसव के विचारों तथा संस्था दोनों ही इस्लाम के प्रसार और धर्म परिवर्तन-नीति के प्रतिक्रियास्वरूप जन्मे थे। किन्तु चौथे महान् धर्मसुधार का सूत्रपात न तो बसव ने किया और न उनके धर्म समकालीन रामानुज ने। इसका धारण किया रामानन्द ने। भारत के जन-सामान्य के जीवन पर संकर के तीव्र धर्मसुधार थे कहीं अधिक और विस्तृत प्रभाव चौथे धर्मसुधार का पड़ा। तीव्र धर्मसुधार ने भारतीय जनता का स्वर्णमान किया था—उसका प्रभाव उच्च बौद्धिक स्तरों व्यक्तिगत उच्च सांख्यिक मठों और संस्कृत विद्यापीठों पर हुआ। पराजित और निराश उत्तरभारत को चौथे महान् धर्मसुधार की प्रेरणा दक्षिण से मिली। उस समय इस्लाम-अधीनतायी और-अवैरुद्धी करके रिश्तत बैक, अकास के समय में

मुसलमान भोजन का वितरण करके तथा समस्त देश में फैली हुए मुसलमान सगुलों और मरतों के उपदेशों के बल पर हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे थे। चौथे महान धर्मसुधार ने इसका उत्तर दिया एक वर्णविहीन हिन्दू धर्म-परिवर्तन आंदोलन चलाकर। इस आंदोलन के पक्ष स्वरूप निम्न जातियाँ भारत के कुछ अष्टतम रहस्यवादियों और भक्तों का उद्भव हुआ।

तिरमुलर त्रिगका जीवनकाल इस सहस्राब्दी से पहले का बताया जा कि केवल एक जाति है और केवल एक ईश्वर। नम्मासवार के अनुसार जाति के कारण कोई व्यक्ति बड़ा या छोटा नहीं हो जाता। केवल ईश्वर की पहचान ही वह बड़ी चीज है जिसके बल पर लोगों को बड़ा या छोटा ठहराया जा सकता है। शिव रहस्यवादी पत्तकिरिमार सम्पूर्ण मानव-जाति के ब्रह्म के पक्षपाती थे।

जाति-श्रमा की संज्ञाया से मुक्त

हमारी जाति सब एक विश्वास बिरादरी बन पाएगी

इस संज्ञा को कविस ने सहा था

धीरे दिखाया था कि कभी मनुष्य केवल मनुष्य था।

उत्तरभारत में रामानन्द और कबीर महाराष्ट्र में नामदेव और उनके उत्तरा विचारियों तथा पूर्वीय भारत में चतुर्धर और उनके शिष्यों के उपदेशों के निम्नलिखित परिणाम हुए हिन्दू मठों की ईश्वरवादी प्रकृति सामाजिक समता का आंदोलन तथा स्वदेशी भाषाओं के साहित्य का उत्थान। पञ्जाब में नामक और उनके अनुयायियों ने दून प्रकृतियों में एक और प्रकृति का समावेश किया। यह श्री राजनीतिक एकता की प्रकृति—महादेव और श्याम के बल पर समस्त सिख-समुदाय को एक सूत्र से बाँधना। एक और तथ्य भी महत्वपूर्ण है। दो प्रक्रियाएँ उस समय शायद साथ चल रही थीं। एक ओर चौथे धर्मसुधार के नेता रामानन्द विजयनगर के मालीकोट नामक स्थान से (जहाँ दो क्षत्रादियों हैं) प्रथम समय पहले रामानुज ने रामप्रिय संश्लिष्टों के द्वार पक्षियों के लिए भी खोल दिए थे) रवाना होकर भारत की यात्रा पर चल पड़े थे और विभिन्न वर्गों के धर्मों के सम्पर्क के बीच नवीन अनुभव प्राप्त कर रहे थे। वास्तव में यही कारण था कि रामानन्द ने परम्परा से हटकर निम्न वर्गों को पूर्ण धार्मिक समानता प्रदान की तथा एक ऐसे सम्प्रदाय की स्थापना की जो हिन्दू और मुसलमान दोनों की भक्ति की अभिव्यक्ति कर सकें। दूसरी ओर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हो रही थी (१३१६ ईस्वी)। आध्यात्मिक क्षत्रादियों में अग्निभारत में मुसलमानों की प्रगति को रोकने का काम कवच विजयनगर राज्य ने किया। सामाजिक-धार्मिक आंदोलन तथा राजनीतिक एकता आदि सब समसामयिक थे। यह तथ्य भारतीय इतिहास में तथाकथित 'अधुना' में हिन्दू संस्कृति को श्रेष्ठ बौद्धिक सज्जित एवं शोचस्वित्ता का अनादम्य प्रमाण है।

रामानन्द का क्षेत्रीय एवं सामाजिक समन्वय

चौथे महान धर्मसुधार (अथवा सामाजिक-धार्मिक जाति) का प्रसार और प्रभाव अथवा महाराष्ट्र से बंगाल और पञ्जाब में उड़ीसा तक समस्त उत्तरभारत में हो गया। रामानन्द को भारतीय "निहास" और संस्कृति के महानतम व्यक्तियों में से एक

प्रधान थी। दूसरी थी हृत्पुष्पमल्लिखाद्या। तीसरी साक्षात् नाथ और सहज परम्पराओं से सम्भूत जो तथा इसके अनुयायी कबीर एवं अन्य निर्गुण सन्त थे। इस साक्षात् में भीत भयभीत विधिष्ठानों के साथी धारणाओं योग और ब्रह्मज्ञान का सम्मिश्रण था। मुसलमान मनकों और हिन्दू पद्धतों को इस तीसरी साक्षात् ने ही अधिक प्रभावित किया। उपदेश और प्रवचन जन माया ने मजनों और गीतों के रूप में जनता के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते थे तथा रहस्य वाली सन्त और कवि—जिनमें से अनेक महिमार्थ थी—हजारों की संख्या में इन मजनों और गीतों की रचना करते थे। इस दृष्टि से रामानन्द और उनके सर्वप्रथम शिष्य यूरोप के मार्टिन लूथर और उनके साधियों के समान थे। ठीक इसी प्रकार मार्टिन और उनके साधियों ने जनमाया में मजनों की रचना करके प्रोटेस्टेंट धार्मिक जीवन का प्रसार किया था। यूरोप में पापकर्म का अनुयायी एक पादरी ने कहा था कि लोग मजनों गाते हुए नास्तिक बनते जा रहे हैं। भारत में भी दूर-दूर तक इस नास्तिकतावाद का प्रसार हुआ तथा इस काम में प्रमुख जनमायाएं पुनराठी, मराठी हिन्दी और बंगला थी। इस सामूहिक धार्मिकता के लिए एक और महत्वपूर्ण बात यह थी कि सामाजिक और धार्मिक बन्धुत्व तथा ब्रह्मा और दया पर जोर दिया गया था। रामानन्द द्वारा संस्थापित रामकृष्ण भक्त्या ईश्वरी धार्मिक वर्गों के विधिष्ठान में—सामाजिक समानता तथा जाति के नियम सबकी प्राचीन पक्षपात का समूल विनाश। रामानन्द का एक बहुप्रचलित उपदेश है—'किसी व्यक्ति की जाति मत पूछो और न यह पूछो कि उसका खानपान किसके साथ है। यदि कोई व्यक्ति हरि से प्रेम करता है तो वह हरि का भ्राता ही होता है। रामानन्द के धार्मिक सम्प्रदाय में अनेक जाति और वर्ग के स्त्री-पुरुष सम्मिलित हो सकते थे तथा सभी एक साथ खान-पान और आराधना कर सकते थे। पृथ्वी पर रामराज्य की पुन स्थापना व्यक्ति और समाज को परिशुद्ध करनेवाले कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक सुधारों पर निर्भर है। ये सुधार हैं— समाज में जाति-व्यति के बन्धन की समाप्ति तथा पुरोहितवाद का सम्पूर्ण पारिवारिक जीवन में एक विवाहप्रथा धरीर की परिशुद्धि तथा धर्म और धर्म के ईश्वर का विस्तार करते हुए उसके समस्त आत्मसमर्पण।

बैरागी सम्प्रदाय के बहुप्रकृत सन्त

परम्परा यह है कि भक्ति का अनुभव प्रविष्ट देश में हुआ रामानन्द ने उसका प्रवेश उत्तरभारत में कराया तथा कबीर ने उसका प्रसार संसार के सार्वभौमिकताओं और तीक्ष्णताओं में किया। त्रिभुवन के इतिहास में पहली बार किसी ऐसे सम्प्रदाय की स्थापना हुई जिसके द्वार शिवों के प्रतिरिक्त निम्नतम जातियों तथा भिन्नताओं के लिए भी खुले थे। डॉक्टर रामानुज निम्नांक और मध्य में अपने प्रवचन महत्त्व में दिए। रामानन्द और उनके शिष्यों ने अपने उत्तरभारत भ्रमण के दौरान प्रादेशिक भाषाओं में उपदेश दिए। रामानन्द के समप्रचारक अनेक जातियों के थे यह तथ्य महत्वपूर्ण है। चमार रविदास मुसलमान जुलाहा कबीर जाई देवा राजपूत वीणा तथा जाट बिसाल पन्ना के प्रतिरिक्त अनेक ब्राह्मण भी थे जो पहले रामानुज के समकालीन थे और रामानन्द के साथ ही उदात्त से धन्य हो गए थे। उनके प्रथम धर्मप्रचारक-जस मरामय एवं कसाई सदा

[जो रामायण की बटिया (बिष्णु का प्रतीक) से मांस तोलता था] जमार रीबास तथा दो स्त्रियाँ पचाबती मुरमुदी और मुरमुदानम्ब की पत्नी भी थे। ये थे रामानन्द के सर्व-प्रथम बारह-तेरह शिष्य। इनके प्रतिरिक्त उनके अन्य अनेक शिष्य थे जो अधिकारित भीषी जातियों के थे। गंगा नाम की एक बेध्या भी उनकी शिष्या थी। रामानन्द ने दो स्त्रियों को अपना धर्म प्रचारक नियुक्त करके स्त्रियों को गृहस्थपूर्ण वस्त्रा प्रदान किया। सामाजिक दृष्टि से यह काम अत्यन्त विचित्र था।

सूफी धर्म का उद्भव और प्रसार

'अविष्णुपुराण' में लिखा है कि रामानन्द के प्रभाव से अनेक स्नेहछों (अर्थात् मुसलमानों) ने ईश्वर धर्म स्वीकार कर लिया था और उनके गये में तुलसी की भाँसा भीम पर राम का नाम तथा माये पर ईश्वर लिखवा था। उन्हें 'संघोषी' कहा जाता था और वे धर्मोपदेश के समीप बस गए थे। सब तक मुसलमान सन्त और गृहस्थवादी अपने-अपने अर्थतन्त्र तथा सामाजिक धार्मिक समानता के बल पर हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन करते रहे थे किन्तु अब हिन्दुधर्म परिवर्तनकारियों के रूप में उन्हें अपना प्रभावशाली प्रतिबोधि मिल गया। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों में एक तीव्र धार्मिक सचेतनता आयी। इस सचेतनता के फलस्वरूप एक ओर तो मुसलमान सूफी मत का प्राबुध्वान हुआ तथा दूसरी ओर हिन्दू भक्तों (ईश्वर के स्वतन्त्र पुजारी और मानवता के प्रेमी) को बल मिला। नीचे रामानन्द का एक गीत दिया जाता है। यह शिष्यों के 'आदिप्रश्न' में सम्मिलित है और ध्याय उनका यही एक गीत बच पाया है। इससे स्पष्ट है कि रामानन्द तथा सूफी सन्तों के विचारों में कितनी समानता थी

कत जाइये नर लाग्यो रगु,
मेरा चित न जलै मम मयत पंगु।
एक बिबस मन लठी समस,
जसि जन्मन जोबा बहु सुखस।
पुनन जामी बह्य टाई
सो बह्य बतायी गुन मगहि माहि।
जहाँ जाइए तह जल-नरवान
तु पुरि रह्यो है सब समान।
मेव पुणन सब देखे जोई,
वहाँ न जाइए बह्य तु न होई।
सब मुख मैं बनिहारी तोर
जिनी सकस बिकट भ्रम काटे भार।
रामानन्द स्वामी रम्यत बह्य
गुरु का सबय काटे जाटि करम ॥

इस दृष्टि में सूफी सम्प्रदाय भारत में विकसित हुआ और फैला। यह हिन्दू और मुसलमान धार्मिक विचारों तथा रीति-रिवाजों के मध्य एक सन्तुलन समान था। सूफीवाद का

श्रोत अनेक और बंठित थे। इस्लाम का अपना एक रहस्यवादी ढंग था ही, किन्तु सूफी धर्म ही सूफीवाद ईगार्डियम गार्स्टिक सम्प्रदाय जवप्नेटोवाद तथा हिन्दू भागवत धर्म के सम्पर्क में आ गया। ये कारण निस्संदेह सूफीवाद के विकास में सहायक हुए। फारस के सूफी आश्रितान में सारी कमी और हाफिज जैसे विख्यात कवि भी सम्मिलित थे। ये धर्मगत मर्बदबतावाद से प्रभावित थे तथा मानवीय एवं ईश्वरीय प्रेम की धर्मिय्यक्ति के लिए उन्होंने कलात्मक धार्मिक प्रतीकों और चिन्मयों का आविष्कार किया था। सूफी धारणा धार्मिक विचारों पर हिन्दू धर्म का स्पष्ट प्रभाव है। उदाहरणतः फना की भारता का उद्गम है ब्रह्म और निर्वास के विचार। सूफी कवन में ही सत्य हूँ मैं बेबाग के सिद्धान्त-वाक्य तत्त्वमसि की प्रतिध्वनि है। सूफियों ने हिन्दू ध्यानायाम (पति धन्यस्त) चिन्तन विधियों और मंत्रों के पुनरुच्चारण (जिकर) को भी अपना लिया। भारत में सूफीवाद के विकास को सामान्यतः दो चरणों से सम्बद्ध माना जाता है। बिस्ती में मुहनुद्दीन चिस्ती (११६२-१२३६ ईस्वी) द्वारा ११६३ ईस्वी में बिस्ती पंथ तथा मुस्तान में बहाउद्दीन जकरिया मुस्तानी (११६६-१२३६ ईस्वी) द्वारा मुहनुद्दीन पंथ की स्थापना।

भक्ति और सूफी सिद्धान्तों एवं आचरणों का अन्तर्मिलन

बीरहवी और पन्धरवी शताव्दियों में भक्ति-आन्दोलन का प्रसार दूर-दूर तक हो जाने के पश्चात् सूफीवाद ने रहस्यवादी भक्ति तथा नाच व सहज योग परम्पराओं से अनेक बातें ग्रहण की। इससे उसमें परिवर्तन हुआ तथा उसकी लोकप्रियता बढ़ी। साथ ही सूफीवाद ने विभिन्न विचारधाराओं वाले धर्म्य हिन्दू सम्प्रदायों को भी प्रभावित किया। पन्धरवी शताब्दी में तीन महत्त्वपूर्ण सूफी पंथों की स्थापना हुई। मकनपुर (उत्तर प्रदेश) के बबीरुद्दीन साह मबार (मृत्यु १४३६ ईस्वी) द्वारा संस्थापित मबारी धर्मवा उपायसी पंथ जब व मुहम्मद गिस्तानी (१४८२-१४९७ ईस्वी) द्वारा संस्थापित क़ादरी पंथ तथा बिस्ती के मुहम्मद बाकी बिस्ताह (मृत्यु १५०३ ईस्वी) द्वारा संस्थापित नरुसबन्दी पंथ। तीनों पंथों की ओर बहुसंख्यक मुसलमान और इस्लाम स्वीकार करने वाले हिन्दू आकर्षित हुए। विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों और सूफी पंथों के बीच धार्मिक-धार्मिक प्रेम की सामाजिकता और चिन्तन-क्रियाओं का जूब आदान-प्रदान हुआ। यह आदान प्रदान बाहर से धक्कर तक के राज्यकाल में शुरू हुआ क्योंकि इस समय धार्मिक महिम्पुता का प्राचाल्य था जिसके फलस्वरूप सांस्कृतिक एवं धार्मिक तात्काल्य तथा समन्वय स्थापित होता था। मुम्ता बाउद (लगभग १४४० ईस्वी) श्रुतवन (लगभग १४० ईस्वी) मंथन जायसी (१४४० ईस्वी) और उस्मान (१५१३ ईस्वी) जैसे प्रसिद्ध कवानी मुसलमान लेखकों ने भारतीय साहित्य में भी सूफीवाद का प्रवेश किया। इन्हीं ज्ञानी रचनाकारों ने भजन और सीमा के प्रेम और बिरह की तीव्रता एवं प्रतीकात्मकता को भारतीय काव्य और धर्म में प्रवेश कराया। बबीर भी सूफी चर्यों से सम्बद्ध हो गए। यह भी एक कारण था कि ईश्वर तक पहुँचने के माध्यम रूप में फारसी की प्रेम प्रतीकात्मकता को अपनाया गया। यह प्रतीकात्मकता बाद में शुरू प्रचलित हुई।

मुसलमान चर्यों का निकट-धर्म्य एक ओर तो नाच और सहज सम्प्रदायों की

साध-साधना के साथ हुआ और दूसरी ओर वैष्णवधर्म के वैयक्तिक प्राधम्यदेव के प्रति सम्मीरतम प्रेम (जिसका उद्गम प्राचीन मायवत धर्म में था) के साथ। इन्हीं सम्पर्कों ने भारतीय सूफीवाद का स्वरूप निर्धारित किया। मुसलमान अपनी शक्ति कमजोर करते गए, किन्तु जमसामान्य के जीवन का रसैया झटूटा हो रहा। निम्न जातियों के लोगों का मुसलमान बनना जारी रहा। इस धर्म-परिवर्तन के कई कारण थे। हिन्दुओं की असुविधाएँ, और अजिया से मुक्ति प्रदान के समय मूल की वंशजा से छुटकारा व मुझों के शौर्यम युगम न बनाए जाने की भाषा। किन्तु इसके सामाजिक ढाँचे में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। कारण मुसलमान बननेवाले हिन्दु पाय का पास न जाते थे बिधवा विवाह से बचते थे और सामान्य हिन्दुपद्धति के अनुसार ही जीवन व्यतीत करते थे। देहातों में हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए समानरूप से हानिकर धर्म महामारी प्रचवा चल रही थी। इनसे बचने के लिए समानरूप से हानिकर धर्म महामारी लोगों का सम्मान करती थी पीरों के मकबूरों को पूजती थी तथा सम्मिश्रित पूजागृहों में मुसलमानों के साथ-साथ पूजा करती थी। हिन्दु और मुसलमान दक्षिणोत्तरी मोम परिवर्तन हिन्दु मतों और वैचारिकों तथा मुसलमान सूफी और कबीरों—ने जाति और धर्म की दीवारों को तोड़ने तथा जातीयता की सीमाओं (जिनके भीतर हिन्दु और इस्लाम दोनों धर्मों का परिवर्तन था) से परे ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम के उपदेश देने की जिम्मेदारी अपने पर ले ली। इस प्रकार भारतीय भूमि पर इस्लाम के सूफी शिखाओं और हिन्दुधर्म की सक्तिमात्रता का अन्तमिथ्यन हुआ।

पाँचवा की धर्मोत्तम मसजिद आगम के ताबमहल पीड़ की सोना मसजिद ब कदम रमूल तथा माँह के हिलोता और बहाबमहल में हिन्दु और मुसलमान कसा एवं कारीबरी को प्रलय प्रलय पहचानना अवसम्भव है। ठीक इसी प्रकार रामानन्द कबीर, मानक बाबू और मीराबाई जैसे हिन्दु तथा सत्तल शाह लतीफ और गुब अर्जुन जैसे सूफियों के मतनों में हिन्दु और मुसलमान तथ्यों को प्रलय कर पाणा भी अवसम्भव है। सम्मयुग के बामिक विद्रोहियों अर्थात् मतनों और सूफियों ने अपने उदार उपदेशों और नक्ति-मुक्त के मत पर आधुनिक भारत के बामिक विद्रोहों और नक्ति का स्वरूप निर्धारण किया है। एक विषयवर्गीय अनुमान है कि भारत के दो विद्रोह मुसलमान किसी न किसी सूफी पंथ से प्रभावित हैं। धर्म का बाहरी लोभ मतों और जातियों को वृषक करवा है। इसके विपरीत सूफीवाद और अन्तिम-आन्दोलन भारत में इस्लाम और हिन्दु धर्म के आध्यात्मिक सार-सार हैं और इन्होंने राजनीतिक सम्बन्धों की उपल-मुक्त के बावजूद दोनों संस्कृतियों को एकत्र में बांधने का काय दुष्टापूर्वक किया है।

कबीर, दादू और मानक के उदार उपदेश भारत के बामिक इतिहास में तीन सुविख्यात धार्मिक व्यक्तित्व मिलमिसाते हैं कबीर बाबू और मानक। तीनों रामानन्दी परम्परा के थे। तीनों ने साहसपूर्वक हिन्दुधर्म

और इस्लाम को एक करने का प्रयास किया, तथा हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के बहु सत्वक लोग उनके अनुयायी बने। तीनों ने ही समानरूप से अंधविश्वास और कर्मकांड का विनाश किया। कबीर (१४१०-१५१८ ईस्वी) में रामानादी योगब्रह्माधी और सुफी परम्पराओं का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ और वे अत्यन्त उदार सर्वधर्मसारसंग्राही तथा समीर बिम्ब बन गए। उन्होंने संसारमय धर्म को एक एकाग्रता मात्र मात्रा जाति प्रथा साम्प्रदायिकता तपस्या तथा अन्य पूजाविधियों का बुझतापूबक खंडन किया और सीधे आध्यात्मिक अन्तर्ज्ञान (सहज) द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की बात कही। सत्य तो यह है कि ईश्वर का निवास प्रत्येक मनुष्य के हृदय में है। मुसलमान व एक शूद्रा है किन्तु कबीर का ईश्वर सर्वव्याप्य है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर इस्लाम के कड़िबारी अद्वैतवाद को नहीं मानते

मोको कहाँ बूँदे बन्द मैं ता तेरे पास में।

ना मैं देवस ना मैं भसविह ना काहे कैलास में।

ना तो कोनो क्रियाकर्म में नही लोग-बैराग में।

छोडी होय तो तुलै मिलिहौं पल भर की ताबास में।^१

महमदाबाद ने संत वाद (१५४४-१६०० ईस्वी) जाति से जुनाहू और कबीर पक्षी थे। उन्होंने सम्पूर्ण उत्तरभारत का लुभ भ्रमण किया तथा एक दरबार पर सम्राट अकबर से भेंट की। उनमें गम्भीर आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि तथा आध्यात्मिक दृष्टि का प्रपूर्व सम्मिश्रण हुआ जिसके फलस्वरूप विश्व के आत्मिक काव्य के कुछ अत्यन्त मूल्यवान् रत्नों का जन्म हुआ। उनकी एक विशेषता यह भी थी कि वे हिन्दी सिधी मुबराती मारवाड़ी मराठी और फारसी में काव्यरचना करने में सक्षम थे। वे कहते हैं

सखी मेरे हृदय की व्यथा सुनो

मैं अपने प्रिय के बिना व्याकुल हूँ।

जैसे बिना बाली के मछली तड़पती है,

उसी तरह मैं अपने प्रिय के बिना घसता हूँ।

अपने प्रिय के लिए पागल होकर मैं रास-रिन गीत गाती हूँ

मैं अपना बर्ब मैना की तरह उड़ेलती हूँ।

कौन मुझे मेरे प्रिय के पास से लैगा ?

कौन मुझे उनकी राह दिखाएगा और मेरे हृदय को समझना दया ?

दाहू कहती है कि है ईश्वर।

मुझे एक क्षणमात्र के लिए दर्शन देकर कुत कुर्य कर दे।

नामक (१४६२-१५१८ ईस्वी) में वंशज से शिखरधर्म की संस्थापना की। सबसे सत्ताईठ वष की अवस्था में नामक की भेंट कबीर से हुई। उक्त समय के कबीर के भक्तों में

१. मरुतुम पद की विशेषता हरि सत्पारिजित-सुद-सार (पद्यम सुवर्ण १६५३) में मिलती है।
—अनुवादक।

से सुपरिचित थे। प्रायः भी सिध प्रतिदिन कबीर के भक्तों का पाठ करते हैं। अपने जीवन भर नानक साहसपूर्वक हिन्दू और इस्लाम दोनों की कट्टरता अन्धविश्वास और भौतिकता को दूर करने का प्रयास करते रहे। उन्होंने सत्य की ईश्वर (सत् की प्रकाश—ईश्वर सत्य है) मानकर केवल एक ईश्वर पर तथा मनुष्यों के पारस्परिक बन्धुत्व पर जोर दिया। साथ ही उन्होंने धार्ष्ट एवं धर्मपरायण जीवन व्यतीत करने प्रार्थित धर्म दान और सहयोग के सामाजिक गुणों को प्रपनाने का आग्रह किया। उन्होंने धार्मिकता की बेसी पर धार्मिक भौतिकता एवं कर्मकांड का बलिदान कर दिया यह एक मुसलमान को सम्बोधित निम्न भक्तों से स्पष्ट है

मिहिर मसीति सिद्ध मुसना हकु इसाकु कुराणु ।

सरम सुनति सीसु रोबा होहु मुसलमानु ॥

प्रार्थित (प्रार्थियों के ऊपर) दया को मसजिब (बनामो) अर्थात् मुसलमानों की ओर हकु की कमाई को कुरान। (दूरे कर्मों के प्रति) सरमा को सुनत (मानो) सीस-स्वभाव को रोबा (बनामो) (हे भाई इस विधि से) मुसलमान बनो।

पांच नमाजों हैं नमाजों के लिए पांच समय हैं तथा उनके पूर्वक-पूर्वक पांच नाम हैं

पहिला सधु हमस बुह तीबा चौर मुवाह ।

चउथी नीमति रासि मनु पंचवीं सिफति सनाह ॥

प्रार्थित सब कोसना पहली नमाज है हुब की नमाई दूसरी नमाज का नाम है परमात्मा से सबका सदा मोक्षना तीसरी नमाज है। चौथी नमाज है नीमत को साक रखना तथा परमात्मा के सदा की महिमा की प्रशंसा करना पंचवीं नमाज है।^१

हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के लोगों के मन में नानक के प्रति प्रसीम प्रेम और अर्थात् यहाँ तक कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनमें विवाद होने लगा कि उनके सब को इफलाया जाए या जमाया जाए। किन्तु कबीर के सब की भाँति नानक का सब भी मायब हो गया और उसके स्थान पर कुछ ताजे फूल साज रह गए।

इस्लाम की धार्मिकता में परिवर्तन

कबीर दाहू और नानक के उपदेशों में एक और तो इस्लाम की धार्मिकता की कट्टरता और व्यक्तिगतहीनता का अन्धत्व और दूसरी ओर हिन्दू पुरोहितवाद बहुदेववाद व जातिप्रथा का कुछ विरोध स्पष्ट परिलक्षित है। इससे दोनों धर्मानुयायियों के अंत

१ यह कल्प मिहिर नेटर नमाज की जाती है।

२ मुसलमानों की पाँच नमाजों के साथ है : नमाज-य-सुबह नमाज-य-पैरीन नमाज-य-हीगर, नमाज-य-राज, तथा नमाज-य-अजुजतन।

३ यह नानक के 'सचोक्त' के दो दोनों अंश तथा इनके अग्रार्थ बोझर अन्तरिम दिग्गम व्यापित 'नानकवादी' (प्रथम उत्तरार्ध १६६२) ८५ १७६-१८ से अर्पित हैं।

विष्णु की प्रोत्साहन मिला। इतना ही महत्त्वपूर्ण यह तथ्य भी है कि नबीर और मानक लोग का सीधा सम्पर्क गोरक्षनाथ-परम्परा के साथ हुआ तथा उन्होंने सूफी-भान्खोसल के विद्युत् रसामृत का भी पान किया। यहाँ हमें हिन्दूधर्म की प्राचीन अभिवर्धन प्रकृति के प्यार होते हैं। यह प्रकृति सहिष्णु व उदार है तथा धार्मिक समुदाय के घसीम विस्तार के लिए उत्सुक है। निस्सन्देह ही यह प्रकृति निदेशी विज्ञता और उसके धर्म-परिवर्तन-कार्य के समस्त पराजय भूमि नहीं है।

रामानन्द के महान धर्म-सुधार के कारण भक्ति-भान्खोसल समिन्ताब से उत्तर भारत में आया तथा उनके जीवनकाल (बीसहवीं शताब्दी) और फिर पन्द्रहवीं व सोलहवीं शताब्दियों में कमजोर फैलता गया। किन्तु भक्ति रहस्यवाद उत्तरभारत के समान दक्षिण में सामाजिक और धार्मिक स्वाधीनता और समानता का जन-भान्खोसल न बन सका। जाति और पद को मजबूत प्रस्थापित करके कार्य की महत्ता को प्राप्ताहित न कर सका और न इनके साथ-साथ लोकोपयोगी साहित्य का अनुसृत उत्थान हो सका। कारण यह था कि विजय नगर साम्राज्य के पालदार शासनकाल में न तो सुसम्मान याकमनकारी दक्षिण में पहुँच सका और न इस्लाम का विघटनकारी प्रभाव। फिर भी उत्तरभारत में नस्ति राष्ट्रीयपराजयवाह भवना परमायनवाद की नहीं बल्कि एक महान प्रजातांत्रिक उत्थान तथा गतिमय धार्मिक जीवन की अभिव्यक्ति थी। भक्तिवाद ने इस्लाम की धार्मिक और सामाजिक बुनीती का प्रभावपूर्ण ढंग से सामना किया तथा इस्लाम के कट्टर मईतवाद और किरकापरस्ती को अपने अनुसार संशोधित करके उसके ही किश्त पुष्कल सूत्री सम्प्रदाय को सुदृढ़ किया।

मुगल संस्कृति व कला की उदारता और मानवीयता

प्राचीन कस्बों में इस्लामी संस्कृति

तुर्क-अफगान शासकों ने सर्वप्रथम भारत भूमि पर चाँद-नारे बामा झण्डा पाड़ा था। उनके कुछ दिल्ली-आधिपति प्रबुद्ध स्वेच्छाकारी शासक थे तथा कुछ निर्दय तानाशाह। किन्तु सबसे सब बहुर मुसलमान और भूमिगत थे। तुर्क-अफगान शासनकाल में अनेक हिन्दू-मन्दिर और बौद्ध स्थापना ध्वस्त कर दिए गए। फिर भी भारत में सच्ची मुसलमान संस्कृति का प्रतिनिधित्व दिल्ली (अपने बरमोर्कार्य काल में भी) में कर सकती थी। सुयमकबल के शासनकाल में हिन्दू-विरोध के उल्लेखपूर्ण दिल्ली-मुसलमान का प्रमुख काफ़ी घट नबा तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में इस्लामी सम्यता का केन्द्र दिल्ली से हटकर बीजपुर, पौड़ महमबाबाद और बाँदा पहुँच गया। इन विभिन्न मुसलमान राज्यों में हिन्दू परम्परा और मुसलमान-संस्कृति के संश्लेषण के आधार पर कला वास्तु और विद्या का महान पुनरुत्थान हुआ। उद्देश्य संभव होने का कारण यह था कि अपने मूर्तिमयक आने के बादपुनः अफगान लोग भारतीय जीवन से सर्वथा अविच्छिन्न न थे क्योंकि अंधार विभिन्न समयों में विभिन्न भारतीय साम्राज्यों का अधिपति बने रह चुका था।

वास्तु में मुसलमान और हिन्दू परम्पराओं का समन्वय

मुगल और शिवाजी बंशों के शासनकाल में अनेक हमारात दिल्ली में बनीं सुविख्यात कुतुबमीनार, कमाठपाना मसजिद तियासुदीन शीमिया दरगाह तथा अजंठ दरवाजा। इस स्थापना में मुसलमान प्रभावों का आधिपत्य है। फिर भी कुतुब मसजिद के विस्तार शम्शों पर हमें हिन्दू-कला के 'मोटिफ'—मन्दिर के बन्दे और खंजीरों—मिलते हैं तथा इसके महाराजों की सम्मिश्र मूर्ति पर भी हिन्दू प्रभाव स्पष्ट है। भारत के प्राचीनतम मुसलमान नगर तथा दिल्ली के साथ मुसलमान नगरों में से सर्वप्रथम नगर में कला और वास्तु की हिन्दू और मुसलमान परम्पराओं की परम्पराओं और तकनीकों का समन्वय विस्तरित स्पष्ट है। किन्तु प्राचीन में यह समन्वय अधिक बुरा अधिक विवेकपूर्ण अधिक सूत्रबद्ध है, तथा क्षेत्रीय शैलियों में विदेशी प्रभाव नहीं बरम् भारतीय प्रभाव का प्रभाव दीकटा है। सरजॉन भायंस ने भी लिखते तुर्क-अफगान काल में मबीन 'भारतीय' वास्तु-शैलियों (अजंठ बीजापुर, गुजरात और मालवा में अलम-अलम विविध शैलियाँ भी) के विकास का अध्ययन किया है, अत्यन्त निष्कर्ष पर खोर दिया है।

उनका ध्यान है। जौनपुर और वल्लभ में स्थानीय धर्मियों का प्राधान्य था किन्तु बंगाल में विजेताओं ने ईंटों से सबक निर्माण करने की प्रथा अपना ली तथा हिन्दू मूर्तों के आधार पर टकसिद्ध एवं लेप्य चित्रों से उन्हें अलंकृत भी किया।” पश्चिमी भारत में भी तुर्क सफ़ावतों ने मुबारक की आकृति ध्वजों को लगभग ज्यों का त्यों अपना लिया जिसके पदस्वरूप मध्ययुगीन भारत के कुछ सुन्दरतम मयों का निर्माण हुआ। काश्मीर में भी उन्होंने आकर्षक काष्ठ-वास्तुकला को जो हिमालय के उस भाग में बहुत समय से प्रचलित रही होगी समझ अपरिचित अपना लिया। पाँहुपा की मसीना मसजिद, गौड़ की सोना मसजिद व कब्र रसूल अहमदशाह की जामी मसजिद तथा मांडू के हिंडोभा महल व जह्जहमहल मध्ययुगीन भारतीय वास्तु के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। इनमें इस्लामी प्रभावजन्य संरचनात्मक आधार की अभ्यता व प्रतिबिम्बिता तथा हिन्दू अलंकरण ‘मोटिफ़ों’ और ‘तराश’ की सुन्दरता परिष्कृति व सुकलता का विशेषपूर्ण समन्वय है। हिन्दू वास्तुओं और कारीगरों ने अत्यन्त कीमती दोनों प्रभावों को एक में मिला दिया है। मसजिद का गुम्बज विद्येयतया हिन्दूकल्प—जो प्राचीन बौद्ध स्तूप और ब्राह्मिक मन्दिर से प्राप्त है—धारण कर लेता है तथा पाश्चात्यास प्रतीकात्मक हिन्दू पंचरत्न-योजना की अनुमति है। मन्दिर के शंखों और शिरों को फुलों की पंक्तियों और तन्तुओं से सजाया गया है वह भी कारीगरी और हिन्दू कला ‘मोटिफ़ों’ के विशिष्ट समन्वय का प्रतीक है। हिन्दू वास्तु संसी ने सोलहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के बीच राजपूताना और मध्य भारत में अपनी स्वाधीनता और सृजनारमक उपक्रम क्रमशः पुनः प्राप्त कर लिया। उसमें संरचना के प्रतिबिम्बित्व और उद्देश्य तथा अलंकरण की कोमलता और इमानी योजना का विशिष्ट समन्वय है। बीकानेर और अजमेर से स्वामिपुर और बठिवा तक ऊँची-नीची पहाड़ियों की पीठिका पर लड़े लड़े परकोटों वाले किलों और प्रासादों के लटकते हुए छत्रों आसीवार शिखरिया भावे को लड़े हुए कबार या मुँहर हवादार प्रकोष्ठ और मुलम्मायुक्त गुम्बज राखपूत जाति की लमानी और साहसिक प्रवृत्ति के बीजित प्रतीक हैं।

हिन्दुस्तानी युग का प्रारम्भ

इस्लाम साहसिक के शासनकाल में थोड़ा राज्य के मुखसमान शासकों और उनकी हिन्दू प्रजा के बीच काफ़ी भाषा में सीढ़ार और सहयोग था। इसका विशिष्ट प्रभाव प्रशासन एवं सामाजिक जीवन की सामान्य प्रवृत्तियों पर पड़ा। मुल्तान हुसैन साह न हिन्दुओं को राज्य के उच्चतम पदों पर नियुक्त किया। बंगाल में रूप और शत्रुता के समान मानसिक से मेनिनीराम की नियुक्ति मुखसमान शासक द्वारा हुई। बीजापुर और पोलकूंडा मुखसमान रियासतें थीं और वहाँ भी हिन्दू उच्चतम पदों पर थे। इस युग में हिन्दू और मुखसमान शासनाधिकारियों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध भी व्यवहार होते थे। इनसे भी पृथक् संस्कृतियों के समन्वय को प्रोत्साहन मिलता था। १५५६ ईस्वी में बंगाल के पारसिशाह गूर ने अपने प्रधानमंत्री और सेनापति हेमू को एक हिन्दू या की मुखसमानों के शिर पर राष्ट्रीय विरोध का नेत्रा नियुक्त दिया। हिन्दू-मुखसमान अन्तर्निष्ठता का परमविन्दु तथा एक

उत्तर, हिन्दू-मसजिद नीति का आरम्भ यही था। हिन्दुओं और मुसलमानों के पुनर्मिलन के इस सामाजिक वातावरण में, उत्तरभारत में साहित्य और सलित कलाएं ठीकी से एक गुस्सट हिन्दुस्तानी' युग की ओर अग्रसर हुई। गीढ़ में सुस्तानों की प्रेरणा पर मूल संस्कृत सं बंगला में 'रामायण' और 'महाभारत' के कई अनुबाध करए गए। सुस्तानों ने इस काम के लिए विद्वानों को नियुक्त किया। सुस्तान गुजरतसाह सुस्तान हुसेनसाह के नेतापति परममला और बटमां के सूबेदार बुतिका के संरक्षण में उत्पावित 'महाभारत' के अनुबाध महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार सुस्तान हुसेनसाह की प्रेरणा से 'भागवत' का अनुबाध मूल संस्कृत से बंगला में हुआ। इतिबाध कृत रामायण का सुप्रसिद्ध बंगला अनुबाध जिसका परचम आज भी होता है, गीढ़ के एक सुस्तान के संरक्षण में हुआ था।

क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य में फारसी और संस्कृत विषय-वस्तुभा एव शैलियों का संयोग 'भारत-सुक' अमीर खुसरो

दिल्ली में मुगल बंध के संस्थापक बाबर ने साहित्य वस्तु, संमीत बेसमुदा और आचार-अवहार के तरकाबान हिन्दू-मुसलमान अन्तर्मिलन को हिन्दुस्तानी तरीका' कहा था। इस हिन्दुस्तानी प्रवृत्ति के साहित्य में अग्रवृत्त थे बीबहूनी अताउदी के विख्यात कवि अमीर खुसरो जिन्हें अलाउद्दीन खिलजी ने 'भारत-सुक' कहकर सम्मानित किया था। अमीर खुसरो का जन्म पटियाला में हुआ था। उनके पिता सुकं थे और माता राजपूत (पवल)। वे फारसी हिन्दी और उर्दू में लिखते थे। उर्दू का आम्बिक अर्थ है 'दरबारी भाषा' और इसमें हिन्दी व फारसी का सम्मिश्रण है। उन्होंने प्रणयगाथाओं की रचना की। उनकी इस प्रकार की सर्वाधिक सफल कृति थी 'हस्त बिहस्त' अथवा 'प्रातः स्नान'। इसमें उन्होंने भारतीय कथाओं का प्रयोग किया था। फारसी कथाओं का नहीं। क्योंकि मिर्जामी ने अरबस्त कोसलपूर्वक किया था। कम से कम फारसी साहित्य के विचार से 'हस्त बिहस्त' की योजना सर्वथा नवीन थी। उनकी हिन्दी कविता छुट गीतों, दोहों और गज़लों (जिनमें एक पंक्ति फारसी की है वो दूसरी हिन्दी की) तक सीमित है और इनका प्रचार मौखिक रूप से हुआ। अपनी गज़लों के बल पर खुसरो अमर है और यह सबका न्यायसमर्थ है। सादी और हाफिज जैसे फारसी के शायरों ने खुसरो की गज़लों की प्रशंसा की तथा सम्पूर्ण एशिया में जुमकर उनकी मकल की जाने लगी। नीचे उनकी एक बेहतरीन मकल प्रस्तुत है। इसमें संसार की विस्तारता और जीवन की नरबराता की समिष्पक्ति है।

तू हमारी मिट्टी में से प्राण निकाल लेता है
फिर भी हमारे दिलों में रहता है
तू हमें बर्ब पर दर्ब देता है
और फिर उसकी बरा भी।

तैरी जमकली शमशीर ने मेरे दिल के परेशान बगीचे को
जहज-जहज कर डाला है।

फिर भी तेरे बड़े शक्त की किरनें इस खंडहर को कितनी धान देती हैं ।

सब कहते हैं कि तेरी कीमत हो बेकार कासी दुनिया है,
यह कीमत बड़ा यह काम बड़ा यह बेहथ सस्ता है—सब जानते हैं ।

मिट्टी न बेकार घर से मेरी कह एक दिन धाबाब होगी
फिर भी मेरा दिल तेरे प्यार से हमेशा-हमेशा धसा रहेगा ।

तुसरो तेरे सफेद बास न बुझाया नबी मूरतों की ललाच प्यार से नहीं करते
फिर भी तेरी कह हमसा इस बेमानी ललाच में मुश्किल खड़ी है ।

संस्कृत काव्य-परम्परा के अनुसार तुसरो न भी भारत की शक्तों का वर्णन अपने काव्य में किया है । किन्तु अपनी इन कविताओं में उन्होंने जनसाधारण की बोनियों के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग करके उन्हें एक विशिष्ट प्रकार की कमनीयता स्वभाव बिकता और ताजगी प्रदान की । आज छाताधियां बीत जाने पर भी उत्तरी भारत के गांवों में उनके गीत गाए जाते हैं । नीचे उनका एक खेप्ट हिन्दी दोहा उद्धृत है । जनश्रुति है कि इसकी रचना जगहासे अपने सस्ताव बिख्यात सूफी निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु पर की थी

तुबसूरत बादमी अपने बिस्तर पर पड़ा है और उनके कासे बास
उसके बेहरे पर बिछरे हैं ।

ओ तुसरो सब घर बस क्याकि सारी दुनिया पर रात फिर आई है ।

सूफी रहस्यवादी मुहम्मद आयसी

सई का सद्मक घमीर तुसरो के कारण हुआ । उन्होंने अपना सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन फारसी और हिन्दी के अतिरिक्त सई भाषा के साहित्य मञ्च में समा दिया । लगभग उठी समय घमीर तुसरो के एक समकालीन तथा 'सूरक और बंदा की कहानी' के रचयिता मुस्ता बाउर (सममम १४०० ईस्वी) ने हिन्दी बमानी काव्य को जन्म दिया । कई सुसममान कवियों ने हिन्दी बमानी परम्परा को अग्रसर किया । 'मूमाबती' (१५०० ईस्वी) के रचयिता कुतबन 'मकुमासती के रचयिता मंजल बिबाबती' के जमान तथा हुमायू के समय में जीवित न वध्मावत के रचयिता जायसी इसी परम्परा के कवि थे । हिन्दी साहित्य की इस प्रममारी छाया में सुसममान सैयदों का महत्त्वपूर्ण योग था तथा इस छाया का प्रमुतकथानक था—सामाजिक बंधनों का अस्वीकार करनेवासी प्रेमोन्मत्त आत्मा के निरन्तर संघर्ष में मानवीय और ईश्वरीय प्रेम का अन्तर्निधन । बाद में यह साहित्यिक आन्दोलन हिन्दू जीवन-धर्म के प्रभाव में आकर सुफीवाद के परवर्ती आध्यात्मिक-वार्त्तनिक आन्दोलन में सम्मिलित हो गया । इस सुसममान कवियों में सर्वश्रेष्ठ मलिक मुहम्मद जायसी थे । उनका जन्म १४६४ ईस्वी में हुआ था और अपने जीवन का उत्तरकास उन्होंने सबय में अमेटी के निबट रामनगर जंगल के एकान्त में व्यतीत किया । वे हिन्दी साहित्य तथा हिन्दू-मुसलमान सांस्कृतिक

एकता के प्रारम्भिक सम्भावक थे। राजपूत नामिका पद्मावती के जीवन पर आधारित उनके महाकाव्य 'पद्मावत' (१२४० ईस्वी) में प्राचीन हिन्दू योद्धा और मध्ययुगीन सुफी रहस्यवादकता का सुन्दर सम्मिश्रण है। उसपर कबीर (१४१०-१५१८ ईस्वी) के उपदेशों का बहुत प्रभाव था तथा अपनी कृति अखण्ड के रीतासीसमें पद्य में उन्होंने कबीर का नाम लिखा है। परम्परासुधार जायसी को सुफी कवि माना जाता है। उनकी कृतिया इस बात के भी स्पष्ट प्रमाण है कि वह गोरखनाथी योग-परम्परा से भी भरी भाँति परिचित थे। मध्ययुग में अनेक जाम्बवतमान संतकवि हुए थे जिन्हें विविष्ट रूप से हिन्दू या मुसलमान कुछ भी न कहा जा सकता था और जिन्होंने धार्मिक अस्तमित्य की प्रक्रिया का धीमजरा किया जो अकबर के समय में अपने उत्कर्ष पर पहुँची जायसी को इनमें सबप्रथम और सर्वश्रेष्ठ संतकवि होने का घोरर प्राप्त है।

'पद्मावत' के 'स्तुतिस्तब्ध' के निम्न ग्रंथ में ईश्वर की सर्वव्यापकता और पारलौकिकता का एकाग्र वर्णन है, और हम ग्रंथ में जायसी पर उपनिषदों की विचारधारा का प्रमित प्रभाव स्पष्ट है।

जीत नाहि पै बिये गुहाई ।
कर नाहीं पै करे सवाई ॥
जीम नाहि, पै सब किछु बोला ।
तन नाहीं, जो बोलाव सो बोला ॥
सबन नाहि, पै सब किछु गुना ।
हिम नाहीं गुनना सब गुना ॥
पैन नाहि पै सब किछु बेला ।
कवन भाँति भस आव बिसेला ॥^१

इसपर भी सुफी परम्परा के अनुसार जायसी भी मानवीय और ईश्वरीय प्रेम को आपस में मिश्रित होता हुआ वर्णित करते हैं।

जहि के बोल बिरह का माया । कहु तेहि धूस कहाँ तेहि छाया ॥
केरे भेस रहइ मातया । पूरि अवेटा मासिक छाया ॥^२

उपा—

बेहि तन पेस कहाँ तेहि भाँधू । तहाँ न रहत न मयमहि पाँधू ॥^३

प्रेम वह प्रवेशद्वार है जिसमें प्रवेश करके योमी मोक्ष प्राप्त करता है। भारत में इस प्रकार के प्रेम के अनेक प्राचीन उदाहरण हैं। विक्रम (विक्रमादित्य) और सप्तमावती (चम्पावती) मधुपान्न और मुग्धावती राजकुमार और मुग्धावती सनदावत और मधुमालती सुरसदी और प्रेमावती तथा अमिरस (अमिरस) और उपा। कवि ने विराग की भी का बुझान करनेवासे पतंग और केतकी के काँटों को गहर-अग्राह्य कर जानेवासी

१ 'पद्मावत' सम्पादक बाबूबेनारस अग्रवाल (दिल्ली संस्करण संक्र. १९८०), ८/२-४।

२ कबी. २३/१-३

३ कबी. १२७/३

मधुमन्त्री के यहन प्रेम का वर्णन भी किया है। फारसी कवियों की सीमा की भांति बामसी का प्रेमी भी विरहाग्नि में बसकर राख का डेर मान रह जाता है। प्रेमी हिन्दू धार्मिक ध्यान की पिण्डा और सुषुम्ना नाड़ियों को पकड़ लेता है (कवि रहस्यवादी बामसी ने नाड़ियों वाली बात मोरखनाधी परम्परा से ग्रहण की थी। वे मोरखनाथ को ऐसा सर्वोपेष्ट गुरु मानते हैं जो अपने सिद्धियों को मया जीवन और नया शरीर प्रदान कर सकते हैं तथा उनकी समाधि के सम्मुख नतमस्तक हैं) तथा उसकी दृष्टि रिक्त होकर ध्यान में डूब जाती है। विरही

बूढ़ समुद्र जैसे होइ मेरा ।

या हेराइ घस मिले न हेरा ॥

यह सब हिन्दू जीवन-दर्शन के साथ समन्वित फारसी और सूफी कवयित्री है।

अपने पूर्ववर्ती कवियों—कुतबनइत मुवावती और मस्नइत 'मधुमानती'—की भांति बामसी के पद्मावत की साहित्यिक सीमा में फारसी के प्राचीन परिमण्डित साहित्य की भावाकुसता और भावाचार तथा हिन्दूचरितकवियों के संयम और निबन्ध का सम्मिश्रण है। यही कारण है कि इन कवियों के साहित्यिक निरूपण में संस्कृत और फारसी की विषयवस्तुओं संभियों और धर्मशास्त्रों का अन्तर्निबन्ध है तथा धार्मिक दृष्टि कोण से हिन्दूधर्म और इस्लाम के सार्वभौम रहस्यात्मक तत्त्वों का समन्वय है। इसी आधार पर तो पीठिका पर साधुनिक साहित्य—सुषुप्त एवं निर्व्याज संवेदनों का हृषोत्पादक पय जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ने एककर पिया—का जन्म हुआ है। धमीर खुसरो ने ऊँ को जन्म दिया और बामसी ने हिन्दी को। विंगु दोनों में ही विचारों और भावनाओं का वही उत्कट सुबुद्ध समन्वय विद्यमान है।

एक नया विचार सहिष्णु धर्मनिरपेक्ष राज्य

गुरु-महम्मद आकमणकारियों ने मुसलमान जिहाद की भूति-ध्वंसक प्रवृत्ति की सहायता से भारत को धीरे धीरे पराजित कर दिया था। सोलहवीं शताब्दी में राजनीतिक परिस्थितियों के कारण यह प्रवृत्ति बहुत कम हो गई। दक्षिणभारत और बंगाल के मध्य मुगल मुसलमान राज्यों में एक संयुक्त हिन्दू मुसलमान राज्य के विचार का उत्पन्न हुआ और राज्य का हिताहित ही इस्लाम का हिताहित समझा जाता बन्य हो गया। मुसलमान और हिन्दू शासकों के बीच स्थायी व्यवस्था अस्थाधी संभियों के बल पर हिन्दू और मुसलमान राज्यों के बीच 'अकित-सन्तुलन' अधिक दृढ़ हो गया। विजयनगर साम्राज्य (१३११-१६१४ ईस्वी) की शक्ति ने मुसलमान बहमनी राज्य तथा उसके उत्तराधिकारी गहरी राज्य को प्रेरित किया कि वे धार्मिक सहिष्णुता एवं सांस्कृतिक सहयोग की नीति अपनाएं। वास्तव में उत्तरभारत में मुगल-साम्राज्य की नीति का जन्म इसी मधुमे पर हुआ। मंगोल व्यवस्था मुगल ईशान को पराजित करने के पश्चात्, जहाँ ईरानी संस्कृति की परिष्कृति एवं उत्कृष्टता से वे स्वयं पराजित हो चुके थे, सोलहवीं शताब्दी के प्रथम बहुबोध में भारत आए। उनके छात्रों ने 'बाबसाह-ए हिन्द' पक्षी पारण की। इस पक्षी से ही स्पष्ट है कि तैमूरकवियों का इरादा हिन्दुस्तान में क्या करने का था।

ब्रिटेन की ओर क्रुद्धता के बंशज महान मुसल बाबूतों के पूर्वजों ने भी एक सहिष्णु धर्मनिरपेक्ष राज्य का विचार अपनाया था। मुगल बाबूतों ने इस विचार के अनुसार शासन करके हिन्दुस्तान में एक राष्ट्रीय साम्राज्य स्थापित करने में तो सफल हुए ही उन्होंने हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों के मिलन को भी बढ़ावा दिया। बाबर (१५२५-१५३० ईस्वी) से अकबर (१५५५-१६०५ ईस्वी) तक क्रमशः हिस्सी में केन्द्रित मुसल साम्राज्य अधिक विस्तृत और अधिक सुदृढ़ होता गया। ऐसा होने के कारण वे विदेशी शासन के कट्टर राजा और स्वतन्त्रता प्रेमी राजपूतों की संघर्षों तथा विवाह सम्बन्ध, विभिन्न राज्यों के हिन्दू शासकों की उषण पत्रों पर नियुक्ति साम्राज्य के उच्च तम पदों पर हिन्दुओं की नियुक्ति तथा हिन्दुओं का सामान्य विरोध-रामन। बाबर ने अपने बहीवतनामे में अपने पुत्र हुमायूँ को धार्मिक सहिष्णुता की धर्मवार्धता का निर्देश किया था। भारतीयों के साथ नवीन मित्रताएं स्थापित करने से हिन्दुस्तान के मजबूत राष्ट्रीय साम्राज्य को एक नाम तो तत्काल हुआ। अकबर के सीतेसे माई ने जो काबुल का छात्रक था जब भारत पर आक्रमण किया तो मुसलों के नये मित्र राजपूतों की सहायता से ही उसे परास्त किया था सफा।

अकबर ने 'अजिया' कर को उठा लिया था किन्तु औरंगजेब ने उसे फिर लागू कर दिया। मुसलों के कट्टर दुश्मन सिखाबी ने इसके विरोध में एक पत्र लिखा जो सुप्रसिद्ध है और जिसमें अकबर की उदार नीति की प्रशंसा है। सिखाबी ने औरंगजेब को याद दिलाया कि औरंगजेब का अधिकारी-जब 'वस्तुस्थिति की सूचना औरंगजेब को नहीं देता बल्कि पपकड़ी हुई प्रति की तिनके से उकाना चाहता है।

इतना सरम है कि अकबर के राष्ट्रीय राज्य के आदर्श की धर्मपूर्ति केवल एक गायत्री तक हो सकी। औरंगजेब (१६५८-१७०७ ईस्वी) ने सर्वथा विपरीत नीति अपनाई और कुपान के आदेशानुसार आश्रित एक विमुख मुसलमान साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। अन्त में की बात है कि विद्रोहनाटक होते ही औरंगजेब ने 'बादशाह' (सम्राट) और 'आलमगीर' (विजयविजेता) पदों के धर्मविषय गायत्री (पवित्र शब्द) नामक पदों की शरण ली। किन्तु औरंगजेब से भी पहले बहादुर और शहाजहाँ दोनों ही मुसल-साम्राज्य की अकबर द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय प्रकृति के प्रति न तो ईमानदार थे और न धर्मिय।

अकबर के 'दीन-ए इसाही' की उदार प्रकृति

अकबर किसी हद तक स्वयं धर्म्यात्मवादी थे क्योंकि अनेक बार उन्हें गहन किन्तु विभिन्न धार्मिक संवेगों के धार्मिक उग्रता का अनुभव हो चुका था। सूफीवाद से उनका प्रथम परिचय शेर मुबारक और अब्दुल सलीफ और फैरी द्वारा हुआ था बाद में सलीम बिस्ती द्वारा। कहा जाता है कि उन्होंने मेवाड़ की बिदमात मोरचाई तथा पंजाब के सिख पुरुष धर्मराज के दर्शन भी किए थे। हरिबिजय सूरि विजयसंग सूरि और माधुसूदन उपाध्याय नामक तीन सुप्रसिद्ध जैन गुरुओं से उन्होंने योग और भक्ति का रहस्य जाना। पारसी धर्मगुरुओं बस्तूर और कैवज तथा मोघा के ईसाई पादरियों ऐक्वासीवा

धीर मसिख के साथ उनके गहरी संबंध थे। उपनिषदों महाभारत धीर भवबुद्धि (जिसका अनुवाद अकबर की आज्ञा से रचमनामा नाम से हुआ) तथा कबीर मीराबाई मूरदास धीर तुलसीदास के धार्मिक काव्य की धारणा को पहचानने तथा हिन्दू धर्मों धीर मुसलमान फकीरों से उनके धार्मिक वस्तुओं के शान्त धार्मिक वातावरण में प्रसरण में करते रहने के पश्चात् अकबर ने फतहपुर सीकरी में तत्कालीन भारत के एक नये मठ का सूत्रपात किया जिसमें सब धर्मों की विशेषताएं शामिल थी। इसका नाम था 'दीन-ए-इसाही'। दीन-ए-इसाही कोई धर्म नहीं बल्कि सूफीवाद का ही एक सम्प्रदाय था। सम्पूर्ण साम्राज्य के लिए देवताओं धार्मिक संस्थानों यज्ञ क्रय नियम अनुष्ठान तथा एक सम्पूर्ण एवं सार्वभौम धर्म के लिए धार्मिक धर्म सभी जातों का निर्देश करना दीन-ए-इसाही का उद्देश्य था। यह धर्म धर्मों के हिन्दू भक्ति-मान्यता एवं मुसलमान सूफीवाद के विकास के पन्थरूप प्राप्त समन्वय के सर्वोच्च अनु रूप था। सम्राट अकबर सर्वधर्मसारसंग्रह की आधारभूत प्रवृत्ति के प्रति ईमानदारी से इसीलिए उन्होंने ईसाई मिशनरियों को निश्चित धर्म दे दिया कि वे मुहम्मद के जीवन एक उपदेशों पर ध्यान न करें। साथ ही अकबर ने उन्हें गिरजा के निर्माण की आज्ञा दी उनकी सामूहिक प्रार्थनासभा में सम्मिलित हुए, इसी का अनुवाद फारसी में कराया तथा फतहपुर-सीकरी के विद्यालय प्रवेशद्वार पर ईसा के निम्नलिखित शब्दों को खुदवाया

ईसा ने कहा संसार एक पुल है इसपर चार कर बांधो ठहरो मत।
संसार समय क समान भीत जाता है इसका उपयोग अपासना न करो
क्योंकि धर्म्य धरमन्त सभी है।

अपने मुसलमान सहर्षानियों से उन्होंने कहा

'राजधक्ति के भय से धर्मोपेक्षों का पाठ करना खतना करना प्रबला धर्मीय पर छायांग सट जाना ही ईश्वर की आज्ञा नहीं है। धूम में भेट जाना भक्ति नहीं है। सत्ता धरण करो क्योंकि ईमानदारी का धर्म आशानी से नहीं हो जाता। यह तो कबीर, दादू और नानक के उपदेशों की ही प्रतिष्ठा है।

दीन-ए-इसाही में पीरोद्वय नहीं था तथा इसका माननेवाले कुछ पुने हुए लोग थे जिन्हें वेना कहा जाता था। अकबर काफ़ी छानबीन के बाद सूफियों के ढंग से ही वेनों का जनाब साधुपानीपूर्वक तथा सीमित संख्या न करत थे। तान्त्रीय मठ न बाह्य विधि विधानों का नियमन करते थे तथा अनुसूचित और फेड़ो इसके मुद्राह्वय थे। भारत के तत्कालीन सभी धर्मों के प्रतिभाव तत्त्वों से इसका निर्माण हुआ था। इसी लिए हमें उन सबको एक मठ का अनुयायी बनाना चाहिए किन्तु इस ढंग से कि वे एक की रहें धीर धर्म भी'। हम एक बड़ा साम यह है कि किसी धर्म की प्रवृत्ति का मठ में ही तथा किसी धर्म धर्म के क्षेत्रतरतरी का हम ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार ईश्वर का सम्मान होगा जनता में धार्मिक प्रसार होगा तथा साम्राज्य मुद्रा होगा। किन्तु उद्दिष्टी मुसलमानों ने दीन-ए-इसाही का विद्रोह किया। अकबर के अनुसार मुसलमानों के इस विरोध के निम्नलिखित कारण थे

घनेक कट्टर मुसलमानों ने दीन-ए इबाही के समर्थकों को हिन्दू (बाह्य) धर्म का अनुयायी मानकर निम्नोप दंडाया। इस गंभीर धारणा का कारण यह था कि अत्यन्त विघातकामय मानव होने के कारण सम्राट ने हिन्दू सम्राट से अंतरंगता स्थापित की प्रशासनिक कारणों से हिन्दुओं की पक्षोन्मुखि की ओर देग के कल्याणाय उनके साथ बिना व्यवहार किया। सम्राट की निम्न क तीन कारण थे। प्रथम विभिन्न धर्मों के मन्त राजदरबार में एकत्र होते थे और जबकि प्रत्येक धर्म में कोई न कोई मुण होता ही है, इसीलिए प्रत्येक सम्राट की प्रशंसा होती थी। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि किसी धर्म के दोष उसके पुर्णों को छिपा नहीं सकते। द्वितीय परीक्षाओं की व्यवस्था में मुसल-ए-कुल (सबके साथ शांति) का सिद्धान्त धननाया जाता था। तृतीय विभिन्न प्रकृतियों वाले घनेक किरकों के बीच साम्यारिक और साधनोत्तिन सचसता प्राप्त कर सके थे।

उत्तरभारत में मुगल-ए-शाहजहान दरबार (१६२६-१६०६ ईस्वी) दिल्ली और आगरा के शाहजहाना वास्तविक दारा शिकोह (मृत्यु १६५६ ईस्वी) 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास (१६३२-१६२६ ईस्वी) तथा भक्तमाल (समय १६०० ईस्वी) के रचयिता नामादास बंशम में कल्याणविरस में बड़े उपदेशक चैतन्य (१५८६-१६३६ ईस्वी) 'बंशीनवल' (१६६९-१६०६ ईस्वी के बीच रचित) के रचयिता मुकुन्द राम तथा 'महामारत' (लगभग १६०३ ईस्वी में रचित) के रचयिता काशीराम दास, पंजाब के कवि अम्बरामदासी बुस्नायाह ऐसी महान आत्माएँ थीं जिन्होंने सोमबुद्धी और सनबुद्धी शास्त्रियों में धार्मिक अन्तर्मिथ्यता जाति विरपयता और समानता की भावनाओं की स्पष्टतम अभिव्यक्ति की।

दारा शिकोह 'मजमा-उस-बहरीन'

दारा शिकोह नि उद्दिष्ट अपने समय के भारत के सर्वाधिक ज्ञानवान तथा देश के अन्तर्गत महानतम विद्वानों में से एक थे। शाहजहाना की ऐतिहास से उनमें असीर हर्ष अपवा प्रकट के बीच थे। वह असीर आदिर निलानी दारा संस्थापित असीरिया सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इस सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धान्त बड़े उदार थे। इसके अनुसार, सम्प्रदाय के अनुयायियों और विचारियों सभी के लिए ज्ञान का द्वार खुले थे। इसमें घनेक ध्यान योगों का अन्वेष किया जाता था। और इसी सम्प्रदाय के अनुयायी दारा शिकोह ने घनेक धार्मिक ग्रंथों की रचना की जो उनकी धार्मिक उदारता का प्रमाण तो हैं ही। इस उद्देश्य की प्रमाण है कि वे किशोरी साम्यारिक ऊर्जा तक पहुँच सकते थे। अपने ग्रंथों में उन्होंने मुसलमान सूफीवाद और हिन्दू योग की सम्पादनी का प्रयोग किया था। घनेक हिन्दू ग्रंथों के साथ उनका निकटतम सम्बन्ध था। घनेक के अरजदास अरहिन के बाबुसास और बनारस के बनीन्द्र ऐसे ही सन्त थे। वह अरबी अरबी संस्कृत और हिन्दी भाषाओं के पण्डित थे तथा उन्होंने हिन्दू और ईसाई धर्मग्रंथों का अध्ययन अनुयायी के द्वारा किया। उन्होंने विभिन्न जलपत्रों का स्वयं अनुवाद किया तथा अरकनाम का अरबी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनके ही निरीक्षण में 'मजमा-उसीदा' 'मोन्वाचिष्ठ' तथा 'प्रशोक अमोदय' के अनुवाद किए गए। उनके ग्रंथ का नाम 'मजमा उस-बहरीन' ('बो सागरों का

मिसन') ही इस्लाम और भारत की विस्तृत सांस्कृतिक पाठशालों की संवि एवं अन्तर्निष्पन्न का प्रतीक है। यह बुझाया ही था कि राजाशाहों द्वारा वे इस संस्कृति-संगम का प्रसार नहीं कर सके क्योंकि भारत का भाग्य अध्यात्मवादी साहजिक और वैभ उत्तराधिकारी द्वारा सिकोड़ के हाथों में बचाकर पलायन और गच्छ के हाथों में बचा पड़ा। इसका दुष्परिणाम भी देश को भोगना पड़ा। दारा के शासनाख्यत अकबर के उत्तराधिकार का अनुपयोग हुआ होता धार्मिक आदान प्रदान के आधार पर हिन्दू धर्म और इस्लाम के बीच और अधिक गूढ़ संवि हो गई होती तथा हिन्दुस्तान के दोनों धर्मानुयायियों के बीच स्थायी सन्धि स्थापित हो गई होती। इसके विपरीत और गच्छ की कटघरता का परिणाम हुआ एक शुद्ध बुरी और मूखल देश। यह देशक इतिहास का एक कुर मन्त्रक है।

उस समय हिन्दू धर्म तथा इस्लाम के अन्तर्वर्त भिन्नमताबलम्बी आन्दोलन चल रहे थे। विभिन्न भक्ति सम्प्रदाय तथा मत हिन्दू-आन्दोलन के और सुफीवाद मद्दीबाद ब रोशनवाद मुसलमान आन्दोलन। इन सबका उद्देश्य था भारतवासियों में धार्मिक स्वाधीनता एवं समानता का प्रसार करना। इन आन्दोलनों के कारण देश में एक प्रकार की हलचल का आतावरण था। इसी हलचल का एक परिणाम था अकबर की उदारता या सहिष्णुता तथा सुलह ए-कुल। इनके कारण ही अन्तर्-दीन-ए-इस्लामी के निर्भीक सिद्धांतों का जन्म हुआ जिसका राजनीतिक उद्देश्य सुस्पष्ट था। इसी हलचल का दूसरा परिणाम था सुन्नी धारिक और हिन्दू मन्त्र के एक समान आध्यात्मिक मार्ग को अपनाकर अन्तर्-सत्य की उच्चतम अनुभूति प्राप्त करने का द्वारा का सुख एवं आत्मसुख प्रयास।

‘रामचरितमानस’ और ‘भक्तमाल’ का मानववाद और स्वार्थभ्य

सुविख्यात कवि तुलसीदास (१५३१-१६२३ ईस्वी) एक महान मानववादी और विरहवादी थे। उनके महाकाव्य ‘रामचरितमानस’ में जिसका पठन आज उत्तर भारत में इस करोड़ से भी अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। लोकप्रिय हिन्दू धर्म के भीतर एक विशिष्ट नवीन अन्तर्निष्पन्न उपलब्ध हुआ—ज्ञान और भक्ति पूजा और ध्यान नैतिक निष्ठा और आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि का अन्तर्निष्पन्न जिसने भारत को अनेक विभिन्न मतों और सम्प्रदायों से बचा लिया है। ‘रामसीमा’ के रूप में इस महाकाव्य का अमनिय अनेक नगरों और गांवों में खुले मैदानों में होता है। कहा जाता है कि स्वयं तुलसीदास ने ही रामसीमा का धारण वादी में किया था। ‘रामचरितमानस’ में असीत के वार्षिक अर्द्धश्राद्ध ब समकालीन भक्ति तथा वास्मीकित्त ‘रामायण’ की आध्यात्म कथा और परिभा ब ‘भीमभगवद्गीता’ के अन्तर्गत उत्साह और ‘रामचरितमानस’ का अन्तर्गत संगम है। फिर भी तुलसीदास महाकाव्य का मुख्य स्वर है—कल्याण और भक्ति तथा मानव सेवा और बेकोपासना की भावना। यह भावना भागवत परम्परा की विधि पद्धति भी और रामानन्दी सम्प्रदाय द्वारा उस समय तक कायम थी। तुलसीदास रामानन्दी सम्प्रदाय के अनुयायी और रामानन्द के बाद उठ चुक नरहरिक लिप्य थे। रामचरित मानस में पाप के बाध की तीव्र अनुभूति है तथा कहा गया है कि केवल ईश्वर-हृपा से पापनाश सम्भव है। फिर भी मानव प्रयास की पवित्रता और मानव शरीर की योग्यता।

पर भी चार दिया गया है क्योंकि ईश्वर स्वयं मानव रूप धारण करने के इच्छुक हैं।

मानव शरीर वैसे कोई और रूप नहीं है।

इस शरीर को प्राप्त करने की इच्छा हर जड़-जंगम की होती है। यह स्वयं गरुड़ और मोक्ष की सीढ़ी है और मानव-शरीरधारी को बुद्धि बराह्म योग धर्म के यंत्राग मिलते हैं। जो मानव-शरीरधारी जीव हरि की उपासना नहीं करते बल्कि भिन्न-कोटि की धारीरिक माससाधों में डूबे रहते हैं वे मानव पारसमयि को छोड़कर साधारण काँच को ग्रहण करते हैं।

ईश्वर की हृषा उच्चशक्ति अपना धार्मिक ज्ञान के प्रदर्शन से नहीं बरन् प्रांतरिक धार्मिकता और साधुता के बल पर प्राप्त होती है। शरीर-भिन्न तथा विराठी और भीलों के बीच रामचन्द्र के भ्रमण-प्रसंग में तुलसीदास ने इस तथ्य पर कुछ जोर दिया है। महाकाव्य की एक सुन्दर कथा में उत्काशीन मानववादी मानवा का पूर्व विवर्ण है। कथा यों है भ्रमणत नृपित बीमारी में फँसा एक मेहतर कूड़े के ढेर पर पड़ा 'हे राम हे राम' बिस्तरा रहा था। हनुमान उधर से ही उड़े जा रहे थे। कोब में घाकर उम्हने मेहतर के सीने पर एक सात बना दी। उसी रात भगवान का शरीर बचाते हुए उन्होंने देखा कि उनके बल पर भी एक मयानक बाब है। यह बाब कैसे हो गया? रामचन्द्र ने बताया एक गरीब मेरा नाम से रहा था कि तुमने इसके सीने पर सात मारी। तुमने मेरे प्रपमत्त बेटे के साथ जो किया वही मेरे साथ भी हुआ।

किन्तु उस समय के धार्मिक धार्मिकता की निश्चितता थी मानव के ईश्वरत्व और ईश्वर के मानवत्व की मुमन धारणाएँ। इन धारणाओं की सर्वव्यापक एवं सोसाइटी अभि व्यक्ति तुलसीदास के एक महान समकामी नामाशक्त भक्तमास (समय १६०० ईस्वी) में हुई है। धार्मिक धनुषों के इस विस्तार सप्त में भवतां कवियों और सप्तों के विषय में अनेक कहानियाँ और दस्तकथाएँ हैं जो उत्तरभारत के करोड़ों निवासियों की जामिक प्रेरणा के भजन स्रोत हैं। 'भक्तमास' के चरित्र मयूर धारक देवत्वपूर्ण और स्वाधीन हैं वे भक्ति के सभी रूपों के मायक-मायिकाएँ हैं। मैबाइकी रानी कवमित्री मीराबाई हैं जिन्होंने राजमहल को त्याग दिया क्योंकि वे पशु-बलि का दूध सहन न कर पाती थी और जिन्होंने सावित्रिया की विरह ध्याना में बंधनों-मर्बती की झाक छापी। मोरजा की रानी गणेश बैरानी हैं जिन्होंने एक पागल योधी द्वारा धारक किए जाने पर सारी संभला नपचाप सहली ताकि उनके पति योगी से प्रतिकार न लें रहें। अनुताप करनेवाली भारतीय मैमबलीन हैं पंकरपुर की गर्वकी कम्होप्रिया विबीबा के प्रेम में इतनी डूब गई कि उसने बीर के दुष्ट राजा द्वारा सहाए जाने से बेहतर मर जाना समझा, और फिर दिल्ली की सुन्दरी बेर्या ने ईश्वर के चरणों पर अपनी मुर-कला (कैबल यही कला उसे पाती थी) को ही अर्पित कर दिया। 'भक्तमास' में ही एक चरित्र है मुरगुरी जिसके सतीत्व की रसा बल में एक सिंह ने गुण्डों से की प्रभ विह्वल दिव्यमय एक लूफानी रात में बाढ़ पाई हुई नदी को पार करके अपनी प्रेमिका के पास जा पहुँचा और प्रमिता द्वारा बुनवारे जाने पर उसकी दृष्टि आनी और उमने अपनी

वासना का नाश करने के लिए अपना ही धातों को ही नोचकर बाहर कर दिया और अपना राजा ने अपनी वासना के विनाश के लिए अपना बाहिना हाथ काट डाला।

चतुर्थ का चतुर्थ आम्बोसन

‘रामचरितमानस’ और ‘मत्तमान’ का सृजन मध्यभारत में हुआ था। उत्तर में सिन्धु के प्रथम गुरु मानक (१४६६-१५३८ ईस्वी) कृत ‘प्रवसाह्व’ द्वारा पञ्जाब वासियों का चरित्र निर्माण हो रहा था। साथ ही उन्हें अनेक कष्ट सहने पड़ रहे थे और उनमें सेबा मानना व त्याग-भूति का उदय हो रहा था। यह उनकी भाषी सहायता की भूमिका थी। पूर्व और दक्षिणपूर्व में ईश्वर-सेवा-योगे तेजस्वी चैतन्य (१४८५-१५३३ ईस्वी) ने जनसाधारण की धार्मिक और सामाजिक जागृति के लिए समकालीन मक्ति आम्बोसन का जिस दक्षिण में श्रीमद्भागवत-सम्प्रदाय तथा बुद्धावन म कृष्ण-राजमठ के प्रसार से बड़ा बल मिला था। धारण मिला। अनेक मिष्टान्तान विचारक कवि और विद्वान जन के अनुयायी बने। उन्होंने अपने आधारणीय गुरु चैतन्य के आध्यात्मिक उद्धारों के आधार पर भक्ति के एक पुरक मनोविज्ञान आध्यात्मविद्या तथा सौम्यदर्शात्म का विकास किया। वो से अधिक शताब्दियों तक बंगाल, उड़ीसा और असम में एक साहित्यिक धार्मिक पुनर्जागरण को प्रेरित करने का ध्येय इसी आम्बोसन को है। चैतन्य ब्रह्म आदो जन के कारण भारतीय चरित्र में नैतिकता और साधुता का एक नया आध्यात्म प्रारम्भ हुआ। इसके अनुसार विजुद्ध मानवीय अनुरक्ति और निष्ठा की प्रीति तथा परात्परता को देवता के समीप पहुँचने का ही प्रतीक माना जाता था। चैतन्यचरितामृत सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथों में से एक है। इनकी रचना कृष्णदास कविराज ने १६०७ और १६१५ ईस्वी के बीच बुद्धावन म की थी। चैतन्यधर्म ने विनम्रता सहनशीलता और आत्म समर्पण पर जोर दिया गया था और इस प्रकार उसने वर्चस्विहीन समाज व अनुच्छन्नरहित पूजा के धारण को प्रोत्साहित किया तथा अनेक सामाजिक वर्गों का विनाश किया। यही कारण है कि मानवीय चरित्र के निर्माण में उसका विशाल प्रभाव पड़ा। मानवीय परिपूर्णता का धारण था—‘बूढ़ की विनम्रता बूढ़ों की सहनशीलता अपने सहचरों के लिए आत्मतिरस्कार तथा ईश्वर नाम का निरन्तर जाप’ का सम्मिश्रण।

पूर्वी भारत में पतनोगुप्त बौद्धधर्म अपनी सीमाओं का अधिकतम कर रहा था तथा अनेक लोकप्रिय हिन्दू-सम्प्रदाय उसे अपनेमें मिला रहे थे। यही कारण है कि चैतन्य के शिष्य निरयानन्द के नेतृत्व में चैतन्यब्रह्म आम्बोसन (जिसमें निरयानन्द ने हजारों कोटिष्पुन बौद्ध भिक्षुओं व भिक्षुनियों को सम्मिलित कर लिया था) वास्तव में धार्मिक मोक्षार्थ ने अपनेसा हूट अधिक व्यापक आम्बोसन का एक ग्रंथ था। इस ग्रंथ के अन्त्य सम्प्रदाय के धर्मदास मंगलपंथी मनसा कामिका और सस्ती—और ये सब महाभारत आराध्यदेवा के ही रूपान्तरण थे। इस प्रकार के लोक-सम्प्रदायों के दो लाभ थे। पतनोगुप्त बौद्धधर्म तथा उनके कोटिष्पुत अनुयायियों को लोक-अन्वेषित हिन्दूधर्म की सीमा में स्थान मिल गया तथा साध-साध बंगला-साहित्य के विकास को प्रोत्साहन मिला और इस प्रकार मुत्तमानों की विजय के कारण सीधे परम्परावादी जाग्रण-संस्कृति ने जो स्थान रिक्त छोड़ दिया

या उसकी पूर्ति हुई। दक्षिण पश्चिमी बंगाल के वर्ष ब्राह्मण (जिन्हें मुकुन्दराम ने मठ-बामी प्रणय मिश्र कहा है) तथा युनी व धर्मगविया योगी उसी बौद्धधर्म के प्रत्यक्ष हैं जिसे प्रथम मुला दिया गया है। भारतीय साहित्य में पहली बार इन नये संप्रदायों का प्रत्यक्षी साहसी और पवित्र मायक-नायिका समाज के निम्नतम और दुर्लभ स्तर से प्राप्त। मुकुन्दरामकृत 'बंटीमगलकाव्य' तथा गणराम चक्रवर्तीकृत 'धर्ममगलकाव्य' ने हिन्दू जनता के मस्तिष्क को जिसपर पूर्वी भारत में बौद्धधर्म और इस्लाम दोनों का प्रभाव प्रभाव पड़ चुका था पीढ़ियों तक प्रभावित किया है।

'धर्ममगलकाव्य' के श्रोत थे—रवाई पण्डित (संभवतः तेरहवीं शताब्दी) खजा राम मयूर मठ (१२२० ई.) वराराम (मध्य सत्रहवीं शताब्दी) और माणिकराम मागुनी। इसमें हिन्दू और मुसलमान पूजाओं को एकता के सूत्र में बांधने का निश्चित प्रयास है। वास्तव में यह कई शताब्दियों बाद के बंगाल के संरचनात्मक तथा पाश्चात्ती संप्रदायों का पूर्वानुमान था। जनसाधारण को पवित्र प्रभावित करनेवाली कृति थी काशीराम दास द्वारा पांडव-विजय प्रणय 'भारत-पाश्चात्ती'। यह कृति 'महामारत' का ही एक पाठ थी और १९०३ ई० में सम्पूर्ण हुई थी। इसमें उत्कृष्ट भक्ति भावना तथा काव्य विभक्तिकता बनाटकीय अन्तर्दृष्टि का अद्भुत सम्मिश्रण है, और तुलसीदास द्वारा राम चरितमानस के मन्त्र यह भी मिरापुर सुख और प्ररणा का श्रोत है। इस कृति में प्रयोध्या और हस्तिनापुर के राजाओं और योद्धाओं के युद्धों का स्थान बंगाल के दरों और कृतियों नेने लिया है परिणामस्वरूप पूर्वी भारत का यह 'महामारत' सामान्यतम व्यक्ति को भी प्रभावित बन और धार्मिक प्रदान करने में समर्थ है।

पंजाब की रहस्यवादी शक्ति

औरंगजेब के शासनकाल में उत्तरी भारत का एक अत्यन्त प्रभावशाली और प्रभुत्व शक्ति सूफी साहू इनायत (मृत्यु १७१२ ई०) साहू के एक मन्दिर में शिक्षण-कार्य करते थे। भारत के विभिन्न भागों से धार्मिक मुसलमान वहाँ पहुँचते थे। उनके सर्वाधिक पवित्र सिद्ध वे बुन्ता साहू जिन्होंने इस्लामी रहस्यवाद द्वारा प्ररित श्रेष्ठतम काव्य का सृजन किया है। वे ईश्वर को एकताव तीन रूपों में देखते हैं—सृष्टावन के गोपास कृष्ण रावण को पराजित करने वाले राम तथा काबा के पैगम्बर मुहम्मद। ईश्वर के बारे में उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उपास था। उनके अनुसार ईश्वर की उपस्थिति समाज के उच्चतम और निम्नतम व्यक्ति राजाओं और कम छोटेनेवाले मजदूरों पुजारियों और चोरों सभी में समान रूप से है। यही पंजाब की धारणा है जिस बुन्तासाहू ने अपने काव्य में प्रतिबिम्बित की है। उनकी एक कविता भी यही जाती है

मैंने पा लिया है कुछ पा लिया है।

मेरे सम्झे गुह ने प्रकट को प्रकट कर दिया है।

कहीं वह दुश्मन है, तो कहीं दोस्त

कहाँ वह मरनू है तो कहीं भला

कही वह गुह है तो कही बला

इस सभी में उसने अपना पत्र प्रकट किया है।
 कहीं वह मोर है, तो कहीं बगीचा
 कहीं वह महीनगीन काजी है तो कहीं ठेगबहापुर
 कहीं वह मस्जिद है तो कहीं मस्जिद
 कहीं वह ग्यानसीन बैरागी है, तो कहीं दोल बन गया है।
 कहीं वह कन्नो खोचता है हर पत्र पर तुम (सुधा) मिलते हो।
 खुस्साह कहते हैं मैं सुधा को चाहने लगा
 मुझे इनायत मिली और मेरा काम हो गया।

राजपूत चित्रकला में साक्षरिगता

मुगलकालीन धार्मिक सहिष्णुता तथा मानववाद का गंभीर प्रभाव मस्ति और सुन्नी सम्प्रदायों एवं भारत के विभिन्न भागों की क्षत्रीय भाषाओं के साहित्यों के साथ साथ चित्रकला के विकास पर भी पड़ा। मुगल और राजपूत चित्रकलाओं में प्रमुख अन्तर यही है कि एक दरबारी कला है और दूसरी लोककला। मुगल सम्राटों के राजदरबारों से सम्बद्ध मुगल-कला-सम्प्रदायों ने राजाओं खाहूँसाह दरबारियों और अमीरों के 'पोर्ट्रेट' बनाए तथा चित्रकार मनोदंजम मनोविनोद और दरबारों के हस्त प्रकट किए। राजपूत और पहाड़ी कला-सम्प्रदायों ने सामान्यतः कृष्ण राधा प्रकृत विन-मार्बती के पौराणिक कथानकों को अपने चित्रों का आधार बनाया और ये कलाकृतियाँ सभी वर्गों के लिए अधिकर थी। उनकी कृतियों में प्रेम की विभिन्न सूक्ष्म भूमिकाओं का चित्रण है यह प्रेम एक ही साथ मानवीय और ईश्वरीय दोनों है। उनकी कलाकृतियाँ सम्पूर्ण साम्प्रदायिक धार्मिकता तथा क्षत्रीय भाषाओं के साहित्यों की मस्ति भावना से सज्ज हैं। सनातन प्रेमी-मुसलमान कृष्ण और राधा पुरुष और नारी के साथ-साथ विविधविधान के प्रतीक हैं कि जीवन-सौख्य की उत्कृष्टतम परिचयि एक-दूसरे को वा सेना है। राजपूत और पहाड़ी कलाओं में कृष्ण और राधा के अतिरिक्त पातलू हिरन और मोर रावि-बावरण भव धारित मितल और अमिसार, बूम वा सुपन्न वने बाइस मुखलाबार बपों और विजली की चमक पाँव ठसे रेंवता हुआ साथ भिपटनेवाली लता पुष्पित कदम्ब वृक्ष तथा समुद्र वा उच्छता प्रवाह अत्यन्त व्यापक और गम्भीर प्रतीक हैं जो लोक-काव्य तथा चित्रकला की भाषा में सहज बोधगम्य थे। राजपूतकला में किसी काल्पनिक संसार का सूजन नहीं किया गया बरन् संसार को ही एक बाह्य साक्षात्कृत अर्थ में कल्पान्तरित कर दिया गया है जिसमें पुरुष और नारी की साम्प्रदायिक भाव भूमिकाएँ तथा पौषों और (वस्य और पालित दोनों प्रकार के) पशुओं की प्रणयोग्यता सेनाएँ प्रेम की अन्तर्गत लोचन की अभिव्यक्ति हैं। यही कारण है कि चित्रकला इतनी लोकप्रिय कभी नहीं रही।

चित्रकला में अर्चित ईश्वरीय एवं मानवीय प्रेम के धार्मिक भावक और नादिक कवियों का भावपूर्ण काव्य के रसों को ही प्रतिबिम्बित एवं पुष्ट करते हैं—ये काव्य अनेक सनातन में बद्ध है तथा अभिव्यक्ति भी है। राजपूत-चित्रकला के सुपरिचित विषय भारतीय शास्त्रीय संगीत का राग भी है जिसमें से प्रत्येक राग किसी विशेष महान् अनुभूति तथा

मनोभाव के अनुकूल है तथा जिन्हें श्रुतियों की भाँति सामाजिक एवं मूल रूप प्रदान किया गया है। जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' के शब्दवाचक 'रसिकप्रिया' तथा धन्य नामिका-काव्यों की सारगमित वस्तुओं को राजपूत काल के चित्रकारों ने अपनी कृतियों में उद्धृत किया है। राम ही दोहा-चोपाइयों में भिन्ना मया गम्भीर बिचार तथा गहन अनुभूति से संतृप्त चैव्य काव्य किसी अत्यन्त सुकुमार सुकमलिन (मिनिअर) के समान है। धर काव्य और चित्रकला परस्पर अन्तर्गता है। राजपूत जैसी के चित्र में गहरी तथा सूक्ष्म रेखाएं तथा ध्वंसित रंग-विधान होता है तथा दोहा और चोपाई की भाँति वह भी एक समापित संयुक्त होता है। गीत और चित्र दोनों में नायक और नायिका का अधर्म विमल हुआ है तथा उनके कोमल मनोभावों की अभिव्यक्ति हुई है। भावना और गतिमात्रों की ऐसी सज्जता तथा शारीरिक और आध्यात्मिक भूत्यों का ऐसा संयोग बिद्व की चित्रकला के सम्पूर्ण इतिहास में अद्वय उपलब्ध नहीं है। गीतों में अनुभूत और चित्रों में दृष्टि वस्तु—प्रकृति के सार्वभौम प्रेम-भाटक में कृष्ण की सीसा तथा राधा का अनुपम—को सोम मामल और मूल में व्यक्त करते थे। जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' तथा हिन्दी गीतों में बिच मानवीय प्रेम-निमित्त प्रकृति की उत्कृष्टता के वर्णन हुये होते हैं वही राधा-कृष्ण चित्रों में भी परिष्कृत है। रूप और वर्णों में हरित मैदानों का सौंदर्य वहाँ राधा तथा अन्य पौधिकाएं गोपालों और मोनों के साथ उपस्थित कृष्ण से मिलने पहुँचती हैं बुद्धावन के मिट्टियों की सघन छायाओं का छिन्न करनेवाली वस्तु की चाँदनी यमुना-तट पर कदम बूतों का फूलना श्यामल तमाल बूतों पर वर्ण के बादलों के समान तथा कृष्ण की स्तुति में पक्षियों का कलरव और पशुओं का आपस्य। इसी प्रकार खिच-पार्वती चित्रों में हमें कठोर पर्वत उनके शृंग दिखाएँ और ऊँचे देवदार पीखते हैं, जहाँ शिव और पार्वती की एकाग्रतपस्या के लिए अबाध मोन परिष्कृत है।

बुद्धावन के गोपालों के राजकुमार तथा पुष्पांकृत बंधीबादक कृष्ण एवं सर्पों की भासा पहने हुए कर्माच के योगी शिव देवद्व-प्राप्ति के दो विरोधी मार्गों के साक्ष्य समस्त प्रतीक हैं। प्रेम और कम में दूरी किन्तु फिर भी मोक्ष के सर्वत्र विरक्त मानवार्थ का प्रतीक कृष्ण है। इसका विपरीत शिव है शान्तिपूर्ण तथा एकान्तप्रिय आत्मा। भाव आत्मा के इन्हीं विरोधी तत्त्वों की व्याख्या का प्रयास भारतीय मैदानों और पर्वतों के कवियों और चित्रकारों ने किया था और इस तद्देश्य की सिद्धि के लिए सहजि पुष्पित कुर्जों बूतों से सबे नदी-तटों तथा हिमालय के बर्फ़ीले शृंगों के रूप्य बुने थे। राजपूत चित्रकला में परिष्कृत बुद्धावन के मायावी चाँदनी से घुसे गोचरों तथा ऊबड़-खाबड़ पर्वतों उफनती धाराओं तथा हिमालय में राजि-रमियों में आन्तरिक संघर्ष को समाप्त करने तथा मानवार्थ और बिद्वार्थ की एकता—धरित और धावि की एकता—का अनुभव कराने की चरित्या हैं।

कला, कविता और संगीत का सहयोग

भारत और चीन दोनों देशों में चित्रकला और साहित्य मजालीय थे तथा चीनी चित्रकला में समुचीकरण की प्राप्ति मुख्यतः द्वारा हुई और भारतीय चित्रकला में संकीर्ण

द्वारा। भारत में विभिन्न ऋतुओं के अनुकूल रागिनियाँ हैं 'रागमालाएं' अथवा संगीत के रागों का चिह्न है तथा बारहमासा हैं। इनके प्रतिरिक्त ऐसे चित्र भी हैं जिनमें प्रत्येक प्राकृति का रूप किसी प्रतीक अथवा प्रतिमा का नहीं बल्कि धर्मोत्थारित किसी नाटकीय परिस्थिति का होता है तथा जिनमें ऋतु और दिन या रात के समय के धनुरूप सार्वभौम मनोभाव की अभिव्यक्ति होती है। रेखाओं की सहजता और गहरे रंगों द्वारा कौशल-पूर्ण पुनः विन्यास इन चित्रों की विशेषताएं हैं। इन चित्रों का उद्देश्य किसी बटना का विशाकल अथवा निरोपम प्रभाव उत्पन्न करना नहीं बल्कि एक भोजस्वी किंतु धर्मनिराक तथा में धर्मोत्थ मनोभावों और स्थितियों का विशेषण करना प्रति रूपक बनाना तथा धनीभूत करना है। संगीत अभिव्यक्ति एक धर्मोत्थ कला है उसका साथ पाकर चित्रकला भी धर्मोत्थ की उस मात्रा को प्राप्त कर लेती है जो संगीत के लिए सामान्य है। उसीके कारण मानवार्त्मा अस्ति की धार उद्भूत हो पाती है—अस्ति जो धर्मिया प्राकारों और रंग के सभी पैटर्नों की पृष्ठभूमि में है। गीतात्मक कविताओं का बलनात्मक विन्यास रागों अथवा रागिनियों की सुमधुरता तथा चित्रों में प्राकृतिक वृक्षों का अवन ममी समान तथा समवेत रूप से प्रकृति के साम्राज्य में प्रकृति-तत्त्व अथवा अस्ति के अनुभव से सम्बद्ध सम्पूर्णता विस्मय और भय के वास्तव एक सार्वभौम भावों के प्रतीक और भावनामय है। वस्तुतः रागमाला चित्रकला का दृष्ट अस्ति है तथा दृष्ट देवी है विस्मय की भावना जिस मानवार्त्मा ऋतुओं और पक्षों के चक्र द्वारा अभिव्यक्त और विवक्षित करती है। पन्द्रहवीं से अठारहवीं शीत शताब्दियों तक लोक-कला की तीन प्रवृत्तियाँ—कविता संगीत और चित्रकला—भारत में समानांतर विकसित हुईं और इनमें विभिन्न धर्मिया द्वारा समान धर्मनिराक मनोभाव व्यक्त हुए। तीनों में 'भागवत' और 'पुराणों' की कथाओं के धार्मिक अभिप्राय परिष्कारित हैं। शैलीय भाषाओं के विभिन्न शब्दों और शीतों में पुनरभिप्रेत हुए तथा अनेकानेक भाषायोगियों कवियों संदीप्तों और चित्रकारों द्वारा जनसामान्य तक पहुंच सके। किसी युगविशेष तथा देशवासियों के सामूहिक दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए कलाओं का बीसा सहयोग उत्कृष्टतम उत्तरमाध्य में हुआ बीसा सहयोग विश्व की संस्कृति के इतिहास में बहुत कम हुआ है।

हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान

मुसलमान राज्य की व्यवस्था का पतन

मराठों के विरुद्ध अफगान के बीरान 'पावपाह' और 'पाञ्चो घोरगड' की मृत्यु हुई तब उसका हृदय टूट चुका था। उसका मकबरा मृत्युस्थल पुनदाबाद (स्वयं का नगर) में है। इसी मकबरे में वफा है मुसलमान-राज्य की यह व्यवस्था जिस यह कठोर शासक और असहिष्णु बादशाह भारत पर सावना बाँटा था और जिसके कलस्वरूप भारतवासियों को धनेकानेक यज्ञार्थ संहती पड़ी तथा अन्ततः मुगल-शासनाय का विनाश हुआ। मुगल राजसिंहासन के वैधानिक उत्तराधिकारी प्रभु और समाधारणतः उदार मना बारा शिकोह को औरंगजेब अत्यन्त उपहासास्पद व्यक्ति समझता था और बेसमझ पुजारी कहता था। कट्टर इस्लामधर्म के प्रति यह इतना अक्षरशः कि टापिया भिन्नकर अपनी रोखी कमाता था। उचित ही है कि उस देश के ऐम भू भाग में वफा किया गया जहाँ इस्लाम के अनेक कट्टर और पक्षपातपूर्ण धर्मप्रचारकों—जनामुद्दीन हुंजरावन मुंतबाबुद्दीन बुरहानुद्दीन और जमुद्दीन—के व्यवस्थापकीयपन है। फिर भी उनकी मृत्यु से बहुत पहले ही सिद्धो मराठों राजपूतों और जाटों ने सम्मिलित रूप में देश में मुसलमान राज्य स्थापित करने के उसके प्रयास का विरोध करना आरम्भ कर दिया था। औरंगजेब स्वयं अपनी प्रधानक वसती के प्रति सजग था क्योंकि उसने अपनी एकान्त मृत्युधम्या से अपने पुत्र को भिजा था

मैं अकेला आया था और अकेला ही वापस जा रहा हूँ
मैंने देश और देशवासियों का कोई भला नहीं किया
और भविष्य की कोई आशा भी नहीं है।

घाटारहवीं सताब्दी के एक प्रख्यात हिन्दी कवि भूपण ने उसकी मस्तना करते हुए लिखा

साब घरी छिन्न झू छों घरी सन सेयद भीर पठाम पठाई की ।
भूपण हमा गढ़ कोटनि हारे, इहाँ तुम क्यों घरे छाद रिसाई की ।
हिन्दुन के पति छों न बिताठ सतायत हिन्दु मरीचनि पाई के ।
मीनै कर्मक न दिस्ती के बालम बालम भातमगीर बहाई की ॥

एक उत्पीड़ित सम्प्रदाय से सामाजिक जाति के रूप में सिखों का विकास

मुगल भारत में सबसे पहले पंजाब में आये और पंजाब सीमावर्ती प्रवेश था, मग़ मुगलों के लिए परमत्त महत्वपूर्ण थी। किन्तु धीरे-धीरे की मृत्यु के समय तक मुगलों के उत्पीड़न के कारण सिखों ने एक छोटे और संन्यस्त सम्प्रदाय से बढ़कर एक सक्रियताशील जाति का रूप धारण कर लिया था तथा १७०७ में (धोरेपदेन की मृत्यु का वर्ष) में उनके सम्बन्ध पावसाहूँ अग्रिम सिख युव गान्धिविह्वल थे। सिखधर्म वास्तव में रामानन्द कबीर, रीतम्ब और बल्लभ के नेतृत्व में भक्ति आन्दोलन की ही एक शाखा है। जयदेव नामदेव तिलोत्तम कबीर, रामानन्द सचन बेनी बन्ना बीवा सेन रविदास और कृष्णदास तथा (अत्यन्त रोचक बात है) दो मुसलमान सन्तों फरीद और भीमन के भक्तों को सिखों के धार्मिक में सम्मिलित किया गया है। 'ग्रन्थसाहिब' में कबीर के श्रम के विस्तार से स्पष्ट पता चलता है कि सिखधर्म कबीर का किताब आमाटी है। दास नामक ने कभी कबीर से जेंट भी की थी।—कबीर के भक्तों से तो बहुत सारी भाँति परिचित थे। गोरखनाथ रामानन्दी परम्परा से भी नामक ने बहुत कुछ ग्रहण किया है। उन्होंने कहा है कि नामसा और ओष को मिलाते तथा धार्मिक माता से मुक्त होने में बहुत योग-साधना सहायक है। गुरु गोबिन्द ने भी गोरख को 'योगिगुरु' कहा है। किन्तु पंजाब की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति के संघर्ष में नामक का विस्वास और सत्य था—दास पर सवे नैतिक मानकों की स्थापना जीवन और समाज के मूल्यों की स्थापना के लिए अपनाए गए नामक ने रचनात्मक संघर्ष में गोरख के सहयोगी रामानन्द के साम्प्रदाय तथा कबीर और सूफियों की हिमालय और इस्लाम के ऐक्य की परिपूर्ण और अभिवृद्धि हुई—तथा प्रमुखता किन्हीं बुरी दुनिया की न रूढ़िवादि किन्हीं राष्ट्र का निर्माण करनेवाले नैतिक प्रयास की हो गई। मुठिठुआ धार्मिक अनुष्ठान जातिप्रथा तथा अनेकदरबार सभी को अन्वीकार किया गया ताकि व्यावहारिक सुदृढ़ और साहसी व्यक्तियों के निर्माण का मुख्य उद्देश्य पूरा हो सके। इसके साथ ही नामक तथा उनके उत्तराधिकारियों ने समकालीन भारत के अन्तिम-आन्दोलन से बहुत कुछ ग्रहण किया। ईश्वर की पारसीकिकता के बारे में नामक का एक उत्कृष्ट भजन है

गमन मैं बासु रवि चंदु बीपक बने छारिका मंडल जनम मोठी ।
पुपु मनघामसो पबलु बनरो करे सगल बनराइ कृतत ओठी ॥
कैसी पारसी होइ भवधरना तेरी पारसी । भगहता सब बान्त मैरी ।
सहस सब नम नम नम हहि सोहि कठ सहस मूरतिगता एकु सोही ।
सहस पद बिमल नम नम पद रंघ बिनु सहस तब रंघ इव चमत मोही ॥
सम महि जोति ओति है सोई । तिमर्प जाननि सब महि जानलु होई ।
गुरु छाग्री जोति परगट होई । जो तिवु माई गु पारसी होई ॥^१

१. गुरु दास की विदेशी हरी सम्प्रदाय 'छान-छाना' (प्रथम संस्करण १६९६) से उद्धृत। हिन्दी रूपान्तर आगे प्रस्तुत है।

मानक के उत्तराधिकारी अथवा धर्मराज और रामदास सभी उच्चतम चरित्र मान व्यक्ति थे। उन्होंने लोगों को व्यापक-व्यापक और मानवीय सामाजिक कर्तव्य की नीति की सिखा दी। गुरु अंगद ने 'गुरुमुखी' धर्मशास्त्र का आविष्कार किया। जनसाधारण को उच्च निधि सीखना अपेक्षाकृत अधिक आसान समा फलतः शिक्षण के प्रसार और विप्रे लोगों के ऐश्वर्य में आसानी हुई। सगर (अथवा सामुदायिक भोजनालय) नामक संस्था— जिसमें राजा और किसान धनी और निर्धन उच्चकुलीन और निम्नकुलीन सभी बिना किसी सामाजिक भेदभाव के एकसाथ भोजन कर सकते थे—के कारण मानवप्रेम की भावना का व्यापक प्रसार हुआ और इस प्रकार यह संस्था भी एकदा स्थापित करनेवाली शक्ति सिद्ध हुई। अफसर ने धर्मराज को समुद्र में जमीन का एक टुकड़ा प्रदान किया। इसी भूमि पर बाद में सिखों की पूजा सहस्रधर्मधारिता और समा के एक केन्द्रीय स्थल के रूप में विख्यात 'स्वर्णमन्दिर' का निर्माण हुआ।

पाँचवें गुरु, अर्जुन बिद्याल संवत्स-समता वाले नेता थे। उनके नेतृत्व में सिखों की संख्या सम्पत्ति सम्मान और शक्ति में काफी वृद्धि हुई। किन्तु उनकी बड़े भागवत पक्षपात परम्पराओं में गहरी दी और 'प्रियत्व' के लिए उनके हृदय में अपार भक्ति थी

यह जान लो मैं तुम्हारे शरीर पर भरी सपत्नी हूँ
तुम सतगुरु को अपने लगे हो और तुमने वन का हृदय जीत लिया है,
तुम्हारे मुख का यह सीख्य मैं तुम्हें किसने दिया है ?
किस रंग से तुम्हारा शरीर इतना चमकीला बना है ?
तुम सुन्दर हो, तुम सुखी पत्नी हो
तुम्हारे घर में ही तुम्हारा प्रिय है, और तुम्हारा घर ही स्वर्ग है।

गुरु अर्जुन बिरोही राहुनादे कुचरो के मित्र थे। केवल इसीकी आड़ लेकर जहांगीर ने उनपर राजद्रोह का अपराध लगाया और फाँसी दे दी। राहुनादे पाने से कुछ पहले गुरु अर्जुन ने अपने उत्तराधिकारी को संदेश भेजा 'उम्हें अपनी पत्नी पर सदा स्नान करना और अपनी योग्यतागुणों से रक्षा रखनी चाहिए।' इसी संदेश में सामरिकता के बीज निहित थे। सर्वप्रथम हर मोक्षिन् ने अपने अनुयायियों से दस्त और मोक्ष एकत्र

'आत्म-संयम' बना है, सूर्य और चन्द्रमा उसमें दो बीजक, तथा चारों के मोटी पत्तन बने हुए हैं। मन्त्राभिन्न तेरी पूर है, पत्तन तुम्हें पंजर हुआ है, और हे ज्योतिस्वरूप, सारे वन तेरे पूर हैं। हे मन्त्राभिन्न पर तेरी कैसी आरती है! अमरत्व प्राप्त की तुम्हीं वन रही हैं जहाँ। तेरी सख्तों आँखें हैं, किन्तु तू फिर भी बिना आँख का है। तेरे सख्तों कन हैं, किन्तु फिर भी तू बिना कन का है। तेरे सख्तों निर्मल चरण हैं किन्तु फिर भी तू बिना चरण का है। तेरी सख्तों बाकिर्भावे हैं, किन्तु फिर भी तू बिना बाध का है। मैं तो मुक्त हूँ तेरी इस जीता पर। उन तेरी ही ज्योति से ज्योति पा रहे हैं तेरे ही प्रकाश से सब प्रकाशित हो रहे हैं। गुरु के बपेरा से वह ज्योति प्रकाश होती है। जो गुरु प्रिय करने वही तेरी आरती है।

किए। नर्वे गुरु, तेग बहादुर, ने कुछ उत्पीड़ित कस्बीरी बाइबलों के मामले में हस्तक्षेप किया तो भीरंगबाब ने उन्हें फाँसी दे दी। तेग बहादुर ने अपना पीछ बे दिया किन्तु धर्म नहीं दिया (सिर दिया सर मा दिया)। सह्यादलों की श्रुतता ने पंजाब में एक सामरिक राष्ट्रीयता को और उत्तेजित किया। सिख धर्म पूर्णतः सामरिक जाति में बदल चुक था और मुगल उत्पीड़न के विरुद्ध सहायता और सहारे के लिए पंजाब के हिन्दू भी सिखों का मुँह खोलने लगे थे। दिल्ली के छाही शक्त पर बैठे हुए भीरंगबाब की पुगोटी को पंजाब के निवासियों का उत्तर था—धार्मिक और सामरिक राष्ट्रीयता।

खालसा और पाहुल

इस नई सामरिक जाति के नेता थे भारतीय इतिहास के महानतम राजाओं और नायकों में से एक दसवें शताब्दी के गुरु गोबिन्दसिंह (१६६९-१७०८)। सामान्य हिन्दुओं में गंभीर प्रभाव डालने के उद्देश्य से गुरु गोबिन्द ने एक पाहुल संस्कार का प्राबलिक किया जिसके द्वारा सभी सिखों का पुनर्जन्म होता था (फिर उत्पन्न हो चुके थे किसी भी जाति के लोगों में रहे हों) तथा कृपा से हिंसा देने का बाद साध-साध पानी पीने और 'कढ़ाह प्रसाध' खाने से वे सभी हिन्दू हो जाते थे। धर्म पंजाब के गाँवों में मेहतर और चमार तक बाइबला के साथ बैठकर भोजन करने तक। समाज के निम्नतम सोय धर्म धूमि के शासन से एक समय मारिबन्दी के सदस्य थे। खालसा के और गुरु स्वयं अपने नाम के साथ सिंह लगाते थे। यह एक प्रकार का गुरु-बाइबलवादी संस्कार था जो धर्म के समूह उन्मूलन तथा सर्वसाधारण की एकता प्रतीक था। वे भीरंगबाब के 'बिहाब' के विरुद्ध धर्मपुत्र प्रारम्भ करने को तैयार थे। इस प्रकार मुगल-मुसलमान के विरुद्ध केवल सिखों के ही नहीं बल्कि समग्र हिन्दूजाति के विरोध के अग्रगामी दल के रूप में खालसा का प्राबलिक १६६६ में हुआ।

गुरु गोबिन्द ने रामचन्द्र कृष्ण तथा धर्म्य धर्मतारों और नामों के एक वैदिक बन्दी के साहित्यिक कृत्यों की नई जातिगत व्याख्या प्रस्तुत की। यह व्याख्या पहल सिख धर्म से निम्न स्तर में थी और इसका उद्देश्य था एक राष्ट्र के रूप में हिन्दुओं में सामरिक राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करना। जिससे बात यह है कि वह एक साइमी यात्रा एक आत्मिक सेनापति नाम ही कवि एवं विद्वान भी था। गुरु गोबिन्द चाहते थे कि उनके शक्ति-सन्त यज्ञाओं में साहस व शौर्य का प्रदर्शन करें और उन्होंने देवताओं के विषय में धर्मशास्त्रों के साहस और शौर्य का बचन काव्य में किया। निरस्तवह शिल्पधर्म की रचना सामरिक प्रकृति की साधारणता गुरु गोबिन्द की यही काव्यरचना थी और उनके धार्मिक मन्त्रों में उल्लास ही गम्भीर काव्य-सौष्ठव अतिरिक्त है। उनका एक मन्त्र प्रस्तुत है

मोर नाचते हैं, मेहक टरते हैं और बावस सनातार मरते हैं
येक जयस में सदा एक पैर पर लड़ा रहता है
सरयोगी कूक-कूककर पानीय पर पैर रखता है,
परमर मुग-मुगों तक एक ही बगल पर पड़े रहते हैं

कौए धीर भीसें बेस-बेगान्तर भग्न करते हैं,
 बेबी जानरहित व्यक्ति भग्न ईश्वर की उपासना कभी नहीं करता
 तो फिर मत्ता उसकी रक्षा कैसे हो सकती है !

सिख संस्कृति

सातसा की एकठा धीर निस्स्वार्थ प्रकृति ने सिखों में एक धीर निरालस व्यक्ति 'वंशावली' रचनीसिंह को जन्म दिया (१७८०-१८१६)। वे अपने समय के महान् ठम कूटनीसिखों में से एक थे। सातसी वे सुयोग्य धीर धारण्यजनक रूप से सप्तम सैनिक प्रतिभावान् व्यक्ति—'विपोनिधन बोनापाट का कबु संस्करण'—थे। वे अपने धीर सिखों को सिखाकर सामूहिक रूप से सातसा कहते थे। समयमय सीम वसुकी के भीतर उन्होंने अपना एक राज्य स्थापित कर लिया जिसमें कांगड़ा कश्मीर और तिब्बत की अधिकतम सप्त शामिल थे। यदि कुछ ईसाई सिख सरदारों ने अंग्रेजों ने बढ़ावा पाकर उनका साथ न छोड़ा होता तो उन्होंने सतनुज के आसपास की रियासतों भी अपने अधिकार में कर ली होती। सम्पूर्ण सिखजाति को सातसा के नेतृत्व में नहीं लाया जा सका—इस ठम्य का सिखों के भाव के इतिहास पर अत्यन्त विनाशकारी प्रभाव पड़ा। रचनीसिंह एक निर्भय धीर दूरबीर योद्धा एवं विवेका होने के साथ-साथ दयानु धीर मानवीय भी थे। एक जर्मन बैरन कार्ल वॉन हीनेन का कथन है 'इतनी कम अपराधिता के द्वारा इतना बड़ा साम्राज्य एक आदमी द्वारा शास्य कभी नहीं स्थापित किया गया। वे स्वयं निरक्षर किन्तु विवेकशील धीर उदारमत्ता व्यक्ति थे धीर उनके दरबार में मन्त्रियों अथवा जातिमें के कुछ सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्ति मौजूद थे। उनके प्रधानमन्त्री एक मुसलमान भक्त फकीर बकीबुद्दीन धीर वित्तमन्त्री एक राजपूत राजा बीरनाथ थे। उन्होंने विभिन्न यूरोपीय देशों के निवासियों को भी अपनी सेना में रुके छोड़ दिए। उनके दरबार में कच्चा धीर बिद्या कुली-कर्मों। प्रधानमन्त्री सुफी थे और हिन्दूधर्म व इस्लाम में कोई अन्तर न देखते थे मैं एक विद्वान् मन्त्री के बीच में उतराता हुआ व्यक्ति हूँ मैं स्पष्ट की धीर दुष्प्रभावता हूँ किन्तु दोनों धीर के धर्मों में कुछ कोई अन्तर नहीं पाया। अठारहवीं सताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में एक सिख विद्रोहता-सम्प्रदाय अत्यन्त विकसित हुआ। उसपर धीव्यारिक व धार्मिक मुसलमानता का नहीं बल्कि प्रवाहमयी यथार्थवादी मोह-सीसी का प्रभाव था। सामान्यतः मुसलमान धीर सरदारों के 'पोर्ट्रेट' तथा परमार या सिंकार के दृश्यों का प्रेरक किया जाता था। इसका मुख्य कारण यह है कि सिखधर्म में मूर्तिपूजा का स्थान नहीं है धीर न उसकी अपनी पीछाधिक मायाएँ हैं।

सिखाजी के नेतृत्व में हिन्दू-मुनरुत्थान

धीरपंथ की चुनौती को पंजाब में हिन्दुधर्म की धीर से गुरु गोबिन्द ने 'सत्ता पारपाह के रूप में १६७५ में स्वीकार किया। इससे केवल एक वर्ष पूर्व मराठा धीर सिखाजी ने रायगढ़ में विशुद्ध प्राचीन हिन्दू सत्ताओं की परम्परानुसार अपना राज्याभिषेक किया तथा 'सिंहासनाधीश्वर' धीर 'भी सिखा सनपति' की विरसम्मानित उपा-

दियां भारत की। महाराष्ट्र का गारा हिन्दूधर्म और संस्कृति—‘धर्म के देवता’ ‘धाम और ब्राह्मण’—बा। सिवाजी में अद्वितीय साहस और सागरिक योग्यता के साथ-साथ महाराष्ट्र की लोक-संस्कृति, पीठ और कपाड़ों के प्रति गम्भीर लगाव या इसी सदाब के कारण वह धनेक बार छत्रपेश में धार्मिक प्रवचन सुनने पुजा गए, यद्यपि ऐसा करने में उनकी गिरफ्तारी का खेद्व लतरा बा। धार्मिक पथनिर्वेस प्राप्त करने के उद्देश्य से वे मक्तिपूर्वक सन्त तुकाराम के पास गए, किन्तु तुकाराम ने उन्हें रामदास समर्थ का दिव्यत्व प्राप्त करने की सलाह दी। एक ही शोध के दो शक्तों में परस्पर बिरोधाभास इससे अधिक नहीं म था। तुकाराम प्राचीन मक्ति-परम्परा के पासक और बिठोबा के प्रेम में तीन वे तथा उन्हें संसार में किसी अन्य वस्तु की परवाह न थी। उनका एक भजन है

जैसे बहु बार-बार मुड़-मुड़ कर अपने मातृ-गृह को देखती जाती है
 और बहुत बेमन से ही जाती है,
 उसी तरह मेरी धारणा तुम्हें देखती है और चाहती है
 कि तुम और मैं मिल जाए।
 जैसे कोई बच्चा अपनी मां को न देखकर
 बुझी होकर रोने लगता है
 जैसे पानी से निकासी हुई मछली होती है,
 तुका कहते हैं कि वही क्या मेरी है।

तुकाराम का मत है कि धार्मिक ध्यानत्व तथा सांसारिक क्रिया-कलाप दोनों का सामंजस्य असम्भव है। ‘सांसारिक जीवन और ईश्वर संय जीवन—दो व्यक्ति दोनों जीवन साथ-साथ जीना चाहता है, अन्ततः एक को भी प्राप्त नहीं कर पाता। यदि कोई व्यक्ति भगवान की दो क्षतियों में एकसाथ प्रवेश करना चाहे तो धर्म में स्वयं को मष्ट कर डालेगा। फिर भी उनके लिए संसार अवश्य ही है। ‘ईश्वर के हाथ सम्पूर्ण संसार इससे सम्बन्धित है, रस्ती तानी जाती है तो उसका एक-एक रेशा लता है। संसार धर्म समवा निम्ननीय नहीं है ध्यान दीजिए कि प्रत्येक जीवन सभी के जीवनो के साथ सम्बन्धित है। जिस प्रकार हमारे सुख-दुःख दूसरों को प्रभावित करते हैं ठीक उसी प्रकार दूसरों के सुख-दुःख हमपर प्रभाव डालते हैं। तुका कहन हैं कि जब इस विस्तृत नियम का हृदय में वास होता है तो व्यक्ति का बाह्य रूप प्रसन्नता से झिलमिलाता रहता है।”

पंढरपुर के सन्त

पंढरपुर के सन्तों ने एक और राष्ट्रव्यापी धार्मिक पुनरुत्थान को प्रोत्साहित किया और हुपरी और समानतावादी सामाजिक आन्दोलन को। फलतः एक मखिल हिन्दू आन्दोलन की भूमि तैयार हुई। बैबगिरि के शासक के एक मंत्री तथा ‘महानुभव-सम्प्रदाय’ के संस्थापक बकसर स्वामी से सन्तों निहानों और कवियों की एक गृत्तला का धारम्भ म्मा। बकसर स्वामी मुरली के मराठा संत गोविन्दाचार्य के शिष्य थे। वे केवल कृष्ण ईश्वर मानते थे तथा भूतिपूजा के विरोधी थे। जिस समय सूफी उपदेशक और इस्लाम

धर्मप्रचारक अपने धर्म-परिवर्तन सम्बन्धी कार्यक्रम को धार्य बढ़ाने हेतुगिरि पर्व पर उस समय बकवर स्वामी एक उग्र हिन्दुधर्म का केन्द्रबिन्दु बन गए। धर्म्य सन्त और कवि ये-नामदेव (१२७०-१३२०) भूतदेव हेमाद्रि गीता की विख्यात व्याख्या (१२६०) के मर्मक ज्ञानेश्वर जनार्दनस्वामी तथा सनक प्रतिष्ठित शिष्य एकनाथ (१२४८-१२६८)। कवियों और सन्तों की इस भूमिका ने लोगों के धार्मिक विश्वास को कायम रखा और सिवाजी के नेतृत्व में हिन्दु-पुनरुत्थान को प्रेरित किया।

सिवाजी को धार्म्यात्मिक प्रतिराध क मठा तुकाराम (१६०८-१६४६) नहीं बरन् रामदास (१६०८-१६८१) प्रतीत हुए। वे तुकाराम की भाँति पारसीकता का ज्ञान न करके धार्मिक और धार्म्यात्मिक दोनों धर्मोपदेशों के समन्वय के लिए प्रयत्नशील थे। रामदास के अनुसार, संसार में सफलता द्वारा ही परमात्म में सफलता सम्भव है। दूसरी सफलता के लिए पहली सफलता एक अनिवार्य मार्ग है। महीपतिष्ठित सतविद्यार्थ के अनुसार जब सिवाजी का धार्म्यात्मिक कष्ट बहुत बढ़ गया तो स्वामी रामदास के पास पहुँचकर उन्होंने वैरागी के रूप में उनके पास रहने की इच्छा प्रकट की। स्वामी रामदास ने सिवाजी की मठा पवित्र तो स्वीकार की किन्तु धार्म्यात्मिक सत्तों का पाठ पढ़ने के बाद आदेश दिया कि वे संसार में अपने व्यक्तिगत कर्तव्यों का पालन करें। अतः और सामाजिक कर्तव्यशीलता पर है जो अर्हत्वात् से सर्वथा तटस्थ एवं मुक्त होना चाहिए। रामदास मध्यमान सिद्धान्त के पक्षधर हैं। पालन के नैतिक जीवन का आदर्श न प्राप्त है और न विरहित बरन् संयम है। रामदास पंढरपुर के बिनोबा की मक्त परम्परा से कुछ प्रभावित हुए हैं और उनके विरस्मरधीय भ्रम दास-बोध में जीवन के विभिन्न विमानों और कलाओं का समन्वय धार्मिक शोध के साथ स्थापित किया गया है। सम्पूर्ण दक्षिणभारत में रामदास ने लगभग ८० मठ स्थापित किए, जिनमें राम और हनुमान की मूर्तियाँ स्थापित थी तथा जिनके साथ प्रजाई संसन्ध थे। ये मठ समय पाकर वैष्णवी धार्मिक पुनरुत्थान तथा व्यापार और प्रतिरोध के केन्द्र बने। वास्तव में रामदास की योजना अनिवार्यतः व्यावहारिक और बहुमुखी थी और उसका उद्देश्य था प्रत्येक हिन्दू वैश्ववादी को रामदास की ही भाँति समर्थ बनाना। उन्होंने कठिन परिश्रम तथा धामस्य-निवारण की महत्ता पर जोर दिया। उनकी राजनीतिक बुद्धि विमलजयी। सिवाजी एक बलशाली राष्ट्र के नायक थे उन्होंने सातवाहन और विजयनगर साम्राज्यों की महान परम्पराओं का दाय प्राप्त किया था और वे हिन्दुधर्म की रक्षा एवं पुनरुत्थान के कार्य की महत्ता को समझते थे तथा रामदास जैसे गुरु उनके धार्मिक सहयोग थे। अपने उद्देश्य में सिवाजी का दक्षिण के दानिय राजाओं का प्रतिरिक्त अवसिह और छत्रसाल जैसे उत्तरभारतीय दानिय राजाओं का सहयोग भी प्राप्त हुआ। उत्तर भारत के अनेक भाग उनके राजदरबार में साधनीय राज्य का गुणगान करने पहुँचे थे।

हिन्दू पद-पादशाही का मराठा आदर्श

पठारवासी घाटाधी के बीरान मराठों की शक्ति भारत की प्रमुखतम शक्ति हो गई और अनेक महान कूटनीतिज्ञ तथा योद्धा उनमें पैदा हुए। अंग्रेजों को भारत पर

घोर निरुपाधों के दौरान जनसामान्य का धार्मिक पुनरुत्थान हो जाता था।

भगाल के शासक धर्मशास्त्रवादी

महाभारत के युग (१७५९-१७७४) में बंगाल में बेगमीर मूटपाट बहरता घोर उत्कर्ष का बोधदाता था। इसी युग में शासक वर्ग ने एक अत्यन्त श्रेष्ठ कवि बंगाल को प्रदान किया। य कवि थे भारतचन्द्र राय गुप्ताकर (१७११-१७९१) जिन्होंने 'मन्त्रदामगल कामिकामंगल धर्मशा विद्यासुन्दर' और 'धर्मपूजामंगल' धर्मशा 'मार्गसिद्धि' की रचना की। उनके सर्वोत्कृष्ट गीत 'विद्यासुन्दर' में है जिसकी परिसमाप्ति पत्नी के युद्ध से केवल चार वर्ष पहले हुई थी। १७५७ में उन्होंने 'सत्यनारायण पांचामी' की रचना की जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्मिश्रित दृष्ट 'सत्यपीर' का गुलशन किया गया है। उनकी ऐसी बंगला कविता में सरसी संस्कृत और फरसी से आत्मसात् शब्दों के सुन्दर उपयोग का सर्वोत्तम उदाहरण है। भारतचन्द्र राय की तुलना पोप और ड्राइडेन के नाम की गई है। राय-विन्यास और तुल्य पर उनका असाधारण अधिकार था और उन्होंने प्रहारपूर्ण शताब्दी के अन्त तथा उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की बंगला कविता को बहुत प्रभावित किया।

इसी धार्मिक परम्परा ने विख्यात कवि-धर्मशास्त्रवादियों रामप्रसाद सेन (जन्म १७१८) और कमलाकांत मट्टाचार्य (जन्म १८०६) को उत्पन्न किया। शासक-वर्गों में वैष्णव पदाधिकारियों के ही समान कामिठ शोक और गंभीर है तथा प्रामाण्य समाज में दोनों समानरूप से लोकप्रिय हैं। रामप्रसाद का एक विशिष्ट भजन है

मानवों को मछलियों की तरह पकड़ने के लिए
ब्रह्मांड के अन्त गहरे जल में
अपना विशाल जाल डालकर मछली प्रतीक्षा करता है
और इच्छा होत ही उन्हें जालों से पकड़कर बाँच लेता है।
इस काल-जाल से किसीकी मुक्ति नहीं।
काल के वंश में क्या व्यक्ति अपनी मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है ?
काल-विनाशिनी माँ काली का आवाहन करो
वह काल के पाश से तुम्हारी रक्षा करेगी।

एक अन्य भजन में रामप्रसाद असमानता के विरुद्ध स्वर उठाते हैं

ओ माँ क्या मैं तुम्हारी महारक्षणा से परिचित नहीं।
कुछ को धन का एक ढागा भी नहीं मिलता
जबकि दूसरों को विविध व्यंजन और अपरिमित कोप उपलब्ध है।
कुछ धानबार पालकियों में यात्रा करते हैं और कुछ
उन्हें अपने कंधों पर होते हैं
कुछ कीमती धान छोड़ते हैं और कुछ के पास शरीर की
गमता डालने की शोच है तक नष्टी होत।

दूसरे मन्त्र में पूजा के अनेक रूपों के आह्वान का विरोध है

ओ मम देवी ने बारे में गलत ज्ञान प्राप्त मत बनाया
 क्या तुम नहीं समझते कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड उसका ही रूप है ?
 फिर तुम उसकी माटी की मूर्त क्यों पूजना चाहते हो ?
 मां अनन्त बरदानों से ब्रह्मांड को अभिव्यक्त करती है
 उसकी मूर्ति के लिए कुछ भुगहरे बनवाते हुए तुम्हें खर्म नहीं समझती ?
 मां ही ब्रह्मांड का पालन करती है,
 आसन और चने का भोग उसे लगाते हुए तुम्हें खर्म नहीं समझती ?
 वह बड़े मल से ब्रह्मांड की रक्षा करती है
 फिर उसे बकरे की बलि देने का साहस तुम्हें कैसे होता है ?
 मां की पूजा केवल भडा से की जा सकती है ।
 जन-समुदाय के सामने दिखावे के साथ उसकी पूजा मना तो
 किन्तु तुम्हारी रीतिगत वह कदापि स्वीकार नहीं करेगी ।

रामप्रसाद निस्संदेह 'कीर्तियज्ञ' थे। सम्भवतः उन्होंने ही बंयसा कविता और
 र्त्न में प्रागमनी और 'विजया' के भक्तों का समावेश किया था। ये भक्त बंयसा में
 पूजा के अवसर पर जब मङ्गलिया अपने माता-पिता के यहाँ जाती हैं गाये जाते हैं।
 अठारहवीं शताब्दी के बंगाल में नादिया के राजा कृष्णचन्द्र राय के दरबार में बंयसा की
 अर्द्धशत प्रतिमाएं मौजूद थीं और राजा के प्रयत्न एवं संरक्षण के फलस्वरूप अठारहवीं
 शताब्दी के मध्य से बंयसा में दुर्गापूजा का महत्त्व बढ़ा है। इन सर्वस्पर्शी प्रागमनी और
 वैजया गीतों में धारात्म्य देवी को पुत्री माना गया है जो तीन दिन अपने मायके में सान
 डे व्यतीत करती है और फिर अपने पति शिव के साथ जीसाध वापस जाती जाती है तथा
 विचार के लोप बिलाप करते रह जाते हैं। जमा अथवा पीरी के प्रति माता-पिता के
 रम की सुदृढ भक्तिभावों में कामिक अर्थ उसी प्रकार व्यक्त है जैसे जीवनमय कृष्ण के
 प्रति राजा और गोपियों के रमानी प्रेम में। इस प्रकार भीतों की सहायता से माता-पिता
 अपनी मात्र मानवीय कोमलता की आध्यात्मिक उज्ज्वलता में रूपांतरित कर सकते हैं।
 कारण स्पष्ट है। क्या प्रत्येक माता जमा की माता बनका नहीं है ? क्या वैष्णवी उमा
 प्रभेय होने के साथ-साथ अर्चनीय भी नहीं है ? और क्या तीन दिन के पुनर्मिलन के पश्चात्
 उससे अलग होने की व्यापक दुःख से अलग रहने की संकल्पना नहीं है ? प्रत्येक पुत्री उमा
 का प्रतिबिम्ब है जो प्रेम और सहृदयता की आकांक्षी है, किन्तु दुःख स्थिति यह है
 के वह पृथ्वी पर अव्यक्त मध्य राशि के लिए जाती है। रामप्रसादी भक्तों में माता
 पिता और पुत्री के सम्बन्ध का आदर्शिकरण इष्टदेव की प्राप्ति के एक नवीन उपाय था
 पतीक है। जब देवी के अर्द्ध-महोत्सव में इन भक्तों को काया जाता है तो आज भी हजारों
 श्रोता एकत्र हो जाते हैं। दुर्गा के प्रति प्रागमनी और विजया गीतों के प्रतिरिक्त विविध
 रामप्रसादी सौम्य और भजन आज भी सत्ताश्रयी बाब भी लाजो बगामी बरो में
 प्राचर्य के केन्द्र हैं।

कमलाकान्त के श्रीकृष्णपूज और अगाध गीतों में हम विद्युत् एकेपरवाद तथा फासी व हृत्पङ्क की पूजा एवं योग तथा कमलकण्ठ का समन्वय पाते हैं। त्रितयी ध्याना प्रतीकात्मक और ध्यानात्मिक है। निर्वाण की देवी काला क प्रति एक उत्कृष्ट ब्रह्मा भजन इस प्रकार है

गहन संस्कार में ओ मां तुम्हारा रूपहीन सौंदर्य दमकता है
जिसका ध्यान गहरी पर्वत-मुष्काघों में योगी समाते हैं
सीमाहीन संस्कार की मोद में महानिर्वाण की तरंगों पर सवार होकर,
निर्मल और अनन्त शान्ति प्रवाहित होती है।
सुन्याकार, संस्काररसना समाधिबीना मां तुम कीन हो ?
तुम्हारे भयनिवारक करककमला से तुम्हारे प्रेम की विद्युत् कमकती है
तुम्हारा आकाशीन मुक्त मोमहर्षक अट्टहास से दमक सठता है।

इसी समय 'मातृसौ' और 'बातृसौ' में एक प्रकार की निष्कण्ट व स्वाभाविक अध्यात्मवादिता का उदय हुआ। इनमें मुसलमान सूफी और हिन्दू सन्त दोनों ही थे तथा उनके मन्त्रों में ब्रह्मा के हरे-भरे केतों और विद्याम नवियों की विस्तृत शान्ति परिष्पाद्य है। बातृसौ का कोई आध्यात्मिक भावना धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त नहीं है। वे गीत-संगीत द्वारा आराधना करते हैं तथा सीधे-सुरस रूप से ईश्वर को 'मनेर मानुष' (मनुष्य जिसे आत्मा ओबती है) मानते हैं। इस संयोगक अनुभव के कारण अध्यात्मवादी के समस्त विश्वात्मा की हैव पतिविधि का उद्घाटन होता है—मनुष्य का प्रयास ईश्वर की धार और ईश्वर का प्रयास मनुष्य की ओर। शास्त्रत संसर्ग में 'मनेर मानुष' अपनी प्रिया के साथ विहार करता है इन्द्रियों के द्वार बन्द करके वह प्रिया के शास्त्रत सौंदर्य को निहा रता है। आत्मा के किन्ना-कलाओं में इस प्रकार का मानवतावादी स्वर संसार-भर क धार्मिक काव्य में विरल है

मनुष्य मनुष्य सभी कहते हैं।
मनुष्य क्या है ?
मनुष्य जीवन है मनुष्य जीवन है मनुष्य हृदय रत्न है
पृथ्वी पर बिखरे ही मनुष्य का सत्य जानते हैं।
मनुष्य को वह प्रेम मानुष है जो धन्य प्राणी नहीं जानते
और केवल मनुष्य ऐसे प्रेम की गहराई को जानता है।
मनुष्य का प्रेम 'मनेर-मानुष' की ओर में उसका सहायक है
इस प्रकार मनुष्य मनेर-मानुष को जान जाता है
मनेर-मानुष के मनुष्य की शक्ति को केवल मनुष्य समझ सकता है।

भीने एक अत्यन्त धार्मिक शास्त्र गीत दिया गया है। इसमें शिक्षाया गया है कि जीवन के प्रवाह में ईश्वर और मानव का अत्यन्त मधुर शास्त्रत सम्पर्क है

आत्मा का कमल युग-युग तक चिलता जाता है
 और उसमें मैं और तुम ऐसे बंधे हैं कि मुक्ति नहीं।
 इसकी पंखुरियाँ निरन्तर खुसती चली जाती हैं
 और उसके मधु में इतना माधुर्य है कि तुम आसक्त मधुमक्खी के
 समान उसे छोड़ नहीं सकते
 और इसीलिए मैं बंधा हूँ और तुम भी तथा मुक्ति कहीं नहीं है।

उत्तरभारतीय अध्यात्मवादियों की उदारता और सहिष्णुता

मराठा और ब्रह्मवैद्य अध्यामी के बीच संघर्ष में कभी मराठों का पक्ष नहीं होता था कभी अध्यामी का। कमलकम्प सम्प्रदाय उत्तरभारत में अनिश्चितता और सुट पाट का बोसबाना था। इसी वातावरण में उत्तरभारत में अनेक अध्यात्मवादी सन्त और सुधारक हुए जिनकी निरन्तरता अठारहवीं शताब्दी में कायम रही। उनमें एक प्रमुख वेद्विस्त्री के मुखसमाग सन्त यारी साहिब (१६६८-१७२१)। वे महिला सत बाबरी साहबाब शिष्य थे और उत्तरप्रदेश में अपने अनेक शिष्य छोड़कर मरे। यारी साहिब 'रत्नावली' का रचयिता है। इसमें सुन्दरतम धार्मिक गीत है। ब्रह्माव के बारे में उनका कथन है

मह स्याही डाव माहि लीनै लो अछर नाहि
 कुल सेती कप म्यारो म्यारो निकरि धायो है।
 सुन्न के कायब पर मानिक कसम सिने
 बिज की कसीसी करि अछर बनायो है।
 अरप अछर माहि अचरे को सुम्हे नाहि
 बाजा बीजा जिन पड़िके गुनायो है।
 यारी धादि भोजार जासों यह भयो ससार
 अछर बचाव बीच दुई माहि पायो है॥

यारी साहिब के एक शिष्य वे फैजाबाद के हलवाहे बुल्ले। बुल्ले ने अपने राजपूत जमींदार और मानिक गुलाब को अपना शिष्य बनाया। नीचे गुलाब का एक भावप्रबल गीत प्रस्तुत है

'मम मधुकर सेसत बसत। बाजत अनहद पति अनस्त ॥
 बिमसत कमल भयो गुजार। जोति जगामग कर पसार ॥
 निद्रकि निद्रकि जिय भयो धर्मद। बाधस मम तब परस कन्द ॥
 लहरि लहरि बहै जोति धार। चरन कमल मम विलो हमार ॥
 धारै न जाइ मर नहीं जीव। पुसकि पुसकि रस धमिय पीव ॥
 धगम धगोचर धमल माय। देवत नैनन भयो सनाव ॥
 कह गुलाब मोरी पुबलि घास। जम जोत्यो भयो जोति बात ॥'

१ श्री विवेकी हरि सम्पादित 'संस्कृत-प्रार' (पवन संस्करण १९२३) से उद्धृत।—समुदायक।

गुप्तान्त के एक क्षिप्य के बाजीपुर-निवासी भीला। निम्न भजन में भीला के बार्मिक दृष्टिकोण की मार्मिक अभिव्यक्ति है

साईं मुय मिट्टी है जिससे कुम्हार अनेक बर्तन बनाता है
 और उसके सुअम में बहुत बिबिधता है।
 नाम सुअम है वे धामूपणों के समान जो है उससे अलग कीखते हैं।
 लेकिन गुद या अमूख, उनका आधार तो सुअम है।
 फेन बुलबुले धाराएँ और जहरें अनेक हैं
 लेकिन खारा या भीठा पानी नहीं है।
 भीला कहते हैं कि आत्मा की एक जात है
 बाहु और बाजी दोनों एक ही सरकार क है।

यारी साहिब के एक श्रम क्षिप्य का नाम था केसवदास (१६१-१७९३)। वे वैश्य जाति के थे और उनकी कृति का नाम है अमीषट। अणजीवनदास (जन्म १६९३) एक विख्यात संत थे। वे बारबरी के एक ठाकुर थे तथा कबीर की परम्परा में थे। उत्तरप्रदेश की निम्न जातियों के बीच मुसलमान और हिन्दू विचारधाराओं तथा पूजाविधियों के सम्मिश्रण में उनका महत्वपूर्ण योग था। उन्होंने सतनामी सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें निम्नतम जाति के लोगों की संस्था बिछाल थी। बस्कि कहना यह चाहिए कि औरंगजेब द्वारा समित इसी नाम के एक सम्प्रदाय का पुनर्गठन अणजीवनदास ने किया। वे अणजी हिन्दी में लिखते थे और उनकी कृतियाँ हैं 'ज्ञानप्रकाश' महाप्रलय और परमप्रसन्न'। उनके निम्नोद्भूत भजन में सामाजिक समानता पर बेहूब और दिया गया है

हे सन्त सबमें एक प्रकाश समकृता है।
 सोचकर देखो प्रकाश हो नहीं है
 रक्त और शरीर एक ही हैं।
 न कोई बड़ा है न कोई सन्त
 कुछ को पुस्य कहा जाता है कुछ को स्त्री
 अक्षय्य पुरष सबमे है।

इस युग के एक अत्यन्त विख्यात संत थे प्राणनाथ (१७०-१७८०)। उनका जन्म बुंदेलखंड में हुआ था कार्यक्षेत्र भी यही भूभाग था और पन्ना के जलसाम बुंदेला उनके शिष्यों में से थे। वे बाइबिल कुरान और हिन्दूधर्म-ग्रंथों में पारंगत तथा हिन्दुओं मुसलमानों और ईसाइयों की एकता के प्रबल समर्थक थे। ईसाइयों के समान वे भी प्रेम को ईश्वर मानते हैं प्रेम शाश्वत और अविनाशक है। प्रमप्यारे के शरीर में है प्रेम उसके साथ है। प्रियतम की आत्मा में प्रम है। प्रम के ही कारण प्राँचें परे से परे तक फैल पाती हैं। प्रेम ही किसीको ईश्वर के अविनाशक धारण का बरदान देता है।

ईसाइयों के ही समान वे फिर वा पड़ते हैं

धर्म में प्रेम की बात कहता हूँ जो स्वयं ईश्वर है और ब्रजनाथीत है
ईश्वर-सृष्टि उसका एक अंश है पर प्रेम गहनतम आत्मत आनन्द है ।

उनके सम्प्रदाय का नाम धामी सम्प्रदाय है क्योंकि उसमें ईश्वर को 'धाम'
अथवा 'घर' माना गया है । इस सम्प्रदाय के माननेवासे हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं ।

एक और प्रसिद्ध सन्त थे गरीबदास (१७१७-१७७८) । उनका नाम रोहतक में
हुषा या और वे राम हरि तथा धल्साह की पूजा एकसाथ करते थे । उनकी उदारता
विक्षाल की और उनके भक्तों में अद्भुत भावप्रबलता है । भाषण की बात है कि उनके
भक्तों में अनेक छन्द अंग्रेजी और फारसी के हैं । सिनारायण (अम १७१०) गाजीपुर
के एक सन्त थे । राजपूत सैनिकों में उनके अनुयायी बहुसंख्यक थे । उनके सम्प्रदाय में
जातिभेद नाममात्र को भी नहीं है । उन्होंने अनेक भक्तों और धर्मियों की रचना की जिनमें
से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं 'सन्तविमल' और 'भक्तदर्प' । मुगल सहृदय
मुहम्मद शाह उनके शिष्य थे । शाहशाह के सहयोग से भी सिनारायण के सम्प्रदाय के
प्रसार में सहायता मिली ।

फैजाबाद के पट्टदास (१७१७-१८२५) एक धर्म सुविख्यात संत थे । यह मुसल
के शिष्य अर्थात् बाबरी साहब की परम्परा के थे और अयोध्या में रहते थे । उन्हें कभी
कभी बूझा कबीर भी कहा जाता है । उन्हें वैरागियों का कोपमान बनना पड़ा । उन्होंने
स्पष्ट रूप से जाति और सम्प्रदाय के भेद की मर्त्यता की । उनका एक मत यह था कि
जहाँ जातियों ने लीकी जातियों का तथा स्वयं अपना भी विनाश किया है । वह 'राम
कुण्डलिया' और 'आत्मदर्प' के रचयिता हैं । कुण्डलिया उन्ध की भावप्रबलता और
सुन्दरता विख्यात है । पट्टदास का कथन है कि आन्तरिक अनुमति न हो तो कर्मकांड का
कोई महत्त्व नहीं । 'यदि बुझी सुन्दर न हो तो सुरमा मचाने का क्या फायदा ।' वे
सम्पूर्ण आत्मसमर्पण के हामी हैं । "लेकिन मैं अपने स्वामी को यह कहकर छोड़ मना
सूना कि हाँ ! हाँ ! हाँ ! गलतियाँ होती हैं ।

निम्नलिखित भजन पुरात कबीर की शैली और विचारधारा में है

पूरब में राम है पश्चिम जबाय है
उत्तर और दक्षिण कहो कौन रहता ?
साहिब यह कहाँ है कहाँ फिर नहीं है
हिन्दू और मुस्लिम लोकाज करता ?
हिन्दू और मुस्लिम भिन्न परे हैं कवि में
घापी बर्ग बोट बीग बहता ।
दास पसदू बड़े साहिब सब में रहै
जब मा तनिक मैं साँच कहता ॥

१ प्रस्तुत पाठ श्री विवेकानंद संपादित 'सन्त-सुखास' (प्रथम संस्करण १९५३) से उद्धृत है ।
—अनुवादक ।

गोंडा बिसे में सहजानन्द (जन्म १७८०) ने 'स्वामी नारायण' नामक सम्प्रदाय की स्थापना की। इसमें मुसलमानों और गीची जाति के हिन्दुओं का प्रवेश हुआ था। सन्त तुलसी साहिब (१०९०-१८४२) बाजीराव द्वितीय के भाई थे और हावरा में रहते थे। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्मग्रंथों के ज्ञाता और कर्मकांड के प्रवर्तक विरोधी थे। उन्होंने 'पट रामायण' की रचना की। बिहार के पारा बिसे में एक सन्त हरिया थे जो मुसलमान माता-पिता की संतान थे। उन्होंने एक ऐसे सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें मुसलमानों की कौनिश और हिन्दुओं के सिद्धांत दोनों को स्थान दिया गया है।

अठारहवीं शताब्दी में राज्यों और साम्राज्यों का पतन हो रहा था। सोमनाथ मंदिर और बनारस के विख्यात मन्दिरों के ध्वंस तथा औरंगजेब द्वारा हिन्दुओं के उत्पीड़न के फलस्वरूप एक कटुता और विरोध का वातावरण पैदा हो गया था और सम्पूर्ण देश में अव्यवस्था व विमुद्वेग का साम्राज्य था। किन्तु इस दुःखी देश के विभिन्न भागों में समाज के निचले स्तरों से बनकर अभ्यात्मवादियों संतों और कवियों का उद्भव हुआ। इन्हीं लोगों ने पूजा और प्रेम में मानवतावाद और साक्षमीयतावाद की व्यापक प्रवृत्ति को जो हिन्दुधर्म और इस्लाम के बाह्य रूपों और कर्मकांडों तथा शासक वर्गों या राजाओं के प्रत्याचारों से परे थी जीवित रखा। भारतीय इतिहास के इस घण्टिकारमय काल में प्राचा और नवजीवन का संदेश लोगों और कस्बों से नहीं बल्कि मुसलमान और हिन्दू पतनी-मुक्त राजदरबारों का प्रभाव अत्यन्त दृष्टि व प्रसिद्ध हो गया था। बरजुर्गों और ओपड़ियों से मिला जहाँ की सहिष्णु, सोहार्धपूर्ण एवं आस्थासु संस्कृति प्रभर है।

अध्याय २०

भारतीय-आंग्ल पुनर्जागरण की उदारता और वैचारिकता

भारत में यूरोपीय फैक्टरियों का उदय

आधुनिक यूरोपीय सभ्यता के उदय का अप्रकांक्षित कारण है—व्यापार प्रवृत्ति से भाव की खोज की प्रवृत्ति। इसी प्रवृत्ति में जॉन कैबट कोलम्बस, जैमेसोन और वास्को डिगामा के साहसिक अभियानों को प्रेरित किया था। मलाबार तट के बर्ष मसालों ने—भारत महासागर के सामग्रिक व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करनेवासे यूरपियों ने इन मसालों को हिन्द की कड़ी कहा था—आधुनिक यूरोपीय और भारतीय इतिहास का रूप-निर्धारण किया। १४९८ में वास्को डिगामा ने यूरपीय मुद्राविज्ञान भारत-यात्रा की। यह उत्तमागत अन्तरीप से होकर कालीकट (पद कोच्चिकोट) पर उतरा। इस प्रकार एशिया में पहली यूरोपीय फैक्टरी और किले का निर्माण पुर्तगालियों ने कोचीन में किया। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष में पुर्तगाल के सम्राट ने बड़ी हेकड़ी और उपहास के स्वर में स्पेन के सम्राट का लिखा कि उसकी भारत की खोज कोलम्बस द्वारा नहीं बल्कि 'हमारे कुल के एक अभिजात व्यक्ति' द्वारा की गई है जो अपने साथ 'दासकीनी, मौन सम्राट कायकल काशीविर्ष तथा धनेक प्रकार के पूरवसूत परवर' लाए हैं और इस लिए, यूरोप के इस भाग के समस्त ईसाई-अपवाकलान्धियों को सब इन नर्ममसालों और कीमती पदार्थों की कमी न रहेगी।

पूर्वी समुद्रों में पुनर्जागृति की शक्ति अपने शीर्ष पर सोलहवीं शताब्दी के मध्य में थी। हिन्दू बेरीन बोया सेंट बोमे, नावापट्टम और हुगली उनके मध्य के दिनपर भारत में पुनर्जागृति की व्यापारिक समृद्धि आधारित थी। इन काल में समुद्र यात्राओं में इतना अधिक समय समता का और नै इतनी लतलमाक भी तथा छोटे चीहमरे जहाजों में भी इतनी अधिक होती थी कि पुनर्जागृति न कभी उपनिवेशीकरण प्रवृत्ति या उपनिवेश के नू याओं पर अधिकार करने का पम्पीर प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत बर्गोने रवर्ष का सामरिक महत्त्व के स्थानों, जलडमकम्पों या द्वीपों तक सीमित रहा तथा इनकी रक्षा के आक्रमणकारियों से सदैव करते रहे ताकि व्यापारिक याओं पर उनका प्रभुत्व तथा पूर्वी व्यापार का उनका एकाधिकार कायम रहे।

पोर्तुगैजों (हामेदवासियों) और यूरपियों का भारत में आप्रमन पुनर्जागृति के अन्तर्गत एक शताब्दी बाद हुआ। शुरू से ही स्पष्ट हो गया कि इन दोनों जातियों का

(और विशेषतः पड़ोसी का) उद्देश्य केवल व्यापारिक सफलता प्राप्त करना ही नहीं था बल्कि उनकी आकांक्षा उपनिवेश स्थापित करने की भी थी। गोएन और वान डीमेन के नेतृत्व में ओलन्देजों ने बस्ती ही भारतीय द्वीपसमूह दीर्घका और मसाबार में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। अंग्रेजों के सामने अनेक असुविधाएँ थीं—उनकी कम्पनी के डायरेक्टरों का व्यापारिक और राजनीतिक उद्देश्यों में से एक को नज़र न पाना इंग्लैंड में बहुसुख अंग्रेज सम्राटों की सावधानी और अमरीका में अंग्रेजों के औपनिवेशिक विद्या कक्षाओं का भीम विस्तार। १६१६ में अंग्रेजों की चैम्बरिया पश्चिमी भारत में मूलतः भारत, अहमदाबाद और मद्रास तथा कुर्नूलक तट पर मसुमीपटम और पेदापोलि में थीं वे भारत, भारत और बालसागर के काफी बन्दरगाहों से अपना व्यापार चलाते थे। उसी वर्ष ईस्ट इण्डिया कम्पनी की एक रिपोर्ट में लिखा है कि पुर्तगालियों के एकाधिकार के कारण 'बंघा के पास वाले प्रदेशों में' व्यापार धारम्भ करना अव्यावहारिक है। 'छोटे-छोटे जहाजों के लिए जितने बन्दरगाह बंगाल में हैं वे सब पुर्तगालियों के अधिकार में हैं।

सत्रहवीं शताब्दी के धारम्भ में बंगाल में पुर्तगालियों की महत्वपूर्ण व्यापारिक मंडियाँ हुगली, बटगांव और पियली थीं। पुर्तगाली हुगली और बटगांव को क्रमशः 'पोर्तो देकब्रेनो' और 'पोर्तो प्रावे' कहा करते थे। ये नाम बंगाल के छोटे और बड़े मुहानों की ओर इंगित करते थे। सप्तश्राव घनबा सतबांग जो भाधोरखी और धरस्वती के संगम पर स्थित था और सोनहू शताब्दियों से भी अधिक समय से दक्षिण एशिया की सर्वाधिक विख्यात बन्दरगाह का सोनहू शताब्दी के अन्तिम दशकों में दोनों नदियों के देहे में बाधु नर जाने के कारण सहसा अवनति के गर्त में जा पहुँचा और उसके स्थान पर हुगली का उत्कर्ष हुआ। १६५५ में रास्क फिश ने पाया कि 'बलदली और सब वस्तुओं से भर-पूरा नगर' सप्तश्राव नास्तिक में एक सुन्दर नगर है। किन्तु जल्दी ही पड़ोस के हुगली बन्दरगाह नगर से उसकी समृद्धि को बँक दिया। पुर्तगालियों के लिए बंगाल के पश्चिमी तटीय मुखा पर स्थित हुगली का बड़ी सामरिक महत्व था जो पूर्वी नदी-मुखा पर स्थित बटगांव का या कुर्नूलक तट पर स्थित मेगापटम का। इन्हीं बन्दरगाह-नगरों से उनका पहाड़ी बेड़ा बंगाल उड़ीसा और कुर्नूलक से अराकान और वहाँ से अन्धक्य तथा दीर्घका जानेवाले व्यापारी जहाजों की रक्षा कर सकता था। नई जातियों की अनुपस्थिति के बावजूद पुर्तगालियों ने पूर्वी भारतीय व्यापार पर अपना एकाधिकार सम्पूर्ण सोनहू तथा सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम अनुवाध में सफलतापूर्वक कायम रखा।

पूर्वी भारतीय व्यापार के एकाधिकार के लिए यूरोपीयों का संघर्ष

प्रथम ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत पर अधिकार कर सकी—यह एक ऐतिहासिक संयोग था। सत्रहवीं शताब्दी के धारम्भ में ओलन्देज कम्पनी पूर्वी द्वीपसमूह में पुर्तगालियों के विरुद्ध संघर्ष में पहले से व्यस्त थी। कारण उस समय यूरोपीय लोग पूर्वी द्वीपसमूह को भारत से अधिक मूल्यवान मानते थे और उसपर अधिकार का अधिक महत्व था। ओलन्देज जहाजी बेड़े ने भारत, श्रीलंका और मलासे के द्वीपों पर पुर्तगालियों का

भारतीय-ब्राह्मण पुनर्जागरण की उदारता और वैचारिकता

भारत में यूरोपीय फैक्टरियों का उदय

प्राथमिक यूरोपीय सम्यता के उद्भव का अधिकांशतः कारण है—व्यापार व्यवस्था काग की खोज की प्रवृत्ति। इसी प्रवृत्ति ने जॉन कैडट कोलम्बस, मैगेलान और वास्को डिगामा के साहसिक अभियानों को प्रेरित किया था। मलाबार तट के बसें मसालों ने—भारत महासागर के सामग्र्य व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करनेवाले धरकों ने इन मसालों को 'हिन्द की कच्ची' कहा था—प्राथमिक यूरोपीय और भारतीय इतिहास का रूप निर्धारण किया। १४८२ में वास्को डिगामा ने घासी सुप्रसिद्ध भारत-यात्रा की। वह उनमासा घासी से होकर कासीकट (यह कोडिकोट) पर उतरा। इस प्रकार एशिया में पहली यूरोपीय फैक्टरी और किसे का निर्माण पुर्तगालियों ने कोचीन में किया। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम रूप में पुर्तगाल के सम्राट ने बड़ी हेकड़ी और उपहास के स्वर में स्पेन के सम्राट की सिखा कि घासी भारत की खोज कोलम्बस द्वारा नहीं बल्कि 'हमारे कुस के एक अभिजात व्यक्ति' द्वारा की गई है जो अपने साथ 'दासकीनी' लीन अन्तराल आयकम कासीमिथ तथा अनेक प्रकार के कूबसुरत पत्थर' लाए हैं और इस लिए, यूरोप के इस भाग के समस्त ईसाई-अमावसमियों को अब इन गर्ममसालों और कीमती पत्थरों की कमी न रहेगी।

पूर्वी समुद्रों में पुनर्जागियों की शक्ति अपने दीप पर सोसहवीं शताब्दी के मध्य में थी। डिगू बेसीन पोसा सेंट बोमे, नागापटम और हुगली उनके गढ़ थे जिनपर भारत में पुनर्जागियों की व्यापारिक समृद्धि आधारित थी। इस काल में समुद्र-यात्राओं में इतना अधिक समय लगता था और वे इतनी खतरनाक थीं तथा छोटे भीड़मरे जहाजों में सीटें इतनी अधिक होती थीं कि पुनर्जागियों ने कभी उपनिवेशीकरण अथवा अन्तर्देश के नू भागों पर अधिकार करने का गम्भीर प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने स्वयं को सामरिक महत्त्व के स्वानों, अलङ्कारमयों या द्वीपों तक सीमित रखा तथा इनकी रक्षा के आक्रमणकारियों से सदैव करते रहे ताकि व्यापारिक भागों पर उनका प्रभुत्व तथा पूर्वी व्यापार का उनका एकाधिकार कायम रहे।

पोमनेजों (हालैंडवासियों) और अंग्रेजों का भारत में आगमन पुर्तगालियों के समयमें एक शताब्दी बाद हुआ। शुरू से ही स्पष्ट हो गया कि इन दोनों जातियों का

(घोर बिरोधत पहसी का) उद्देश्य केवल व्यापारिक सफलता प्राप्त करना ही नहीं था बल्कि उनकी आकांक्षा उपनिवेश स्थापित करने की भी थी। गोएन और वान डीमन के नेतृत्व में ओलन्देशों ने बस्ती ही भारतीय द्वीपसमूह की संका और मत्तावार में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। अंग्रेजों के सामने अनेक असुविधाएँ थीं—उनकी बस्ती के बन्दरेक्टरों का व्यापारिक और राजनीतिक उद्देश्यों में से एक का मनुष्य पाना इर्लैंड में बृहस्पत अंग्रेज सम्राटों की साम्रज्य की और अमरीका में अंग्रेजों के औपनिवेशिक क्रिया क्रमावृत्ति का हीन विस्तार। १६१६ में अंग्रेजों की दृष्टिसे पश्चिमी भारत में मुरत घाबर घाबर घाबर और अङ्ग्रेज तथा कुम्भट्टन टट पर असुविधात और वेदापोमि में थीं वे भारत अरस और भारतसागर के काफी बन्दरगाहों से अपना व्यापार चलाते थे। उसी वर्ष ईस्ट इण्डिया कम्पनी की एक रिपोर्ट में लिखा है कि पुतगामियों के एकाधिकार के कारण 'गंगा के पास बासे प्रदेशों में' व्यापार आरम्भ करना अव्यावहारिक है। 'छोटे-छोटे जहाजों के लिए बिछने बन्दरगाह बंभाव म हैं वे सब पुर्तगालियों के अधिकार में हैं।

समझीं घटाब्दी के आरम्भ में बंगाल में पुर्तगालियों की महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मंडियां हुबली बटवांग और पिपसी थीं। पुतगाली हुगली और बटवांग को क्रमशः 'पोर्तो वेल्हेनो' और 'पोर्तो प्राये' कहा करते थे। ये नाम गंगा के छोटे और बड़े मुहानों की ओर इतिष्ठ करते थे। सप्तग्राम अथवा सतगांव जो भागीरबी और सरस्वती के संगम पर स्थित था और सोमह घटाब्दियों से भी अधिक समय से दक्षिण एशिया की सर्वाधिक विख्यात बन्दरगाह या सोमहूँ घटाब्दी के अन्तिम दणकों में दोनों नदियों के पेटे में बालू भर जाने के कारण सहसा अवनति के गर्त में आ पहुँचा और उसके स्थान पर हुगली का उत्कर्ष हुआ। १५५५ में राफ़ डिव ने पाया कि 'बसदसों और सब वस्तुओं से भर-पूर नगर सप्तग्राम वास्तव में एक सुन्दर नगर है। किन्तु जल्दी ही पड़ोस के हुगली बन्दरगाह नगर के उसकी समृद्धि को हक दिया। पुर्तगालियों के लिए बंगाल के पश्चिमी नदी मुख पर स्थित हुगली का बड़ी सामरिक महत्त्व था जो पूर्वी नदी-मुख पर स्थित बटवांग का या कुम्भट्टन टट पर स्थित मेवापटम का। इन्हीं बन्दरगाह-नगरों से उनका जहाजी बेड़ा बंगाल जङ्गी और कुम्भट्टन से अरकान और वहाँ से मलक्का तथा चीनका जानवाल व्यापारी जहाजों की रक्षा कर सकता था। नईजातियों की बुनीटी के बावजूद पुर्तगालियों ने पूर्वी भारतीय व्यापार पर अपना एकाधिकार सम्पूर्ण सोमहूँ तथा समझीं घटाब्दी के प्रथम चतुर्दश में सफलतापूर्वक कायम रखा।

पूर्वी भारतीय व्यापार के एकाधिकार के लिए यूरोपीयों का संघर्ष

अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत पर अधिकार कर सकी—यह एक ऐतिहासिक संयोग था। समझीं घटाब्दी के आरम्भ में ओलन्देश कम्पनी पूर्वी द्वीपसमूह में पुत गालियों के विरुद्ध संघर्ष में पहले से व्यस्त थी। कारण उस समय यूरोपीय लोग पूर्वी द्वीपसमूह को भारत से अधिक मूल्यवान मानते थे और उसपर अधिकार का अधिक महत्त्व था। ओलन्देश जहाजी बेड़े ने भारत भीमका और बसासे के द्वीपों पर पुर्तगालियों ने

एकाधिकार समाप्त कर दिया। अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए यह अत्यन्त सन्तोष प्रद स्थिति थी और इसीके कारण अंग्रेज बाय में अपना व्यापार सफलतापूर्वक बना सके। अंग्रेजों की कम्पनी को मोनोपैज कम्पनी की भांति नीसेना चलायामा और किसी प्राय के रक्त रक्त का विनाश व्यय नहीं उठाना पड़ता था। इसके प्रतिरिक्त कोई भी ऐसी नागरिक शक्ति भारत पर प्रभुत्व स्थापना में सफल नहीं हो सकती थी जिसके सबसे बड़ा सबूत यह केवल मलाबार और श्रीलंका में हो। मोनोपैज सूरत कुल्लुबस और बंगाल पर अपने अधिकार की निम्नेवारी नहीं लेते थे हालांकि इन्हीं क्षेत्रों में उन्हें सबसे अधिक प्राय प्राप्त होता था। इन्हीं तीन क्षेत्रों में अंग्रेजों ने भारतीय शासकों से व्यापारिक विशेषाधिकार प्राप्त कर लिए, जो मोनोपैजों के विशेषाधिकार। स अधिक लाभदायक थे। व्यापारिक एकाधिकार और राजनीतिक शक्ति ने एक-दूसरे को सहारा दिया तो अंग्रेजों की प्राय दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ी। कमजोर स्थिति यह हो गई कि बंगाल में जहाँ पहले मोनोपैजों को साखो विस्तरों की प्राय होती थी, १७२० के बाद मोनोपैज कम्पनी को घाटा होने लगा। अपनी मौलिक बरिष्ठता समाप्त हो जाने के बाद मोनोपैज भारतीय शासकों की चापलूसी करके और उन्हें नोट देकर व्यापारिक विशेषाधिकार बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील हो गए। इसी बीच उनके एक अन्य प्रतिद्वंद्वी फ्रांसीसियों ने ड्यूप्ले के नेतृत्व में १७५० में मसुलीपटम पर अधिकार कर लिया। मोनोपैजों को इससे बड़ी मुश्कलाहट हुई।

फ्रांसीसी क्रांति का काँस्वट की महान योजना थी कि मद्रास और पूर्वी भारत से लेकर फारस और पूर्वी अफ्रीका के बन्दरगाहों तक फ्रांसीसी बस्तियों की एक शृंखला स्थापित करके मोनोपैज और अंग्रेज व्यापारियों के लाभ का अंश प्राप्त किया जाए। किन्तु सागर में फ्रांसीसी जहाजी शक्ति के दुर्भाग्य और फ्रांसीसी कम्पनी के कामरेडों और अधिकारियों के प्रायसी कलहों के कारण यह योजना सफल हो सकी। बाद में यूरोपीय युद्ध ने भी फ्रांसीसी व्यापार को बरका पहुँचाया जिसके फलस्वरूप बंगाल मुजरात मलाबार और कुल्लुबस-स्वित्त कम्पनी की फैक्टरियों की प्रभुता में घटि हुई। पॉइन्टेरी में रहनेवाले एक के बाद एक गवर्नरों की अयोग्यता तथा प्रायिक विवाधियापन ने इस स्थिति को और बिगाड़ा। फिर भी भारतीय नीति और सैनिक संगठन के कुछ महत्वपूर्ण मामलों में अंग्रेजों ने मोनोपैजों का नहीं बल्कि फ्रांसीसियों का अनुसरण किया। फ्रांसीसियों ने ही सबसे पहले भारतीय शासकों और नरेशों के साथ सैनिक सन्धियों की भारतीय सिपाहियों का यूरोपीय पद्धत-कौशल की शिक्षा दी और सागरतट पर स्थित अपने किसी और फैक्टरियों से दूर भीतरी भाग में उन्हीं सिपाहियों को लेकर विजय-यात्राएँ की। सब तो यह है कि यूरोपीय शक्तियों में से सबसे प्रथम फ्रांसीसियों ने ही दक्खिन प्रायद्वीप के एक विनाश मुभाग पर अपना प्राधिपत्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। किन्तु उनका प्राधिपत्य केवल दो दशकों के लिए था। फ्रांसीसियों की बस्तियाँ गुरत पॉइन्टेरी मसुलीपटम और बङ्गलूर और सामरिक महत्व के स्थानों पर भी थी किन्तु अन्ततः भारत में

उनकी पराजय का कारण था अंग्रेजों की मौलिक बरिष्ठता। इसी बरिष्ठता के बल पर अंग्रेज विपुल साधन-सम्पत्ति एवं व्यापार-केन्द्रों तथा नदी-आगों द्वारा उत्तर से सम्बन्ध सागरतटीय प्रान्त बंगाल को जीत सके। इन्हीं और बसाह्त बोगों ने भारत में मुगल साम्राज्य के क्षय-हटों पर आधारित एक यूरोपीय साम्राज्य का स्वप्न देखा था किन्तु फनाटक पर आधिपत्य पर आधारित इन्हीं का स्वप्न मौलिक रूप से असफल और गंगा के डेल्टा पर आधारित बसाह्त का स्वप्न बरिष्ठता होने को था।

बंगाल पर अधिकार जमाने के लिए अंग्रेजों ने मराठा सिख-मुहम्मद को प्लासी के युद्ध में फाँसीदियों को बम्बैनगर में तथा घोसलेखों को बिनमुर में हराया। बंगाल पर आधिपत्य के बाद ही अंग्रेजों को हिन्दुस्तान की दोसत पर कब्जा मिल गया और इसी काल पर वे आधिकारिक भारतीय साम्राज्य स्थापित कर सके। किन्तु उस समय भी अंग्रेज कम्पनी के डायरेक्टर इन्हीं में बैठे हुए सोचते थे कि अरबसागर के बन्दरगाहों के व्यापार के बल पर ही पूर्वी द्वीपों में उन्हें सफलता मिल सकती है।

भारत सत्रहवीं शताब्दी में विश्व के व्यापार का केन्द्र

मॉर्ट पामस्टन का कथन किताब सत्य है 'मूल उपनिवेशियों ने सबसे पहले एक फॅक्टरी स्थापित की फॅक्टरी बढ़कर किला बन गई किला फैलकर जिला और जिला फैलकर सूबा बन गया। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक एशिया के समुद्रों पर एक त्रिकोणीय संघर्ष सम्बन्ध समय तक बना और इसमें अन्तर्गत पुर्तगालियों की शक्ति का पतन हुआ। इसके बाद दो पूर्वोक्त अभिराज्यों का क्रमशः निर्माण हुआ—अंग्रेज अभिराज्य जिसकी राजधानी कलकत्ता थी तथा घोसलेख अभिराज्य जिसकी राजधानी बदायुँ थी। ये अभिराज्य उसी प्रेरणा से बने जिसके कारण मैक्सिको और पेकू में स्पेनियों ने अधिकार किया पुर्तगालियों ने बाजीस को जीता तथा अंग्रेजों और फाँसीदियों ने अमेरिका में उपनिवेश और अन्तर्गत राज्य स्थापित किए। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक अटलांटिक-भारत और प्रचान्त महासागरों को व्यापार एकसूत्र में बाँधे रहा। उन्नीसवीं शताब्दी प्रारम्भ तक भारत से कपड़ा रेशम नील कालोनिर्ष तथा शोच (जिससे यूरोप में निरन्तर हो रही सड़ाइयों के लिए बाण्ड बनाई जाती थी) यूरोप भेजे जाते रहे तथा उन कीमत बढ़ा करने के लिए मैक्सिको और पेकू से सोने और चाँदी की विपुल मात्राएँ आ जाती रहीं। औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भ तक इस विश्वव्यापी व्यापार का केन्द्र था था। लेकिन एशियाई समुद्रों में पुर्तगालियों आल्गोरेजों और अंग्रेजों की बाकेंदगी कारण भारतीय नीपरिहण का अन्त हो गया। साथ ही भारत में यूरोपीय कम्पनियों और व्यापारियों को असाधारण विशेषाधिकार दिए गए, 'मानो वे भारतीयों से अधिक माने गए जिसके फलस्वरूप उन्हें विविध व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त हुए और भारतीय व्यापार का भी क्षय हुआ। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में ऊँचे दर्जे की सूती और रेशम कपड़ों का उत्पादन को हतोत्साह करने लगी तथा भारतीय समुद्री व्यापारी बहादुरों।

घटित के शय होने के कारण पूर्वी द्वीपसमूह फारस और अफ्रीका के पुराने बाजार भी भारत के हाथ से जाते रहे। इन बदली हुई परिस्थितियों के परिणामस्वरूप भारतीय कपास स्पष्ट रूप से भीषण भस्का लगा। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा इंग्लैण्ड के बाजार में विक्रीत भारतीय सूती वस्त्रों का वार्षिक औसत मूल्य १४ लाख पौण्ड (लगभग २ करोड़ १० लाख रुपये) था। उस समय (१७६१ में) फ्रांस १२ लाख पौण्ड (लगभग १ करोड़ ८० लाख रुपये) मूल्य के भारतीय सूती वस्त्र का आयात करता था। अमरीकी अहासों में भी सूती वस्त्र काफ़ी परिमाण में (१८१६-१८१७ में अनुमानित मूल्य ५६ लाख रुपये) भेजे जाते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी जब चूनी काफ़ी बढ़ी और कुछ मुख्य वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी गई थी भारत से हर साल लगभग २५ लाख पौण्ड (लगभग ३ करोड़ ७५ लाख रुपये) के मूल्य के सूती कपड़े इंग्लैण्ड भेजे जाते थे जबकि उसे अंग्रेज़ी कपड़े से बांधे मूल्य पर बेचा जाता था अधिकतम भारतीय कपड़ा उस समय भी हावकरवों पर बुना जाता था जिनमें नये मशीनी करणों से पाँच गुने आदमी काम करते थे।

भारत का औद्योगिक पतन

अंग्रेज़ी और फ्रांसिज कम्पनियों की संस्थापना के ठीक एक शताब्दी बाद १७०० में भारतीय सूती कपड़ों के इंग्लैण्ड में आयात पर रोक लग गई। भारतीय वस्त्रों से इंग्लैण्ड के बुनाई-उद्योग की रक्षा करने के लिए चुनी धीरे-धीरे बढ़ाकर ८० प्रतिशत कर दी गई। अपने स्वदेशी उद्योगों के रक्षार्थ प्रत्यक्ष यूरोपीय देशों ने भी इंग्लैण्ड का अनुसरण किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में भारतीय सूती कपड़े और रेशम का यूरोप भेजा जाना बिल्कुल बन्द हो गया और उसके स्थान पर कच्ची कपास का आयात होने लगा—यह भारत के औद्योगिक पतन का प्रथम चिह्न था। चार्ल्स ड्रेवेंसन् ने १८३६ में अनुमान लगाया था कि विदेशी बाजार में बंगाल के सूती कपड़ों के विस्थापन का मान लगभग १ करोड़ रुपये सालाना है तथा बरेलू बाजार में लगभग ५० लाख रुपये। उन्होंने १ करोड़ ८० लाख रुपये के इस विचार धन के उपयुक्त उत्पादन करनेवाले भारतीयों में बेरोजगारी की भीषण समस्या की बात भी लिखी। सात वर्ष बाद (१८४१ में) इंग्लैण्ड के चांसलर ऑफ़ एक्साइज़र लेबोरोय्जर ने कहा “अंग्रेज़ों ने अपने उत्पादनों से भारत के उत्पादनों को एकदम लान कर दिया है। अंग्रेज़ी भाषा की तरफ़ की ओर हमने भारत के मानचेस्टर डाका जिले का महत्व बिल्कुल खत्म हो गया है।” १८४६ तक पाँचा बिल्कुल पतन गया और भारत का सूती कपड़ा का आयात बिल्कुल बन्द हो गया। उस वर्ष भारत को इंग्लैण्ड से २१ ३८४०००० गज कपड़ा निर्यात करना पड़ा इसके विपरीत १८३५ में ३१ करोड़ गज तथा १८१४ में केवल ८ लाख गज कपड़ा निर्यात किया गया था। भारत के उद्योगों के विनाश कृषि पर अधिकधिक निर्भरता और एक के बाद एक अनेक अकालों ने पहली बार भारत के आर्थिक ढाँचे की कमजोरी का जो राजनीतिक दासता के कारण अन्तही थी उसके सामने खोलकर रख दिया।

प्राधुनिक भारतीय पुनर्जागरण के जनक राममोहन

प्रारम्भ से ही दाय्य भारतीय सम्बन्धों के पीटर्न पर कमजोर यूरोपीय व्यापारवाद उपनिवेशवाद और राष्ट्रीयतावाद का प्रभाव रहा है। ये तीनों 'बाब' संसार की इसी भावक कल्पनाएँ हैं जिन्होंने पश्चिमी सभ्यता के विकास की तीन शताब्दियों तक पगुवनाएँ रखा। अंग्रेजों की उपनिवेशीय नीति का हस्तक्षेप प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में होता था जबकि सांस्कृतिक पक्ष पर ध्यान नहीं दिया जाता था। फसलस्वरूप लेबी से औद्योगिक पतन हुआ और जनता के जीवन-स्तर में काफी गिरावट आई। इंग्लैण्ड में जो बालू निदान्त मान्य था उसके अनुसार बीबानी हासिल करने के बाद पचास वर्ष तक राज्य की शिक्षा या मुबार-सम्बन्धी कोई हिम्मेदारी नहीं। इससे भारत की स्थिति को एक वैचारिक आधार प्राप्त हुआ। १८५४ ई० के प्रसिद्ध घोषणापत्र का असबिदा तैयार करने से पहले तक सोचा ही नहीं गया कि भारत की क्षेत्रीय मापामों में शिक्षा प्रदान करने के लिए राज्य-सरकार की आवश्यकता है। अंग्रेज बमप्रचारकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार काफी हो गया था।

१७९९ में अंग्रेज बमप्रचारक मिलियम कीरी सेरामपुर में जो डेन्मार्क के दायीन इसका था बस गया और वहाँ उसका ईस्ट इंडिया कम्पनी के दायीन इसाके से क्यादा स्थापित हुआ। वहीं पर पहला भारतीय प्रेस शुरू हुआ। तथा बंगला पत्र की नई पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें संस्कृत मूलपाठों के अनुवाद भी शामिल थे। इससे पहले १७८१ में बारेन हेस्टिग ने कलकत्ता में एक मबरसे की और १७८२ में लॉर्ड कर्नवालिस ने बनारस में एक संस्कृत कालेज की स्थापना की थी। वस्तुतः अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही एक अतिराम्य के संरक्षकत्व की भावना के लिए बीरे-बीरे आधारभूमि तैयार की जा रही थी। १७७३ में सबप्रथम नियामक अध्यादेश जारी किए गए, जिनके द्वारा अंग्रेज व्यापारी न रहकर प्रशासक बन गए। १८१३ में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का चाटर दोहराया गया तो उसका व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया और साहित्य के विकास एवं शिक्षा के प्रारम्भ के लिए १० हजार पौण्ड (समय १ लाख ५० हजार रुपये) निर्दिष्ट किए गए। १८१७ में ब्रिजहेमर राममोहन राय और हारिकानाय ठाकुर के प्रयत्नों के फलस्वरूप कलकत्ता में हिन्दू कालेज (अब का स्कूल) की स्थापना हुई। अगले वर्ष पहला बंगला समाचारपत्र छपा। १८३३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने एक व्यापारिक संस्था के रूप में काम करना बन्द कर दिया। उसी वर्ष सिविल सर्विस की उच्च शाखाओं में सैद्धान्तिक रूप से भारतीयों की नियुक्ति की नीति की घोषणा की गई। ये क्रांतिकारी परिवर्तन १८३३ के 'चाटर ऐक्ट' के कारण सम्भव हुए थे और इस अति नियम का अधिकार क्षेत्र राममोहन राय के प्रयत्न को था।

राममोहन राय (१७७४-१८३३) को सबप्रथम प्राधुनिक भारतीय और वर्तमान काल के भारतीय पुनर्जागरण का जनक समझा जाना चाहिए। वे अतिप्रथम प्रभु एवं अन्तर्मुखी शताब्दी के एक महान मानववादी थे। उनकी व्यापारिक क्षमता और प्रभाव क्षमता वस्तुतः प्रख्यात यूरोपीय विचारकों के समान थी। जेम्स बेंथम ने 'उच्च मानवता की

सेवा में संलग्न एक बहुप्रसिद्ध और अत्यधिक प्रिय सहयोगी' कहा जा। राममोहन ने प्रचलित हिन्दूधर्म की मूर्तिपूजा और धन्यविश्वास की मत्तना की तथा उपनिषदों और वेदान्त के पवित्र धर्म के आधार पर 'ब्रह्मसमा' की स्थापना की। इस समा का उद्देश्य था "जस सास्वत अयम और अविनाशी ईश्वर की पूजा और उपासना जो सम्पूर्ण ब्रह्मांड का स्रष्टा और पोषक है।" हिन्दूधर्म को अनेक विभूतियों की झुलै छायाँ में भस्त्रना करने के साथ-साथ उन्होंने ईसा के ईश्वर-पुत्र होने की बात तथा बाइबिल में वर्णित अनेक धर्मकारों की प्रामाणिकता को भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सती-प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया तथा सक्षम और सम्पन्न स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन किया। उन्हींके सहयोग से लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने सती प्रथा को अधैधानिक घोषित करने का साहसपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने प्रेस की स्वतन्त्रता और जायदा की ज़िम्मेदारी के संविदा करण का समर्थन किया तथा अंग्रेजों द्वारा साधु भूमि-अवस्था को अन्यायपूर्ण और अनुचित ठहराया।

शिक्षा के क्षेत्र में राममोहन ने बहुविधता या ब्रिक्का' मिली अधिकांशतः जिसके बल पर अन्तिम निर्णय लिया गया कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारत में पश्चिमी शिक्षा दी जाए। उन्होंने तर्क पेश किया था कि प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन के लिए अंग्रेजी आवश्यक है—यह उनकी सुझावशिला का प्रमाण है। उन्होंने लिखा था यदि अंग्रेजी राष्ट्र को वास्तविक ज्ञान से प्रसन्न रखना होवा तो छात्रों की प्रमासी (जो प्रज्ञान के प्रसार के लिए बचाई गई थी) का स्वान बेकन के शब्दों में न ले लिया होता। टीक उसी प्रकार यदि अंग्रेजी विमानसभा की नीति प्रज्ञान का पोषण करना होती तो उसके लिए संस्कृत की शिक्षा प्रमासी सर्वोपयुक्त थी। किन्तु सरकार का उद्देश्य ब्रूकि देही जनता का विकास करना है इसीलिए वह क्रमशः शिक्षा की अधिक उधार और प्रबुद्ध नीति अपनाएगी। उधार अंग्रेजी शिक्षा में अपने अन्तर्गत विश्वास के साथ राममोहन ने सिफारिश की कि सरकार के उच्चतम पदों पर भारतीयों की नियुक्ति की जाए। अधिकांशतः उन्हींके प्रभाव का फल था कि १८३३ का पार्लर ऐक्ट पास हो सका जिसके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापारिक रूप समाप्त हो गया और उच्चतम पदा पर भारतीयों की नियुक्ति बर्मानिक हो गई।

राममोहन संस्कृत फारसी अरबी अंग्रेजी चीन और हिंदू भाषाओं के ज्ञाता थे। इस कारण वे भारतीय राष्ट्रीयतावाद जिसने उनकी मृत्यु के सप्ताह पचास वर्ष बाद एक प्रभावशाली आन्दोलन का रूप धारण कर लिया (जो अभी वर्तमान में चल रहा है) के अन्तर्गत राष्ट्रीयतावाद के भी सच्चे मसीहा थे। राजा राममोहन का मानवमान के भाई नारे के सम्बन्ध में यह तर्क किताब समोरजक है। अब तो सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि केवल धर्म से ही नहीं बल्कि पक्षपातरहित सामान्य ज्ञान तथा वैज्ञानिक तथ्यों के दृष्ट निष्कर्षों से भी यही परिणाम निश्चलता है कि मानवमान का एक विद्यालय परिवार है तथा अनेक राष्ट्र और जातियाँ उसी परिवार की शाखाएं मात्र हैं। यही कारण है कि सभी देशों के प्रबुद्ध व्यक्तियों की सहस्रसंख्या है कि यथासंभव सारी भाषाओं को दूर करके प्रत्येक प्रकार के भाषाई संघर्ष को प्रोत्साहित किया जाए तथा

सुविधा प्रदान की जाए ताकि सम्पूर्ण मानव-जाति को परस्पर लाभ तथा सुख मिले ।'

प्राधुनिक भारतीय कथा-साहित्य के जनक बंकिमचन्द्र

जिस युग में ब्रिटेन में उदारतावाद और व्यक्तिवाद की विजय हुई दासप्रथा का सम्मूलन हुआ दूरव्यापी सामाजिक अधिनियम बन तथा वेस्ली कंबल और ग्यूरन के सम्यक् धार्मिक पुनरुत्थान हुआ उसी युग में १८१४ में मैकासे द्वारा संसार किए गए सिद्धा-सम्बन्धी प्रसिद्ध मसबिदे के आधार पर भारत में बचपनी भाषा के माध्यम से पश्चिमी ज्ञान विज्ञान का लेखी से प्रसार हुआ । सत्रांजी सिन्हा ने विभिन्न प्रान्तों और भनों को जिसकी अपनी असय-अलग भरण थी एकमूर्त में पिरोया और साथ ही प्रान्तीय साहित्यों को नये मुख्य तथा अधिभ्यक्ति के नय आवस्य प्रदान किए । इस प्रकार सभी प्रान्तीय साहित्यों ने अपने प्राधुनिक युग में प्रवेश किया ।

उन्नीसवीं सताब्दी में भारत के सबसे महान् साहित्यकार थे प्राधुनिक भारतीय कथा-साहित्य के जनक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३०-१८९४) । उनके उपन्यासों ने बंगला के साथ-साथ सभी भारतीय साहित्यों में नवजीवन का संचार किया । बंकिम पर अंग्रेजी रोमांटिक आन्दोलन का गहन प्रभाव पड़ा था । अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने घटीत को जीवन दिया तथा सम्पूर्ण मानवीय भावनाओं के साथ विदेशी आत्माचारों के विरुद्ध हिन्दुओं की वीरता का युक्तापन किया । इनसे भारतीय जनता के सामने सौहार्द और कल्पना का एक नया क्षेत्र खुल गया और उनकी राष्ट्रीय भावना भी जागृत हुई । अपने सामाजिक उपन्यासों में भी बंकिम ने अत्यन्त कोमल और सौम्य पन्थावसी में वैयक्तिक वैवाहिक असंगति और धार्मिक विचार की समस्याओं का उठाया है । उनकी सभी कृतियों में उनके नायक-नायिकाओं दिन-प्रतिदिन की कठिनायियों और भारतीय सम्बन्धों सभी में एक दूसरे संसार की दीप्ति परिभाषित है, जहाँ कारात्मक और भीषण कठोर तथा स्वयं अपने-अपने पाठ प्रकाश करते हैं । उनका आत्मचरित जिसकी आधार भूमि १७९६-७० का बंगाल का भीषण अकाल तथा १७७२ का संघर्षी-विद्रोह हैं और जिसका कथामय राजनीतिक अंश है, अपने समय से बहुत आगे था और सब से आगे तक उसे अतिशारी आन्दोलन की इमीम समझ जाता है । इसीमें भारतीय राष्ट्रीयतावाद का विकास गीत बन्ने आरम्भ है । यह गीत माँ काशी के लिए है और काशी को भारतमाता की आत्मा के अनेक रूपों का प्रतीक माना गया है—गरीब और कृषि समृद्धिवांशनी और फलदायिनी किन्तु सदैव सुन्दर और अक्षिप्तता तथा अपने लालों पुन-पुनियों की आस्था और बलि की आकांक्षिणी ।

बंकिमचन्द्र और कुछ समय बाद मधुसूदन दत्त व रमेशचन्द्र दत्त घमसा हरि पाठमन घाटे और सी० एस० नरसिंहम् की प्रयुक्त प्रेरणा थी—यूरोपीय साहित्य की समकालीन रूपांश प्रकृति । सभीने गरीबी और गुणामी के वर्तमान के सामने भारत का मुकद और वीरतापूर्ण अतीत प्रस्तुत किया और देश में राष्ट्रीयता की भावना जगाई । स्काटलैंड में बास्टर स्काट पोलेड म सीकिविड और कैप्टेनकोवाक्रिया म विरासिक ने जीक यही किया था । किन्तु भीम ही ऐतिहासिक उपन्यासों का स्वान सामाजिक उपन्यासों

सेवा में संलग्न एक बहुप्रशंसित और अत्यधिक प्रिय सहयोगी' कहा था। राममोहन ने प्रवर्धित हिन्दूधर्म की मूर्तिपूजा और धर्मविश्वास की भर्त्सना की तथा उपनिषदों और वेदान्त के पवित्र धर्म के आधार पर 'ब्रह्मसमा' की स्थापना की। इस समा का उद्देश्य था "उस धारण अगम और अधिनाशी ईश्वर की पूजा और उपासना जो सम्पूर्ण ब्रह्मांड का सर्वत्र और पोषक है। हिन्दूधर्म को अनेक विकृतियों की ओर लोगों में भर्त्सना करने के साथ-साथ उन्होंने ईसा के ईश्वर पुनर्जन्म की बात तथा बाइबिल में वर्णित जनक अनेक भक्तियों की प्रामाणिकता को भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया तथा सक्षम और सच्चरित्र स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन किया। उन्होंने सहयोग से लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने सती प्रथा को अवैधानिक घोषित करने का साहसपूर्ण काम उठाया। उन्होंने प्रेस की स्वतन्त्रता और जायदादों की संहिता करण का समर्थन किया तथा अंग्रेजों द्वारा साधु धूमि-व्यवस्था को अन्यायपूर्ण और अनुचित ठहराया।

छिदा के क्षेत्र में राममोहन ने बहुविध्यात 'याचिका' लिखी अधिकांशतः जिसके अन्त में अन्तिम निर्णय लिया गया कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारत में पश्चिमी शिक्षा दी जाए। उन्होंने तर्क पेश किया था कि प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन के लिए अंग्रेजी आवश्यक है—यह उनकी सुदूरदक्षिणा का प्रमाण है। उन्होंने लिखा था "यदि अंग्रेजी राष्ट्र को वास्तविक ज्ञान से धन्य रहना होता तो लॉकियों की प्रणाली (जो अज्ञान के प्रसार के लिए बनाई गई थी) का स्थान बेकन के दर्शन ने न ले लिया होता। ठीक उसी प्रकार यदि अंग्रेजी विज्ञानसमा की नीति अज्ञान का पोषण करना होती तो उनके लिए संस्कृत की शिक्षा-प्रणाली सर्वोत्तम होती। किन्तु सरकार का उद्देश्य चुनौती देनी जनता का विकास करना है, इसीलिए वह क्रमशः शिक्षा की अधिक ज़रूरत और प्रबुद्ध नीति अपनाएगी। उदार अंग्रेजी शिक्षा में अपने अन्तर्गत विश्वास के साथ राममोहन ने विचारविमर्श की कि सरकार के उच्चतम पदों पर भारतीयों की नियुक्ति की जाए। अधिकांशतः उनकी प्रभाव का फल था कि १८३३ का चार्टर ऐक्ट पास हो सका जिसके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापारिक रूप समाप्त हो गया और उच्चतम पदों पर भारतीयों की नियुक्ति वैधानिक हो गई।

राममोहन संस्कृत पारसी अरबी अंग्रेजी ग्रीक और हिब्रू भाषाओं के ज्ञाता थे इस कारण वे भारतीय राष्ट्रीयतावाद जिसमें उनकी मृत्यु के समय पचास वर्ष बाद एक प्रभावशाली आन्दोलन का रूप धारण कर लिया) की मही बरतू बीसवीं शताब्दी के अन्तराष्ट्रीयतावाद के भी सच्चे मसीहा थे। राजा राममोहन का मानवमान के भाई पारे के सम्बन्ध में यह तर्क कितना अनोखे प्रकार है जब तो सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि केवल धर्म ही नहीं बल्कि पदपाठरहित सामान्य ज्ञान तथा वैज्ञानिक लोगों के गुण निष्कर्षों से भी यही परिणाम निकलता है कि मानवमान का एक विद्यालय परिवार है तथा अनेक राष्ट्र और जातियाँ उसी परिवार की शाखाएं मात्र हैं। यही कारण है कि सभी देशों के प्रबुद्ध व्यक्तियों को यह सूझ होता है कि महासंभव सारी भाषाओं को दूर करके प्रत्येक प्रकार के मानवीय संघर्ष को प्रोत्साहित किया जाए तथा

मुद्रिका प्रदान की जाए, ताकि सम्पूर्ण मानव-जाति को परस्पर भाग्य तथा भुक्त मिले।”

धार्मिक भारतीय कथा-साहित्य के जनक बंकिमचन्द्र

जिस युग में ब्रिटेन में उदारतावाद और व्यक्तिवाद की विजय हुई वास्तव्य का सम्पूर्ण रूप से दूरव्यापी सामाजिक अधिमिश्रण बने तथा बेस्ती कबित और यूरोप सभ्यता धार्मिक पुनरुत्थान हुआ उसी युग में १८६४ में मैकाले द्वारा तयार किए गए शिक्षा-समझौते प्रतिष्ठित संसद के आधार पर भारत में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान का ठेकी से प्रसार हुआ। अंग्रेजी शिक्षा ने विभिन्न प्रांतीय और पर्वतों को जिनकी अपनी समय-समय आयाण थी एकसूत्र में पिरोया और सब ही प्रांतीय साहित्यों को नये मूल तथा अधिमिश्रित के नये आधार प्रदान किए। इस प्रकार सभी प्रांतीय साहित्यों ने अपने धार्मिक युग में प्रवेश किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के सबसे महान साहित्यकार थे धार्मिक भारतीय कथा-साहित्य के जनक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३६-१८९४)। उनके उपन्यासों ने संघर्ष के साथ-साथ सभी भारतीय साहित्यों में पञ्चजीवन का संसार किया। बंकिम पर अंग्रेजी सामाजिक आन्दोलन का बहुत प्रभाव पड़ा था। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने प्रतीक को जीवन दिया तथा सम्पूर्ण मानवीय भावनाओं के साथ विदेशी अत्याचारों के विरुद्ध हिन्दुओं की शीरता का पुनर्प्राप्त किया। इनके भारतीय जनता के सामने सीधे-सीधे और कल्पना का एक नया क्षेत्र खोल दिया और उनकी राष्ट्रीय भावना भी जागरित हुई। अपने सामाजिक उपन्यासों में भी बंकिम ने अत्यन्त कोमल और सोत्साहक शब्दावली में वैयक्तिक वैयक्तिक अस्वस्थ और धार्मिक विकास की समस्याओं को उठाया है। उनकी सभी कृतियों में उनके मानव-जातिकाओं दिन-प्रतिदिन की घटनाओं और भारतीय संघर्षों सभी में एक दूसरे संसार की दीप्ति परिलम्बित है, जहाँ कापालिक भरी और फकीर तथा स्वयं अपने-अपने पाठ बना करते हैं। उनका मानवमठ जिसकी आधार भूमि १७९९-७० का बंगाल का भीषण अकाल तथा १७७२ का संपासी-विद्रोह है और जिसका कथानक राजनीतिक क्रांति है, अपने समय से बहुत आगे था और तब से आज तक उसे अविचारी आन्दोलन की ‘इंजीन’ समझा जाता है। इसीमें भारतीय राष्ट्रीयतावाद का विकास पाठ बने मातृभूमि है। यह गीत भी कालो के लिए है और कालो को भारतमाता की आत्मा के अनेक रूपों का प्रतीक माना गया है—परीश और कुछ समृद्धिदायिनी और फलदायिनी किन्तु सर्वत्र सुन्दर और अविनाशनी तथा अपने नाकों पुन-पुनियों की वास्तव्य और बलि की आकांक्षिणी।

बंकिमचन्द्र और कुछ समय बाद मधुसूदन दत्त व रमेशचन्द्र दत्त समय-समय हरि नाट्ययण आये और सी० एम० नरसिंहम् की प्रमुख प्रेरणा थी—यूरोपीय साहित्य की समकालीन कथानी प्रवृत्ति। सभीने गरीबी और गुनामी के वर्तमान के सामने भारत का सुख और शीतलार्ज्वर प्रस्तुत किया और देश में राष्ट्रीयता की भावना जगाई। स्कॉटलैंड में वास्टर स्कॉट पीरीस में सीनिकिड और कैप्टेनल्लोकाचिया में शिरासिक म ठीक बही किया था। किन्तु शीघ्र ही ऐतिहासिक उपन्यासों का स्वयं सामाजिक उपन्यासों

में न सिया यद्यपि ये प्रवास अधिक सफल न हुए। बंगला में बकिमचन्द्र और तारकनाथ पांगुली तेलुगु में बरहसिन्धु भरठी में घाटे और बाहेकर हिन्दी में किशोरीनाथ गोस्वामी प्रमुख उपन्यासकार थे। अन्य साहित्यों में दूसरे उपन्यासकार थे। सामाजिक उपन्यासों की असफलता का एक बड़ा कारण था भारतीयसामाजिक वातावरण की सीमितता जिसमें जाति और परिवार के बहुत बंधन प्रचलित थे और ये बंधन फ्रांसीसी और अमरीकी कान्तिवियों के फलस्वरूप प्राप्त स्वाधीनता और समानता के नम विचारों से कटई सेल न खाने थे। अनेक सामाजिक उपन्यासों में (फिर चाहे वे महान् उपन्यासकारों द्वारा क्यों न रचित हों) सत्त्व-मध्यवर्ग की संकीर्ण पुरातनवादी प्रवृत्तियों के कारण बुद्ध्या नैतिकता और आचारसंहिता के सामने किसी पाप की सम्पूर्णता समझा किसी परिस्थिति के स्वाभाविक विकास कम तथा संशुद्धी उधारतावाद और व्यक्तिवाद का भी बहिदान कर दिया जाता था। पुराने सङ्घ-से सामाजिक रीति-रिवाजों और आधुनिक युद्धों की बहिया संधिनेवाले नाटक सामाजिक व्यंग्य भी सिखे गए और इन्होंने कमसे पुराने पौराणिक कथानकों का स्वाम ले लिया। उदाहरणतः बंगला में गिरीशचन्द्र मल्लिक में बिज्जुदास भावे और हिन्दी में हरिदचन्द्र ने पहले-पहल पौराणिक नाटक लिखे। गिरीश घोष खीरोद बिद्याविनोद और द्विवेदनाथ राय तथा किरताने के ऐतिहासिक नाटकों की अपेक्षा बहुत अधिक लोकप्रियता हुई किन्तु सामाजिक नाटक और व्यंग्य (उदाहरणतः समुत्तमान बभु और एस० मुचनियार रचित) जो जनता को हँसा-रसा दोनों सकते थे प्रत्येक प्रांतीय साहित्य में अधिक प्राचुर्य और भोज्यता बन गए।

रबीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव

सभी भारतीय साहित्यों की कविता का सर्वाधिक विशिष्ट स्वर है क्मानी उत्साह व भाव्य तथा एक प्रतिरंजित आत्मवाद। काव्य के क्षेत्र में ये विशिष्टताएँ स्वयं को परम्परागत आध्यात्मिक उपासनात्मक मुद्रा और संदर्भ से अलग रख सकी हैं। यूरोपीय प्रकृति-काव्य का भी सम्बन्ध ब्रह्मसंनम और परिपाक हुआ है किन्तु विभिन्न प्रांतों की कविता पर इससे कहीं अधिक सघन प्रभाव पड़ा रबीन्द्रनाथ ठाकुर की कमानियत तथा बरती माता एवं प्रकृति की सुन्दरता और समृद्धि (जल-परिवर्तन और दिन-रात का चक्र) के प्रति जनके सहज प्रेम का (यह वास्तव में वास्तविक की परम्परा ही थी)। रबीन्द्र के काव्य में प्रकृति-संग भाव और ससार प्रेम तथा ईश्वर-प्रेम वास्तव में सम्पूर्ण ब्रह्मांड में परिष्कृत समीप ईश्वर की एक ही तीव्र अनुभूति की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। रबीन्द्र की प्रीति नीतिमयता अथवा वास्तविक कविता बनाम तथा अन्य प्रांतों में एक बारस बन गई तथा इसने मयार्थ आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का प्रेरित किया अब यह दूसरी बात है कि रबीन्द्र की मूल बंगला की विशिष्ट छन्दारमकता तथा साहित्यिक मयारमकता उनमें न है। उनके उपन्यासों और कहानियों में सामाजिक असमानता के प्रति तीव्र आलोच और सामाजिक व्यंग्य व जातिप्रथा द्वारा उत्प्रेरित व्यक्तियों के प्रति अतीव समवेदना की अभिव्यक्ति है इससे प्रेरणा लेकर अन्य साहित्यकार भी काव्य नाटक और कथा-साहित्य में सामाजिक समस्याओं को उठाते सगे। बंगला तथा अन्य प्रांतों में साहित्यिक अभिव्यक्ति को एक

नई शिक्षा मिली—ग्रामीण लोक-काव्य में जो प्राचीन वीरकाव्यों व लोकगीतों से उत्प्रेरित है तथा सबहारा कथासाहित्य में, जिसमें जनसाधारण की बोझी का प्रयोग होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक धार्मिक आन्दोलन

उन्नीसवीं शताब्दी के चरण और आगे बढ़े तो भारत पर ईसाई की सामाजिक विजय को विभिन्न क्षेत्रों में चुनौतियाँ मिलीं। ईसाई धर्मप्रचारकों के साथ द्वास्तानों और समाज-सुधार की सक्रिय योजनाओं ने लोगों में भारतीय सामाजिक जीवन तथा संस्थाओं (विधेयता, जाति, परिवार और धर्म) के चरित्र के प्रति खिन्नता फैलाने लगी। बंगाल में अकिमचन्द्र बट्टोपाध्याय भुवनेश्वर मूलोपाध्याय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और भक्त्य कुमार दत्त तथा पश्चिमी भारत में बी० एन० भट्टाचार्य महादेव गोविन्द रानडे और भार० बी० मंडारकर जैसे प्रभावशाली नेताओं ने भारतीय सामाजिक संस्थाओं का पुनर्मूल्यांकन किया पश्चिमी रीतियों का विशेष विरोध तथा धर्म के सामाजिक मूल्यों और धर्मों की पुनर्स्थापना प्रस्तुत की। कुछ उदार धर्म प्रपासकों ने प्राचीन संस्थाओं और जातीय सिद्धांतों के अधिस्तंभ का विरोध किया तथा धर्मों की कानूनी और प्रशासनिक नीति की तीव्र आलोचना की। मेटकाफ और मेन (भारत के ग्रामीण समाज के मामलों से सम्बद्ध) अल्फ्रेड ह्याम (कानून और प्रशासन से सम्बद्ध) और मनरो (शिक्षा की विभिन्न समस्याओं से सम्बद्ध) ऐसे ही धर्म थे। सुधार और सेवा के संकेत लेकर कम से कम चार सामाजिक धार्मिक आन्दोलन हुए। प्रत्येक ने प्राचीन परम्परा और मूल्यों के साथ पश्चिमी सम्यता का सामंजस्य बिठाकर सामाजिक समाज को सामने रखा तथा इस उद्देश्य से प्राचीन परम्परा और मूल्यों की पुनर्स्थापना की। वे आन्दोलन थे ब्रह्मसमाज जिसके नेता ठाकुर परिवार के भोग तथा केदारचन्द्र सेन थे आर्यसमाज जिसके अनुयायी रामानन्द सरस्वती थे बियोसाफिकल सोसायटी जिसकी नेत्री एनी बेसेंट थी तथा स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व में रामकृष्ण मिशन। बंगाल में राजनीतिक और क्रांतिकारी आन्दोलन एक प्रकार के राष्ट्रीय आदर्शवाद से संतुष्ट थे। लोक-संस्कृति ग्रामीण जीवन और संस्थाओं लोकगीतों और कला कौशलों में जनसमाज की खिन्न इसी राष्ट्रीय आदर्श की अभिव्यक्ति थी।

राष्ट्रवाद के पहलू

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (१८४८-१९२५) के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीयता की भावना को इन सब आन्दोलनों ने अधिक गंभीरता और आध्यात्मिकता प्रदान की तथा एक उच्चतर, अधिक आदर्शात्मक स्वर उत्पन्न किया—जैसा स्वर इटली में मैजिनी और बेकोस्लोवाकिया में मसारीक का था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपनी विमर्श वक्तृत्व क्षमता और विद्यालय भोज जैसे प्रतितीय उपायों को जीवन भर के लिए राष्ट्र के हित में लगा दिया। बनर्जी की तुलना जर्क प्रवरा मीडस्टोन से की जाती है। उनके आन्दोलनों के क्रमस्वरूप भारतीय राजनीति का जन्म हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहली

टोकियो और रोम से सिंगापुर तक सारा संसार जान मारा। सम्भूत १९४३ में रास बिहारी बोस की सहायता से जापान में एक आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की। सुद्ध पूर्व में रहनेवाले लगभग २० लाख भारतीयों ने इस सरकार के प्रति बफ्तबारी की राय ली तथा घुरी राष्ट्रों ने इसे मान्यता दी। अंग्रेजों को हुचकर भारत की राजधानी दिल्ली के गुरामे आस किने पर तिरंगा फंडा फहराना इस सरकार का बड़ निश्चय बा। इसीसिण इसके नारे थे—'असहिद' और दिल्ली असो। अंभमान और निकोबार तथा आजाद हिन्द फौज द्वारा बिमित भारतीय प्रदेश (जिसमें कोहिमा मणिपुर और मिष्मपुर, जिनके क्षेत्रफल लगभग १५,००० मील बा शामिल थे) पर इस सरकार का शासन बा। जापान की पराजय के बाद आजाद हिन्द फौज के प्रमुख अफसरों को कैद करके भारत लाया गया और दिल्ली के आस किस में उनपर मुकदमा चला। इस मुकदमे से अन्तिकारी अस्तित्व ने तो बस मिला ही साब ही चीनों सेनाओं के जवानों में भी बेहद असन्तोष और मन मुटाब पैदा हो गया। महात्मा गांधी और उनके सहयोगी कांग्रेस नेताओं को जेल में बन्द कर देने पर हुई १९४२ की अगस्त कान्ति आजाद हिन्द फौज के प्रति भारतीय जनता की सहानुभूति १९४५ और १९४६ में बम्बई, कराची और मद्रास के नोर्सेनिक बिद्रोह (इसी बीच बंगाल का मयामक पकान पड़ा जिसमें ५१ लाख अकितियों को जान से हाथ धोना पड़ा) ने आखिरकार अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर बाध्य कर दिया—और राष्ट्र पिता के नेतृत्व में कांग्रेस की कार्यकारिणी ने यही नारा तो लयाया बा 'अंग्रेजों भारत छोड़ो'।

गणतन्त्रात्मक समाजवाद

अंग्रेजों की सहमति से और रक्तपात के बिना भारत ने अपनी स्वाधीनता १५ अगस्त १९४७ को प्राप्त की। स्वाधीनता के साथ-साथ कुछ अनिवार्य राजनीतिक और आर्थिक समस्याएं भी सामने आईं। देश का बिभाजन एक दुर्भाग्य बा क्योंकि ऐसा होना न उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी सीमावर्ती प्रदेश असुरक्षित हो गए। सिंधु नदी के पार उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती प्रदेश की कमजोरी अथवा काबुल सिंधु घाटी पंजाब और बादमीर पर बिदेसी अधिकार ऐसे कारण हैं जिनके बल पर इतिहास में अनेक बार देश का बिभटन हुआ है और उसकी अख्यता की निरन्तरता टूटने है। बिभाजन और भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण हमसिए हैं क्योंकि दोनों पक्षोंसियों में जिन्होंने भारतीय इतिहास के बीर्ब उत्तार चढ़ाव सहित प्रवाह में अंधे से कत्ता मिलाकर स्वाधीनता-सपना में भाग लिया था परम्पर अनजन है तथा बिभाजनीपरायण लगभग ९० लाख हिन्दू शरणार्थियों के रूप में भारत आए थे। भारत के भीतर, सरदार बल्लभभाई पटेल की बुरदक्षिता और नीतिज्ञता के कारण लगभग ६०० देशी रियासतें—जो सामन्तवाद निरनुपगत और सामाजिक प्रति गामिता की गढ़ थीं—भारतीय संघ में मिला ली गईं। कनस्वरुन देश अथ जितना बिस्तृत और पश्चिमासी हो गया है उसका अनेक सा आराज्यों के आस में न बा। रियासती अथवा अख्यमूर्गीन और आधुनिक अथवा गणतन्त्रात्मक भारत के एक रूप होने से राष्ट्रीय अकित और आर्थिक आयोगना और विकास में बहुत महायता मिलेगी।

गणतन्त्र का समिधान १९५० में लागू किया गया था। इसके उद्देश्य हैं एक धर्म निरपेक्ष राज्य म गरीबी से मुक्ति, जनसामान्य के जीवन-स्तर का सुधार, साम्प्रदायिक एकता और सत्सुखता का निर्धारण। इन उद्देश्यों की पूर्ति केवल गणतन्त्रात्मक समाजवाद द्वारा सम्भव है और गणतन्त्रात्मक समाजवाद का धर्म है—जमीन के बन्दोबस्त का मुद्दा जिसमें राज्य और किसानों के बीच कोई मध्यस्व न हो तथा प्रमुख न बुनियादी उद्योगों तथा नौकरियों का राष्ट्रीयकरण। श्री जवाहरलाल नेहरू इस साम्प्रदायिक के प्रति आस्थावान नेता और इनके व्याख्याता थे। वस्तुतः यही आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्र-राज्य का निर्माण करने और भारत की कृषि-सम्पत्ता के मूल्यों और युगों को सुर्धित करने तथा विकसित करने में समर्थ है। श्री नेहरू की उद्बोधना की "हमारा प्रतिष्ठित मूल्य है एक सर्वहीन समाज की स्थापना जिसमें किसी भी प्रकार की आर्थिक विषमता और सम्पादन न होया तथा सभी को समान सुविधाएँ और अवसर प्राप्त हों। मध्यवर्ग के सदस्यों ने ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का निर्माण किया और अन्ततः संघर्षों के द्वारा ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का और महत्वाकांक्षा से नहीं बल्कि उनकी दूरदसिता और आत्मत्याग से ही एक पुष्ट समाज द्वारा प्रदत्त कठिन समस्याओं—सामन्तवादी व्यवस्था, जाति-व्यवस्था और आर्थिक विभेद—को दूर किया जा सकता है। ऐसी समस्याएँ अन्ततः राजनीतिक से आर्थिक विभेद—आर्थिक से आर्थिक सामाजिक सिद्ध होती हैं। श्री नेहरू के नेतृत्व में एक छोटी सत्ता प्रचलन रूप से कांग्रेस से हटकर पार्लियामेंट और मन्त्रिमण्डल के पास पहुँच जाती है और इसी छोटी पार्टी के कार्यक्रम से आर्थिक महत्त्व आर्थिक योजना को तथा आर्थिक कल्याण से आर्थिक महत्त्व मूलभूत सामाजिक ध्याय को दिया जाने लगा है। आज के इस विप्लव भारतीय राजनीतिक प्रयोग का उद्देश्य है एक स्वतन्त्र समाज के भीतर एक नवीन आर्थिक और सामाजिक समानता की स्थापना।

धर्म का प्राचीन आदर्श

मनुष्य के वैयक्तिक और ईश्वर की मानवीयता की प्राचीन और वैश्वीय भावना ही भारत की सामाजिक समता के उद्देश्य का स्रोत है। वर्तन में मानवमान के कार्य व्यापारों को हमेशा प्रभावित किया है। सर्विषों अर्थिक सहकारियों से यही होता था रहा है। भारत में उपनिषदों और वेदाङ्ग के दर्शन (८०-१०० ईसापूर्व) ने जिसमें बुद्ध का वैश्वीय दर्शन (५६३-४८३ ईसापूर्व) भी सम्मिलित है, तथा चीन में कन्फ्यूशियस (५५१-४७९ ईसापूर्व) के दर्शन ने हार्ड ह्वार बपों तक कमजोर भारत और चीन के इतिहास को स्वरूप दिया है। मुक्तपत्र ज्योती और अस्तू (४७०-३२२ ईसापूर्व) के दर्शन का प्रभाव समग्र इसी आर्थिक परिस्थिति सम्पत्ता पर है। इसके प्रतिरिक्त हीनैत (१७७-१८३ ईस्वी) के दर्शन तथा जयकी एकशास्त्रा मार्गवाद का पश्चिम पर प्रभाव अभी केवल समय एक सत्ताधी से है। हीनैत ने अपनी इष्टात्मक प्रथाओं प्रस्तुत की जिसके अनुसार इष्ट नियमवाद प्रतिष्ठा और समग्र्य द्वारा व्यवहार होता है। मार्क्स ने अपने उद्देश्यों के लिए हीनैत के दर्शन को स्वीकार किया जिससे समकालीन परिस्थिति संसार में

टोकियो और रोम से घिगापुर तक साथ संसार जन मारा। उन्होंने १९४३ में 'संस्कृतिहारी ब्रोक' की सहायता से जापान में एक आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की। सुदूर पूब में रहनेवाले लगभग २० लाख भारतीयों ने इस सरकार के प्रति बफ़ादारी की शपथ ली तथा भूरी राष्ट्रों ने इसे मान्यता दी। अंग्रेजों को हराकर भारत की राजधानी दिल्ली के पुराने लाल किले पर तिरंगा झंडा फहराया इस सरकार का बड़ा निश्चय था। इसीलिए इसके बारे में—'जयहिंद' और दिल्ली जलो। अंग्रेजों और निकोबार तथा आजाद हिन्द फौज द्वारा विजित भारतीय प्रदेश (जिसमें कोहिमा मणिपुर और बिष्णुपुर, जिनका लब्धिलब्ध समय १९००० मोम था घोषित थे) पर इस सरकार का शासन था। जापान की पराजय के बाद आजाद हिन्द फौज के प्रमुख व्यक्तियों को कैद करके भारत लाया गया और दिल्ली के लाल किले में जमकर मुकदमा चला। इस मुकदमे से अन्तिमारी शक्तियों को तो बल मिला ही साथ ही तीनों सेनाओं के बचानों में भी बहुत घसटोप और मन मुटाव पैदा हो गया। महात्मा गांधी और उनके सहयोगी कांग्रेस नेताओं को जेल में बन्द कर देने पर हुई १९४२ की अग्रस्त कानि आजाद हिन्द फौज के प्रति भारतीय जनता की सहानुभूति १९४३ और १९४६ में बम्बई, कराची और मद्रास के नौसैनिक विद्रोह (इसी बीच बंगाल का भयानक विकास पड़ा जिसमें ३३ लाख व्यक्तियों को जान से हाथ धोना पड़ा) ने आखिरकार अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर बाध्य कर दिया—और राष्ट्र पिता के नेतृत्व में कांग्रेस की कार्यकारिणी ने यही नारा तो लगाया था 'अंग्रेजों भारत छोड़ो'।

गणतन्त्रात्मक समाजवाद

अंग्रेजों की सहमति से और रणतपात के बिना भारत ने अपनी स्वाधीनता १९ अगस्त १९४७ को प्राप्त की। स्वाधीनता के साथ-साथ कुछ अनिवार्य राजनीतिक और आर्थिक समझौते भी सामने आईं। देश का विभाजन एक दुर्भाग्य था क्योंकि ऐसा होने से उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी सीमावर्ती प्रदेश असुरक्षित हो गए। सिंधु नदी के पार उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती प्रदेश की कमजोरी बचका काबुल सिंधु घाटी, पंजाब और नादमीर पर विदेशी अधिकार ऐसे कारण हैं जिनके बल पर इतिहास में अनेक बार देश का विघटन हुआ है और उसकी सम्मति की निरन्तरता टूटी है। विभाजन और भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण इसलिए है क्योंकि दोनों पक्षों में जिन्होंने भारतीय इतिहास के बीच उत्तर बढ़ाव सहित प्रवाह में कंधे से कंधा मिलाकर स्वाधीनता-संघाम में भाग लिया था परस्पर अनबल है तथा विभाजनोपरान्त लगभग ६० लाख हिन्दू सरवासियों के रूप में भारत आए। भारत के भीतर, सरकार बलमभाई पटेल की दूरदर्शिता और नीतिज्ञता के कारण लगभग ६। डेढ़ी रियासतें—जो सामन्तवाद निर्दुष्यता और सामाजिक प्रति गामिता की मङ्ग थी—भारतीय संघ में मिला ली गईं। फलस्वरूप देश एक मितता विस्तृत और एकतावादी हो गया है। उतना अनेक साम्राज्यों के काल में था। रियासती व्यवस्था मध्ययुगीन और प्राच्यिक व्यवस्था मण्डलान्तरक भारत में एकत्र होने से राष्ट्रीय शक्ति और आर्थिक आधुनिकता और विकास में बहुत सहायता मिलेगी।

गणतन्त्र का संविधान १९२० में लागू किया गया था। इसके उद्देश्य हैं एक धर्म निरपेक्ष राज्य में गरीबों से मुक्ति, जनसामान्य के जीवन-स्तर का सुधार, साम्प्रदायिक एकता और अस्पृश्यता का निवारण। इन उद्देश्यों की पूर्ति केवल गणतन्त्रात्मक समाजवाद द्वारा सम्भव है और गणतन्त्रात्मक समाजवाद का धर्म है—जमीन के सर्वोत्तम का सुधार जिसमें राज्य और किसानों के बीच कोई मध्यस्थ न हो तथा प्रमुख न बुनियादी चर्चों तथा नीतियों का राष्ट्रीयकरण। यही अवाहुरसम नेहरू इस आन्दोलन के प्रति आस्थावान नेता और इसके व्याख्याता थे। वस्तुतः यही आन्दोलन भारतीय इयकर-जनराज्य का निर्माण करने और भारत की क्षयि-सम्पत्ता के मूल्यों और सुधों को सुरक्षित रखने तथा विकसित करने में समर्थ है। यही नेहरू की उद्बोधना की 'हमारा अन्तिम लक्ष्य है एक बर्षहीन समाज की स्थापना जिसमें किसी भी प्रकार की आर्थिक विषमता और अन्धधर्म न होया तथा सभी को समान बुद्धिपूर्ण और अवसर प्राप्त होंगे। मध्यवर्ग के सर्वस्वों ने ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का निर्माण किया और अन्ततः अंग्रेजों के हाथ से शक्ति छीन ली। अब उनकी सम्पत्ति और महत्वाकांक्षा से नहीं बल्कि उनकी दूरदृष्टि और आत्मत्याग से ही एक पुराने समाज द्वारा प्रत्यक्ष कठिन समस्याओं—सामन्तवादी उत्ख जाति-अन्धधर्म और आर्थिक विभेद—को दूर किया जा सकता है। ऐसी समस्याएं अन्ततः राजनीतिक से अधिक आर्थिक और आर्थिक से अधिक सामाजिक सिद्ध होती हैं। यही नेहरू के नेतृत्व में एक ओर सत्ता प्रशस्न रूप से कांग्रेस से हटकर पार्लियामेंट और मन्त्रिमण्डल के पास पहुँच जाती है, और दूसरी ओर पार्टी के कार्यक्रम से अधिक महत्त्व आर्थिक योजना को तथा आर्थिक कल्याण से अधिक महत्त्व मूलभूत सामाजिक ध्याम को दिया जाने लगा है। भाव के इस विद्याल भारतीय राजनीतिक प्रयोग का उद्देश्य है एक स्वतन्त्र समाज के भीतर एक नवीन आर्थिक और सामाजिक समानता की स्थापना।

धर्म का प्राचीन आदर्श

मनुष्य के ईश्वर और ईश्वर की माननीयता की प्राचीन और वैदिकी धारणा ही भारत की सामाजिक समता के उद्देश्य का स्रोत है। वर्धन ने मानवमान के कार्य व्यापारों को हमेशा प्रमाणित किया है। उदियों बलि सहस्राब्दियों से यही श्रोता आ रहा है। भारत में उपनिषदों और वेदों के वर्धन (८००-२०० ईसापूर्व) ने जिसमें बुद्ध का वेदानी वर्धन (२९१-४८३ ईसापूर्व) भी सम्मिलित है, तथा चीन में कन्फ्यूशियस (५५१-४७९ ईसापूर्व) के वर्धन ने आई ह्वार बयों तक कमजोर भारत और चीन के इतिहास को स्वरूप दिया है। सुकराष्ट जेटो और घरस्तु (४७०-३२२ ईसापूर्व) के वर्धन का प्रभाव अत्यन्त इति अर्थ से पश्चिमी सम्पत्ता पर है। इसके अतिरिक्त, हीरेस (१७७-१८३ ईसी) के वर्धन तथा उसकी एक आत्मा मार्क्सवाद का पश्चिम पर प्रभाव समी केवल लगभग एक शताब्दी से है। हीरेस ने अपनी अन्तःस्थ प्रभावी प्रस्तुत की जिसके अनुसार अन्तः निमग्नवाद, प्रतिवाद और सम्भव द्वारा प्रसरत होता है। मार्क्स ने अपने उद्देश्यों के लिए हीरेस के वर्धन की स्वीकार किया जिससे समकालीन पश्चिमी संसार में

कामाक्षर में साम्यवाद की राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक नीति प्रेरित हुई। भारत में भी मूल वेवासी चारणा का कामाक्षर एक सामाजिक सम्बन्ध में, 'कर्म के कीचर' में हुआ (योग कर्मसु कीचरम्)। क्या इन्द्रात्मक भौतिकवाद के कारण विश्वव्यापी अन्तिम और युद्ध होंगे? यद्यपि क्या मानव-मस्तिष्क की बेबान्त अन्त्यात्म की मन्त्रा-त्मकता—जिसके बल पर विचारों का अन्तर्गत अधिक होता है, उनकी सत्यता और मूल्य की अनुभूति अधिक सहज से होती है, और फलस्वरूप बोधसक्ति कमजोर अधिक व्यापक तथा गम्भीर हो जाती है तथा अन्ततः ईश्वर का ज्ञान होने लगता है—मानवता को शान्ति सहयोग और समानता के मार्ग पर ले जाएगी?

आध्यात्मिक समानता पर आधारित धर्म के एक अत्यन्त विशाल और प्राचीन सिद्धांत का निरूपण बहुवार्षिक उपनिषद् की 'मधुविद्या' में है। "धर्म जो समस्त ब्रह्माण्ड समाज मानवमात्र और उसके प्रांग प्रत्यक्ष का निर्वहन करता है जिसका अन्त्यास लोगों द्वारा किया जाता है और जो राजाओं तक को शासित करता है, समस्त जीवों का मधु और समस्त जीव उसके मधु हैं। शास्त्रतः ऐश्वर्यमान धर्मयुक्त धारमब्रह्म इसी धर्म से जन्मा है। वह तुम्हारे भीतर है। वह तुम्हारा धारम है धर्म और सम्पूर्ण।

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उपस्थित शास्त्रतः और अनन्तर धर्म ही समय-समय पर समाज के नियमों-उपनियमों का निर्धारण करता है। सामाजिक नियम तो भोकोत्तर-आवृत्त सिद्धांतों के अन्त्यापी और मन्त्र बन्ध-मान हैं। किन्तु जीवन और समाज में उनकी उपस्थिति के बिना व्यक्ति यद्यपि समाज को मधु की शक्ति नहीं होती। प्राधुनिक समाज के लिए, जिसका अर्थ समाजता का स्थापित करना है, धर्म के रूप में धर्म की चारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि वह सम्पूर्ण ससार में परिष्कृत है और उसका नियन्त्रण करती है।

कुछ पृथ्वी पर जन्म लेनेवाले धारम महान्तम मानव तथा भारतीय धर्म और समाज के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण और नवीकर्ता है। उन्होंने 'संयुक्त-निकाय' में कहा है कि "जिस धर्म के उपदेश में वेता हूँ वह एक पुरातन मार्ग पर चलने और किसी पुण्य के समकक्षी किन्तु धर्म अन्तः नगर के अन्त्येष्ट और पुनर्निर्माण के समान है।"

इतिहास उस प्राचीनमार्ग किन्तु नगर तथा ईश्वर के विशिष्ट आचार—जिसका उपयोग बीते युग के निवासी और विचारक कर चुके हैं—की शक्ति तथा वर्तमान पीढ़ी के लिए उनके पुनर्निर्माण (ताकि जीवन अधिक समृद्ध और श्रेष्ठ बन सके) का ही नाम है। इतिहास किसी देश के अन्त्यापी अनन्तर धर्म तथा अतीत वर्तमान और भविष्य के धारणर उसके एकरूप के पुनरुत्थान का नाम है। मानव के धर्मों का समावेश धर्म में होता है ता वह इसी अन्त्यापी ऐश्वर्य ससार का बन जाता है। इतिहास के धारणर और उससे परे वह अनन्तर धर्म है जिसका सम्पूर्ण व्यक्ति देश और मानवमात्र के कर्तव्यों और अधिकारों से है। धर्म किसी राष्ट्र के ऐतिहासिक युगों में ही नहीं बल्कि संसार के विभिन्न राष्ट्रों में भी सम्यता के व्यापक सम्मिश्रित प्रसार द्वारा एकानुता स्थापित करता है।

यात्राएं करते थे। भारत पर कब्जा करने के बाद अंग्रेजों ने १८११ में प्रसेनजीधर बर्नो को सचिववर्ती के लिए अफगानिस्तान भेजा और इसके बाद एक सेना लेकर चढ़ाई करके कान्दहार गझनी और काबुल पर १८१८ में अधिकार कर लिया। इसके बाद अफगानिस्तान में बिद्रोह हुआ, अंग्रेज सेना को बुरी तरह काबुल से अमासाबाद वापस आना पड़ा, मॉर्डे एलनबोरो ने प्रतिशोध लेने के लिए काबुल में सुटमार की और अन्त में अफगानी 'ययुमकिलियों' को छोड़ कर और अधिक न छोड़कर अंग्रेज वापस लौट आए। १८७८-१८८० में दूसरा अफगानयुद्ध हुआ जिसकी समाप्ति केवल इस कारण हुई कि कस्ती सेनाएं भारतीय सीमा के पास आ पहुंचीं। इस युद्ध के बाद अंग्रेजों की आक्रामक नीति में परिवर्तन हुआ अंग्रेजों काबुल बाटी पर अधिकार करने तथा मध्य एशिया को प्रभावित करने का इच्छा छोड़ दिया। और इसके बाद ही उन्होंने स्वायत्त और सुरक्षा के विचार से उत्तर-पश्चिमी स्वतन्त्र-राज्यों को सम्मिलित कर दिया और इस प्रकार देश को छेप एशिया से अलग कर दिया। भारत का राजनीतिक पुनर्करण बहु महत्वपूर्ण भीम का पत्थर है जो भारत के वर्तमान को उसके अतीत से अलग करता है।

एशिया की एकता में भारत का ऐतिहासिक योग

अपने इतिहास के प्रवाह में भारत ने तीन बार एशिया के एक विद्यालय नाम में स्थायी एकता की स्थापना की। पहली बार ईसा पूर्व के आरम्भ से चौथी सताब्दी ईस्वी तक जब बौद्धधर्म सम्पूर्ण मध्य-एशिया (सर्हिन्) और उत्तरी चीन में फैल गया—गंधार और कान्दहार से लेकर बैक्ट्रिया तक सम्पूर्ण भारतीय-ईरानी सीमावर्ती प्रदेश (यूनानियों के अनुसार श्वेत भारत) पहले ही सम्राट अशोक के बौद्ध-धर्मप्रचारकों द्वारा बौद्धधर्म में विलीन किए जा चुके थे। दूसरी बार गुप्त-संस्कृति के स्वर्णयुग (अबमय चौथी सताब्दी ईस्वी से आठवीं सताब्दी ईस्वी तक) में, जब महायान बौद्ध-धर्म का प्रसार आरंभ और गंधार से पश्चिमी एशिया तुर्किस्तान और चीन तक हो गया तथा हिन्दू उपनिषद् और राजम दक्षिण-पूर्वी एशिया में सुवर्णद्वीप से कम्बुज तक स्थापित हुए। तीसरी बार जब गोड़ में संस्कृति और कला के तांत्रिक पुनरुत्थान (आठवीं सताब्दी से दसवीं सताब्दी ईस्वी के अन्त तक) का प्रसार पश्चिम के अन्तर्गत नेपाल तिब्बत बृहत्तर भारत और इंडोनेशिया में हुआ। अगमय जो हजार वर्षों तक भारत ने अपने बौद्ध ब्राह्मण तांत्रिक और सिद्धनाथ धर्मधर्मों तथा उत्कृष्ट कलाकृतियों द्वारा अपनी वैदिकता आचार-व्यवहार और संस्कृति का भीम एवं साहित्यपूर्ण प्रसार मध्य व दक्षिण-पूर्वी एशिया (सीरिया से कम्बुज और कोरिया से चीन तक) के अनेकानेक कम अलग देशों में किया। यूरोप में ईसाईधर्म की भांति बौद्धधर्म ने कम से कम एक हजार वर्षों तक सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप में एक सांस्कृतिक और धार्मिक एकता कायम रखी और यूरोप में प्रयुक्त रोमन की भांति सम्पूर्ण बौद्ध संसार में संस्कृत सामान्य भाषा थी। एशिया के विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों—भारत में नागार्वा, विक्रमपीठ और वलभी बख्श में नवसंघाराज कोटान में सोमवीरिहार, चीन में चारु-याग लो-याङ और मानकिङ चीन में धनु रायपुर, सुमात्रा में श्रीविजय तथा स्पाम में हारावती में सताब्दियों तक एक ही भाषा में

धिसा दी जाती रही तथा समान पुराणों और धर्मों की व्याख्या की जाती रही। इसी प्रकार भारत में सारनाथ, मथुरा अजन्ता वनार और सम्राटगढ़ी चीन में बुद्ध-काष्ठ और तुम-कुषाक, जापान में होर्युजी, कम्बोडिया में अयकोरबोम, थाई में बोरोबुद्ध, बर्मा में पयन और श्रीलंका में सिगिरिया में सीर्य और कश्मीर की श्रेष्ठतम कल्पना प्रस्तर पर अंकित है। भारत और दक्षिण पूर्वी एशिया के प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों के टूटने के कारण है—एन्डर्बी सताम्बी में इस्लामधर्म का व्यापक प्रसार तथा सोमर्बी सताम्बी में भारतीय जहाजगनी को पुर्तगाली शकेजनी का अंतर्ग।

धार्मिकता की आधारभूत एकता

एशियाई एकता की स्थापना में भारत का ऐतिहासिक योगदान यह था कि उसने अपनी सांख्यिकता की पुरातन प्रकृति सार्वभौम मानव और सार्वभौम समाज का अपनी धार्मिक पारंपरा तथा सार्वभौम सांस्कृतिक राज्य के अपने राजनीतिक सिद्धान्त का प्रकार अपनी सीमाओं से बाहर किया। इन्हींके मत पर भारत अपनी भूमि पर विभिन्न जातियों और संस्कृतियों को—जिनमें से अनेक सभ्य और विदेशी थीं जैसे यवन बुद्ध धर्म पारसीक और हूण—एकसूत्र में बांध सका था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समष्टि के प्रति सामूहिक समर्पण से प्रेरित होकर पंक्तियों के बर्चसंकर की कल्पना को स्वीकार करके परिष्कृत किया जिसके कमलस्वरूप विदेशी स्नेहों और देशी धार्मिकों के लिए भी हिन्दुधर्म के द्वार खुल गए। जीवन और धारस्तम्भ (छद्म से जीवी सताम्बी ईसापूर्व) से बर्चसंकर जातियों की सुधी बर्बाद जिसे बोधायन और मनु (सबसे पारंपरिक सताम्बी ईस्वी) ने काफी विकसित किया। मनु के ग्रन्थ और रूपान्त सम्बन्ध हिन्दुधर्म में बुरे मित्रे यवन धर्मवा पारसीक ही थे। मनु का कथन है "यूद्ध का बीजा धर्म है पारंपरिक मन होता ही नहीं।" मुत्तकाल के पराक्रम से सुद्धों के साथ-साथ विदेशी जातियों तथा हिन्दुकृत सीमाकर्षी जातियों के लोगों को भी मान्यता प्रदान की। पारंपरिक सताम्बियों बाद मनु के विस्मृत माध्यकार मेधातिथि का आग्रह है कि हिन्दू जीवन-मंडल का आधार भारत की जीवोत्पत्ति स्थिति नहीं बल्कि धर्म मान है जो धार्मिकता की धारणा में अनिवार्य है। उनका कथन है "कोई क्षत्रियतासी एवं पराक्रमी सम्राट स्नेहको के देश को भी विजित कर सकता है वहाँ पर आपुर्बर्ध स्थापित कर सकता है स्नेहको को धार्मिकता के बांधकों का स्थान प्रदानकर सकता है और इस देश का भी धार्मिकता के समान मज्जित युक्त बना सकता है।" धर्मार्थ धार्मिकता की एकता का सुद्ध आधार है संस्कृति धर्मवा धर्मानुसार जीवन-प्रवृत्ति—'विष्णुपुराण' के अनुसार, 'धर्मधर्मि' नहीं बल्कि 'कर्मधर्मि'।

अनन्तानु, मिट्टी और भौतिक परिस्थितियों की विविधता तथा जातियों और लोगों के प्राचीन धर्मों के बावजूद भारतवासियों के मस्तिष्क में भारतवर्ष की आधारभूत एकता के प्रति बुद्धिबोध है, और इस विश्वास का कारण है—प्राचीन पुराण धर्मधर्म काव्य, मन्दिर, उत्सव और सीर्वाभाष। इस प्रकार भारतवर्ष एक भौतिक इकाई मान नहीं है। यह एक इतिहाससिद्ध सांस्कृतिक संघीयता है। भारतवर्ष के पवित्र नगर, धर्म नदियाँ और पर्वत सम्पूर्ण देश में उत्तर में हिमालय से लेकर पूरे

याभाएं करते थे।" भारत पर कब्जा करने के बाद अंग्रेजों ने १८११ में प्रसेनईंगर बर्न को सन्धि-शर्तों के लिए अफगानिस्तान भेजा और इसके बाद एक सेना लेकर बढ़ाई करके कन्दहार गजनी और काबुल पर १८३८ में अधिकार कर लिया। इसके बाद अफगानिस्तान में बिद्रोह हुआ, अंग्रेज सेना को बुरी तरह काबुल से अलाहाबाद वापस घाना पड़ा सार्द एलैनबॉरो ने प्रतिशोध भेग के लिए काबुल में सूटपार की घोर भ्रष्ट में अफगानी 'मधुमन्त्रियों' के छल को और अधिक न छोड़कर अंग्रेज वापस नीट गए। १८७८-१८८० में दूसरा अफगान युद्ध हुआ जिसकी समाप्ति केवल इस कारण हुई कि रूसी सेनाएं भारतीय सीमा के पास आ पहुंची। इस युद्ध के बाद अंग्रेजों की आक्रामक नीति में परिवर्तन हुआ उन्होंने काबुल घाटी पर अधिकार करने तथा मध्य एशिया की प्रभावित करने का इरादा छोड़ दिया। और इसके बाद ही उन्होंने स्वायत्त और सुरक्षा के विचार से उत्तर-पश्चिमी स्वतन्त्र-रा्यों को बन्द कर दिया और इस प्रकार देश को क्षेत्र एशिया से अलग कर दिया। भारत का राजनीतिक पुनर्करण वह महत्वपूर्ण भीम का पत्थर है जो भारत के वर्तमान को उसके घटीत से घलय करता है।

एशिया की एकता में भारत का ऐतिहासिक योग

अपने इतिहास के प्रवाह में भारत ने तीन बार एशिया के एक विशाल भाग में स्थायी एकता की स्थापना की। पहली बार ईसा पूर्व के आरम्भ से चौथी सताब्दी ईस्वी तक जब बौद्धधर्म सम्पूर्ण मध्य-एशिया (सरहिन्द) और उत्तरी चीन में फैल गया—गंधार और कन्दहार से लेकर बकिदुरा तक सम्पूर्ण भारतीय-ईरानी सीमावर्ती प्रदेश (यूनानियों के अनुसार 'इंडो भारत') पहले ही सम्राट अशोक के बौद्ध धर्मप्रचारकों द्वारा बौद्धधर्म में दीक्षित किए जा चुके थे। दूसरी बार गुप्त-संस्कृति के स्वर्णयुग (समलग चौथी सताब्दी ईस्वी से साठवीं सताब्दी ईस्वी तक) में जब महायान बौद्ध-धर्म का प्रसार बाल्तिर और गंधार से पश्चिमी एशिया तुकिस्तान और चीन तक हो गया तथा हिन्दू उपनिषेध और रामय दक्षिण-पूर्वी एशिया में सुवर्णद्वीप से कम्बुज तक स्थापित हुए। तीसरी बार जब चीन में संस्कृति और कला के तांत्रिक पुनरुत्थान (साठवीं सताब्दी से छठवीं सताब्दी ईस्वी के अन्त तक) का प्रसार पासपर्व के अन्तर्गत नेपाल तिब्बत बृहत्तर भारत और इंडोनेशिया में हुआ। लगभग दो हजार वर्षों तक भारत ने अपने बौद्ध ब्राह्मण तांत्रिक और सिद्धनाथ धर्मग्रंथों तथा उत्कृष्ट कलाकृतियों द्वारा अपनी ऐतिह्यता आचार-व्यवहार और संस्कृति का मीन एवं शान्तिपूर्ण प्रसार मध्य व दक्षिण-पूर्वी एशिया (सीरिया से कम्बुज और कोरिया से चीन तक) के अनेकावृत कम उन्नत देशों में किया। यूरोप में ईसाईधर्म की भांति बौद्धधर्म ने कम से कम एक हजार वर्षों तक सम्पूर्ण एशिया महा द्वीप में एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक एकता कायम रखी और यूरोप में प्रमुक्त लेटिन की भांति सम्पूर्ण बौद्ध संसार में संस्कृत सामान्य भाषा थी। एशिया के विभिन्न देशों के विरहविदासयों—भारत में नासग्या, बिकमशीत और बलबी बस्थ में नरसंघाराम कोटान में मोनोविहार, चीन में चाऊ-यन सो-याऊ और नागकिङ्ग भीतका में धनु रायपुर, सुमात्रा में भीबित्रय तथा स्वाम में डारावती में अताशियों तक एक ही भाषा में

मायाएं करते थे।" भारत पर कब्जा करने के बाद अंग्रेजों ने १८११ में प्रसेबर्गवर बर्ली को छिन्नवर्ती के लिए अफगानिस्तान में जा और इसके बाद एक सेना लेकर बढ़ाई करके कन्वहार गझनी और काबुल पर १८३८ में अधिकार कर लिया। इसके बाद अफगानिस्तान में बिरोह हुआ, अंग्रेज सेना को बुरी तरह काबुल से जमासाबाद वापस आना पड़ा जोई एलेनबॉरो ने प्रतिशोध लेने के लिए काबुल में लूटमार की और अन्त में अफगानी 'मजूमनिकियों' के छत' को और अधिक न डेहकर अंग्रेज वापस लौट आए। १८७८-१८८० में दूसरा अफगानयुद्ध हुआ जिसकी समाप्ति केवल इस कारण हुई कि कसी सेनाग भारतीय सीमा के पास आ पहुँची। इस युद्ध के बाद अंग्रेजों की आक्रामक नीति में परिवर्तन हुआ उन्होंने काबुल बाटी पर अधिकार करने तथा मध्य एशिया को प्रभावित करने का इरादा छोड़ दिया। और इसके बाद ही उन्होंने स्वामित्व और सुरक्षा के विचार से उत्तर-पश्चिमी स्वस-भागों को बच कर दिया और इस प्रकार देश को छेप एशिया से अलग कर दिया। भारत का राजनीतिक पुनर्करण बहु महत्वपूर्ण चीन का पत्थर है जो भारत के वर्तमान को उसके अतीत से अलग करता है।

एशिया की एकता में भारत का ऐतिहासिक योग

अपने इतिहास के प्रवाह में भारत ने तीन बार एशिया के एक विशाल भाग में स्वामी एकता की स्थापना की। पहली बार ईसा पूर्व के आरम्भ में चौथी शताब्दी ईस्वी तक जब बौद्धयम सम्पूर्ण मध्य-एशिया (अरहिन्द) और उत्तरी चीन में फैल गया—मंगार और कन्वहार से लेकर ईरिया तक सम्पूर्ण भारतीय-ईरानी सीमावर्ती प्रदेश (यूनानियों के अनुसार 'बेले भारत') पहले ही सम्राट अशोक के बौद्ध-वर्मप्रचारकों द्वारा बौद्धधर्म में दीक्षित किए जा चुके थे। दूसरी बार गुप्त-संस्कृति के स्वर्णयुग (लगभग चौथी शताब्दी ईस्वी से साठवीं शताब्दी ईस्वी तक) में जब महायान बौद्ध-धर्म का प्रचार बालंबर और मंगार से पश्चिमी एशिया तुर्किस्तान और चीन तक हो गया तथा हिन्दू उपनिषेद और राज्य बलिष्ठ-पूर्वी एशिया में सुवर्णद्वीप से कम्य तक स्थापित हुए। तीसरी बार जब चौड़ में संस्कृति और कला के तांत्रिक पुनरुत्थान (साठवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त तक) का प्रचार पालंबंध के अन्तर्गत गैरास तिब्बत बृहत्तर भारत और इंडोनेशिया में हुआ। समय बड़े हज़ार वर्षों तक भारत ने अपने बौद्ध ब्राह्मण तांत्रिक और सिद्धनाथ धर्मग्रंथों तथा उत्कृष्ट कलाकृतियों द्वारा अपनी नैतिकता आचार-मन्वहार और संस्कृति का मीन एवं शान्तिपूर्ण प्रचार मध्य व पश्चिम-पूर्वी एशिया (सीरिया से कम्युज और कोरिया से चीन तक) के अनेकानेक कम अलग देशों में किया। यूरोप में ईसाईधर्म की शक्ति बौद्धधर्म ने कम से कम एक हज़ार वर्षों तक सम्पूर्ण एशिया महा द्वीप में एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक एकता कायम रखी और यूरोप में प्रयुक्त सेटिंग की शक्ति सम्पूर्ण बौद्ध संसार में संस्कृत सामान्य भाषा थी। एशिया के विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों—भारत में जालन्दा, बिक्रमसील और बसमी, बस्य में नवसंघारम मोठान में मोमदीविहार, चीन में चाङ-यान, सो-याङ और नामकिङ चीनका में मनु रामपुर, सुमात्रा में श्रीविजय तथा स्वाम में दारावती में शताब्दियों तक एक ही भाषा में

और समन्वय की प्रवृत्ति वैशिष्ट्य और सचय की चुनौती को स्वीकार कर ली। भारतीय इतिहास के महान रचनात्मक युग तथा निरन्तर गतिशील महत्त्वपूर्ण सामिक कलात्मक एवं दार्शनिक आन्दोलन इस सत्य के प्रमाण हैं कि राजनीतिक और जातीय संघर्षों और विरोधों के बीच भी जबकि कोई अन्य संस्कृति विसीन हो जाती भारत में सर्वत्र सामंजस्य और ऐश्वर्य के ही प्रमाण मिले हैं। यह विशिष्ट संस्कृति परिस्थिति परम्परा और जातीयता की सम्मिश्रित शक्तियों का प्रतिफल है। इसकी निरन्तरता सबसेम पाँच हजार साल से कायम है—विश्व के इतिहास में अद्वितीय उपलब्धि। भारत की आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन की तथा विद्याशास्त्र की एकता और अखंडता की धारणाएँ अर्थों, सम्प्रदायों और वर्गों की सार्वभौमिकता के सामिक सिद्धान्त सार्वभौम धर्म की समर्थक सार्वभौम सत्ता की राजनीतिक धारणा तथा सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानने की नैतिक धारणा—ये सब इसी संस्कृति की प्रांजल अभिव्यक्तियाँ हैं। महान भारतीय पवित्र संकर का कथन है 'मेरी माता देवी पार्वती हैं मेरे पिता शिव हैं मिनकी शक्ति को कोई सहन नहीं कर सकता पार्वती और शिव के शक्तियों को मैं अपना सगा सम्बन्धी मानता हूँ तथा तीनों शक्त मेरे अपने हैं (स्वदेव भुवनत्रयम्)।"

भारत में एक विशिष्ट प्रकार के मनुष्यत्व का विकास हुआ है जो अहंवादी और जातीय नहीं बल्कि सरल और सार्वभौम है। इस मनुष्यत्व के निर्माण में भारत की मानव भाव और कला की प्रवृत्ति के प्रतिरिक्त 'पुरुष' और 'भारी' के भारतीय मूल्यों का बड़ा हाथ है। पुरुष के मूलार्थ हैं—विष्णु शिव बुद्ध बोधितत्व और कृष्ण तथा भारी के मूलार्थ हैं—पार्वती लक्ष्मी और सरस्वती। ये धारणें भारतीय कला की विभिन्न मूर्तियों और चित्रों में अंकित हैं। भारतीय—हिन्दू, बौद्ध भगवा जैन—मूर्ति कला की शिल्पियों ने लोगों को 'धनधार' की ओर धनसार करती हैं जो बार-बार इतिहास का निर्माण, उसमें महीझाई आधा का संसार, तथा वर्ग की महत्ता का पुनर्स्थापना करता है। ये सभी विचार और विश्वास वास्तव में विभिन्नताओं से भरे-पूरे देश में एकता और अखंडता की ओर के युव-युगीन प्रयास हैं।

यूनानी रोमक प्रतिष्ठापनों का ईसाईधर्म का प्रसार भूमिगत, दार्शनिक और मेपोलितन के साम्राज्य की यूरोप में बड़े पैमाने पर अन्तर्हित एकता न स्थापित कर सके जो भारत की विशेषता है। यह सम्मता की एकता जाति और क्षेत्र राष्ट्रीयता अथवा राजनीतिक प्राधिपत्य की शक्तियों द्वारा स्थापित एकता से कहीं अधिक सख्त है। मानव समुदाय के निस्सीम विस्तार और आत्मा की अतल नहराहियों की माप तथा दोनों के ऐश्वर्य का समन्वय भारतीय संस्कृति में है। देश में प्रचलित वर्ण की विभिन्न प्रणालियों तथा आध्यात्मिक पूजा के अनेक रूपों के पीछे यही एक विचारधारा है। यही भारतीय दर्शन की प्रमुख विषयवस्तु तथा भारत के सामूहिक अस्तित्व का मर्म है।

बुद्धिमत्ता और सशक्तता के स्रोत

भारत तथा संसार की संस्कृति के वर्तमान संकट-काल में यह सर्वत्र परम महत्त्वपूर्ण है। भारत की स्वाधीनता को प्राप्त हो जाती से सुरक्षित रखने की आवश्यकता

पश्चिम में सेतुबन्ध तक, फैले हैं। भारत के प्राचीन देवताओं—विष्णु, शिव और माँ देवी—के भक्तिक प्रसिद्ध मन्दिर सम्पूर्ण देश में तथा सगमय प्रत्येक बड़े गाँव में बिखरे पड़े हैं। भारतीय साहित्य जर्म दर्शन कथा संस्कारों तथा सार्वभौम भगवद् स्मृतिमर्म—त्रिगुणी व्याख्या विस्वविद्यालयों पांडित्यवादी सम्प्रदायों तथा कानूनी धर्मात्मकों (धर्मोद्दी धर्मात्मकों द्वारा भी) द्वारा की गई है—मे आधार-व्यवहार, चरित्र और कानून की केवल एक संहिता केवल एक वर्णाश्रम प्रणाली और केवल एक पांडित्य-परम्परा को कायम रखा है। मुसलमानों और धर्मियों का आधिपत्य भी भारतीय संस्कृति की आधारभूत एकता को हिला नहीं सका।

भारत के निवासियों को एकमुख में बाँधे रखने का काम सर्वसम्मत देव और सर्वसम्मत समाज की वैदिक चारणा के समान एक सार्वभौम प्रणाली अक्षरों के अर्थात् एकाधिराज्य की राजनीतिक चारणा ने भी किया है। इस राजनीतिक चारणा का उद्भव भी वैदिककाल में ही हुआ था। आर्यावर्त के अक्षरों की चारणा का पुनरुत्थान मौर्य और गुप्तवंश के सम्राटों तथा बाद के युगों में आर्यावर्त पर एकाधिराज्य स्थापित करने के आकांक्षी सभी राजाओं—जैसे यशोधर्मन, मौर्यियों पुष्पभूति और पाण्डुवंशों के राजाओं (जिनमें से अनेक ने 'विक्रमादित्य' की उपाधि ग्रहण की) प्रतिहार सम्राटों तथा प्यारही और चारही राजाधियों के लक्षित रज्जुस अक्षरों और साहसकों (जिन्होंने साहसपूर्वक मुसलमान आक्रमणकारियों का सामना किया)—सभी ने किया। अक्षरों के सम्राट की चारणा (जैसे ब्राह्मणों में मांसाहार और भय तथा बीड़ों में बस्त्र भेष और महासुखस्नान) राजनीतिक मात्र नहीं है बल्कि सांस्कृतिक भी है। अक्षरों के सम्राट ही जयस-युवक और विशुद्धता के बीच सर्वसम्मत की स्थापना तथा वर्णशास्त्र की मूलभूत संहिता को मानू करता है। भारत का राजनीतिक दृष्टिकोण अनिवार्यतः आध्यात्मिक है। भारत का आदर्श धर्मशास्त्रों द्वारा एक साम्राज्य की स्थापना करना नहीं बल्कि समृद्धि व अनुशासन द्वारा एक सांस्कृतिक राज्य का निर्माण करना है। 'बामुपराज में अक्षरों की चारणा को इस प्रकार परिभाषित किया गया है 'विष्णु के धर्म के रूप में अक्षरों प्रत्येक युग में पैदा होते हैं वे बीते युगों में रहे हैं और आगामी युगों में भी आएँगे' भूत वर्तमान और भविष्य तीनों युगों में यही एक कि ज्ञातयुग में भी अनेक अक्षरों हुए हैं और होंगे।

इन साधकों की विधिष्टताएँ होंगी—समिध वम लीक्य और सम्पत्ति। ये धर्मा विध धान्तिपूर्ण वातावरण में सम्पत्ति विपुलता वम महत्वाकांक्षा प्रसिद्धि और विजय का भोग करेंगे। फलप्राप्ति में ये ज्ञापियों से भी आगे बढ़ जाएँगे इनके स्वामित्व की पाक होगी तथा ये समृद्धि एवं अनुशासन की स्थापना करेंगे। और अपनी समिध तथा धार्मिकयम में ये देवताओं जानकों और मानकों से कड़ी घागे रहेंगे।"

समन्वय की भारतीय प्रवृत्ति

हमारे देव की चरती पर अधिकार करने के आकांक्षी विरोधियों के साथ संघर्षों के दौरान भी भारतीय संस्कृति की निमिष्टता कायम रही इसकी परिपक्व, व्यवहार्य

और समन्वय की प्रवृत्ति बहिष्म्य और संघर्ष की चुनौती को स्वीकार कर रही। भारतीय इतिहास के महान् रचनात्मक युग तथा निरन्तर नतिशील महत्त्वपूर्ण धार्मिक, कलात्मक एवं शार्पनिक धाम्बोलन इस समय के प्रमाण हैं कि राजनीतिक और जातीय संघर्षों और विरोधों के बीच भी जबकि कोई धर्म्य संस्कृति बिचीन हो जाती भारत ने सर्वत्र धर्म ब्रह्म और देश के ही प्रयास किए हैं। यह विशिष्ट संस्कृति परिवर्तित परम्परा और जातीयता की सम्मिश्रित शक्तियों का प्रतिफलन है। इसकी निरन्तरता सगमग पाँच हजार साल से कायम है—विश्व के इतिहास में अद्वितीय उपलब्धि। भारत की आचार मूल धार्मिक जीवन की तथा विश्वास की एकता और अखंडता की धारणाएँ सदा सम्प्रदायों और वर्गों की सार्वभौमिकता के धार्मिक सिद्धान्त सार्वभौम धर्म की समर्थक साधनीय सत्ता की राजनीतिक धारणा तथा सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानने की नैतिक धारणा—ये सब इसी संस्कृति की प्रमुख अभिव्यक्तियाँ हैं। महान् भारतीय पंक्ति धर्म का कथन है 'मेरी भाषा देवी पाषाण है मेरे पिता शिव हैं बिनकी शक्ति को कोई सहन नहीं कर सकता पाषाण और शिव के मर्तों को मैं अपना सगा सख्ती मानता हूँ तथा तीनों लोक मेरे अपने देश हैं (स्वदेश भुवनव्ययम्)।

भारत में एक विशिष्ट प्रकार के मनुष्यत्व का विकास हुआ है जो अहिंसा और जातीय नहीं बरन् सरस और सार्वभौम है। इस मनुष्यत्व के निर्माण में भारत की मानव भाव और कला की प्रवृत्ति के अतिरिक्त 'वृक्ष' और 'गर्भ' के भारतीय मूलधारों का भड़ा हाव है। वृक्ष के मूलधार हैं—विष्णु, शिव बुद्ध बोधिसत्व और कृष्ण तथा गर्भ के मूलधार हैं—पाषाण, लकड़ी और सरस्वती। ये धारण भारतीय कला की विभिन्न मूर्तियों और चित्रों में अंकित हैं। भारतीय—हिन्दू, बौद्ध अथवा जैन—मूर्ति कला की आकृतियाँ भी धर्मों की अवतार की ओर अग्रसर करती हैं जो बार-बार इतिहास का निर्माण उसमें असीमाई भाषा का संसार, तथा धर्म की महत्ता का पुनःस्थापना करता है। ये सभी विचार और विश्वास वास्तव में विभिन्नताओं से भरे-पूरे देश में एकता और अखंडता की खोज के युग-युगीन प्रयास हैं।

यूनानी-रोमक प्रतिष्ठापनों का ईसाईधर्म का प्रसार अथवा अविस्मृत, शार्पमन और नेपोलियन के साम्राज्य भी यूरोप में बहू सहन अन्तर्हित एकता न स्थापित कर सके जो भारत की विशेषता है। यह सम्यता की एकता भाति और लोक राष्ट्रीयता अथवा राजनीतिक धार्मिकता की शक्तियों द्वारा स्थापित एकता से कहीं अधिक सक्षम है। मानव समुदाय के निस्सीम विस्तार और आराम की अतल सहाराओं की आप तथा दोनों के देश का समर्पण भारतीय संस्कृति में है देश में प्रचलित दर्शन की विभिन्न प्रणालियों तथा धार्मिक पुत्र के धर्मिक रूपों के पीछे यही एक विचारधारा है। यही भारतीय दर्शन की प्रमुख विषयवस्तु तथा भारत के सामूहिक अस्तित्व का धर्म है।

सुखसता और संघर्षता के स्रोत

भारत तथा संसार की संस्कृति के वर्तमान संकट-काल में यह सन्देह अल्पतः महत्त्वपूर्ण है। भारत की स्वाधीनता को प्राप्त हो बाहों से सुरक्षित रखने की आवश्यकता

है प्रथम प्रांतीयकाय भाषाकाय और जातिवाद तथा द्वितीय, सम्प्रदायीय कान्ति की सम्पन्नता द्वारा उत्पन्न नवीन बर्गीय भेद और संघर्ष, महाकाव्यों धर्मशास्त्रों और पुराणों में सन्निहित भारत के धार्मिक-सांस्कृतिक दाय को हम सभी समझ सकते हैं जब हम भारत की ऐतिहासिक मिश्रणता में विराजित अतिप्राचीन धर्म का समझ लेंगे। इसी धार्मिक-सांस्कृतिक दाय में साद्वत्त धर्म को मातृभूमि की उपासना के रूप में साकार किया तथा उसकी सम्यक् एवं पारिवर्णिक व्याख्याएं प्रस्तुत की गई ताकि पिछड़े और अल्पसाधनयुक्त लोगों और कबीला के स्वीकरण में आसानी हो। इसीके द्वारा सर्वभूत-दया की नैतिकता 'सर्व भूक्ति' के धार्मिक-सांस्कृतिक आदर्श और आर्त अथवा शरित्काराधन की पूजा को प्रेरणा मिली। 'महाभारत' में कृष्ण कहते हैं समझ लो कि धर्म मेरा पड़ोस धार्मिक-पत्र है जिसका स्वभाव है समस्त जीवों के प्रति करुणा। इसी रूप में मैं अतीत और वर्तमान के सभी लोगों में रहता हूँ अनेकानेक रूप धारण करता हूँ ताकि धर्म की रक्षा हो सके और सत्ता बनी रहे।

वे आस्थाएं ही राजनीतिक और नैतिक सक्ति के स्वरूप एवं प्रमुख स्रोत हैं। आधुनिक मानव तथा प्रत्येक मानव तथा सम्प्रदाय में ईश्वर का अस्तित्व (सब-सबधार) की प्राचीन भारतीय धार्मिक-सांस्कृतिक आस्थाएं ही नवीन परिस्थितियों में सामान्य मानव के वैभव और सम्मान का सुनिश्चित रख सकती हैं। सामाजिक न्याय और समानता तथा समाजवादी नमूने के समाज की स्थापना के आन्दोलनों को प्रेरित और दृढ़तर करती हैं।

वर्तमानकाल में भारतीय संविधान सर्वाधिक समतावादी राजनीतिक एवं नैतिक दाय-सक्ति है। संविधान के अनुसार, एक संवदन नहीं बरन् संघ की स्थापना की गई है जिसमें एक संविधानी केन्द्रीय सरकार तथा सुनियोजित प्रशासन है। इस प्रकार यह संविधान देश का विभक्त होने से रोकता है। संविधान में भारत के सामान्य मानव के कुछ मूल अधिकारों और सुविधाओं को भी सम्मिलित किया गया है—भारतीय राष्ट्रीयता की धार्मिक अन्तर्गतता का वह अतिरिक्त तत्त्व अंग्रेजी कानून और प्रशासनिक विधियों तथा अंग्रेजी-अमरीकी और इसी कान्ति में मिला है। यह राजनीतिक शक्ति ही नहीं बरन् समाज-आयोजन का भी एक नया अंग है जो उसकी अन्तर्गतता का निरन्तर विस्तार करेगा तथा धार्मिक और सामाजिक जनतन्त्र के क्षेत्र को व्यापक बनाएगा।

भारतीय सम्मता कान्ति भाषा और विभिन्न क्षेत्रीय आचार-व्यवहारों से परे है तथा इसकी एकता और समता के स्थापित और प्राबल्य पर ही भारत का आधुनिक इतिहास निर्भर है। विभिन्न राज्यों को मिलाकर बना हुआ जनतन्त्र भारत मात्र फिर पुनर्जन्म लेनेवाला है। केवल राष्ट्रीय नैतिकता भारतीय सम्मता की अनिवार्य एकता तथा अन्तर्गतता के दौरान महत्वपूर्ण भारतीय धार्मिक-पूर्व और सांस्कृतिक तत्त्व के प्रति दृढ़ आस्था के बस पर ही भारत के पाँच हजार वर्षों के इतिहास को परिपूर्णता प्राप्त हो सकती है। इस प्रमाण परमाणु-युग में सभी संस्कृतियों की परस्पर केवल इसी कड़ी-कड़ी पर होनी कि वे न्याय-साक्षि और विश्वव्यापी समाज की सुव्यवस्था की स्थापना में क्या योग देती हैं। इस कड़ी-कड़ी पर भारतीय सम्मता के मूल्य—अतीत की पीठिका पर समुचित इत से प्रस्तुत और निर्दिष्ट करने पर—विश्वव्यापी धार्मिक, विपुल अन्तर्देशीयता

बाद तथा मानव-जाति के उपयुक्त एक विश्व-सभ्यता की आभारसिमा प्रस्तुत कर सकते हैं। गांधीजी ने लिखा था

“मैं अपने हृदय की गहराइयों में अनुमान करता हूँ कि रक्तपात से दुनिया बच चुकी है। दुनिया बाहर निकसने का रास्ता खोज रही है और मुझे विश्वास है कि इस भूखी दुनिया को बाहर निकसने का रास्ता शायद हमारा पुरातन देव ही बता सके।”



सहायक ग्रन्थ

१ सामान्य इतिहास

- १ कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इंडिया (कैम्ब्रिज भारत का इतिहास) खण्ड १-६
- २ हिस्टरी ऐण्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल (भारतवासियों का इतिहास और उनकी संस्कृति), खण्ड १-५ भारतीय विद्या मंडल प्रकाशन
- ३ रामजीमुनी पोलिटिकल हिस्टरी ऑफ ऐन्ग्लो इंडिया (प्राचीन भारत का राज नीतिक इतिहास)
- ४ टी० डब्ल्यू० राइस इविह्ल बुद्धिस्ट इंडिया (बौद्ध भारत)
- ५ डब्ल्यू० डब्ल्यू० टार्न इ प्रीमर इन बीक्ट्रिया ऐंड इंडिया (बीक्ट्रिया और भारत में यूनानी)
- ६ रामाकुमुद मुखर्जी बम्बेयुल मीम ऐंड हिज डाइम्स (बम्बेयुल मीम और उनका काम)
- ७ रामाकुमुद मुखर्जी मलोक
- ८ रामाकुमुद मुखर्जी हर्ष
- ९ रामाकुमुद मुखर्जी मुत्त एम्पायर (गुप्त-साम्राज्य)
- १० ए० एस० बल्लेकर स्टेट ऐंड गवर्नमेंट इन ऐन्ग्लो इंडिया (प्राचीन भारत में राज्य और सरकार)
- ११ काशीप्रसाद जायसवाल हिन्दू पॉलिटि (हिन्दू शासनतन्त्र)
- १२ बैनीप्रसाद इ स्टेट इन ऐन्ग्लो इंडिया (प्राचीन भारत में राज्य)
- १३ बैनीप्रसाद ए ब्योरी ऑफ गवर्नमेंट इन ऐन्ग्लो इंडिया (प्राचीन भारत में सरकार)
- १४ रामाकुमुद मुखर्जी लोकल गवर्नमेंट इन ऐन्ग्लो इंडिया (प्राचीन भारत में स्थानीय प्रशासन)
- १५ धार० व्यास शास्त्री कौटिल्याक जर्नल (कौटिलीय अर्थशास्त्र)
- १६ एच० बी० रॉलिंग्सन इंडिया ए शॉर्ट कल्चरल हिस्टरी (भारत का संक्षिप्त सांस्कृतिक इतिहास)
- १७ के० धार० कानूनगो दोरसाह
- १८ के० धार० कानूनगो धारा धिकोह
- १९ एच० बैनपुल मेडीकल इंडिया (मध्यकालीन भारत)

- २० मोरसीन्ड इंडिया ऐट द डेथ ऑफ अकबर (अकबर की मृत्यु के समय भारत)
- २१ मोरसीन्ड फॉम अकबर टु श्रीरंगजेव (अकबर से श्रीरंगजेव तक)
- २२ एन० के० सिन्हा राज्ज ऑफ द सिक्ख पॉवर (सिखों की शक्ति का उदय)
- २३ एन० के० सिन्हा राज्ज ऑफ द पेसबाज (पेसबाजों का उदय)
- २४ मदनमोहन मालवीय फॉल ऑफ द मुगल एम्पायर (मुगल-साम्राज्य का पतन)
- २५ आर्चर कनिंघम हिस्टरी ऑफ द सिक्ख (सिखों का इतिहास)
- २६ एन० एस० वे ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐंग्लैंड इंडिया (प्राचीन भारत का भौगोलिक संक्षेप)
- २७ एन० एस० वे ऐंग्लैंड ज्योग्रेफिक ऑफ इंडिया (भारत का प्राचीन भूगोल)
- २८ वेरिण्डस ऑफ द एरीथ्रियन सी (एरीथ्रियन सागर का वेरिण्डस)

२ प्राग् इतिहास

- १ एस० पिगट प्रिहिस्टोरिक इंडिया (प्रागैतिहासिक भारत)
- २ ई० मैके प्रर्मी इंडस सिविलिजेशन (प्रागैतिहासिक सिंधु-सभ्यता)
- ३ जे० मार्शल मोहनजोदड़ो ऐन्ड द इंडस सिविलिजेशन (मोहनजोदड़ो तथा सिंधु-सभ्यता) १ खण्ड
- ४ एम० एस० बरत एक्सप्लोरेशन्स ऐट हड़प्पा (हड़प्पा में खोजन)
- ५ आर० ई० एम० श्वीजर द इंडस सिविलिजेशन (सिंधु-सभ्यता)
- ६ आर० ई० एम० श्वीजर क्राइज वाउचर ऐन्ड ऑफ पाकिस्तान (पाकिस्तान के पांच हजार वर्ष)
- ७ ई० मैके बान्धु-बारी (बान्धु बड़ी)
- ८ ई० मैके कर्बेर एक्सप्लोरेशन्स ऐट मोहनजोदड़ो (मोहनजोदड़ो में प्रतिष्ठित उत्खनन)

३ साहाय्यधर्म

- १ ए० बी० ग्रीस द रेसिजन ऐंड फिनाइली ऑफ द वेदाज ऐंड द उपनिषद् (वेदों और उपनिषदों के धर्म और दर्शन)
- २ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् द उपनिषद् (उपनिषद्)
- ३ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् द हिन्दू धर्म ऑफ साइक (हिन्दू जीवनदर्श)
- ४ एस० डी० कार्नेट द हाई ऑफ हिन्दुधर्म (हिन्दुधर्म का सत्य)
- ५ मैक्समूलर (सम्पादित) द संस्कृत धर्म ऑफ द ईस्ट (पूर्व के पवित्र ग्रन्थ), खण्ड २ १४ और २५
- ६ सर चार्ल्स एलियट हिन्दुधर्म ऐंड बुद्धिधर्म (हिन्दुधर्म और बौद्धधर्म), १ खण्ड
- ७ आर० बी० मंडारकर वैष्णवधर्म वैष्णव गैंगमाइनर रेसिजन विस्टम्स (वैष्णव-धर्म की धर्म तथा भौगोलिक सम्प्रदाय)
- ८ जे० एन० बीनर्डी डेवतपर्मेट ऑफ हिन्दू इक्विनाइटी (हिन्दू भूतकलाशास्त्र का विकास)

- ६ टी० ए० जी० राब एसीमेंट्स प्रॉफ़ इंडियन इकोनॉमिस्ट्री (भारतीय मूर्तिकला शास्त्र के मूलतत्त्व)
- १० एस० डी० बार्नेट ऐंटीक्विटीज़ प्रॉफ़ इंडिया (भारत के पुरावशेष)
- ११ पी० एस० भार्पे इंडिया इन द वैदिक एज (वेदकासीन भारत)
- १२ ए० सी० दाम ऋग्वेदिक इंडिया (ऋग्वेदकासीन भारत)
- १३ ए० सी० बोस द कॉल प्रॉफ़ द बराह (बेवों की पुकार)
- १४ ए० ए० मैकडनिस वैदिक माइसोर्सोमी (वैदिक पुराणविद्या)
- १५ ई० डम्पू० होंपकिंस एविक माइसोर्सोमी (महाकाव्यों की पुराणविद्या)
- १६ रामाकुमार मुखर्जी हिन्दू सिविलिजेशन (हिन्दू सम्प्रदाय)

४ बौद्धधर्म

- १ टी० डम्पू राइस डेविड्स बुद्धिज्म इट्स हिस्टरी ऐण्ड लिटरेचर (बौद्धधर्म उसका इतिहास और साहित्य)
- २ ई० बे० टॉमस हिस्टरी प्रॉफ़ बुद्धिज्म (बौद्धधर्म का इतिहास)
- ३ ए० एस० बुद्धिज्म सम सेविंग्स प्रॉफ़ द बुद्ध (बुद्ध के कुछ विचार)
- ४ बी० एम० बहमा सीसोन सेवर्स (श्रीलंका के माधव)
- ५ ए० क० कुमारस्वामी बुद्ध ऐण्ड द बॉलेस प्रॉफ़ बुद्धिज्म (बुद्ध तथा बौद्धधर्म)
- ६ कन मैग्नुस प्रॉफ़ इंडियन बुद्धिज्म (भारतीय बौद्धधर्म का घुटका)
- ७ के तकाकुमु द इन्टेन्सिविज्म प्रॉफ़ बुद्धिज्म क्रिस्तासडी (बौद्धधर्म के मूलतत्त्व)
- ८ कास्य द धर्मिज्म क्रिस्तासडी (धर्मिज्मधर्म)
- ९ एस० बीस सी-यू-की—बुद्धिज्म देकास प्रॉफ़ द वेस्टर्न वर्ल्ड (सी-यू-की—पश्चिमी दुनिया के बौद्ध विकास)
- १० टी० बार्नेट ऑन बुद्धिज्म ब्राह्मण द्रैवेस इन इंडिया (भारत में बुद्धिज्म ब्राह्मण की यात्राएं)
- ११ एलिवट हिन्दुइज्म ऐण्ड बुद्धिज्म (हिन्दुधर्म और बौद्धधर्म) ३ भाग
- १२ ए० बी० कीथ बुद्धिज्म क्रिस्तासडी इन इंडिया ऐण्ड सीसोन (भारत और श्रीलंका में बौद्धधर्म)
- १३ बी सी० सॉ कन्सेप्ट्स प्रॉफ़ बुद्धिज्म (बौद्धधर्म की धारणाएं)
- १४ बी० सी० सॉ (सम्प्रदाय) बुद्धिज्म स्टडीज (बौद्ध धर्मधर्म)
- १५ सी० ए० ए० राइस डेविड्स बुद्धिज्म (बौद्धधर्म)
- १६ सी० ए० ए० राइस डेविड्स ए मैग्नुस प्रॉफ़ बुद्धिज्म साइकोलॉजी (बौद्ध मनोविज्ञान का घुटका)
- १७ एन० दस धर्मी मोलस्टिक बुद्धिज्म (प्रारम्भिक वैदिकी बौद्धधर्म)
- १८ धार० किमुच हिस्टरी प्रॉफ़ धर्मी बुद्धिज्म स्कूल्स (प्रारम्भिक बौद्ध सम्प्रदायों का इतिहास)
- १९ डम्पू० डम्पू० रॉडहिल साइड प्रॉफ़ द बुद्ध (बुद्ध का जीवनचरित)

२० जे० बी० जेनिंग्स द बौद्धान्तिक बुद्धिरस धाँक व बुद्ध (बुद्ध का वैद्वान्तीय बौद्धधर्म)

५ महायान बौद्धधर्म

- १ ई० बी० कबिल बुद्धिस्ट महायान सुनाउ सेकेडबुक्स धाँक व ईस्ट (बौद्ध महायान-सूत्र पूर्व के पवित्र ग्रन्थ) खंड १०
- २ एच० कर्न सद्धर्मपुंडरीक सेकेड बुक्स धाँक = ईस्ट (सद्धर्म-पुंडरीक पूर्व के पवित्र ग्रन्थ) खंड २१
- ३ डी० टी० सुबुकी धाउटसाइन्स धाँक व महायान बुद्धिरस (महायान बौद्धधर्म की इपरैला)
- ४ डी० टी० सुबुकी व संकावतारसूत्र (संकावतारसूत्र)
- ५ विवेदिध तैन सुबुकी महायान बुद्धिरस (महायान बौद्धधर्म)
- ६ यूसेट इन द फुटस्टेप्स धाँक व बुद्ध (बुद्ध के चरणचिह्नों पर)
- ७ मॉर्मन (सम्पादित) व पाथ धाँक व बुद्ध (बुद्धमार्ग)
- ८ मट्टाचार्य द इंडियन बुद्धिस्ट इकाँनोग्राफी (भारतीय बौद्ध धार्मिकसाधनात्म)
- ९ डम्प्यू० स्टीफेन्स बीजेम्स धाँक इंडियन बुद्धिरस (भारतीय बौद्धधर्म की कपाएँ)
- १० पी० बी० बापट (सम्पादित) ३,६०० इपर्स धाँक बुद्धिरस (बौद्धधर्म के २१०० वर्ष)
- ११ एन० बल ऐल्फेबर्ट्स धाँक महायान बुद्धिरस (महायान बौद्धधर्म के बल)
- १२ एस सी० बास इंडियन पंजिन इन द लैंड धाँक व स्को (हिम-वेष्ट में भारतीय बंदिश)
- १३ जे० लफाब्रुमु ईस्तिर ए रिफोर्ड धाँक व बुद्धिस्ट रिचिजन ऐन्ड पैविटर्स इन इंडिया देण्ड द मलय धार्मीयनाको (ईस्तिर भारत और मलय द्वीपसमूह में प्रचलित बौद्धधर्म का बिबरण)
- १४ ए० पैडी व मॉइस धाँक गार्बन बुद्धिरस (उत्तरी बौद्धधर्म के ईवता)
- १५ बिटरनिट्ज हिस्टरी धाँक इंडियन सिटरेचर (भारतीय साहित्य का इतिहास) भाग २

६ तांत्रिकधर्म

- १ ऐबलॉन द ग्रेट मित्रेक्षण (महामित्रावर्तन)
- २ ऐबलॉन धार्मीक धाँक कैटर्स (महासाधना में वर्णमाभा धध्ययन)
- ३ ऐबलॉन द बर्क ऐन्ड बॉवर (धर्म के रूप में संसार)
- ४ ऐबलॉन बिबिपस धाँक तान (तान के बिद्वान्त) २ भाग
- ५ एस० बी० बाधगुप्त ऐन्ड इंडोइनसियन टु तांत्रिक बुद्धिरस (तांत्रिक बौद्धधर्म की बुमिका)
- ६ एस० बाग धर्मि
- ७ अपेपर

५ (युगानठ तांत्रिक जीवनादर्श)

८. पी० पी० बायपी स्टडीज इन द टम्पास (तर्कों का अध्ययन)
९. देन द टम्पास प्रॉक्सिमिटी (बंगाल के शासन)
१०. एम० एम० एम० (सम्पादित) धर्मिक तर्क-सार
११. एम० पी० वासुदेव प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार कस्टस (सम्पादित धार्मिक सम्प्रदाय)

७. भक्ति-ग्रन्थोत्तर

१. के० ई० कार्लोस बीइरम इन मेडीकल इंडिया (मध्ययुगीन भारत में ईस्वरवाद)
२. बी० कुमारप्पा द हिन्दू कन्सेप्शन प्रॉक्सिमिटी ऐंड कस्मिनेटिक्स इन रामानुज (रामानुज में सत्त्वप्रधान इष्टदेव की हिन्दू धारणा)
३. निरुक्त मेकनिकल इंडियन बीइरम (भारतीय ईस्वरवाद)
४. प्रॉक्सिमिटी इंडिया रिजिस्ट्रार प्रॉक्सिमिटी (भारत का भक्तिधर्म)
५. रामानुज मुक्तजी द थ्योरी ऐंड प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार (रहस्यवाद सिद्धान्त धीरे कला)
६. एम० पी० मंडारकर बीइरम रिजिस्ट्रार प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार रिजिस्ट्रार रिजिस्ट्रार (बीइरमधर्म, बीइरमधर्म तथा धर्म धार्मिक सम्प्रदाय)
७. पी० एम० भक्ति रिजिस्ट्रार प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार (बीइरमधर्म का दर्शन)
८. प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार (भारत के धार्मिक साहित्य की कल्पना)
९. प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार (दक्षिणभारत में प्रारम्भिक बीइरमधर्म का इतिहास)
१०. एम० के० दे प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार (बंगाल में प्रारम्भिक बीइरमधर्म तथा धर्मोत्तर का इतिहास)
११. एम० बीइरम रिजिस्ट्रार प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार (बीइरमधर्म के प्रारम्भिक इतिहास के अध्ययनार्थ सामग्री)
१२. पी० के० गोस्वामी भक्तिग्रन्थ इन प्रॉक्सिमिटी इंडिया (प्राचीन भारत में भक्ति-सम्प्रदाय)
१३. बिबेकानन्द भक्तियोग
१४. रवीन्द्रनाथ ठाकुर द हिन्दू प्रॉक्सिमिटी प्रॉक्सिमिटी (कबीर के छी पद)
१५. एम० एम० प्रॉक्सिमिटी प्रॉक्सिमिटी प्रॉक्सिमिटी (बंगाल का भक्तिधर्म)
१६. प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार (हिन्दू साहित्य में प्रॉक्सिमिटी)
१७. के० एम० देन मेडीकल रिजिस्ट्रार इन इंडिया (भारत में मध्ययुगीन रहस्यवाद)
१८. एम० रिजिस्ट्रार इन महाराष्ट्र (महाराष्ट्र में रहस्यवाद)
१९. के० एम० एम० प्रॉक्सिमिटी रिजिस्ट्रार (धार्मिक तर्कों के भजन)

२० राधाकृष्ण मुञ्जर्मी द माई प्रॉक व प्रॉटम मून्स (हेमन्ती चन्द्रमार्मों का स्वामी)

८ भारतीय संस्कृति का प्रसार

- १ भार० सी० मञ्जुमदार ऐन्सेष्ट इंडियन कॉलोनीज इन द प्रवर ईस्ट (मुद्रपूर्व में प्राचीन भारतीय उपनिवेश) २ भाग
- २ एच० जी० म्यू० वेल्स द मैकिंग प्रॉक ग्रेटर इंडिया (बृहत्तर भारत का निर्माण)
- ३ प्रो० जी० मे व क्लरर प्रॉक साउथ ईस्ट एशिया (दक्षिण-पूर्वी एशिया की संस्कृति)
- ४ बी० प्रार चटर्जी इंडियन कल्चरल इन्फ्लुएंस इन कम्बोडिया (कम्बोडिया में भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव)
- ५ बी० सी० कोएशीज से एतात इंडुइसि 'इंडोचीन एत ड' इवोनेरी
- ६ राधाकृष्ण मुञ्जर्मी हिस्टरी प्रॉक इंडियन थिपिंग (भारतीय नीपरिवहन का इतिहास)
- ७ ए० के० कुमारस्वामी हिस्टरी प्रॉक इंडियन ऐन्ड इंडोनेशियन घाट (भारतीय और इंडोनेशियाई कला का इतिहास)
- ८ एन प्रार रे बाह्यनिकस गाँइस इन बया (बर्मा में बाह्यन बयता)
- ९ जे० क० बॉगिस बुडिस्ट घाट इन इंडिया चीनीन ऐन्ड बाबा (भारत चीनका और बाबा में बौद्धकला)
- १० सेस्टेमा मॉन्टमेटम बाबा (महाग बाबा)
- ११ एन० जे० कॉम व लाइक प्रॉक बुड प्रॉन व स्तूप प्रॉक बोरोमुदुर (बोरोमुदुर के स्तूप पर बुड का जीवनचरित)
- १२ डम्पू० एच० प्रॉक पेरिप्लस प्रॉक द एरीप्रिबन सी (एरीप्रिबन सामर का पेरिप्लस)
- १३ ई० एच० बार्मिगटन बॉमस बिन्चीन रोमन एम्प्रायर ऐन्ड इंडिया (रोमक साम्राज्य तथा भारत के बीच व्यापार)
- १४ एच० जी० रॉसिग्नन इन्टरकोर्स बिटवीन इंडिया ऐन्ड द वेस्टर्न वर्ल्ड (भारत और पश्चिमी संसार का सम्बन्ध)
- १५ बी० ई० बेरिनी रिचर्च प्रॉन टॉमिनीज एयोप्रीडी (टासेमी कृत भूपोस पर बोरो)
- १६ एम० एम० मञ्जुमदार घाल्मी ऐन्सेष्ट इंडिया ऐन्ड हिस्त्राइड बाई टासेमी (टासेमी के अनुसार प्राचीन भारत)
- १७ एच० डिमर व घाट प्रॉक इंडियन एशिया (भारतीय एशिया की कला)
- १८ पी० सी० बामबी इंडिया ऐन्ड बाह्या (भारत और चीन)
- १९ फू मून्तान द स्पिरिट प्रॉक बाह्मीज क्रिनासक्री (चीनी वर्सन की प्रान्ता)
- २० पी० सी० बागबी न कानोन बूथीफ एन चीने
- २१ लुई जी ए घॉर्ट हिस्टरी प्रॉक बाह्मीज सिबिसिबैसन (चीनी सम्प्रदा का संक्षिप्त इतिहास)
- २२ एड० डम्पू० टॉमस इंडियनियम ऐन्ड इदस एक्सपेशन (भारतीयता और उसका प्रसार)

- २३ धार० सी० मजूमदार ऐन्क्लेष्ट इण्डियन कोलोनाइजेशन इन साउथ ईस्ट एशिया
(दक्षिण-पूर्वी एशिया में प्राचीन भारतीय उपनिवेशीकरण)
२४ ए० जे० बी० केम्स बल्बर्न रिसेन्सन्स मिशन इण्डिया ऐन्ड जावा (भारत
और जावा के सांस्कृतिक सम्बन्ध)
२५ बी० सी० मैडिस व धर्मी हिस्टरी ऑफ चीनोन (चीनका का धार्मिक-इतिहास)
२६ एच० डब्ल्यू० कॉडिन्टन ए गार्ड हिस्टरी ऑफ चीनोन (चीनका का संक्षिप्त
इतिहास)
२७ बी० ए० स्मिथ ए हिस्टरी ऑफ आइन घाट इन इण्डिया ऐन्ड चीनोन (भारत
और चीनका की समित कला का इतिहास)
२८ एन० धार० र वेरबाव बुडिरम इन बर्मा (बर्मा में वेरबाव बौद्धधर्म)
२९ बी सी० लॉ सामन बंध (पवित्र बौद्ध-ग्रन्थमाला)
३० एम० एच० बोडे पासी मिन्द्रेचर इन बर्मा (बर्मा में पासी साहित्य) धार० ए०
एम०
३१ बी० पी० मल्लेकर पासी मिन्द्रेचर इन चीनोन (चीनका में पासी-साहित्य)
धार० ए० एम०

६ कला का इतिहास

- १ ए० के० कुमारस्वामी हिस्टरी ऑफ इण्डियन ऐन्ड इण्डोनीशियन आर्ट (भारतीय
और इण्डोनीशियाई कला का इतिहास)
२ ए० के० कुमारस्वामी व निरर ऑफ वेल्चर (अभिनयवर्णन)
३ ए० के० कुमारस्वामी व डाम्न ऑफ चित्र (चित्र का वर्णन)
४ ए० के० कुमारस्वामी व यलाक (यक्ष) २ भाग
५ बी० ए० स्मिथ हिस्टरी ऑफ आइन घाट इन इण्डिया ऐन्ड चीनोन (भारत और
चीनका की समित कला का इतिहास)
६ एच० जिमर मिच्छऐण्ड मिन्बल्स इन इण्डियन आर्ट ऐन्ड निबिलिजेशन (भारत व
कला और सम्प्रदाय में वस्तुता और प्रतीक)
७ ई० पी० ह्वेस प्राइविलेज ऑफ इण्डियन आर्ट (भारतीय कला के प्रादुर्भाव)
८ ई० बी० ह्वेस इण्डियन स्कल्पचर ऐन्ड पेंटिंग (भारतीय मूर्तिकला एवं चित्र
कला)
९ पर्सी ब्राउन इण्डियन आर्किटेक्चर (भारतीय वास्तुकला) २ भाग
१० एस बाफोऊर धर्मी इण्डियन स्कल्पचर (आदिभारतीय मूर्तिकला) २ भाग
११ स्टेसा कामरीय इण्डियन स्कल्पचर (भारतीय मूर्तिकला)
१२ स्टेसा कामरीय व हिन्दू टम्पिल (हिन्दू मन्दिर)
१३ बी रोसैण्ड व घाट ऐन्ड पार्किण्ग ऑफ इण्डिया (भारत की कला और वास्तु)
१४ प्रो० पी पांगुली साउथ इण्डियन ब्राइड (दक्षिणभारतीय वास्तु प्रतिमाएं)
१५ प्रो० प्री० पांगुली राजपूत पेंटिंग (राजपूत चित्रकला)

- १६ एम० सी० मांगुमी रागाज ऐण्ड रागिनीज (राग और रागिनी)
- १७ एम० सी० मेहता स्टडीज इन इण्डियन पेंटिंग (भारतीय चित्रकला के परिशीलन)
- १८ मुस्कराज धानस्य हिन्दू ब्यू ऑफ़ आर्ट (हिन्दू कलावर्ष)
- १९ बर्नेस केब टैम्पेस्स ऑफ़ इण्डिया (भारत के गुफा मन्दिर)
- २० प्रम्युसन केब टैम्पेस्स ऑफ़ इण्डिया (भारत के गुफा मन्दिर)
- २१ कामरीश ए सर्वे ऑफ़ पेंटिंग इन द डेकन (दक्षिण की चित्रकला का सर्वेक्षण)
- २२ जी० यदुबानी तथा अन्य समस्ता ३ भाग
- २३ घनेसाही बुडिस्ट आर्ट (बौद्धकला)
- २४ एच० बिमर द आर्ट ऑफ़ इण्डियन एरिया (भारतीय एरिया की कला)
- २५ प्रोफ़ेसर् सिबिलियेसन्स ऑफ़ द ईस्ट (पूर्व की सम्प्रदाय), २ भाग
- २६ के० व बी० कॉन्स्टेन ऐन्थेष्ट इण्डिया (प्राचीन भारत)
- २७ बी० एम० बरभा भारत ३ भाग
- २८ फूडर और मार्शल द मॉड्युलैण्ड ऑफ़ सांथी (सांथी के स्मारक) ३ भाग
- २९ स्त्रीयौवस्की तथा अन्य द इन्फ़ुएन्स ऑफ़ इण्डियन आर्ट (भारतीय कला का प्रभाव)

१० साहित्य और दर्शन

- १ एम० मिटरनिट्ज हिस्टरी ऑफ़ इण्डियन लिटरेचर (भारतीय साहित्य का इतिहास)
- २ ए० बी० कीच हिस्टरी ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर (संस्कृत साहित्य का इतिहास)
- ३ ए० बी० कीच संस्कृत भाषा (संस्कृत नाटक)
- ४ ए० बी० कीच क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (प्राचीन संस्कृत साहित्य)
- ५ ए० ए० मैकडनिल हिस्टरी ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर (संस्कृत साहित्य का इतिहास)
- ६ एस० एम० दासगुप्त और एस० के० डे हिस्टरी ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर (संस्कृत साहित्य का इतिहास)
- ७ एस० एन० दासगुप्त हिस्टरी ऑफ़ इण्डियन क्रिमासक्री (भारतीय दर्शन का इतिहास) ४ भाग
- ८ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् इण्डियन क्रिमासक्री (भारतीय दर्शन) २ भाग
- ९ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (सम्पादित) हिस्टरी ऑफ़ क्रिमासक्री ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न (पूर्वी और पश्चिमी दर्शन का इतिहास) भाग १
- १० राधाकृष्णन् मुखर्जी मेन एण्ड वांट इन ऐन्थेष्ट इण्डिया (प्राचीन भारत में मानव और वस्तु)
- ११ बी० सी लॉ हिस्टरी ऑफ़ पासी लिटरेचर (पासी-साहित्य का इतिहास)
- १२ मूर (सम्पादित) एसज इन ईस्ट-वेस्ट क्रिमासक्री (पूर्व और पश्चिम के दर्शन पर निबन्ध)
- १३ रेने गेनन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ़ द हिन्दू डॉक्ट्रीन्स (हिन्दू सिद्धान्तों के

ग्रन्थमय की सूचिका)

- १४ एच० मट्टाचार्य (सम्पादित) ब्रह्मचरम हेरिटेज ऑफ़ इंडिया (भारत का सांस्कृतिक धर्म), भाग ३ (दूसरा संस्करण)
- १५ एच० एच० बिस्मन विक्टर ऑफ़ इन्डियन (हिन्दू नाटक)
- १६ बी० बी० बल गौर ए० एन० सिंह हिस्टरी ऑफ़ हिन्दू मैथिलीय (हिन्दू मन्त्र का इतिहास)
- १७ बी० एम० सीन पॉजिटिव साइसेज ऑफ़ इण्डियन हिन्दू (प्राचीन हिन्दू विज्ञान)
- १८ विनयकृष्ण सरकार हिन्दू एथीकल सिस्टम इन एनडिग्न साइंस (विज्ञान की हिन्दू उपलब्धियाँ)
- १९ डी० सी० सेन बैप्यक सिटरेचर ऑफ़ मेडीशन बंगाल (सम्प्रदायीय बंगाल का वैद्यक-साहित्य)
- २० पी० के० घाभाय ग्लोरीज ऑफ़ इंडिया (भारत के गौरव)
- २१ डी० सी० सेन हिस्टरी ऑफ़ बंगाली सिटरेचर ऐण्ड मैथुएज (बंगाली साहित्य तथा धर्म का इतिहास)
- २२ बी० प्रियदर्शन मोहन बनारसधर सिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान (भारत की प्राचिनिक क्षेत्रीय भाषाओं का साहित्य)
- २३ झाकुंडर भाउटसाइन ऑफ़ इतिहास सिटरेचर ऑफ़ इंडिया (भारत के धार्मिक साहित्य की रूपरेखा)
- २४ मैकमिडल विम गिबोयन इट्स गुड सेन्स राइटिंग ऐंड प्रॉबर्स (सिद्धमय मुक्त पवित्र ग्रंथ तथा रचयिता)
- २५ एस० के० डे हिस्टरी ऑफ़ बंगाली सिटरेचर इन इन्डिटीन्स सेचुरी (उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाली साहित्य का इतिहास)

११ सन्म और मुगल काल

- १ के० एम० मधुरक झाइक ऐंड इन्डिटीन्स ऑफ़ इन्डिटीन्स ऑफ़ हिन्दुस्तान (हिन्दुस्तान के लोगों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ), १२००-१२२० ईस्वी
- २ ई० सी० सचामो (धनुबाइ) अल-बैरुनी इंडिया (अल-बैरुनी का भारत)
- ३ एच० डी० रैबर्टी (धनुबाइ) तबक़ात-ए-असीरी
- ४ धनुष क़दम भाइना-ए-अकबरी (धनुबाइ)
- ५ धनुष क़दम अकबरनामा (धनुबाइ)
- ६ अफ़्रीका मृतकाल-उम-मुवाब
- ७ टेबलियर ट्रेवेल्स इन इंडिया (भारत भ्रमण)
- ८ बनियर ट्रेवेल्स इन द मुगल एम्पायर (मुगल साम्राज्य में यात्राएँ)
- ९ ब साएत इन्फ़ेरेमो यानी ओओमी सिने इंडिया बैरा कोमेन्टारियस एस बारी ओफ़ोरीयस कोमेन्टस (कैलकटा रिप्यू अफ़्फ़र १८७०, जनवरी १८७१ जुलाई १८७१, और इंडियन ऐंक्वायरी नवम्बर १८१४)

१०. सर प्रार० टम्पस (सम्पादित) ट्रेवेलर्स ऑफ़ पीटर मंडी इन यूरोप ऐंड एशिया (यूरोप और एशिया में पीटर मंडी की यात्राएँ) १९०४-१९१७
११. मादूबी स्तोरिया बॉ मॉगोर (१९११ १७०५)
१२. चन्द्रमान चह्दार गुलशन
१३. गुलाम हुसेन सियार-उल-मुतलरीन
१४. पर्वास हिंद पितम्बर (उसकी यात्राएँ)
१५. गुलाम हुसेन सलीम रिवाज-उल-सनादीन
१६. सुकान राय कुमासात प्रत-सबारीक
१७. प्रार० सीबेस ए फौगटिन एम्पायर (एक विस्तृत साम्राज्य)
१८. राधाकुमार मुक्ती इकोनॉमिक हिस्टरी ऑफ़ इंडिया (भारत का आर्थिक इतिहास), १९००-१९००
१९. चाचनामा
२०. एच० बी० रीबर्ग (प्रमुबाह) नोटस ऑन मज्जगानिस्तान (मज्जगानिस्तान पर टिप्पणियाँ)
२१. एच० एम० एमिन्ट और के० डॉसन हिस्टरी ऑफ़ इंडिया ऐंड टोटल बार्ड इट्स प्रोन हिस्टोरियम्स (भारत का इतिहास भारतीय इतिहासकारों के मुँह से) पृष्ठ १ और २
२२. एम० बिम्बल अकबर

१२ उन्नीसवीं सताब्दी का पुनर्जागरण

१. सी० एफ० ऐंड्रूज इंडियन रिनायसी (भारतीय पुनर्जागरण)
२. ए० के० कुमारस्वामी ऐथेड इन मैसनस आइडियलिज्म (राष्ट्रीय वैचारिकता पर निबन्ध)
३. रवीन्द्रनाथ ठाकुर द रैमिन्स ऑफ़ मैन (मानव धर्म)
४. ए० मुमुक्षु भसी कस्वरन हिस्टरी ऑफ़ इंडिया (भारत का सांस्कृतिक इतिहास)
५. सर्वपल्ली रामास्वामन् वैचारिक जीवनवादाई
६. महादेव गोविन्द रानडे रिलिजियस ऐंड सोशल रिफॉर्म (आध्मिक और सामाजिक सुधार)
७. धर्महर मोहन रिलीजियस मूवमेंट्स इन इंडिया (भारत के धार्मिक आन्दोलन)
८. प्रार० रीफ़ेड प्राफ़ेडम्स ऑफ़ इन्डू इंडिया (नये भारत का मसीहा)
९. एन चटर्जी राममोहन का जीवनचरित (बंगला में)
१०. प्रार० चटर्जी राममोहन दे ऐंड मोहन इंडिया (राममोहन राय और धार्मिक भारत)
११. मी० बन्धोपाध्याय विद्याभानु का जीवन चरित (बंगला में)

- १२ धरमिन्द मोय द लाइफ डिवाइन (ईवी वीवन)
- १३ स्वामी विविलियन्स द पोप्लेस थॉट्स ऑन रामकृष्ण (श्रीरामकृष्ण का सन्देश)
- १४ एन० एस० एस० ओ० मीली मॉडर्न इंडिया ऐंड द वेस्ट (धार्मिक भारत और पश्चिम)
- १५ चंडरबुड कटेम्पेरेरी इंडियन थॉट (समसामयिक भारतीय दर्शन)

१६ सामाजिक और राजनीतिक इतिहास

- १ राधाकृष्ण मुञ्जर्नी हिन्दू सिविलिजेशन (हिन्दू सम्प्रदाय)
- २ मैक्समूलर इंडिया क्वाट डैन इट टीक वस ? (भारत हमें क्या सिखा सकता है ?)
- ३ पी० सी० भाइसेंस ऐंसेट इंडिया ऐंड इंडियन सिविलिजेशन (प्राचीन भारत और भारतीय सम्प्रदाय)
- ४ हिस्टरी ऐंड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल (भारत-निवासियों का इतिहास और उनकी संस्कृति) भारतीय विद्यामन्त्र के प्रकाशन
- ५ पी० सी० केन हिस्टरी ऑफ बर्मंडास (बर्मंडास का इतिहास) ३ भाग
- ६ राधाकृष्ण मुञ्जर्नी ऐंसेट इंडियन एजुकेशन (प्राचीन भारतीय शिक्षा)
- ७ ए० एस० मस्केर द पोपुलर थॉट्स बीनेन इन हिन्दू सिविलिजेशन (हिन्दू सम्प्रदाय में स्त्रियों की स्थिति)
- ८ पी० एम० बलबसकर हिन्दू सोशल इस्टीमेट्स (हिन्दू सामाजिक संस्थाएं)
- ९ एन० वनर्नी इकनॉमिक लाइफ ऐंड इण्डिया (प्राचीन भारत में धार्मिक जीवन)
- १० ए० बोस सोशल ऐंड कलर इन्विमी थॉट्स नादर इण्डिया (उत्तरभारत की सामाजिक और प्राचीन प्रवृत्तियाँ) २ भाग
- ११ राधाकृष्ण मुञ्जर्नी द इकनॉमिक हिस्टरी ऑफ इण्डिया (भारत का प्राचीन इतिहास) १९००-१८०० ईस्वी
- १२ राधाकृष्ण मुञ्जर्नी द लैड प्रोग्रेस ऑफ इण्डिया (भारत की भूमि-सम्बन्धी समस्याएं)
- १३ राधाकृष्ण मुञ्जर्नी द इण्डियन स्कीम ऑफ लाइफ (भारतीय जीवन-पद्धति)
- १४ मोपास हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम (हिन्दू भूमिकर-व्यवस्था)
- १५ मोपास एथरिज सिस्टम ऑफ ऐंसेट इण्डिया (प्राचीन भारत की भूमि व्यवस्था)
- १६ राधाकृष्ण मुञ्जर्नी सोशल गवर्नमेंट इन ऐंसेट इण्डिया (प्राचीन भारत में स्थानीय शासन)
- १७ भार० सी० यजुमधर कौरगेरेट लाइफ इन ऐंसेट इण्डिया (प्राचीन भारत में सामुदायिक जीवन)
- १८ बी० के० सरकार पॉलिटिकल रीफास ऑफ हिन्दू सोशलजी (हिन्दू सोशलजी की निश्चित पृष्ठभूमि)
- १९ भार० फ्रिड सोशल ऑर्गनाइजेशन इन नॉर्थ-ईस्ट इण्डिया (उत्तर पूर्वी भारत में सामाजिक संगठन)

भारतीय सभ्यता की समय-सारणी

भारत में सभ्यता का उदय (लगभग ३०००-१०००)

२८०० ईसापूर्व	अस्मर घाटी में प्राप्त सिन्धु घाटी की सिमिलर मुहरें तथा अमृता घाटी में प्राप्त स्टिग्टाइट का वर्तन ।
२७००	किश में प्राप्त सिन्धु घाटी की मुहरें ।
२८००-२५००	मोहनजोदड़ो में प्राप्त धुमेर-बाबीली धमिलेसपुक्त मिट्टी का वर्तन । सिन्धु घाटी की मुहरें बिनापर पशुओं के स्वामी पिद-पशुपति का बिना सुदा है । मिट्टी की पकाई हुई मूर्तियां जिनसे 'महान् माता' की पूजा का संकेत मिलता है ।

वैदिक सभ्यता (लगभग १२००-८००)

२०००-१०००	सप्त-सरस्वती में ब्राह्मणों का वायव्य
समय १२७५	एशिया माइनर में ऋग्वेद के चार देवताओं की पूजा । सप्त-सरस्वती में भरत ऋग्वेद की ऋचाएँ धीरे धीरे
समय १०००	महामारत कृष्ण जन्मक प्रबन्धन वैदिक याज्ञवल्क्य कपिल पादार्थनाथ वैदिक शास्त्रों की धारणा

वर्तन का काल वेदान्त बौद्धधर्म और जैनधर्म
(लगभग ६००-४००)

समय ६६०-५२०	'उपनिषद्'
५२०-५२७	महावीर वर्तमान

	धार्मीक सभ्यता के संस्थापक मस्करी योसास । यह सभ्य दाय कम से कम तेरहवीं शताब्दी तक भीविठ रहा ।
१११-४८३	मुद्र
जगमग छठी शताब्दी	बास्पीकि
सममय १००	'गुह्यसूत्र' 'वर्मसूत्र' और 'धस्वसूत्र
४८३	राजगृह में सर्वप्रथम बौद्धसभा
सममय ४१०	पाणिनि
४००	'रामायण' और 'महाभारत' (तथा अपने वर्तमानरूप में 'भगवद्गीता') । भरतों के (भारती) भाषा और संस्कृति के साथ भारत का सम्बन्ध जोड़ना । भामवतवर्म और धैवधर्म का उदय । ३८३
	श्रीधारी में द्वितीय बौद्ध सभा ।

भीर्य-मुनर्जागरण तथा प्रथम भारतीय साम्राज्य
(सममय ३२२-११०)

३२२-१८४	भीर्य-साम्राज्य कीटिस्व का 'धर्मशास्त्र' दासों की स्वतन्त्रता । धार्यत्व के सामों पर और । पांच हीन जातियों में वर्ण का विभाजन । बौद्ध संस्थापक के विरुद्ध प्रतिक्रिया । वर्णभ्रमवर्म की पुनर्स्थापना । जात्यामन कृत 'कामसूत्र'
जगमग तीसरी से बूसरी शताब्दी तक	पाटलिपुत्र में प्रथम भीम सभा
सममय ३००	अशोक तथा सीरिया मिस्र, मकेडोनिया धारि पस्चिमी देशों तथा नेपाल बीसका सुवर्णमूमि धारि पूर्वी देशों को भेजे गए धार्म्यात्मिक विषय के विधान । बीसका में सर्वमित्रा द्वारा बीजबुल की एक बड़ का आरोपण । अशोक के स्तंभ तथा धिनानिधिस ।
सममय २७३-२३२	भीम-साम्राज्य की कला के उदाहरण शारणाय के अशोकस्तंभ विह परगहा रामपुरा का भीम परगहा । लोककला के उदाहरण बीबारयन में प्राप्त विधान यही भीति में बट्टान पर तराशा गया हुआ ।

चीनी से तीसरी
सताब्दी तक

उत्तर-पश्चिम में खरोष्टि वर्षमासा का प्रचलन ।

तीसरी सताब्दी

हेमचन्द्र काबुल धाम्मी और सीता मधियों के काँठों में भारतीय संस्कृति का प्रसार । चीस्तान और काबुल 'स्वतंत्र भारत' के नाम से ख्यात ।

तीसरी से पहली
सताब्दी तक

चीनी का स्तूप जिसमें बीड़ प्रतीकों को रिनीऊ के रूप में प्रस्तुत किया गया तथा चीड़कपाड़ों को अंकित किया गया ।

उत्तर-पश्चिम में शकों और यवनों का आगमन
(लगभग २०० ईसापूर्व से ईसा सन् के आरंभ तक)

तीसरी से पहली
सताब्दी तक

गंधार और शाक्य में बौद्धिवादी बुनानी उनका भारतीय-करण ।

३३ ईसापूर्व से
७० ईस्वी तक

पश्चिमी भारत में शकों का आधिपत्य । भारतीय-शक मूर्ति-कला का मथुरा में प्रादुर्भाव । स्तूप की मूर्तियों का स्वरूप अनि-धार्मिक शक हो गया ।

शुंग और शातवाहन वंशों के अन्तर्गत ब्राह्मण-बुद्धराजान
(लगभग १२० से ईसा सन् के आरंभ तक)

लगभग १८०-१२०

यवनों की पुष्पमित्र द्वारा पराजय और पुष्पमित्र के दो अस्व-मेष यज्ञ ।

लगभग १२०

पठोजलिकुल 'अहमसाप्प' । 'असुर' और 'बाबिब' नामक नाटकों का किन्नर जिनेसे पद्यबलि शक और पंच महायज्ञों की व्यवस्था करनेवाले कुष्म-मात्रवत्तर्ष की लोकप्रियता स्पष्ट मान्यता पड़ती है ।

लगभग १२०

भाषकृत और बोधगया में बीड़ मूर्तिस्था ।

लगभग १२६

धाम्मी नदी के काँठों में स्थित नू बिच में चीनी राजकुल चाङ-ह्वेन का आगमन ।

१२०

मुझीकसुस द्वारा मित्र से भारत की सर्वप्रथम चीनी समूह-भाषा ।

लगभग १११

बोधधर्म में बीजात बुनानी ह्रीमिमोहारस द्वारा बिन्धिया में गढ़क यज्ञ की स्थापना ।

लगभग १००

'मिमिन्दपम्ह' । यवन हिन्दू और बीड़ दासतियों और व्यापारियों का मिलन-स्वतंत्र शाक्य ।

पहली सताब्दी ईसापूर्व
८६ से ४० ईसापूर्व

मनु का 'धर्मशास्त्र' ।
धीमेका के बट्टपासि अममसेव में पामी धर्मधर्मों का सेवन ।

समय ६०	स्रोतग में बौद्धधर्म का प्रवेश ।
१०	राजा कारनेस द्वारा कस्मिग में जैनधर्म का पुनरुत्थान और मथुरा के भारतीय-यूनानियों पर उसकी विजय ।
समय ४४ से २६	सिंह में तमिल राजाओं का शासन ।
लगभग २६ से २०	दक्षिणभारत का राजकुल सम्राट् प्रागस्टस के दरबार में ।
२ ईसापूर्व	यू-बी शासकों द्वारा चीन के सम्राट् को बौद्ध धर्मग्रंथों और मूर्तियों की भेंट ।
पहली शताब्दी ईसापूर्व से सातवीं शताब्दी ईस्वी	भारत की मूर्तिकला और विचित्रता । यह वास्तव में एक राष्ट्रीय कला-सङ्ग्रहालय का जिनके प्रतीकों और चीनी का प्रयोग दक्षिण और पूर्वी एशिया में शताब्दियों तक होता रहा ।
४३ ईस्वी	हिप्पासस द्वारा अरब सागर के मानसून की खोज ।

**एशियाई एकता का पहला युग एशिया महाद्वीप पर
बौद्धधर्म का प्रसार
(लगभग ६० ईसापूर्व से १०० ईस्वी तक)**

लगभग ६३ ईसापूर्व	बमरस और भारतव द्वारा चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश । चीन में प्रथम बौद्ध मठ चांगन में स्वेत भद्रमठ की स्थापना ।
७३ ईसापूर्व	पश्चिमी भारत के राजा अश्विधक द्वारा जावा का उपनिवेश-करण ।
लगभग ८३	कनिष्क के शासनकाल (लगभग ७८-१०१) में कुंडलवन बिहार में महायान का प्रारंभ । कनिष्क ने बौद्धधर्म को स्वीकार किया । अपनी राजधानी पुरणपुर में एक बिहार तथा श्रवणियों की प्रतिष्ठा के लिए एक मुन्दर भीमार बनवाई । अश्वमेध धर्मशास्त्र अनुमिन्न पार्थव धर्मदेव कुमारनन्द चरक नागार्जुन संवरण और एशियास्थित ।
पहली शताब्दी ईस्वी	नागार्जुन का भाष्यमिक्त सम्प्रदाय ।
पहली शताब्दी से दूसरी शताब्दी ईस्वी तक	कोरोमंडल तट पर अरिक्केषु एक प्रमुख व्यापारिक स्थान । भूमध्यसागरीय देशों के साथ व्यापार । मञ्जुश्रीनगर अम्बरगाह पर प्रागस्टस के मन्दिर का निर्माण । कावेरीमहिम्न पर मन्दिर अस्तित्व तथा सींग और मुपारी का रोमक साम्राज्य के लिए निर्यात (लगभग ८०-१०० में एरा-प्रियम सागर के पेरिप्लस द्वारा वर्णित) ।

७१ ईसापूर्व से
११८ ईस्वी तक

दक्षिण में समुद्र-समीपस्थ सातवाहन साम्राज्य और उनके महोद्यम। यशस्वी सातकर्णिके सिक्कों में दो मस्तुकों वाले जहाजों की प्रतिकृति है जिससे उसकी नाविक शक्ति का आभास होता है।

बर्मा के वाटोन में बौद्धधर्म का प्रवेश। बौद्ध के सैकों से यह स्थल प्रभावित होता है।

पहली शताब्दी ईसापूर्व
से सातवीं शताब्दी
ईस्वी

पश्मिनों का समुद्र-समीपस्थ साम्राज्य तथा महोद्यम। उन्होंने पड़ोसियों के लगातार बलाघ के कारण प्रारम्भ से ही बृहत्तर भारत और इण्डोनेशिया में उपनिवेशीकरण की सुनिश्चित नीति को अपनाया।

पहली शताब्दी ईस्वी
दूसरी शताब्दी

कौमिलन्य द्वारा कम्बुज में हिन्दू उपनिवेश की स्थापना।

श्री-भार द्वारा स्थापित कम्पा में हिन्दू उपनिवेश बो-बान्ग में प्राप्त एक प्राचीनतम संस्कृत समिसेख, जो एक प्रारम्भिक बलिष्वभारतीय सिपि से है।

मंगकेषु और उनके पुत्र मधस्स द्वारा मलम प्रायद्वीप में स्थापित हिन्दू उपनिवेश।

वैभवर्मन द्वारा पश्चिमी बाबा में हिन्दू उपनिवेश की स्थापना।

पहली से दूसरी शताब्दी
तक

धमरावती की कला तथा बर्मा स्वाम बाबा और मुयाबा की धीपनिवेशिक काल पर उसका प्रभाव।

बपुरा निरिछा और पयावती की कला।

पहली अथवा दूसरी
शताब्दी

मुषाव्वकृत 'बृहत्कथा'। इसमें समुद्री साहसिकों के व्यापार तथा साहसिक कृत्यों की कहानियाँ हैं, जिनमें इन साहसी पुरुषों की द्वीपान्तर भारत (कटाह कर्पूर तथा सुवर्ण द्वीपों) की यात्राएँ भी शामिल हैं।

पहली से सातवीं
शताब्दी तक

गंधार की भारतीय-मुसामी कला। बहिर्वा बैक्ट्रिया, खोतान, मिछ कब और तुरफान तक इस कला का विस्तार।

दूसरी शताब्दी
दूसरी अथवा तीसरी
शताब्दी

'समिच्छित्त'।

'सद्वर्णपुष्परीक' तथा धार्यसूरकृत 'जातकमाता'।

२५० ईस्वी

खोतान स्थित बोवती-विहार के भारतीय भिक्षुओं के विप्लव में चीनी भिक्षु ह्वेन-त्सु द्वारा बौद्धधर्म ग्रन्थों का संश्लेषण।

२६२-२६६

विष्णुवर्धन तथा 'सद्वर्णपुष्परीकसूत्र के चीनी अनुवाद।

दूसरी से तीसरी
शताब्दी तक

गंधार वास्तुकला का पश्चिम प्रसार।

गुप्त संस्कृति का स्वर्णयुग

तीसरी से चौथी
शताब्दी तक

वसिष्ठ में बुद्ध की विधास मूर्ति (१२०-१७१ कुट ऊँची) । यह मूर्ति हिन्दूकुछ तथा क्रोह-ए-बाबा की घाटी से होकर भारत को आनेवासे मार्ग के पास थी । इसी मूर्ति से प्रेरणा ग्रहण करके गुप्त-काक तथा सुङ्ग-मेन (चीन) तथा नाग (जापान) में बुद्ध की विधास मूर्तियाँ बनाई गई ।

एशियाई एकता का दूसरा युग

३००

‘योगसूत्रों पर ‘व्यास-भाष्य ।

हीनान्तर भारत में उपनिवेश और राज्य (३००-४०० ईस्वी)

‘भीमांसा पर ‘शबर-भाष्य ।

समय ३००-३२०

ससंग और बसुबन्धु तथा योगाचार की स्थापना ।

३२०-४००

‘ब्रह्मसूत्र’

तीसरी शताब्दी चौथी
शताब्दी

ईस्वर कुम्भकृत ‘संस्कृत-कारिका’

चौथी शताब्दी

एककर्मिण राजकुमारी बुद्ध के विस्थात बन्त-अवशेष को हीनान्तर से छिहल ले गई ।

अम्पा का उपनिवेशीकरण । इसका संकेत हमें एक धिक्कर्मिण की स्थापना के सम्बन्ध में मन्त्रबर्णन के संस्कृत अभिलेखों से मिलता है ।

कोनिथो का उपनिवेशीकरण । इसका संकेत हमें कुतेई के अभिलेख से मिलता है जिसमें एक ग्राम की स्थापना तथा योगाचार का विवरण है ।

४४४-४१२

भीमी बौद्धधर्म के महाम नेता कुमारजीव तथा चीन की राजधानी चाङ्-यांग में उनका मिशन (४०१-४१२) । वहाँ पर उन्होंने समग्र १०६ बौद्धग्रन्थों का अनुवाद किया और चीन में महायान के प्रसारार्थ किसी भी धर्म्य विज्ञान से अधिक योग दिया ।

४१२-४३४

महायैर बुद्धचोप की श्रीसंका और बोटन यात्राएँ ।

४२०-४३२

महान् गुप्त-साम्राज्य । अभिलेखों और साहित्य में निर्देष्ट है कि इस साम्राज्य का विस्तार उत्तरभारत बस तक भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रदेश तथा भारत महासागर के द्वीपों तक था । समुद्रपुष्प के दरबार में चीनका के सम्राट मेचबर्न

	में ब्राह्मण-कलाकृतियाँ ।
पाँचवीं शताब्दी	श्रीसका के सिगिरिया (सिंहगिरि) के राजप्रासाद में मिली चित्रों पर भगवता की बीसी घोर उत्तक मोटियों का प्रभाव ।
पाँचवीं से दसवीं शताब्दी तक	बेई और तारु युगों के दौरान चीन में युन-काङ (३६८-४६९) मुङ-मेग (४६९ के बाद) तथा तुन-हू-बाङ के मुफा-मन्दिरों में बौद्धकला पर गंभीर और भगवता रीसियों का प्रभाव ।
२२८	कोरिया में बौद्धधर्म का प्रवेश ।
५३३	यसोवर्धन ने हूणों को जिनके नेता मिहिरभुस थे अन्तिम रूप से पराजित किया ।
२३८	जापान में बौद्धधर्म का प्रवेश ।
६०४	जापान में राष्ट्रीय धर्म के रूप में बौद्धधर्म की मान्यता ।
६००-६२०	तिब्बत के राजा साङ-स्तान याम-पो द्वारा उत्तरभारत पर आक्रमण । कश्मीर होकर तिब्बत में भारतीय बणमासा और सिपि का प्रवेश तथा प्रथम बौद्ध मन्दिरों का निर्माण ।
६०६-६४०	हर्ष शिमाशिल तथा महायान बौद्धधर्म का पुनरुत्थान ।
६४१	चीन में हर्ष का राजपूत ।
६४३-६५०	बाङ-ह्वेन-स्ते क तीस भारतीय भिक्षु ।
६८४	मुमाबा (पालेमबांग) में महायान बौद्धधर्म का प्रवेश । अमिलेक द्वारा निरिष्ट ।
सातवीं शताब्दी	३९ चीनी यात्रियों की भारत-यात्रा ।
सप्तम शताब्दी शताब्दी	'कारिका' के रचयिता तथा शंकर क व्याख्यात्मक पितामह श्रीकपाल ।
६९०-६४३	भारत में ह्वेनसाङ
६७१-६८५	बीजिजय और भासम्बा में ई-स्तिरु
छठी से आठवीं शताब्दी तक	पौराणिक हिन्दूधर्म तथा तांत्रिक धर्मों के प्रभाव के कारण बाबाजी एनोरा और एमीका में कमानो और वास्तविक मध्य युगीन ब्राह्मण-कला ।
सातवीं शताब्दी	पहलवों के काल में मामस्सपुरम् के एकाधम-नीसा-मन्दिर ।
	एशियाई एकता का तीसरा युग
७२२-११०७	महान पाल-साम्राज्य ।

संस्कृति और कला का तांत्रिक पुनर्जागरण तथा नेपाल
तिब्बत बृहत्तर भारत और इण्डोनेशिया में
वर्ष ७००-१२००) ।

७वीं से ८वीं
शताब्दियों तक

मूर्तिकला की पाल और सेन चीनियाँ और नेपाल तिब्बत
वर्षा स्याम सुमात्रा तथा बाबा की कला पर उनका प्रभाव ।
पहाड़पुर (बिज्जपुर) मुसिबाबा और चौबीस परगना में
उत्कृष्ट कृतियाँ ।

०-१०००

१-७१२

भजन्ता और एनोरा की परम्पराओं के समान एक प्राञ्चल किंतु
धोबस्वी बिज्जपुरा-सम्प्रदाय । ७वीं से लेकर बारहवीं शताब्दी के
अन्त तक की ताड़पत्र पर प्रज्ञापरमिता पांडुसिधियों में उचित
अनेक बच्चयान देवताओं के चित्रों से यह बात स्पष्ट होती है ।

मुम्बेश्वर की कला और वास्तु ।

तिब्बत के लिए शान्तरक्षित का मिशन तथा ब्याम-या में
प्रथम बौद्धमठ की स्थापना । शान्तरक्षित के सहयोगी कमल
बीस और पद्मसंभव (७५७) ।

शान्तरक्षित के उत्तराधिकारी सिध्दों और उपदेशकों की
तिब्बती सूची पद्मवज्र धर्मवज्र इन्द्रमुक्ति सम्मीकरा
जीवावज्र वारिक सहजयोगिनी चिन्ता, और धोम्बी हेरक ।

८

बंगाल से बौद्ध तांत्रिक वर्म का बाबा में प्रवेश । कुमारवोप द्वारा
स्थापित कलसम मन्दिर में धार्मिकता को समर्पित अभिलेख
में इसका संकेत है ।

८-८२८

संकर, भारत पर उनकी शार्ङ्गिक विभिन्नता तथा उनके चार
शार्ङ्गिक मठों की स्थापना ।

९

कम्बोडिया में चारों तांत्रिक धर्मों सहित देवराज (बतुर्मुल
धिवर्तिय) के रहस्यवादी सम्प्रदाय का प्रवेश । इसका चित्र
सिमोफान अभिलेख में है । जयवर्मन द्वितीय द्वारा देवराज
मन्दिर का निर्माण ।

राजपूत-मुलर्जागरण (लगभग ८००-११००)

७वीं से आठवीं
शताब्दी तक

जातिधर्मों के धर्ममिथुन से पवार परिवार, चौहान तथा सोलंकी
नामक धर्मिक राजपूतों का उदय ।

५-१०१८

कम्बोज के प्रतिहारों का साम्राज्य ।

००

अभिनवगुप्त ।

१८-१०१५

भारा के भोज ।

११०६-११३८	महर्षि के सहस्रमण्डप
११३३-११६४	अजमेर और कन्नौज के विग्रहराज अतुल्य महामा ।
समय ११७०	अजमेरकृत गीतगोविन्द
समय १२००	'पृथ्वीराजविजय' ।
१२००-१०२०	अदम्य राजपूतों के प्रभुत्व में अजमेर और महाराष्ट्र की कला और कला ।

उत्तर के सिद्धाचार्यों और नायकानों का युग
(समय १०००-१२००)

समय १०००-१२००	नाथ-सम्प्रदाय के अधिपत्य मत्स्येन्द्रनाथ अथवा लुईपाद (बसन्ती शताब्दी का उत्तरार्ध) । गोरखनाथ (बसन्ती शताब्दी) कृष्णपाद तैत्तिरीय मरुत और सरहपाद ।
समय १२००	बीजा मन्त्र के-बी बोधगया आए । इसका चित्र सात बुद्ध प्रदर्शित करनेवाले एक प्रस्तर-चित्र पर लुई अधिपत्य में है ।
आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक	अजमेर और बीड़ में महान् बीड़ संन्यास नाथनाथ विष्णु धिया सोमपुर ओरांगपुरी अजमेर पंडुपुत्र अजमेर देवी कोट विष्णुपुरी पण्डित सत्यार, पुस्तकालय और पण्डितके । ये अजमेर और अजमेर के केन्द्र थे जिन्होंने उत्तर में नेपाल और तिब्बत तथा दक्षिण में बृहत्तर भारत और इण्डोनेशिया के ज्ञान और संस्कृति को प्रसारित किया ।
समय १२००-	प्राचीन अजमेर अजमेर ।
१०४३-१०४३	अजमेर के पण्डित और विष्णुधिया संन्यास के अठारहवीं शताब्दी अजमेर ने तिब्बत में अजमेर का प्रचार किया ।
१ १८-११२२	तिब्बत के अध्यात्मवादी तथा कवि मित्त-रप जिनका नाम बुद्ध-सिद्धान्त अजमेर के ही समान है ।
बसन्ती से बारहवीं शताब्दी तक	सम्पूर्ण पूर्वी भारत में अजमेर की अजमेर-मूर्ति ।
	दक्षिण के अध्यात्मवादिनों का युग (समय १०००-१०००)
समय १०००-१०००	रामानन्द रामानुज परम्परा के अध्यात्म दक्षिणभारत के संत अध्यात्म और अध्यात्म (समय सातवीं से नवीं शताब्दी तक) ।
१०००	नाथपुत्र द्वारा 'अजमेर' का संरक्षण ।

संस्कृति और कला का तांत्रिक पुनर्जागरण तथा नेपाल
तिब्बत जुहसार भारत और इण्डोनेशिया में
जम-प्रचारकार्य (७००-१२००) ।

घाठनीं से दसवीं
घताब्दी तक

मूर्तिकला की पात और सेन सीमियां, और नेपाल तिब्बत
बर्मा स्याम गुमाना तथा जावा की कला पर उनका प्रभाव
पहाड़पुर (बिक्रमपुर) मुदिदाबाद और बीबीस परबना
उल्लेख्य कृतियां ।

अजन्ता और एलोरा की परम्पराओं के समान एक प्राञ्चलिक
धोजस्वी बिजकला-सम्प्रदाय । नवीं से लेकर बारहवीं घताब्दी
अन्त तक की ताड़पत्र पर मञ्चापारमिता पार्श्वल्लिपियों में अनेक
अनेक बज्रयान देवताओं के चित्रों से यह बात स्पष्ट होती है ।

७२०-१०००

जुवनेश्वर की कला और वास्तु ।

७०९-७९२

तिब्बत के लिए आन्तरिकृत का मिशन तथा ब्याम-या
प्रथम बीड़मठ की स्थापना । आन्तरिकृत के सहयोगी कमर
शील और पद्यसंभव (७४७) ।

आन्तरिकृत के उत्तराधिकारी शिष्यों और उपदेशकों ने
तिब्बती सूफी पद्यबन्ध धर्मबन्ध इन्द्रभूति सकमीकर
लीलावज्ज धारिक सहजयोगिनी चिन्ता, और होम्बी हेरुका

७७८

बंमान से बीड़ तांत्रिक धर्म का जावा में प्रवेश । कुमारचोपड़ा
स्थापित कलसम मन्दिर में आर्यताप को समर्पित अभिलेख
में इसका उल्लेख है ।

७८८-८२८

ईकर भारत पर उनकी दार्शनिक विभिन्नता तथा उनके वा
चारिक मठों की स्थापना ।

८०२

कम्बोडिया में चारों तांत्रिक धर्मों सहित देवराज (बतुमु)
शिष्यभिय) के रहस्यवादी सम्प्रदाय का प्रवेश । इसका शिष्य
विशेषाक्रम अभिलेख में है । अथर्वमन द्वितीय द्वारा देवराज
मन्दिर का निर्माण ।

राजपूत-मुनर्जागरण (लगभग ९००-११००)

सातवीं से घाठवीं
घताब्दी तक

जातिधर्म के अन्तर्निष्ठ से पवार परिहार जीहान तथा सोलं
भामर अभिकुम राजपूतों का उदय ।

७२५-१०१८

कलीक के प्रतिहारों का साम्राज्य ।

१०००

धर्मिनवमुक्त ।

१०१८-१०५५

भारा क भोज ।

११०६-१११८	महर्षि के समयमें
११२३-११६४	अजमेर और कम्बीज के विप्रहराज वसुधं महमान ।
समय ११७०	जयदेवदत्त 'गीतगोविन्द'
समय १२००	'पृथ्वीराजविजय' ।
१२००-१०२०	बौद्ध राजपूतों के प्रभुत्व में अजोध्या और गहवा की कला और वस्तु ।

उत्तर के सिद्धाचार्यों और राजपूतों का युग
(समय १०००-१२००)

समय १०००-१२००	नाथ-सम्प्रदाय के अधिष्ठाता मत्स्येन्द्रनाथ अथवा कुर्वाण (दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध) । गोखनाथ (दसवीं शताब्दी), हज्जनाथ तैलकनाथ मरोप और सरहनाथ ।
समय १२००	चीनी भिक्षु वे-यी बोधया आए । इसका चित्र तात बुद्ध प्रदर्शित करनेवाले एक प्रस्तर-लकड़ पर खुदे अभिलेख में है ।
आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक	मगध और गौड़ में महान बौद्ध संघाराम नाम्ना विक्रम सिता सोमपुर ओरास्तपुरी अगस्त्य पंडुपुत्र, मैकुटक देवी कोठ विक्रमपुरी पण्डित समुद्र कुस्तहरि और पट्टिकेर । ये बज्रवान और सहजयाम के केन्द्र थे जिन्होंने उत्तर में नेपाल और तिब्बत तथा दक्षिण में बृहत्तर भारत और इण्डोनेशिया के ज्ञान और संस्कृति को प्रसारित किया ।
समय १२००-	प्राचीन बंगला बर्मापद ।
१०४३-१०४३	बंगाल के पंडित और विक्रमधित संघाराम के मठाधीश दीर्घक श्रीजान ने तिब्बत में महाबान का प्रचार किया ।
१०३८-११२२	तिब्बत के ब्रह्मात्मवादी तथा कवि मिल-रप बिनका लम बुक-सिद्धांत ग्रन्थ के ही समान है ।
दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक	सम्पूर्ण पूर्वी भारत में जयसिंह की सहज-मूर्ति ।
	बलिष्ठ के ब्रह्मात्मवादिनों का युग (समय १०००-१०००)
समय १०००-१०००	राजानन्द राजानुज परम्परा के अनुयायी दक्षिणभारत के उत्तर प्रायद्वीप और आन्ध्र (समय आठवीं से नवीं शताब्दी तक) ।
१०००	नाथपुत्र द्वारा 'प्रबन्ध' का संकलन ।

- समय १००-१००० सम्पूर्ण भारत में भक्ति-भान्धोसन के आश्रित 'भीम' भगवतम्' का कांचीपुरम् में प्रथम ।
- ग्यारहवीं शताब्दी चौथी का समुद्र-समीपस्थ साम्राज्य । सुभाषा और बाबा के शीर्षों ने मेगापलम् में बस्तियाँ बसाईं । राजराज चौहान (१८१-१०१५) ने दो बौद्ध मन्दिरों का निर्माण कराया जिनमें पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक विवेकी भाभी बाटे रहे । तबौर बिबे में सुगम्य के भीनी सिक्कों सेलेदिन घाति की शोच जिनसे भीम के साथ व्यापार का प्रमाण मिलता है ।
- १०१२-१०१५ राजेन्द्र चौहान द्वारा समय स्वाम और सुभाषा पर विजय । अनपसकृत 'तिलकमंजरी' (ग्यारहवीं शताब्दी) में भारत से इंडोनेसिया की एक समुद्री यात्रा का विवरण वर्णन है ।
- १०३७-११३७ रामानुज द्वारा बिशिष्टाईत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन ।
- ११६५ निम्बार्क द्वारा ईत और घईत का समन्वय ।
- ११६६-१२०० बिहार और बंगाल के बौद्धसंनारामों का विनाश ।
- ११६७-१२७६ ईत और अनेकेवरबाब के समर्थक तथा शकर के विरोधी माधव ।
- ७३२-१२५० श्रीविजय का बौद्ध शैलेन्द्र-साम्राज्य तथा शक्ति साहित्य वर्म और कला से विकास में उसका योग । एक नामन्दा अमि सेय (८४) के अनुसार शैलेन्द्रवंश के सम्राट् बलपुत्रदेव ने मगध के सम्राट् को लिखा था कि वे (मगध-सम्राट्) उनकी (बलपुत्रदेव) की ओर से पाँच मान खरीदकर नामन्दा बिन्दु विद्यालय को भेंट कर दें जिनकी प्राय से बिदेसी विद्याविमों के लिए एक संभाराम बसाया जा सके । एक भीनी सेखक चारु कुकुभा (१२४८-१२५८) ने लिखा है कि श्रीलंका श्रीविजय-साम्राज्य के अमीन राज्य था ।
- ७१५-८२५ बोरोबुदुर में विद्यास स्तूप तथा प्रम्बनम का सहस्र मंदिर । कला का चरम उत्कर्ष ।
- ८००-१२२० हिन्दुकुट कम्बोडियाई संस्कृति शीपस्थ ।
- ८८६-१२०० धगकोर शौम (नगरधाम) के विद्यास मन्दिर । यशोवर्धपुर में यशोवर्मन् (८८६-९१०) द्वारा प्रथम राजधानी की स्थापना । जयवर्मन सप्तम (११८१-१२०१) द्वारा दूसरी महीन राजधानी की स्थापना । बैयन तथा सयक पचास मन्दिर केन्द्र में वे और मन्दिर-पवत था । विद्यास 'बारोक' शैली में सायनिक वास्तु एवं मूर्तिकला जो हिन्दू और बौद्ध शक्ति सम्प्रदाय की

अभिज्ञान क मन्त्रप भी ।

570-1285

पगल के सहस्र पीयोडा जिन्हें पान धीरे मन बर्षों के काल में
हिन्दू धीरे बोड्ड पुनिबसा के धीरे प्रविष्ट विराम का पडा
बनता है ।

1245-1252

आवा में सिंगसरि का धम्मिय हिण्डू राजा नया तंजबाइ का समक—इत्यपर।

1244-1245

जाबा म मजपहिनु क राग । माग्गीव महाबायो क जाबाई
प्रतिकुप सीयार ।

2372

समाज द्वारा भीनी नाश में हीनत्वप्रथा का संकलन ।
भीन में किसी भारतीय भिन्न डाग यह प्रमाण संकलना में स
एक भा ।

2348

एक आबादी जय में तिछा है कि कर्माणि कीर गीड़ से बहुसंख्यक लोग आबा की राजधानी य आ बने से ।

152

जुहरी बर्मा में प्राप्त अभिलेख त्रिगै मन्थेन्द्रनाय-सम्प्रदाय के एक प्रबन्ध की शीर्ष सट का भट किए जाने की बात लिखी है।

१४७८

भाषा पर मूखमानी की विषय ।

● ● ● ● ●

विजयनगर-साम्राज्य ।

हिन्दू धर्म और इस्लाम के बीच के पुनः मिश्रण और
संघी सामंजस्य (१४००-१५००)

1322-1410

महित-आन्दोलन क निष्ठा यमानम् ।

2420-2425

प्रतीति ।

ivye

सहस्रदाबाब के पार मसा सपरी ।

2542—2544

संस्कृत १

● 2015 年 1 月 1 日起实施

‘भागवत’ के अनुसार ब्रह्मभाष्य में प्रकृत की श्रेष्ठता में विभाजित किया।

 $\{Y_4\} - \{Y_5\}$

मल्लिकार्जुन बसु द्वारा 'भारतवर्ष' का वर्णन अनुवाद ।

14-00000

बंगाल के दीप्यबधर्म के स्थापक कृष्णमित्र में सम्मेलन है।

समयगत पत्रिका
घण्टाघडी

श्री ॥ गोस्वामी श्रीर बलदेव विद्यागुपण ने संग्राम के बीच-बचक के धर्मसाध और बशो का विकास किया ।

2464-2240

भीराबाई ।

१५६५

आयमी सुप्री ।

१५३२-१५३३

‘रामचन्द्रिय्याय’ के रचयिता तुलसीदास ।

१५७२	शेख सलीम चिरती ।
१५४४-१६००	बाबू ।
१५६३-१६२४	सरहिब के शेख बहमद सूफी ।
१५४८-१५६८	एकनाथ ।

मुगल सांस्कृतिक पुनरुत्थान, लगभग १६००-१७००

१६४१	दिल्ली के मस्तुन हक सूफी ।
१५८२	अकबर 'दीन-ए-इसाही' ।
सोसहवीं से अठारहवीं	मुगल और राजपूत चित्रकला की कलाएँ ।
गतावली के अन्त तक	

१५६३-१६०३	बंगाल में मुकुन्दराम का सर्वहारा नाट्य
१६००	ईस्ट इंडिया कम्पनी के एजेंटों का प्राचियों के रूप में प्राथमिकता तथा मुगलों के साथ व्यापार की प्रारम्भिकता ।
१६ ४	मिर्जा के प्रथम साहिब का संकलन ।
लगभग १६५०	बाराचकोह कूट 'मजमा उल-बेइदीन' । बारा के एक सुदूर कबीराचार्य । पंहरपुर के संत ।
१६०८-१६४६	गुफाराम ।
१६०८-१६८१	रामदास समर्थ ।
१६७०-१७२८	श्रीधर रामनिबन्ध ।

हिन्दू-पुनरुत्थान (१६००-१८००)

१६२७-१६८०	शिवाजी तथा हिन्दू पुनरुत्थान ।
१६७४	छत्रपति शिवाजी का राज्याभिषेक ।
१६९९-१७०८	सिद्धों का आध्यात्मिक और राजनीतिक आन्दोलन गुरु गोविन्द, मोखा और कवि ।
१७८०-१८३६	पञ्जाब के महाराजा रणबीरसिंह
१७४२-१७७१	होताई के लड़ाई प्रसन्न सूफी ।
१६९८-१७२५	दारी साहिब सूफी ।
१६८०-१७३८	बुस्मा साह सूफी ।
१६६३-१७९८	केदारदास सूफी ।
जन्म १६६२	भक्तानी सम्प्रदाय के अम्नदाता तथा 'ज्ञानप्रकाश' के रचयिता जगन्नील दास ।
१७००-१७२०	प्राणनाथ ।

१७०३-१७५३	अलवर के अरणवास ।
१७००-१७८०	बिहार के दरिया साहिब ।
१७१८	बंगाल के रामप्रसाद सेन ।
समय १७००-१७९९	गारिया के श्रीमोहन ।
१७१७-१७७८	रोहतक के गरीबवास ।
१७१९-१७९८	रामधरन ।
१७८०-	जेलपुर के सहजानन्द स्वामी ।
१७५७-१८२५	पट्टावास ।
१७७१-	देवराम ।
१७७३	रेग्युलेशन एक्ट जिसके अनुसार अंगरेजों का दर्जा व्यापारियों से बढ़ाकर राजाओं का हो गया ।

भारतीय अंगरेजी पुनर्जागरण (१८००-१८५०)

१७७५-१८३३	सर्वप्रथम आधुनिक भारतीय— राम मोहनराय ।
१७७८	शेरामपुर के मिशनरियों द्वारा बंगाल मुद्रण का प्रारम्भ ।
१७८१	कलकत्ता में मधरसा की स्थापना ।
१७८२	बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना ।
१७९५	विलियम जोन्स द्वारा 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की स्थापना ।
१८००	पोर्ट विलियम कालेज की स्थापना ।
१८०२	सिपुहुरा का उन्मुसल ।
१८१३	व्यापार पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के एकाधिकार की समाप्ति ।
१८१७	डेविड हेयर द्वारा हिन्दू कालेज की स्थापना ।
१८२७-१८८३	व्यापारिक संस्था के संस्थापक बंगाल सरस्वती ।
१८२९	सतीप्रथा का उन्मुसल ।
१८३३	व्यापारी संस्था के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी का अन्त । अन्त पर भारतीयों को मीकर रखने की नीति को मिडिल प्रोपियर किया गया ।
१८३५	कलकत्ता में मैट्रिकल कालेज की स्थापना ।
१८३५	मैकाले की शिक्षा-नीति ।
१८३ - १८९५	आधुनिक भारतीय कथासाहित्य ने जनक बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ।

१८३४-१८८६	रामकृष्ण ।
१८३८-१८८४	केदारनाथसेनकृत 'महाविद्यालय' ।
१८४८-१८८४	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ।
१८४९	कलकत्ता में महिलाओं के लिए वेधुन स्कूल की स्थापना ।
१८५६	यूनिवर्सिटी विधेयक ।
१८५७	जायि ।
१८५८	महाराणी विक्टोरिया की घोषणा ।
१८६१	इंडियन पीपल्स कोड का प्रवेश ।
१८६१-१८४१	रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।
१८६३-१८७२	विश्वकामन्द ।
१८ ७	प्राबला-समाज ।
१८६६-१८६८	मोहनदास कमलधर गांधी ।
१८७३	इंडियन एसोसियेशन ।
१८७८	भारतीय भाषा प्रेस विधेयक ।
१८८१	भारतीय फैक्टरी विधेयक ।
१८८५	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना ।
१८९१	एक डॉक कन्वेंशन विधेयक ।
१८९६	राष्ट्रीय विद्या समिति बंगाल ।
	भारतीय कला सम्प्रदाय प्रबन्धीन्द्रनाथ ठाकुर ।
	क्रांतिकारी आन्दोलन मुद्रापत्रकोष (१८९७-१८४९) ।
१८९७-१८ ४	गांधीजी द्वारा संगठित असहयोग आन्दोलन ।
१८४७	१। राष्ट्रों—भारत और पाकिस्तान में भारत का विभाजन ।
१८५०	भारतीय गणतन्त्र की स्थापना ।
	भारत के राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ।
	भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ।
१८५१-१८६१	प्रथम और द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना ।
१८६२	डॉ. मधवदासरावराव भारत के द्वितीय राष्ट्रपति ।
१८६४	श्री आनन्दबाबुरावराव भारत के तृतीय प्रधानमंत्री

अनुक्रमणिका

मरुवा २८-७६ ६६ २६० ७३४ २६७	एनकैटा १८ १६	— ५ ५ १७७
२६६ ३००-२ ६११	एयोग २२१-२५ ५३ ७७	
अनन्य २ १७ ७००-३		
अनना २१ १७ १७६, १७८ १८१	ओम्नापुनी १६ १८० २४१ २५५, १५६	
१८५ १८७ १८६ १८८ १८९	ओरगवेव २६ २६६ ३०५ ३०६ और	
२१० २१६	आगे ३०६	
अनामम, ५२ ६८ ७० ८०-८१ १०४		
अभिमान शास्त्रमस १५६-१७ ७०६	वचामिपुसागर ८१ १४४ १६० १६५,	
अवनी ५६ ७ ७४८	७६१ ७६४	
आोर ६५, ६७ ८०-८२ ८५, ८२-८३	कनिष्क ११ १७७ १८७ १७७	
६४ ६७-६८ १०१ ११२, ११३-	कत्रीय ० १५८ १७३ १८० ००	
१४ १ १ १ १ १८६	२०० २५६-६० २६१ २६५-६६	
अवनाप २१ ११५ १०६-४२ १७६	कबीर १४६ २४७ १८४ ८६ ८८-	
२१०	६१ ७६७ ६०० ६१० ६२०	
आई-मिड १८६, १३०-३३ १५०	काजी १४५, १४६, १६७ १७५ १८३	
१६१ १७०-७१ १७२ १७४ १७५,	१८४ १८२ १८५	
१८४, १८७ १८८ और आगे ७ ४	कादम्बरी १६६ ७३६	
आपसा २३० ७७८ ७८ ७८१	कामरव १५५, १५६ १५६, ७११	
	कामिनाम ३८ १११ १०६ १४ और	
भारव, ६०-६५, ११ ५५, ७७६, ७७८	आम १५१-१५४ और आम १६१	
२३१	७१० और आम २१६ १० २२५	
	कामी ३८ २७३ ३१७	
उम्बिनी १६ ६ ११० १०१ १७६	कुवताली ७८ १८१ १८७-८८ ७ ७	
उमिनर ५१ ५० ६६-६८ ७५-७६	७६६	
१०६ १४७ १४६ १४ १५६ १६६	कुमारमम १५० १५५, १५६ ७ ५,	
७७६ ७७ ७७ ७७४	७७७ ७७८ ७७९, १५	

कुरान २६१ २६६ ३२१

कृतिनाम २०६ २६५, ३१६

कृष्ण १७ ३६, ५७-६० ६६, ६७ १००

११७ १२४ १३० १३५, १४४

१४६, २०६, २०६, २१२ २३६,

२७५ ३०६ ३ ७ ३१२

कोणार्क १८६, १६४ २४६ २७०-७१

२७५

कौटिल्य ८२-८७ ८६, १६० १६६

कबुलादो २४६ २५३ २७०-७१ २७५

गांधी मो ४० ३३५, ३३६

गीत भाषित्य २६८ और भागे ३०७

मुनाक्ष १५६ १८६, २३७

गोविन्दसिंह पुत्र ३१ ३१२ ३१६

गौड़पाद १५४ २२६-२७ २३ -२३२

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गौड़पाद-भारिला १५३ २२६ २२८

गुप्तगीवात ३००-१ ३०२ और आग

गुर्गा १४६ २२७ २३६, २३८ २७५

वर्षी १४४

बाद, २४३ २४७ २८६, २६० और भागे

३ ०

देमेट्रियस ११०-११ ११८

मागार्जुन १७६ १३२-३३ १३६ १५३

१५४ १६१ १६७ १७८ २३८

२३६ २४५

मानक २४३ २८८ २८६-६२ ३००,

३१०-११

मामन्वा २७ ६० १३३ १३६, १४४

१४६-६१ १६६ और भागे १७८-

८८ २४ -८५ २४५, २५६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

निजामुद्दीन औमिया ४६६

अनाम (बायलमी) २१ ६८, ७७ ८०
 ८१ ८०-८१ १०० १७१ २१३
 २५६ २८२ २८५, ३२३
 आप १७७ १८१ १८५, २१६ २१६
 आप (मट्ट) १५६, २३८
 आबर २५६, २६७ २७० २७४ २६६
 अम्बिमार, ७० ७२ ८० ८१
 अष्ट लीला २० २६-२७ ३५ ६७ ७२-
 ७७ ८० ८६, ८३ ८८-११७ १२३
 और आप २५० ३३८
 अष्टमोष १५० १८०
 अष्टमोषामञ्जरी १२१ १५६ १६५
 अष्टमोषा ६० ६६-१०३ १०६-७ १२१
 अष्टमोषा २० ६३-६६ १०२-७
 १२७-४२ २१८ २२०
 अष्टा ३० ६६-७७ ६५ ६५ ११०
 २१७
 अष्टमोषा २१ ३४ ३७ ६१ ६२ ६४
 ६८ ११२ १३ १३५ १४८
 १५ २६ २२७, २३८ २८०
 अष्टमोषा १६० २३
 अष्टमोषा ५६ १५८ १६० २२२ २३८
 २६४
 अष्टमोषा १५०
 अष्टा ३५, ६६, १२४ २७३
 अष्टा १५४ २१०-११
 अष्टा ८० ६० ६८-६६, १०१-७
 १०६-१२, ११०-२१ १६७
 अष्टमोषा २५६ ७७०-७८, २७५
 अष्टा प्रथम २५६-६०
 अष्टा २१ २७ ४५, ४६, ६० ७२, ६
 ६१ १००-१ १०७ ११०-१२,

११५-१६, ११६, १२२ १४१ १७६,
 १६६ १६८ २०६, २१० २१३
 २१८ २५६ ३२३
 अम्बिमोषा ६०, १०१ १०४ ११०
 ११६ १६६-७० १६२
 अष्टमोषा २८ १८० १८२ २००,
 २२० २५६ २६१, २७४ २८०
 अष्टमोषा १७ २ -२१ २५, ४७ ५५-
 ६५, ७१ ११०-१५, ११७-१८
 १३० १३७ १४८ १५० १६८,
 १६६, १६६ २०५-६ २२६ २३६,
 २५७ २६६ २६५, १०० ३ ५
 अष्टमोषा, अष्टमोषा ६७ ६८-७० ८०,
 ११६ २२६, २५०
 अष्टमोषा १६५, २२१ २२३ २७३
 अष्टमोषा १२१ २२२ २६४
 अष्टमोषा १११ १५१ १५६-
 ६०
 अष्टमोषा, २८६ ३०० ३०३
 अष्टमोषा २५८ २५६, २८८
 अष्टमोषा ११ १२०-२१ १५६
 अष्टमोषा ८६ ८६, ६० ६२ ६७
 अष्टमोषा २६२ २६८ ३०३
 अष्टमोषा ४१ ४२, ४३-४५ ६६-
 १०२
 अष्टमोषा १५६
 अष्टमोषा ३२ ३६ ६८ ७६, २६४
 अष्टमोषा ३६ ५५-५८ ६३ १५१ १५८,
 ७०६ ७१० २१८ २३६
 अष्टमोषा २६, ३०२
 अष्टमोषा ३२६-३०
 अष्टमोषा २६३ २८३-६५, ३०२ ३१०

रामानुज १४८ २३७ २८ औरभागे
२८६

रामायण २०-२१ ५५, ५६-५८ ६३
११४ ११५, १३० १५८ १६८
१६० १६६ २०५-६ २६५

रघुहमिहिर ५६ १४४ १६०-६१
वसन्ती १४४ १४५ १४६ १६७ १७५,
१६६

रघुनाथ २३६ २६६ ३१
रघुनाथ १४४ १४८ १५३ १६७ १७३
१७६

रामायण १२-२१ १३ १४८
१६८

रामायण ५५-५६ ५८ १३
रामायण ५६ ६० ६१ ६७ १०६-१०
११२-१३ १३५ १८१

रामायण १४४ १७५ १८१ २३
६१ १५५, २५६

रामायण १५६-५७ २०६

रामायण ३३३

रामायण १२१ १४४ १५६

रामायण २० ३० ३६, ३६ ५६ ६५, ११
१३७ १५२ २०० २०२ २०६
२०६ २१३ २१७-१८ २२२ २२५,
२३५, २३६

रामायण २८५ ३ ४ ३०५, ३०७

रामायण ५५, ६२ ६५

रामायण १४८ १५३-५४ २२६ औरभागे
२४३ २५३ २८०-८२ २८६ ३०१
३१५ ३२० ३३० ३४०-३४६

४५ ५७ १० १०६-१ १२१
१२३ १३४ १४० १४६-४७
१५५-५६, २०० २०२ २०४-६
२०६ २१३ २१४ २१७-१८ २२२
औरभागे २२६ २३६ २३८ २३९
२४७ ३०७ औरभागे

रामायण २२६ ३१३ औरभागे ३१६

रामायण १७ ११७

रामायण २०- १ १०५, १२५-
३७ १७८ १८३ २३७

रामायण १५५ १५७ १५९, १६१
२६१

रामायण १८ १६ १ १-४ १०६ १०७
११२ १२२ १६८ १६६ २१६
२२३

रामायण ७२ ११-१५ १६ १० -१
१५६ १६६ २१३ २१४

रामायण ४१ ४२ ४५-४६ १०१
११६

रामायण ३८ ४१ ४३-४७ ४८ १६
२३७

रामायण १२५, १५१

रामायण १५५-५५, १५७ १५६ १६५, १६-
१७३ १६२ १६५, २२१

रामायण १० ३०५

रामायण २६ ७८ १४ १०८ ११-
१३६ १५५, १६६ १५९ १६१-
१६ १६१ १६६ औरभागे १८०

१८६-८६ १८४-१८७ २१८ २ ६
२७७, २८६-४०

